॥ अर्हम् ॥

श्री कल्पसूत्र-भाषानुवाद

[खरतरगच्छीय उपाध्याय श्री लक्ष्मीवल्लभगणिकृत कल्पद्रुमकलिका का अनुवाद]

卐

भाषानुवादिका

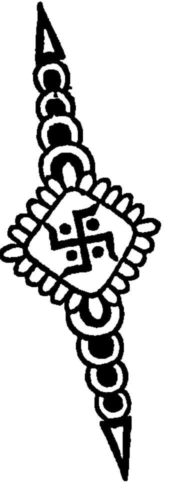
खरतरगच्छीय आर्यारत्न परमपूज्या श्री ज्ञानश्रीजी महाराज की अन्तेवासिनी

परम विदुषी आर्यारत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज

वीर संवत् २५०७

विक्रम संवत २०३८

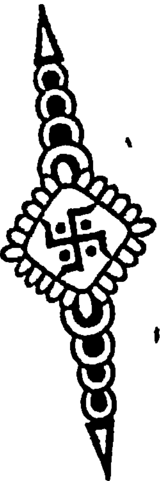
प्रकाशक—

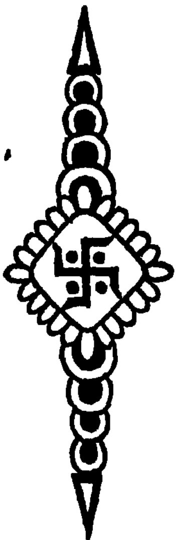


श्री जैन साहित्य प्रकाशन समिति
३६, बड़तल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता-७

- - - - - -

श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ
१५A, लक्ष्मीनारायण मुकर्जी रोड
कलकत्ता-७००००६



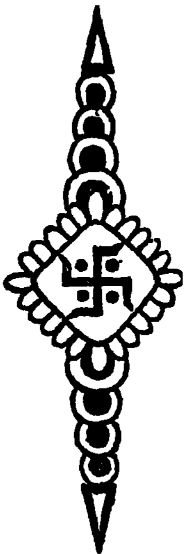


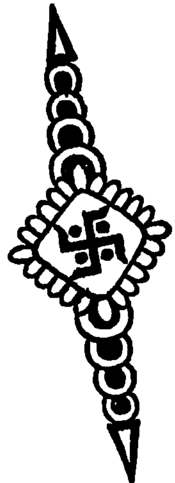
श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ के पदाधिकारियों के नाम

१. श्री सुमतिचन्द बोथरा, कलकत्ता—अध्यक्ष
२. श्री जवाहरलाल राक्यान, दिल्ली—उपाध्यक्ष
३. श्री भँवरलाल नाहटा, कलकत्ता—कोषाध्यक्ष
४. श्री ज्ञानचन्द लूणावत, कलकत्ता—मन्त्री
५. श्री जसराज लूणिया, मद्रास—उपमंत्री

श्री जैन साहित्य प्रकाशन समिति की कार्यकारिणी के सदस्य

१. श्री मोहनलाल गोलेच्छा सी० ए०—अध्यक्ष
२. श्री दीपचन्द नाहटा —सचिव
३. श्री नरोत्तमलाल गोलेच्छा —उपसचिव
४. श्री रिखबचन्द पारसान
५. श्री भँवरलाल नाहटा
६. श्री कान्तिलाल मुकीम
७. श्री पुखराज बेगाणी



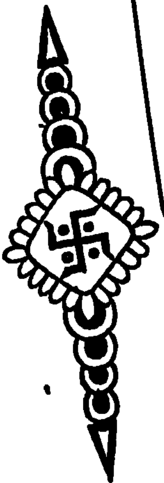


प्रस्तावना

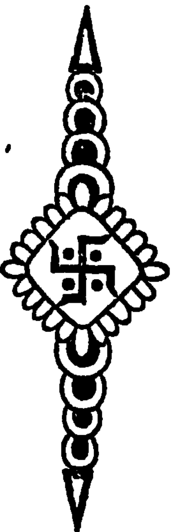
वीतराग-दर्शन में क्षमा-धर्म ही भवपरम्परा-कर्मबन्ध से मुक्ति दिलाने वाला, आत्मस्थ करने वाला वीरोचित सुगम मार्ग है। उपशम ही श्रामण्य का सार है और उस स्थिति के प्राप्त्यर्थ उभय काल, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण द्वारा पाप कार्य से पीछे हट कर उसे मिथ्या कर डालने की प्रक्रिया है। प्राचीनकाल में युग प्रतिक्रमणादि की प्रथा होने के उल्लेख पाये जाते हैं। वर्षायोग-चातुर्मास आत्मा में धर्म-बीज वपन करने की ऋतु है और आरंभ-समारंभ से बचकर तपश्चरण के साथ चतुर्विध धर्म का विशिष्ट आराधन किया जाता है। शाश्वत अष्टाह्निक पर्वों में पर्यूषण महापर्व सर्वोत्कृष्ट माना जाता है और उसमें सांवत्सरिक प्रतिक्रमण चातुर्मासिक प्रतिक्रमण के ५० वें दिन ही अनिवार्य रूप से कर लेना पड़ता है, इससे एक दिन पूर्व ही भले करें पर उस के बाद एक रात्रि भी उल्लंघन नहीं की जाती। पूर्व काल में श्रमणवर्ग पर्यूषण कल्प या कल्पसूत्र की वाचना अपने ही बीच करता था किन्तु भगवन् कालकाचार्य के समय से संघ समक्ष विस्तार से वाचन होने लगा।

कल्पसूत्र वास्तव में छेदसूत्र दशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन है और इसकी रचना चतुर्दशपूर्वधर श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामी ने की है। यह प्राकृत भाषा में गद्यात्मक १२१५-१६ अनुष्टुप (३२ अक्षर) छंद गणना के कारण बारसौ या साढ़े बारसौ सूत्र कहलाता है यह मूल सूत्र संवत्सरी के दिन वाचन श्रवण किया जाता है। इत.पूर्व विस्तृत व्याख्या द्वारा नौ या ग्यारह वाचना में सुनाया जाता है। इसमें तीन अधिकार है। १ तीर्थंकरचरित्र २ स्थविरावली और ३ साधुसमाचारी कुल २९१ सूत्रों में लगभग २०० सूत्रों का तो जिनचरित्र ही है जिनमें श्रमण भगवान महावीर, पुरुषादानीय पार्श्वनाथ, अर्हत् अरिष्टनेमि कौशलिक युगादिदेव ऋषभदेव स्वामी का चरित्र पश्चानुपूर्वी से अन्तराकाल सहित वर्णित है भगवान महावीर के गर्भापहार सहित छः कल्याणकों का वर्णन श्वेताम्बर मान्यता को पुष्टि करने वाला और मथुरा बौद्ध स्तूप के शिल्प से भी समर्थित है।

इतिहास को सर्वत्र पंचमवेद माना गया है। कल्पसूत्र में तीर्थंकरों का पावन जीवनचरित्र और स्थविरावली भी इतिहास ही है जो देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय में लिपिबद्ध किये जाने के कारण आर्य फल्गुमित्र तक के प्रमुख पट्टधर कुलगण और शाखाओं का महत्वपूर्ण उल्लेख भी मथुरा शिल्प से समर्थित होता है। तीसरा साधु-समाचारी अधिकार भी



कल्पसूत्र
IV



२८ समाचारियों में श्रमण संघ की आचार मर्यादा पर विशद प्रकाश डालता है। दशाश्रुतस्कंध का यह आठवाँ अध्ययन प्राचीन प्रमाणिक और इतर आगम चूर्णि निर्युक्ति आदि से भी समर्थित है।

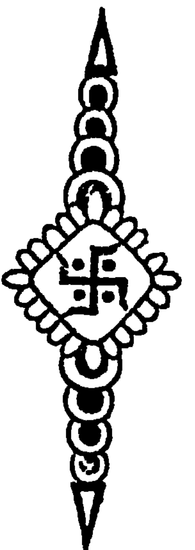
गत १५०० वर्षों से कल्पसूत्र का व्याख्यान अनिवार्य रूप से प्रचलित होने से इसका महत्त्व अत्यधिक हो गया। जैन संघ को श्रुतज्ञान के प्रति श्रद्धा-भक्ति और निष्ठा का यह एक अप्रतिम उदाहरण है कि इस सूत्र को आज भी हजारों प्रतियाँ ज्ञानभण्डारों में विद्यमान हैं। भक्त लोगों ने सैकड़ों स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी, गंगाजमनी सचित्र स्वर्णिम व हरिद्रादि विविध वर्णमय बेल-पत्तियों और हासियों वाली प्रतियाँ लिखवाकर करोड़ों रुपये सद्व्यय किए। आज भी इस प्रकार की संख्याबद्ध प्रतियाँ विविध ज्ञानभण्डारों में विद्यमान हैं। देवसापाड़ा-अहमदाबाद के ज्ञानभण्डार की प्रति, जिसमें केवल दो चार पंक्ति के अतिरिक्त सम्पूर्ण सूत्र चित्र समृद्धि से भरपूर है और उसके एक-एक पत्र का मूल्य दस दस हजार आंका जाता है इस प्रकार एक ही प्रति बीस पचीस लाख की हो जाएगी। जैनागमों में जितनी सचित्र और स्वर्णाक्षरी आदि प्रतियाँ इस कल्पसूत्र की लिखवायी गईं, अन्य की उतनी नहीं, कुछ सचित्र प्रतियाँ ताड़पत्रीय भी प्राप्त हैं।

इस शास्त्र पर जितने टीका-वृत्ति, बालावबोध, टबा आदि संस्कृत और भाषा में लिखे गए अन्य किसी भी सूत्र पर नहीं। श्वेताम्बर समाज के समस्त गच्छ कल्पसूत्र को समान रूप से आदर देते हैं। कल्पसूत्र को पहले दिन अपने घर ले जाकर उसके समक्ष बड़े समारोह पूर्वक रात्रि-जागरण भजन भक्ति करके दूसरे दिन बाजे गाजे के साथ लाकर पूजा प्रभावना के साथ गजारूढ करके महोत्सव पूर्वक गुरु महाराज को समर्पण कर बहुमान करने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है।

पर्यूषणों की आराधना के इतिहास में श्री कालकाचार्यजी का प्रमुख स्थान है अतः कालकाचार्य कथा का वाचन भी स्थविरावली के स्थान पर किया जाने की भी प्राचीन प्रथा है अतः इस ग्रन्थ का भी कल्पसूत्र के समकक्ष आदर है और सैकड़ों सचित्र व स्वर्णाक्षरी आदि महत्त्वपूर्ण प्रतियाँ ज्ञानभण्डारों में उपलब्ध हैं।

यद्यपि कल्पसूत्र की सचित्र प्रतियाँ अधिकांश अपभ्रंश शैली की ही मिलती हैं फिर भी कई मुगल, राजपूत और गूर्जर शैली की भी विभिन्न संग्रहालयों में देखी गई हैं। अनेक सचित्र प्रतियों का प्रकाशन श्री साराभाई मणिलाल नवाब आदि ने किया है।

सन् १९३४ में नोरमन ब्राउन ने भी कल्पसूत्र के चित्रों और कालकाचार्य कथा के प्राचीन चित्रों का अलग-अलग जिल्दों में वाशिंगटन अमेरीका से प्रकाशन किया था।



कल्पसूत्र पर सभी गच्छवालों ने वृति, बालावबोध, टबा अनुवाद लिखे है अज्ञात-कर्तृक रचनाएँ भी ज्ञानभण्डारों मे पर्याप्त उपलब्ध है यहा केवल खरतरगच्छ मे कल्पसूत्र पर जिन विद्वानों ने अपनी रचनाएं की है उनकी यथाज्ञात सूची प्रस्तुत की जाती है।

व्याख्या :—

कल्पनिर्युक्ति वृत्ति जिनप्रभसूरि

१ सन्देहविषौषधि टीका जिनप्रभसूरि सं० १३६४
२ कल्पमंजरी सहजकीर्ति हेमनंदन शिष्य सं० १६८५
३ कल्पलता समयसुन्दरोपाध्याय सं० १६९९
४ कल्पसूत्र टीका राजसोम [जयकीर्ति शिष्य) सं० १७६६
५ कल्पसुबोधिका कीर्तिसुन्दर [धर्मवर्द्धन शि०) सं० १७६१
६ कल्पद्रुम कलिका लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय [लक्ष्मीकीर्ति शि०] १८ वीं शती
७ कल्पचन्द्रिका सुमतिहंस (आद्यपक्षीय जिनहर्षसूरि शिष्य) १८ वीं शती
८ कल्पसूत्र टीका पं० केशरमुनिजी २० वीं शती
९ कल्पसूत्र टीका उ० लब्धिमुनिजी २० वीं शती
१० कल्पसूत्र समाचारी टीका विमलकीर्ति [विमलतिलक शि०] १७ वीं शती
११ कल्पसूत्र अवचूरि जिनसागरसूरि सं० १४४२
१२ कल्पान्तर्वाच्य भक्तिलाभोपाध्याय (रत्नचन्द्र शिष्य) १६ वीं शती
१३ कल्पान्तर्वाच्य जिनहंससूरि [जिनसमुद्रसूरि शिष्य) १८ वीं शती
१४ कल्पान्तर्वाच्य जिनसमुद्रसूरि [वेगड़] १८ वीं शती
१५ अन्तर्वाचनिकाम्नाय जिनसागरसूरि [१]

भाषा टीकाएं

१६ कल्पसूत्र बालावबोध साधुकीर्ति उ० (अमरमाणिक्य शि०) १७ वीं शती
१७ कल्पसूत्र बालावबोध समयराजोपाध्याय (यु० जिनचन्द्रसूरि शि०) १७ वीं शती
१८ कल्पसूत्र बालावबोध गुणविनयोपाध्याय (जयसोम शि०) १७ वीं शती
१९ कल्पसूत्र बालावबोध शिवनिधानोपाध्याय सं० १६८०
२० कल्पसूत्र बालावबोध कमललाभोपाध्याय (अभयसुंदर शि०)
२१ कल्पसूत्र बालावबोध सुखसागर स० १७३२
२२ कल्पसूत्र बालावबोध जिनसमुद्रसूरि [वेगड़] १८ वी शती
२३ कल्पसूत्र बालावबोध जिनहर्षसूरि
२४ कल्पसूत्र बालावबोध सुमतिहस [आद्यपक्षीय जिनहर्षसूरि शि०] १७ वीं शती
२५ कल्पसूत्र बालावबोध रत्नजय रत्नराज १८ वीं शती

कल्पसूत्र
VI



सर्वलब्धि निधान श्री गौतम स्वामीजी महाराज



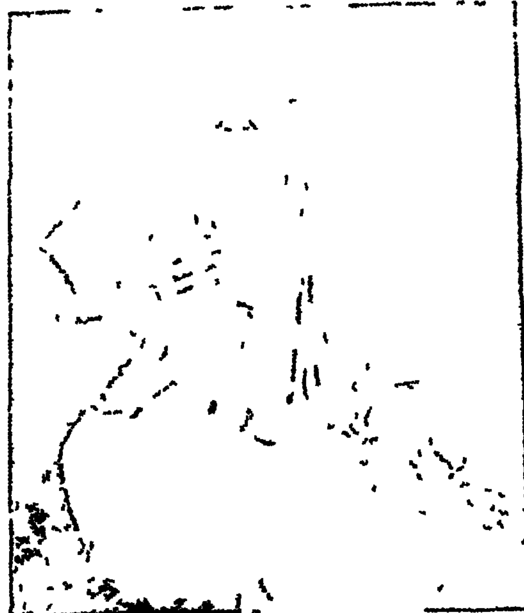
चरम तीर्थङ्कर-भगवान श्री महावीर स्वामी



दादा साहेब श्री जिनदत्तसूरिजी



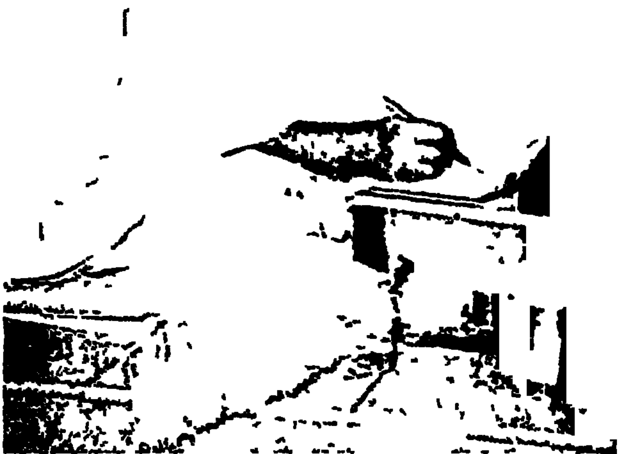
आचार्य प्रवर
१००८ श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज



आचार्य प्रवर
१००८ श्री जिनउदयसागरसूरीश्वरजी महाराज



मुनिश्री
महिमाप्रभसागरजी महाराज

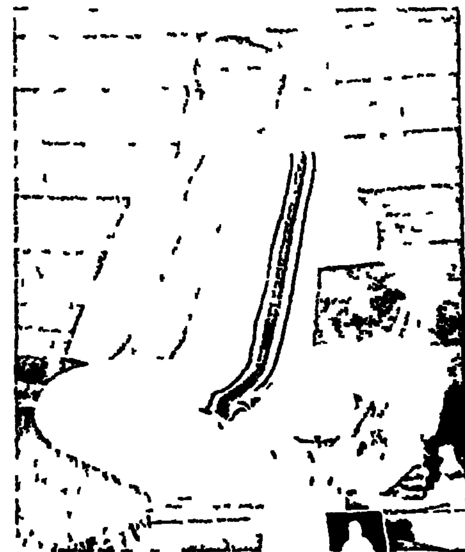
आर्यारत्न साध्वीजी श्री सज्जनश्रीजी



परम पूज्या श्री ज्ञानश्रीजी महाराज



श्री पूज्यजी १००८ श्री जिनचन्द्रसूरिजी महाराज

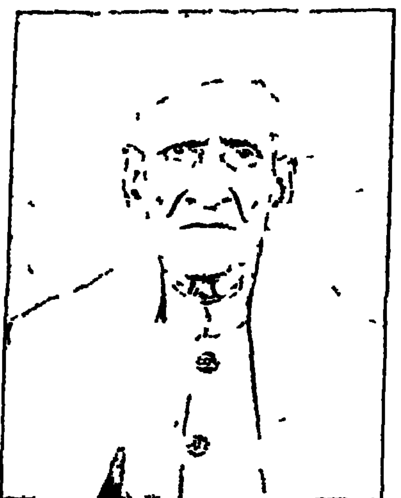


परमपूज्य साध्वीजी श्री चन्द्रप्रभाजी महाराज



दीर्घ तपस्विनी श्री लक्ष्मीदेवीजी कोठारी

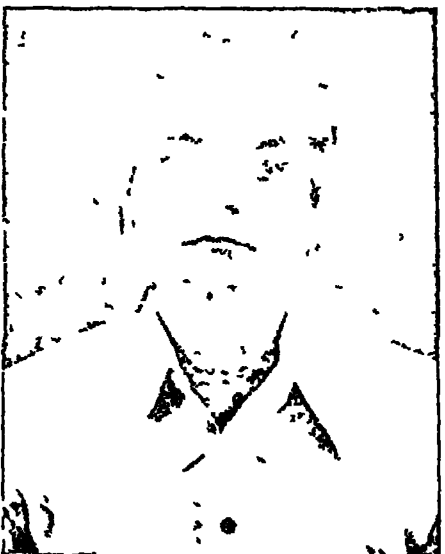
(बीकानेर निवासी श्री ज्ञानचंदजी की मातुश्री)



स्व० श्री इन्दरचन्दजी पारसान



स्व० श्री मोहनलालजी पारसान



श्री महिपालचन्दजी ढड्ढा

२६ कल्पसूत्र बालावबोध रामविजयोपाध्याय (रूपचन्द्र) दयासिंह शि० १८१६
२७ कल्पसूत्र बालावबोध राजकीर्ति [रत्नलाभ शि०]
२८ कल्पसूत्र बालावबोध चन्द्र [देवधोर शि०] १६०८
२६ कल्पसूत्र बालावबोध महो० राम ऋद्धिसार २० वीं शती
३० कल्पसूत्र बालावबोध न्यायविशाल सं० १८४५
३१ कल्पसूत्र स्तवक कमलकीर्ति कल्याणलाभ शि० १७०१
३२ कल्पसूत्र स्तवक विद्याविलास [कमलहर्ष शि०] १७२६
३३ कल्पसूत्र टबा वृद्धिचंद्र वाराणसी सं० १६१२

हिन्दी पद्यानुवाद—

३४ कल्पसूत्र हिन्दी पद्यानुवाद रायचन्द्र १८३८ बनारस

हिन्दी अनुवाद—

३५ कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद जिनकृपाचन्द्रसूरि २० वीं शती
३६ कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद जिनमणिसागरसूरि २० वीं शती
३७ कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि २० वीं शती

गुजराती अनुवाद—

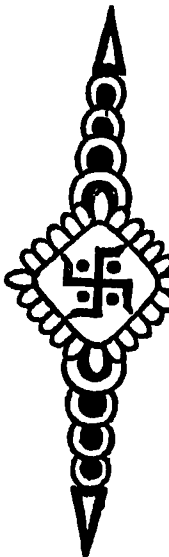
३८ कल्पसूत्र गुजराती गणिवर्य बुद्धमुनिजी २१ वीं शती

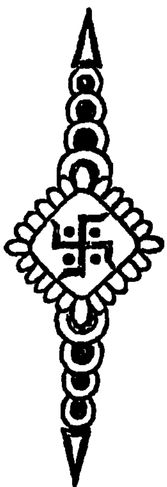
इनमे कल्पलता (समयसुन्दर) कल्पद्रुमकलिका (लक्ष्मीवल्लभ) संस्कृत की तथा हिन्दी पद्यानुवाद 'रायचन्द्रजी] के अतिरिक्त अन्तिम चारों हिन्दी, गुजराती कृतियाँ भी प्रकाशित हैं। अवशिष्ट सभी अप्रकाशित हैं।

सं २०२६ में जब परम विदुषी आर्यारत्न श्री सज्जनश्रीजी महाराज ने कलकत्ता में चतुर्मास किया तब सभी प्रकाशित कल्पसूत्र अप्राप्य हो गये थे तो हमलोगों ने उनसे आधुनिक भाषा में अनुवाद कर देने की प्रार्थना की। उन्होंने कृपा करके प्रस्तुत प्रकाश्यमान अनुवाद को तैयार कर दिया। इसी बीच वीरपुत्र आनन्दसागरसूरिजी महाराज कृत अनुवाद की द्वितीयावृत्ति भी प्रकाशित हो गई। हमलोग परमपूज्य साध्वीजी महाराज के अनुवाद का प्रकाशन करने का निर्णय कर ही चुके थे।

पाण्डुलिपि हमारे पास आ गई और साध्वीजी महाराज ने इसके संशोधन की जिम्मेवारी मैं यदि स्वीकार करूं तो प्रकाशन की सहर्ष आज्ञा दे दी। जैन भवन में श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ और श्री जैन साहित्य प्रकाशन समिति के संयुक्त प्रकाशन का निर्णय कर प्रकाशन के हेतु नये टाइप और टिकाऊ बढ़िया कागजों की व्यवस्था करके मुद्रणार्थ दे दिया।

आर्यारत्न की सज्जनश्री जी महाराज संस्कृत प्राकृत भाषाविद् एवं आगमों की पारगामी विदुषी है आपने पुण्यश्रीजी महाराज का जीवनचरित्र आदि कई ग्रन्थों का लेखन किया है और अभी दादासाहब श्री जिनकुशलसूरिजी की कृत चैत्यवंदन कुलक वृत्ति के अनुवाद कार्य मे संलग्न है जिसे कि दादासाहब की निकट भविष्य मे आयोजित जन्म की सात शताब्दियों की पूर्णाहुति पर





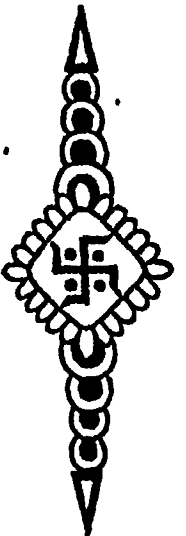
प्रकाशित करने की योजना है। आपकी व्याख्यान शैली बड़ी ही तात्त्विक और आत्मोन्मुखी है। साध्वी समुदाय में आपका बड़ा ही गौरवास्पद स्थान है। आप जयपुर के श्री गुलाबचन्द्रजी लूणिया की सुपुत्री हैं जो तेरापंथी समाज के अग्रणी और तत्वज्ञ श्रावक होते हुए जिनेश्वर भगवान की भक्ति और पूजा के अनन्य रसिक थे। कलकत्ता में एक बार मुनि महेन्द्रकुमार जी प्रथम ने संयुक्त व्याख्यान सभा में श्रीसज्जनश्री महाराज के प्रति आत्मीयता व्यक्त करते हुए श्री गुलाबचन्द्रजी लूणिया की पुत्री होने के नाते तेरापंथी समाज के लिए भी गौरवास्पद बतलाया था। साधु-साध्वियों के अध्यापन आप मे सिद्धहस्त सफल लेखिका और कवियित्री भी है। प्रस्तुत कल्पसूत्र लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय कृत" कल्पद्रुमकलिका का हिन्दी अनुवाद है।

कल्पसूत्र को अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकों मे मूल पाठ कहीं-कहीं प्रसंगवश दिया जाता है पर इस संस्करण में साध्वीजी महाराज ने मूलपाठ के भी सपूर्ण आलापक दिए है। अत आवश्यक होने पर बारसा की प्रति न हो तो संवत्सरी के दिन इसी से मूलसूत्र सुनाया जा सकता है। इसकी प्राकृत भाषा प्राचीन होने से समय-समय पर रूप बदलते रहे है। अर्थ की दृष्टि से दोनों ही रूप शुद्ध होने पर भी भाषा विकास के कारण प्रत्यन्तरों के पाठभेद संप्राप्त होना स्वाभाविक है। मैंने यों तो पूज्य सज्जनश्री जी महाराज के दिए हुए पाठ को ही आधारभूत माना हैं, पर कहीं कहीं प्राकृत-भारती से प्रकाशित मूल पाठ से मिलाकर छूटे हुए पाठ को भी संशोधित रूप से स्वीकार किया है। व्याख्यान योग्य सस्करण होने से पाठान्तर प्रपञ्च अनावश्यक है अतः अर्थ दृष्टि से भी अभेद होने के कारण अविवेच्य हैं। यद्यपि संशोधन मे पूर्ण सावधानी रखी गई है फिर भी दृष्टिदोष से कोई अशुद्धियाँ रह गई हों तो उसके लिए उत्तरदायी पूज्य महाराज साहब नहीं मैं अल्पज्ञ ही हूँ।

—भँवरलाल नाहटा

श्रावण शुक्ला ८
वि० सं० २०३८

कल्पसूत्र
VIII



श्री कल्पसूत्र-प्रकाशन के धर्मपरायण-संरक्षकगण

५००१) श्री ज्ञानचन्दजी ललितकुमारजी कोठारी बीकानेर वाले
१००१) श्री रिखबचन्दजी पारसान कलकत्ता
१००१) श्री मानिकचंदजी गोलेच्छा जयपुरवाले
१००१) मेसर्स ढड्ढा एन्ड कम्पनी कलकत्ता
२००२) श्री भँवरलालजी खजानची एवं उनकी धर्मपत्नी बीकानेर
१००१) अनुयोगाचार्य पूज्य गुरुदेव श्री कांतिसागरजी महाराज के उपदेश से एक श्रावक
१००१) श्री ज्ञानचन्दजी शांतिचन्दजी कोचर कलकत्ता
१००१) श्री प्रकाशकुमार अशोककुमार सिद्धिराज दफ्तरी बीकानेर वाले

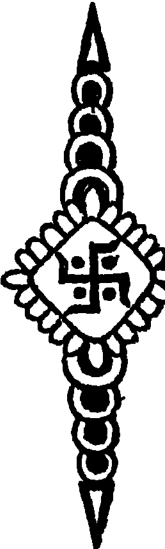
(मुनिश्री महिमाप्रभसागरजी के उपदेश से)

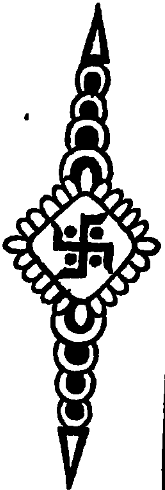
१००१) श्री मूलचन्दजी बदेर तेजपुर
१००१) श्री फूलचन्दजी शांतिचन्दजी सुखानी कलकत्ता
१००१) पूज्य साध्वीजी श्री चन्द्रप्रभा श्री जी की प्रेरणा से सुगनजी महाराज के उपाश्रय की श्राविकासंघ द्वारा

१००१) स्व० श्री धरमचन्दजी सुराणा की स्मृति में श्री मानिकचन्दजी शिखरचन्द सुराणा बीकानेर
१००१) श्री मोहनलालजी पारसान कलकत्ता
२२२५) श्री ज्ञान खाते से मारफत श्री ज्ञानचन्दजी लूणावत
१००१) स्व० श्री गोविन्दलालजी मुकीम की स्मृति में श्री मुकन्दीलालजी मुकीम द्वारा प्रदत्त
१००१) स्व० श्री मानसिंहजी श्रीमाल की स्मृति में श्री निर्मलसिंहजी श्रीमाल द्वारा प्रदत्त।
२०१) श्री जैन भवन श्राविका संघ ज्ञान खाते से मारफत श्री जतनमलजी नाहटा
५०१) श्री प्यारेलालजी रतनलालजी बदलिया

आर्यारत्न श्री सज्जनश्री जी महाराज के उपदेश से

१००१) श्री पुखराजजी चम्पालालजी ललवानी सिवानावाले
१००१) श्री शांतिचन्दजी, बनेचन्दजी ललवानी सिवानावाले





श्री कल्पसूत्र प्रकाशन में रु० १०१ देने वाले उदारमना दाता-गण

१ श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन, ३७९ शिवतल्ला स्ट्रीट कलकत्ता
२ " प्रेमचन्दजी ताराचन्दजी कोठारी
१२ नारायणप्रसाद बाबू लेन कलकत्ता-७
३ " सुन्दरलालजी अजयकुमारजी बोथरा "
४ " जतनमलजी नाहटा जैन भवन "
५. " गुणमतीजी दूगड मोयरा स्ट्रीट "
६. " परीचन्दजी बोथरा कलकत्ता
७ " मोतीलालजी मगनमलजी राखेचा "
८. " विजयचन्दजी बोथरा "
९ " रतनलालजी प्रेमचन्दजी दूगड "
१०. " पूनमचंदजी शान्तिलालजी बद्देर "
११. " श्रीपालसिंहजी अशोककुमारजी दूगड़ "
१२. " भँवरलालजी बोथरा "
१३ स्व० श्री मैनासुन्दरी लोढा ५ मालापाड़ा कलकत्ता-६
१४ " शिखरचन्दजी शान्तिलालजी सेठिया "
१५. " विमलचन्दजी शांतिलालजी पारख "
१६ " छबीरामजी विजयचन्दजी लूणिया "
१७ स्व० श्री मोहनलालजी सावनसुखा की स्मृति में "
(श्री दूलीचन्दजी पुखराजजी सावनसुखा की तरफ से)

१८. स्व० श्री मनोहरलालजी सिंघी कलकत्ता
१९. श्री तेजकरणजी सुमतिचन्दजी बोथरा "
२०. " प्रतापसिंहजी डागा "
२१. " अमरचन्दजी बोथरा "
२२. " हीरालालजी बोथरा "
२३. " गुमानमलजी विमलचन्दजी सेठिया "
२४. " दीपचन्दजी नाहटा ३९ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता
२५. " मोहनलालजी गोलेछा ४ बी इंडियन मिरर स्ट्रीट "
२६. " फूलचन्दजी कांकरिया "
२७. " मोतीलालजी मानिकचन्दजी लूणिया "
२८. " लालचन्दजी ज्ञानचन्दजी लूणावत
१५९ लक्ष्मीनारायण मुखर्जी रोड "
२९. " नरोत्तमलालजी गोलेच्छा ५४ बड़तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता-७
३०. " भँवरलालजी नाहटा ४ जगमोहन मल्लिक लेन कलकत्ता-७
३१. " मानिकचन्दजी वेगानी "
३२ " जुगराजजी पारख "
३३. " श्रीलक्ष्मीबाई बोथरा "
३४. " उदयचन्दजी फूलचन्दजी कास्टिया ब्यावर
३५ " खड्गसिंहजी निरमलसिंहजी कोठारी कलकत्ता



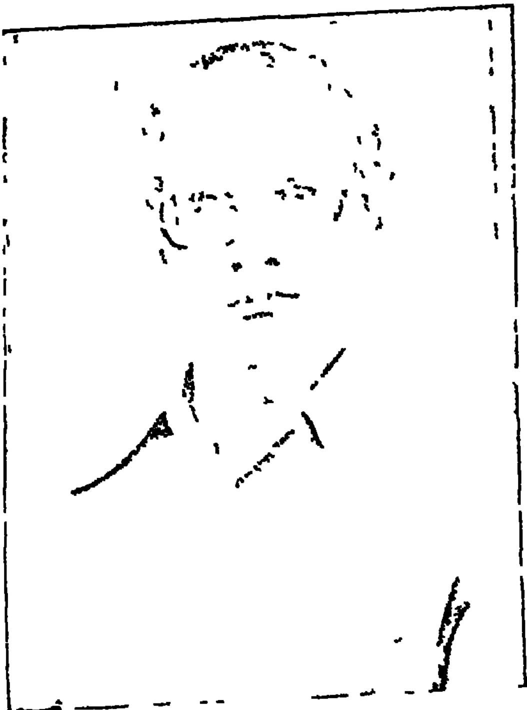
स्व० श्री सज्जन देवीजीखजाची
(धर्मपत्नी श्री भवरलालजी खजाची)



बीकानेर निवासी
स्व० श्री भंवरलालजी खजाची



जयपुर निवासी
स्व० श्री कालूरामजी गोलेछा



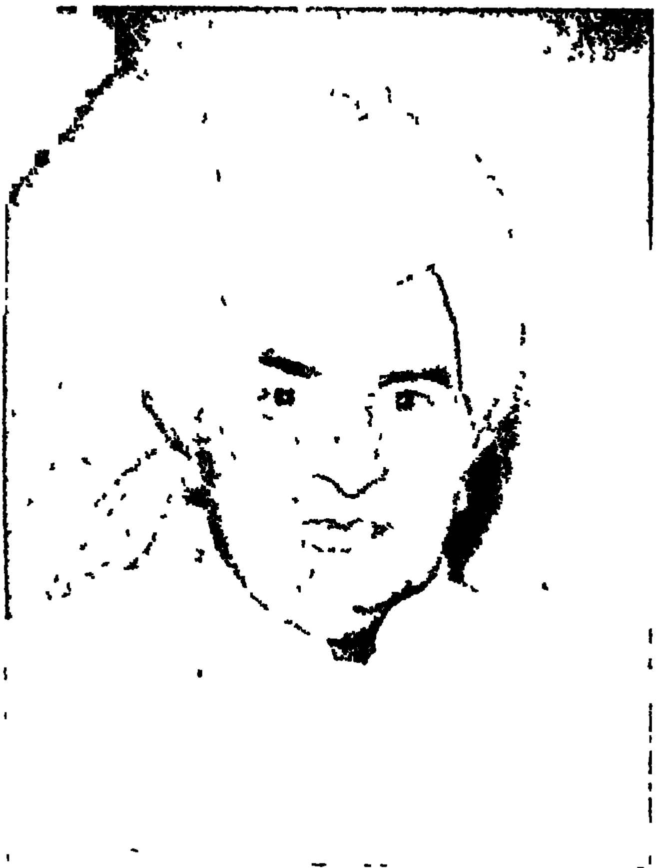
बीकानेर निवासी : श्री शान्तिचंदजी कोचर



बीकानेर निवासी : स्व० श्री धर्मचन्दजी सुराणा



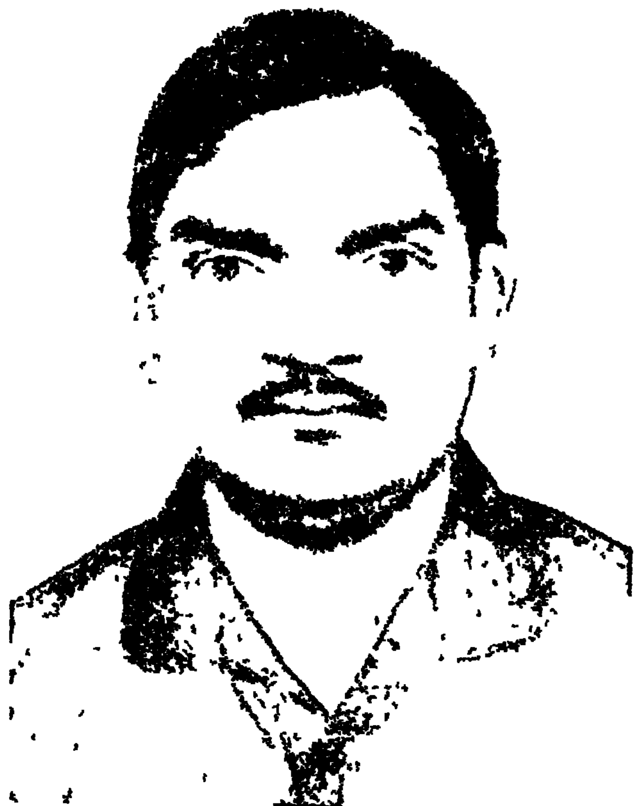
स्व० श्री फूलचंदजी सुलाणी



श्री चंपालालजी ललवानी
गढसिवाना



श्री मूलचंदजी वडेर की धर्मपत्नी
श्रीमती भवरीदेवी वडेर



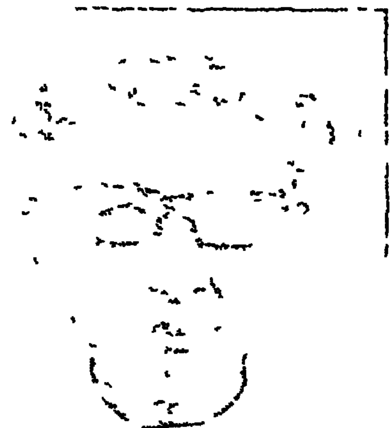
श्री शान्तिलालजी ललवानी
गढसिवाना



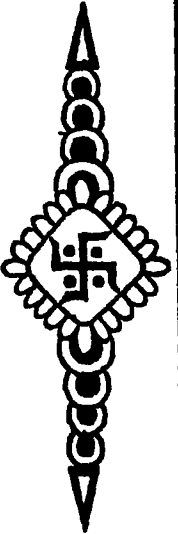
स्व० श्रीमानसिहजी श्रीमाल, कलकत्ता



श्री कमलादेवी जैन, जयपुर

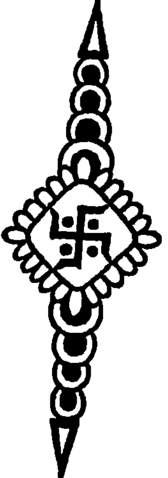


श्री पदमचन्दजी दूगड



३६. श्री हीरालालजी जतनलालजी लूनिया	कलकत्ता
३७ " पूनमचन्दजी पुखराजजी वेगानी	"
३८. " भीखनचन्दजी छगनलालजी मरोटी	"
३६. " परोचंदजी बोथरा	"
४०. श्रीमती राजमतोजी बोथरा	"
४१. श्री श्रोचन्दजो बोथरा	"
४२. श्रीमती कनककुमारीजी बोथरा	"
४३. श्री सुन्दरदेवीजो बोथरा	"
४४. " सुमतिचन्दजी बोथरा	"
४५. " शान्तिचन्दजी बोथरा	"
४६. " ज्ञानचन्दजी बोथरा	"
४७. " विजयचन्दजी जैन बोड़न स्ट्रीट	"
४८. " सुश्री पूनमबाई सेठिया (धर्मपत्नी श्री रिखबदासजी सेठिया)	"
४६. " रतीचन्दजी बोथरा	"
५०. " सुनोलचन्दजो बोथरा	"
५१. " रविचन्दजो बोथरा	"
५२ " विनोदचन्दजी बोथरा	"
५३. " प्रदोपचन्दजी बोथरा	"
५४. " नवीनचन्दजी बोथरा	"
५५. " दिनेशचन्दजी बोथरा	"
५६. श्री सुबोधचन्दजी बोथरा	कलकत्ता
५७. " विनेशचन्दजी बोथरा	"
५८. " राकेशचन्दजी बोथरा	"
५६. " अजयचन्दजी बोथरा	"
६०. " सुश्री उपाकुमारी बोथरा	"
६१. " ताराकुमारीजी बोथरा	"
६२. श्री नरपतसिंहजो अभयसिंहजी वैद	"
६३. श्रीमती जयकुमारी दूगड़ (मारफत श्री मोहनलालजी गोलेच्छा)	"
६४. श्री रिखबदासजी महाराजबहादुरसिंह टांक	"
६५. " लाभचंद्रजी रायसुराना	"
६६ ' तोलारामजी उत्तमकुमारजी बोथरा	"
६७. " ताजमलजी बोथरा	"
६८. " पृथ्वीराजजी बुच्चा	"
६६. " आसारामजो मोहनलाल वैद (मारफत-श्री रतनलालजी वैद)	
७०. " वीरेन्द्रसिंहजी भांड़िया	"
७१. " रायकुमारसिंहजी प्रवीरकुमारजी पारख	"
७२. श्री अनोपचन्दजी अजीतकुमारजी भावक माउण्ट रोड कुनूर	"
७३. " मदनबाई बोथरा	"

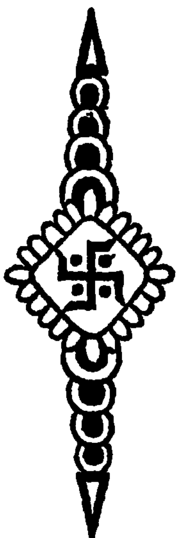
कल्पसूत्र
XI



७४ श्री केशरीसिंहजी नरेन्द्रसिंहजी वैद — कलकत्ता
७५· श्री मगलचन्द्जी गोलेच्छा — ”
७६, ” पद्मचन्द्जी रायसुराना — ”
७७ ” भोमसिंहजी वीरेन्द्रसिंहजी पारख — ”
७८ ” सुजानमलजी सत्यनारायणजी सिंघी — ”
(बोदासर वाले)
७९· ” धनराजजी दानमलजी डागा — ”
८०· ” वालचन्द्जी छाजेड — ”
८१· ” श्रावकरत्न विजयसिंहजी नाहर — ”
८२ ” लक्ष्मणराजजी मेहता — ”
८३· ” शांतिलालजी कोठारी — पटना वाले
८४· ” कुन्दनमलजी मेहता सेवा ट्रस्ट — इंदौर
८५· ” विमलकुमारजी चौरड़िया Ex M P. — भानपुरा
८६· सुश्री गुलाबबाई
धर्मपत्नी श्री सम्पतलालजी जिंदाणी — भातपाड़ा
८७. श्रीमती रतनबाई कुन्दनमलजी मेहता — इंदौर

८८ श्रीमती मीरा गोलेच्छा
धर्मपत्नी श्री मोहनलालजी गोलेच्छा — कलकत्ता
८९· शाहमुनीलालजी जेठमलजी — बाकरा सिटी
९०· श्री पनालालजी नाहटा — दिल्ली
९१· ” हिम्मतसिंहजी वैद — जयपुर
(मारफत-श्री मोहनलालजी गोलेच्छा)
९२· ” लखपतजी जैन — अमेरीका
(मारफत-श्री मोहनलालजी गोलेच्छा)
९३· ” श्री सेंसकरणजी जतनलालजी सुराना — बीकानेर
९४· श्रीमती जतन देवी — बीकानेर
(धर्मपत्नी स्व० श्री रिखबदासजी पारख)
९५ श्री अरजनसिंह प्रतापचन्द बेद — ”
९६ श्रीमती सूरजदेवी सुराना — ”
(धर्मपत्नी श्री नथमलजी सुराना)
९७ श्री सम्पतबाई भंसाली — अचलपुर शहर
(धर्मपत्नी श्री दीपचन्दजी भंसाली)

कल्पसूत्र
XII



परमपूज्या आर्यारत्न श्री सज्जनश्रीजी महाराज की प्रेरणा से प्राप्त रकम

संरक्षकगण

१००१) श्री पदमचंदजी दासोत, जयपुर
१००१) श्रीमती उमरावकुंवर भड़गतिया, अजमेर
१००१) श्री जीवराजजी अगरचंदजी गोलेच्छा, फलोदी
१००१) श्री फतहसिंहजी मेहता, मकराना
१००१) श्री अमरचंदजी लूणिया, अध्यक्ष
श्री रामलालजी लूणिया जैन धर्म प्रचारक ट्रस्ट, अजमेर

१००१) श्री केसरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता
१००१) श्री केशरीचन्दजी गोलेच्छा, जयपुर
१०००) श्रीमती कमलाबाई बॉठिया, जयपुर
१०००) श्री कुशलचंद विमलचंदजी सुराना, जयपुर

दातागण

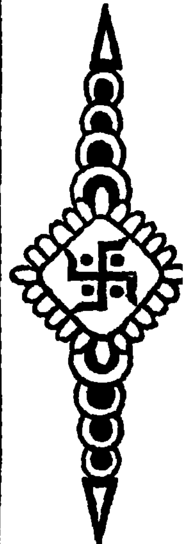
५०१) श्री पदमचन्दजी दूगड़
५०१) श्रीमती मैनाकुमारी नाहटा, बीकानेर
५०१) श्री जीवनचंद बोहरा, जयपुर

२०१) श्री भँवरसिहजी कोठारी, जयपुर
२०१) श्री हिम्मत भाई गुलाबचंदजी शाह, हिम्मतनगर
२०१) श्री पदमचंदजी गोलेछा

१०१ देनेवाले दाताओं की सूचि :—

श्री जवाहरलालजी हालाखण्डी, अजमेर
श्री सिरहमलजी मेहता, अजमेर
श्री गोपीचंदजी हेमचन्दजी धाडीवाल, अजमेर
श्री सिरहमलजी सुराणा, अजमेर
श्री ताराबाई बोथरा, अजमेर

श्री जतनचंदजी संचेती, अजमेर
सुश्री लीलाबाई बागरेचा (वैरागन) सिवाणा
श्री संपतलालजी ढढा, अजमेर
श्रीमती जतनबाई बम्ब, जहाजपुर
श्री दौलतचन्दजी सरदारचन्दजी संचेती, अजमेर



श्री मोहनलालजी नरेशचन्दजी महेन्द्रकुमारजी, हापुड़
श्री विमलचन्दजी मुणोत, अजमेर
श्री महतावचंदजी वाँठिया की मातुश्री, जयपुर
श्री रिखवचंदजी भण्डारी, अजमेर
श्री शिखरचंदजी जैन, अजमेर
श्री प्रकाशमलजी तातेड, अजमेर
श्री मीठालालजी काकरिया, अजमेर
श्री वर्द्धमान जी बाठिया, अजमेर
श्री नेमिचंदजी खाव्या, अजमेर
श्री मानमलजी सुराणा, अजमेर
श्री मदनसिंहजी कोठारी, अजमेर
श्री मंगलचंदजी कोठारी, अजमेर
श्री ज्ञानचंदजी लालाणी, अजमेर
श्री धनरूपमलजी मुणोत, अजमेर
श्री चम्पालालजी डोसी, अजमेर
श्री हरखचन्दजी गोखरू, अजमेर
श्री सम्पतलालजी गोखरू, अजमेर

श्री गुमानमलजी लूणिया, अजमेर
श्री मोहनलालजी कोठारी, अजमेर
श्री लिखमीचन्दजी ललवानी, अजमेर
श्री प्रतापमलजी बॉठिया, अजमेर
श्री लखपतरायजी मेहता, अजमेर
श्री सरदारमलजी वाँठिया, अजमेर
श्री पारसमलजी डाकलिया, अजमेर
श्रीमती गणेशीबाई मेहता, अजमेर
श्री चाँदमलजी सीपानी, अजमेर
श्री मॉगीलालजी जीवनसिंहजी पारख, अजमेर
श्री जीतमलजी लूणिया, अजमेर
श्री देवराजजी दलपतराजजी मुणोत, अजमेर
श्री चिंतामणदासजी छगनलालजी वडेर, अजमेर
श्री दुलीचंदजी बोहरा, जयपुर
श्री गणेशमलजी तातेड
श्रीमती मीनाबाई सुचन्ती, आगरा



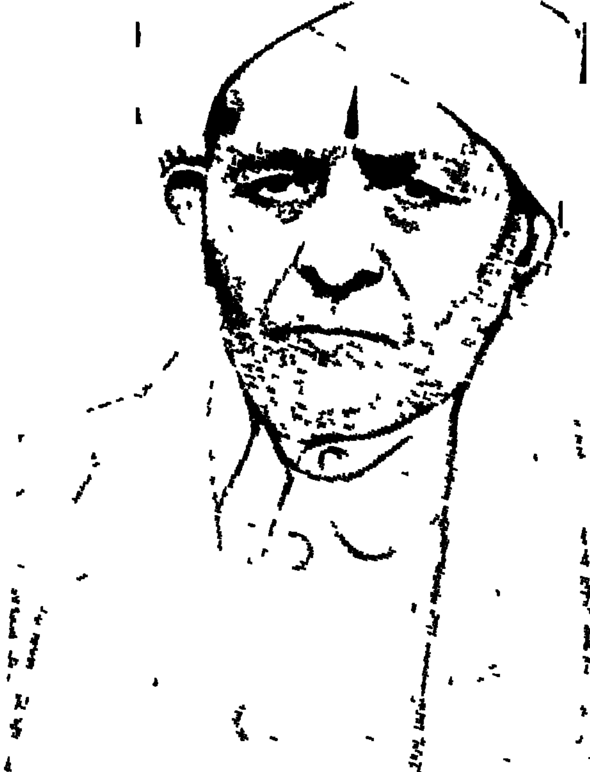
परमपूज्या प्रवर्तिनी श्री विचक्षणा श्री जी महाराज साहब

जन्म : आषाढ़ कृष्णा १ सं० १९६९ [redacted] दीक्षा · ज्येष्ठ कृष्णा ५ स० १९८१

देवलोक · बैसाख शुक्ला ४ स० २०३७



स्व० सेठ रामलालजी लूणिया
अजमेर



स्व० सेठ जोगराजजी गोलेच्छा, फलोदी
(फर्म . जीवराज आगरचंद)



स्व० सेठ चन्दूलाल हीरालाल भणसाली
(फर्म : केसरिया एण्ड कम्पनी, कलकत्ता)



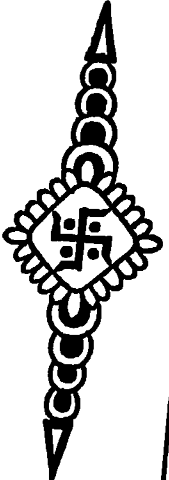
स्व० फतेहसिंहजी मेहता, मकराना
(सुपुत्र . श्री राजमलजी मेहता, जैसलमेरवाले)

प्रकाशकीय

जो देवाण वि देवो; जं देवा पंजली नमंसंति। तं देवदेव महिअं, सिरसा वंदे महावोरं ॥

चरम तीर्थङ्कर देवाधिदेव श्रमण भगवान महावीर, जिन्होंने नन्दन मुनि के भव में 'सवि जीव करू' शासन रसी' ऐसी उत्कृष्ट त्रिकरण योग से परिपूर्ण भावदया की तीव्र भावना से बीस स्थानक तप की आराधना द्वारा, तीर्थङ्कर नाम कर्म और महान पुण्योदय का विशिष्ट कर्म वन्ध किया था, केवलज्ञान संप्राप्त करने के वाद, जैन शासन के नियमानुसार, साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ या धर्मतीर्थ की स्थापना कर, तत्त्व (अर्थ) रूप से धर्म देशना प्रदान कर वर्तमान काल के 'अर्थ आगम' के प्रणेता हुए—जिनके उपदेश को उनके मुख्य शिष्य गणधर सुधर्मास्वामी ने सूत्र रूप में गूथकर 'सुत्तागम'—द्वादशागी या गणि-पिटक की रचना की—जिनके नाम है—१. आचाराग २. सूत्रकृताग ३. स्थानाग ४. समवायाग ५. भगवती ६. ज्ञाता धर्मकथाग ७. उपासकदशाग ८. अन्तकृद् दशाग ९. अनुत्तरोपपातिक १०. प्रश्न-व्याकरण ११. विपाक और १२. दृष्टिवाद—जिसमें चौदह पूर्व अन्तर्गत है, एवं जिनके उपदेश के आधार पर, उनके अन्य श्रमण जिन्हे 'स्थविर' कहते है एवं जो या तो चतुर्दश पूर्वी या दशपूर्वधर होते है, उन्होने प्रभु के निर्वाण के वाद सूत्र रूप मे 'अंग वाह्य आगम सूत्र जो—उपाग, छेद, मल और आवश्यक इन चार भागों में विभक्त है, उनको रचना की एवं इसो अंग वाह्य आगम सूत्र के 'छेद' आगम के अन्तर्गत दशाश्रुत-स्कंध सूत्र का आठवाँ अध्ययन है "पज्जोसवणा कप्पो" या कल्पसूत्र। ऐसे महान् उपकारी प्रभुवीर एवं अतीत, अनागत एवं वर्तमान काल में महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान तीर्थंकर जो अभो द्वादशांगी का उपदेश उस क्षेत्र में दे रहे हैं, उन्हें नमन है हमारा।

प्रस्तुत 'कल्पसूत्र' जिसका हिन्दी अनुवाद परमपूज्या आर्यारत्न विदुषी साध्वी श्री सज्जनश्रीजी ने अपने विस्तृत अध्ययन, गहन चिन्तन एवं प्रकाण्ड ज्ञान, गुण सम्पन्नता से सम्पादित किया है, उसका रसास्वादन देवानुप्रिय चतुर्विध संघ इसके पठन पाठन से स्वतः ही कर पायेंगे—ऐसी हमारी धारणा है। वस्तुतः इस आगम शास्त्र का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन उन्हीं महान् विभूति की प्रेरणा एवं निर्देशन मे सम्पादित हुआ है। प्रकाशन के सहायतार्थ, आर्याश्रीजी की प्रेरणा से



धर्म स्नेही दाताओं ने द्रव्य राशि से हमें जो रकम भिजवाई है उसके लिए एवं महान् कार्य के सम्पादन के लिए हम उनके
कृतज्ञ है। साथ ही आभारी है हम 'नाहटा द्वय' के—कलकत्ता स्थित श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर के वर्तमान अध्यक्ष,
'विविध तीर्थ-कल्प' आदि अनेक धार्मिक पुस्तको के अनुवादक, 'कुशल-निर्देश' मासिक पत्रिका के सम्पादक श्री भंवरलाल जी
नाहटा जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकेर संशोधन एवं प्रस्तावना लेखन के महत् कार्य को पूर्ण किया एवं श्री जैन साहित्य
प्रकाशन समिति के कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं सचिव श्री दीपचन्द जी नाहटा के— जिन्होने प्रकाशन के कार्य को
अत्यन्त अभिरुचि, स्फूर्ति एवं सुचारू ढङ्ग से सम्पन्न कर चतुर्विध संघ के समक्ष हमारे प्रथम प्रयास का प्रथम 'नवनीत
ग्रन्थ' प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त कराया। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का सुझाव श्री जैन साहित्य प्रकाशन समिति के भूतपूर्व
अध्यक्ष स्वर्गीय श्री मोहनलाल जी पारसान ने किया था। उनके अधूरे स्वप्न को आज साक्षात् रूप मे देखकर हमारी यही कामना
है कि शासनदेव उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे। इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ जिन महानुभावो ने उदार चित्त से अपने
संरक्षित निधान को ज्ञान प्रकाशनार्थ समर्पण कर अपरिग्रह रूप संयम धर्म का आचरण कर धर्म प्रचार मे हाथ बंटाया, उसके
लिए उन्हें हमारा हार्दिक अभिनन्दन है। अन्य सहयोगियो मे श्री नरोत्तमलाल जी गोलेच्छा ने चन्दा संग्रह मे काफी सहयोग
प्रदान किया। अन्त मे हम कृतज्ञता प्रकट करते है जं० युग-प्रधान भट्टारक श्री पूज्यजी १००८ श्री जिनचन्द्रसूरिजी को—
जिन्होने सन् १९८१ कलकत्ता चातुर्मास के समय इस ग्रन्थ के प्रकाशन की भूरि-भूरि प्रशंसा एवं अनुमोदन कर हमारा उत्साह
बढाया। इस सूत्र मे भगवान के जीवन संबंधी चित्रो मे अनेक चित्र श्री विजयसिंहजी नाहर के सौजन्य से श्री गुलाब-
कुमारी लाईब्रेरी द्वारा एवं कुछ चित्र श्री जैन भवन द्वारा प्राप्त हुवे है एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र है।

सुमतिचद बोथरा
अध्यक्ष
श्री जिनदत्तसूरि सेवा सघ

मोहनलाल गोलेच्छा
अध्यक्ष
श्री जैन साहित्य प्रकाशन समिति

॥ ॐ नमस्सिद्धम् ॥

श्री कल्पसूत्र (हिन्दी भावार्थ)

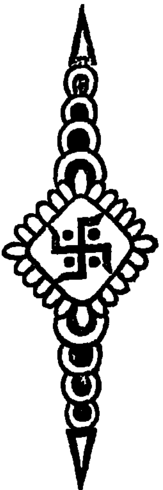
टीकाकारकृतं मंगलाचरणम्

श्री वर्द्धमानस्य जिनेश्वरस्य, जयन्तु सद्वाक्यसुधाप्रवाहाः ।
येषां श्रुति स्पर्शनजप्रसत्ते-र्भव्या भवेयुर्विमलात्मभासः ॥१॥

अर्थ :—अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर जिनेश्वरदेव के उत्तम वचन रूप अमृतमय प्रवाह सदा जयवन्त रहे। जिन वचनों के प्रवाह कानों में जब स्पर्श करते हैं तो उससे उत्पन्न प्रसन्नता से भव्यजन विमल आत्मज्ञान वाले हों।

श्री गौतमो गणधरः प्रकट प्रभावः सल्लब्धिसिद्धिनिधि रश्चितवाक् प्रबन्धः
विघ्नान्धकारहरणे तरणिप्रकाशः, साहाय्यकृद्भवतु मे जिनवीर शिष्यः ॥२॥

अर्थ :—प्रकट प्रभाव वाले, उत्तम लब्धियों और सिद्धियों के निधान, द्वादशाङ्गी को सूत्र रूप से रचने वाले तथा विघ्नों के अन्धकार को नष्ट करने में सूर्य के समान प्रकाश वाले, भगवान् महावीर प्रभु के शिष्य श्री गौतम गणधर मेरे सहायक बने अर्थात् कल्पसूत्र की टीका बनाने में सहायता करे।



कल्पद्रु कल्पसूत्रस्य सदर्थफल हेतवे । ऋतुराजेव सद्योग्या कलिकेयं प्रकाश्यते ॥२॥

अर्थ :—ऋतुराजवसन्त मे जैसे नई कलियाँ फल के लिए होती हैं वैसे कल्पसूत्ररूप कल्पवृक्ष की यह
कलिका अर्थात् "कल्पद्रुम कलिका" नामक अभिनव टीका कल्पसूत्र के उत्तम अर्थ रूप फल के लिए मेरे
द्वारा प्रकाश में लाई जा रही है।

अब टीकाकार अपनी लघुता प्रदर्शित करते है :—

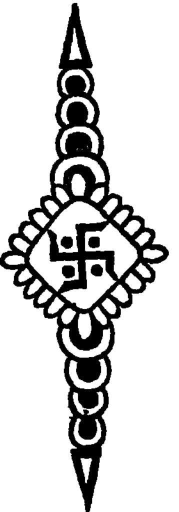
गम्भीर अर्थवाले कल्पसूत्र का अर्थ किया जा रहा है। जैसे चैत्र मास में कोयल मधुर बोलती है उसमें
आम्रमञ्जरी कारण है, रज सूर्यमण्डल को आच्छादित कर लेती है वह वायु का प्रभाव है, और मेंढक महा-
भुजग का मुखचुम्बन कर लेता है इसमें मणि का महात्म्य ही हेतु है वैसे ही मुझ सदृश मन्द-बुद्धि कल्पसूत्र
का अर्थ कर रहा है उसमें ज्ञानदाता गुरुदेव की ही कृपा है।

पीठिका

सर्वप्रथम कल्पसूत्र मे तीन अधिकार की वाचिका यह गाथा है :—

पुरिम चरिमाणकप्पो मंगलं वद्धमाणतित्थम्मि ।
तो परिकहिया जिणं-गणहराइ थेरावलिचरियम् ॥१॥

अर्थ :—प्रथम और अन्तिम अर्थात् ऋषभदेव भगवान् और महावीर प्रभु के साधुओं का यह आचार
है कि जहाँ रहते है वहाँ मङ्गल चाहते है। वर्षाकाल मे चार मास तक एक ही स्थान पर रहते है वर्षा हो,
अथवा न हो, पर्यूषणा करना अनिवाय है। अजितनाथ भगवान् से लेकर पार्श्वनाथ प्रभु तक बाईस तीर्थंकर
भगवतों के साधुओ का आचार यह है कि वे मगल तो चाहते है; किन्तु वर्षाकाल में वर्षा न होने पर विहार
भी कर देते है। पर्यूषणा (एक स्थान पर रहना) करना, अनिवाये नही अर्थात् रहते भी है, नहीं भी



रहते। वर्षा हो तो रहें और न हो तो विचरें। आदीश्वर भगवान व महावीर प्रभु के साधु पर्यूषण अवश्य करते हैं। पर्यूषण की अष्टाह्निका में तीर्थंकर चरित्र वाँचते हैं। पश्चात् अन्तर काल भी कहते हैं। यह प्रथम अधिकार है।

दूसरे अधिकार में स्थविरावलि—अर्थात् गणधरों-महान् आचार्यों-प्रभावक महापुरुषों का चरित्र बाँचते हैं और तीसरे अधिकार में साधु-समाचारी अर्थात् साधु-साध्वियों की चर्या का विधान है।

ऋषभदेव व महावीर भगवान् के साधुओं का आचार :—

[१]आचेलुक्कुद्देसियसिज्जायर रायपिंडकिअकम्मे।
वयजिट्ठपडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो ॥२॥

शब्दार्थ :—आचेलक[१]-मर्यादित वस्त्र[२], उद्देशिक-साधु के लिए बनाया हुआ भोजन[३], शय्यातरपिण्ड[४], राजपिण्ड[५], कृत कर्म[६]-, वन्दन व्यवहार, व्रत,-ज्येष्ठधर्म[७], प्रतिक्रमण[८], मासकल्प[९], और पर्यूषणा कल्प[१०]। मुनियों के ये दशकल्प (आचार) है।

व्याख्या—(१) आचेलक्य—मर्यादित प्रमाणोपेत श्वेत वस्त्र धारण करना।

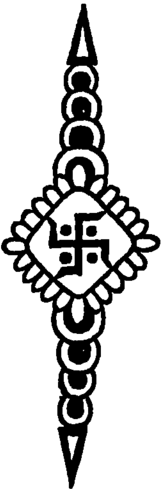
(२) औद्देशिक—एक साधु के लिए बनाया हुआ आहार अन्य साधुओं को भी नहीं कल्पता है।

अजितनाथ भगवान् से आरम्भ करके पार्श्वनाथ भगवान् के शासन पर्यन्त श्वेत वस्त्रों का तथा उद्देशिक का नियम नहीं।

(३) शय्यातर—अर्थात् वसति स्थान (उपाश्रय) देने वाले के घर का आहार पानी नहीं कल्पता है। शय्यातर पिंड बारह प्रकार का वर्ज्य है। यथा—१. अशन २. पान ३. खादिम ४. स्वादिम ५. वस्त्र ६. पात्र

---

१. संस्कृतछाया आचेलक्य औद्देशिक शय्यातर राजपिण्ड कृतकर्म। व्रतज्येष्ठ प्रतिक्रमण मासं पर्यूपणाकल्पः ॥ १ ॥



७. कम्बल ८. रजोहरण ६. सूई १०. चाकू-कैंची ११. दन्तशोधनी १२. कर्णशोधनी । ये द्वादश वस्तुएँ नहीं कल्पती है। इतनी वस्तुएँ लेना कल्पता है :—१. घास २. पत्थर की वस्तु-खरल आदि ३. भस्म (राख) पीठ पाटा, चौकी ४. गृह-कमरे आदि ५. वार्निश रंग शिष्य आदि कल्पनीय है। प्रथम दिन इन्द्र को, द्वितीय दिन देशाधिपति और तृतीय दिन ग्रामाधीश को शय्यातर किया जाता है, यह गीतार्थों की परम्परा है।

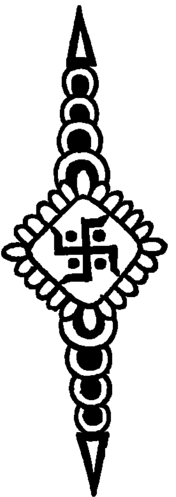
(४) राजपिंड-शासक के घर का पिण्ड नही कल्पता है। पिण्ड—आठ वस्तुएँ यथा—१. अशन २. पान ३. खादिम ४. स्वादिम ५. वस्त्र ६. पात्र ७. कम्बल ८. रजोहरण। राजपिण्ड का निषेध निम्न कारणों से किया गया है :—१. राजभवन में प्रवेश करने और निकलने में राजपुरुषों द्वारा विघ्न हो सकने की सम्भावना है; जिससे समय का सदुपयोग (स्वाध्यायध्यानादि में) होने में व्याघात हो सकता है। २. उत्तम भोज्य पदार्थों की लौलुपता बढ़ सकती है ३. राजपुरुषों द्वारा अपमान हो तो लघुता एवं निन्दादि दोषों की भी सम्भावना रहती है।

(५) कृत कर्म :—लघु साधु, बडे साधुओ को वन्दना करे।

वन्दन दो प्रकार से होता है :—१. अभ्युत्थान २. द्वादशावर्त्त। सभी तीर्थंकरों के शासनमें दीक्षापर्य्याय से ही लघु वृद्ध (छोटे-बडे) माने जाते है।

(६) व्रत :—पंच महाव्रत का पालन।

ऋषभदेव और वर्द्धमान-महावीर के शासन में साधु-साध्वियो के पंच महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह होते है तथा अजितनाथ भगवान् से लेकर पार्श्वनाथ भगवान् के शासनपर्यन्त चार महाव्रत होते है, क्योंकि मध्यकाल के मुनि ऋजुप्राज्ञ—सरल एव बुद्धिमान् होते है। अतः परिग्रह त्याग में





भ० महावीर : पुष्पोत्तर विमान से च्यवन



देवानन्दा माता के १४ महास्वप्न



सौधर्म सभा मे शक्रेन्द्र



शक्रेन्द्र द्वारा भगवान को 'णमुत्थुणं स्तवना'



हरिणैगमेषी द्वारा देवानन्दा का गर्भापहार



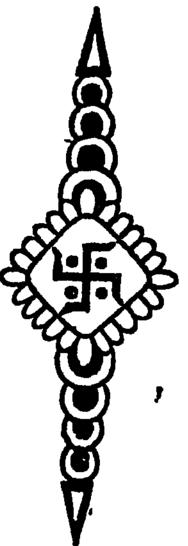
त्रिशला माता का चतुर्थ महास्वप्न : महालक्ष्मी



सिद्धार्थ नरेश्वर को त्रिशला माता द्वारा स्वप्न निवेदन



व्यायामशाला में महाराजा सिद्धार्थ



ही स्त्री त्याग भी मान लेते हैं, वे स्त्री को भी परिग्रह में ही समाविष्ट कर लेते हैं। इसी प्रकार साध्वियाँ भी पुरुष संसर्ग का समावेश परिग्रह में कर लेती हैं।

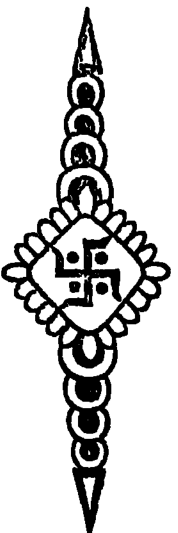
(७) ज्येष्ठ कल्प :—पुरुष की प्रधानता धर्म में भी स्वीकृत है चिरदीक्षिता साध्वी तत्कालदीक्षित साधु को वन्दना करे। लघु साधु बडे साधुओं को वन्दन करे। छोटे-बड़े की गणना बडी दीक्षा से होती है।

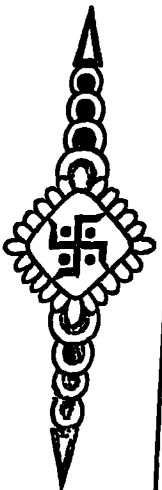
(८) प्रतिक्रमण :—अतिचार लगे या न लगे—प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासनवर्ती साधु-साध्वी दोनों समय प्रतिक्रमण अवश्य करे। मध्यवर्ती तीर्थंकरों के साधु-साध्वी अतिचार आदि लगने पर ही प्रतिक्रमण करते है।

(९) मासकल्प :—आद्य व अन्तिम तीर्थंकरों के श्रमण श्रमणी नवकल्पी विहार करते हैं। १· वर्षावास (चातुर्मास) ८ अवशिष्ट के मासकल्प १-१ कल्प एकमास से अधिक एक ही स्थान पर नहीं रहते। साध्वीगण २ मास से अधिक नहीं रहतीं (विशेष लाभ की सम्भावना हो, स्थविरों की सेवा करनी हो, शरीर अशक्त हो, रोगादि कारण हों अथवा पठन-पाठन आदि के लिए अधिक रहना पडे, तब इस नियम में अपवाद रूप रहना भी हो सकता है। उपद्रव आदि की स्थिति में इस नियम में अपवाद भी है, विहार किया जा सकता है।

(१०) पर्यूषणा कल्प :—वर्षा हो, अथवा न हो, क्षेत्र का सद्भाव होने पर चारमास-वर्षाकाल में एक ही स्थान पर रहते है। कदाचित् उत्तम क्षेत्र न मिले तब भी भाद्रपद शुक्ला पंचमी से लेकर सत्तर दिन तक एक ही स्थान पर रहते है। यह प्रथम व अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं का आचार है। बाईस तीर्थंकरों के साधुओं के लिए यह नियम नहीं है।

टिप्पणी : (यह नियम चन्द्रसंवत्सर की अपेक्षा से है, तथापि यह विशेष है कि जब रोगादि का, परचक्र का उपद्रव हो, शासक दुष्ट हो, तो सत्तर दिन से पहले भी अन्यत्र जाने मे दोष नहीं और चारमास पूर्ण हो जाने पर भी वर्षा होती रहे तो अधिक रहने में भी दोष नहीं।)





इनमें से छः अस्थिर कल्प है :—१. आचेलत्व २. औद्देशिक ३. प्रतिक्रमण ४. राजपिण्ड ५. मासकल्प ६. पर्यूषणा कल्प।

चार स्थिर-कल्प है :—१. शय्यातर पिण्ड २. चार महाव्रत ३. पुरुष ज्येष्ठ धर्म ४. पारस्परिक वन्दन व्यवहार। ये चार स्थिर-कल्प मध्यवती तीर्थंकरों के साधुओं के भी होते हैं अतः इन्हे स्थिर-कल्प कहा गया है। जो बावीस तीर्थंकरो के साधुओं का आचार है वही सार्वकालिक महाविदेह क्षेत्र में विचरने वाले साधुओं का आचार है।

अब मोक्षमार्ग प्रतिपन्न सभी तीर्थंकरों के आचार भेद का कारण बतलाते है :—

[1]पुरिमाण दुव्विसोज्झो चरिमाण दुरणुपालओकप्पो।

मज्झिमगाण जिणाणं सुविसोज्झो सुहणुपालो य ॥३॥

अर्थ :—प्रथम तीर्थंकर के साधुओं को कल्प-आचार जानना दुर्विशोध्य-कठिन था और अन्तिम जिनेन्द्र के साधुओं को पालन करना कठिन है। मध्यवर्ती तीर्थंकरों के साधुओं को जानना और पालन करना दोनों सरल थे। क्योंकि :—

[2]उज्जुजडा पढमा खलु, नडाइ नायाओ हुंति नायव्वा।

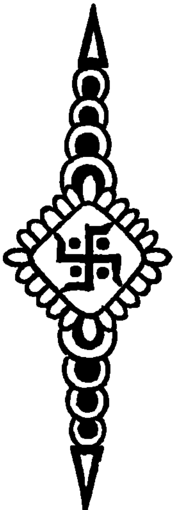
वक्कजडा पुणचरिमा, उज्जुपण्णा मज्झिमा भणिया ॥४॥

अर्थ :—ऋषभदेव भगवान् के साधु ऋजुजड़ अर्थात् सरल किन्तु अनभिज्ञ होते थे। उन्हे जितना कहा जाता, उतना ही समझते थे, विशेष नही। नट नटी का खेल दर्शन निषेध पृथक् पृथक् कहने पर ही समझ सकते

---

१ संस्कृतच्छाया :—पूर्वेपा दुर्विशोध्य श्चरमाणा दुरनुपालकः कल्पः। मध्यमकानां जिनानां सुविशोध्यः सुखानुपाल्यश्च ॥३॥

२ ऋजुजडाः प्रथमा खलु नटादिज्ञाताद् भवन्ति ज्ञातव्याः। वक्रजडा पुन श्चरमा ऋजुप्राज्ञा मध्यमा भणिताः ॥४॥





स्वप्न लक्षण पाठको द्वारा स्वप्न विमर्श



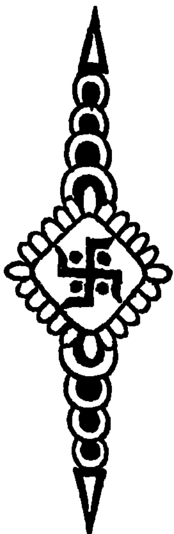
भगवान महावीर का जन्म कल्याणक



भगवान महावीर : उपसर्ग सहन



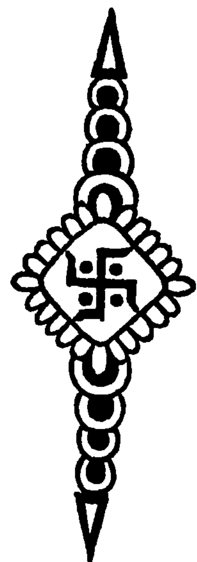
भगवान महावीर का समवशरण

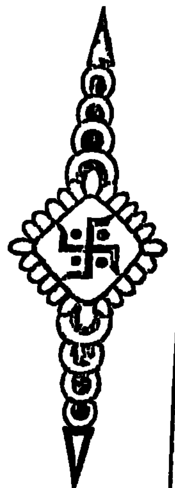


थे, महावीर भगवान् के साधु वक्रजड़ अर्थात् उद्धत और मूर्ख होते हैं। समझ लेने पर भी कुतर्क करके स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। अजितनाथ भगवान् से लेकर पार्श्वनाथ भगवान् पर्यन्त तीर्थंकरों के शासन में होनेवाले साधु-साध्वी ऋजु—प्राज्ञ अर्थात् सरल और प्राज्ञ-महाबुद्धिमान् होते हैं। संकेतमात्र से समझ कर सरलभाव से पालन करते हैं। अब तीनों को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं :—

१ ऋजुजड़

एक नगर के चतुष्पथ में गोचरी जाते हुये कुछ साधुओं ने नाचते हुए नटों को देखा और उनका नाटक देखने लगे, बहुत देर लग गई, जब आहार लेकर उपाश्रय में आये तो गुरु महाराज ने पूछा :—मुनिवरों ! आज आपको अधिक देर कैसे हुई ? तब उन मुनियों ने कहा—आज नटों का नृत्य देखने लग गये। गुरु बोले—साधुओं को नाटक नहीं देखना चाहिये। मुनियों ने 'तथास्तु' स्वीकृति सूचक शब्द कह कर मिथ्या-दुष्कृत दिया। पुनः किसी दिन उन्हीं साधुओं ने गोचरी जाते हुये नर्त्तकियों का नाटक देखा और वैसे ही अधिक देरी हो गई। आहार लेकर जब उपाश्रय में आये तो गुरु ने कहा—आज फिर अधिक विलम्ब कैसे हुआ ? वे मुनि बोले—आज हमने नर्त्तकियों का नाटक देखा। अतः इतनी देर लग गई। गुरुदेव ने कहा—महानुभावो। हमने आपको पहले ही निषेध किया था कि नाटक नहीं देखना चाहिये फिर आज नाटक क्यों देखने लग गये ? तब मुनियों ने कहा—आपने पुरुषों का नाटक देखने का निषेध किया था, आज स्त्रियों का नाटक था। हमने सोचा पुरुषों का नाटक देखना निषिद्ध है ; अतः देखने लग गये। गुरु महाराज ने कहा—साधुओं को सभी प्रकार के नाटक नहीं देखने चाहिये, चाहे वह स्त्री का हो अथवा पुरुष का। मुनियों ने कहा—अब आगे से ऐसा नहीं करेंगे। हमारा यह दुष्कृत मिथ्या हो। आदीश्वर भगवान् के समय में ऐसे ऋजुजड़ जीव थे। उन्हे कार्य या कर्त्तव्य बतलाया जाता, उतना और वैसा ही जानते और पालते थे, अधिक नहीं।

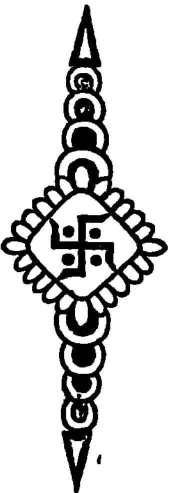


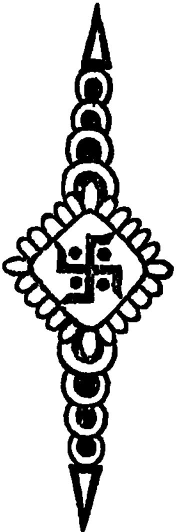


ऐसे ही एक अन्य दृष्टान्त है :—कोंकण देश के एक साधु एकदा ईर्यापथिकी आलोचना करते हुये कायोत्सर्ग कर रहे थे। अन्यमनस्कता वश ध्यान दूसरी ओर चला गया। वर्षा ऋतु थी, पुरवाई चल रही थी, वे अपने पुत्रों के आलस्य के विषय मे सोचने लग गये—मेरे पुत्र आलसी है। खेतो को हल चला कर साफ नहीं करेंगे, न घासपात आदि जलायेंगे, तो वर्षा होने पर भी कुछ नही होगा। मै जब घर मे था, तब सभी कार्य मै ही करता था। अब मै तो घर में हूँ नहीं; वे बेचारे मेरे पुत्र भूख से मर जायेंगे ! जब अन्य सब मुनियो ने कायोत्सर्ग पार लिया, तब गुरुमहराज ने कहा—कोकण मुनि। तुम क्या विचार कर रहे हो ? तब कायोत्सर्ग पार कर बोले—भगवन्। मै जीवदया का विचार कर रहा था , और जो विचार किया था वह कह दिया। गुरु बोले अरे ! तुमने तो 'आरम्भ' का विचार किया है, दया का नहीं, साधुओं को इस प्रकार आरम्भ का विचार नहीं करना चाहिये। तब उन मुनि ने अपनी भूल समझ श्रद्धापूर्वक मिथ्यादुष्कृत दिया। ऐसे ऋजुजडों के अनेक दृष्टान्त है।

भगवान् महावीर के शासन के जीव वक्रजड है। उसका भी उदाहरण निम्न है :—

एक नगर में कोई सेठ रहता था, उसका पुत्र दुर्विनीत और वक्रजड था। माता-पिता के सामने बोलता था और शिक्षा नहीं मानता था। एक बार माता-पिता ने मधुर वचनों से उसे शिक्षा दी कि वत्स ! स्वजन सम्बन्धी और वृद्धजनों के सामने नहीं बोलना चाहिये, अर्थात् उन्हे प्रत्युत्तर न देना चाहिये पुत्र ने कहा—अच्छा ऐसा ही करूंगा। किसी समय घर के सब मनुष्य किसी कार्यवश स्वजन के यहॉ गये और जाते समय पुत्र से कह गये कि घर की सॅभाल रखना। पुत्र द्वार बन्द कर घर में रहा। वे सब वापिस आये तब द्वार बन्द देखकर पुत्र का नाम लेकर आवाज देने लगे और कहा—द्वार खोलो। जल्दी खोलो ! उधर वह मूर्ख सोचनेलगा मुझे सामने न बोलने की माता-पिता ने शिक्षा दी है, कैसे बोलूँ। अतः सुनते हुए भी उसने कोई उत्तर नही दिया और न द्वार खोला। बीच-बीच मे कभी हॅसता है, कभी गाता है कभी



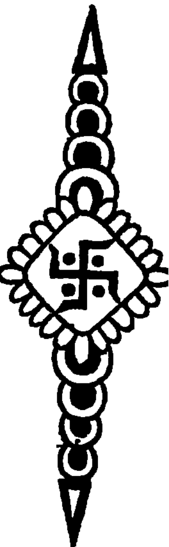


कुछ बोलता है ; किन्तु उन्हें कोई उत्तर नहीं देता। जब आवाजें देते-२ थक गये तो उनमें से कोई पड़ौसी के घर में से किसी प्रकार ऊपर से कूद कर घर में आया और द्वार खोला, घर में आये। पुत्र से कहा—अरे ! हमारी आवाज सुनकर भी तुमने उत्तर नहीं दिया ? पुत्र बोला—आपने ही तो मुझे शिक्षा दी थी कि बड़े-पूज्यजनों को उत्तर नहीं देना चाहिये। पिता ने कहा—अरे ! ईर्षा से और सबके सामने जोर से नहीं बोलना चाहिये। उसने कहा—ठीक है, अब धीरे से बोला करूंगा।

एकबार उसके पिता ग्राम पंचायत के चबूतरे पर गये हुए थे पीछे से घर में आग लग गई। माता ने पुत्र से कहा—जल्दी तुम्हारे पिताजी को बुला लाओ ! कहना घर में आग लग गई है ! लड़का दौड़ा हुआ गया। बहुत से लोगों के बीच में अपने पिता को बैठे हुए देखकर दूर खड़ा रहकर विचार किया—पिताजी ने जोर से बोलने का निषेध किया है, कैसे कहूँ ? चुपचाप बैठ गया। बहुत से लोगों के चले जाने पर धीरे से पिताजी के कान में कहा—जल्दी चलो ! घर में आग लग गई है। पिता ने पूछा—कितनी देर हुई ? तो बोला—एक घण्टा हो गया होगा। पिता बोले—अरे मूर्ख ! तुझे आये इतनी देर हो गई। आते ही क्यों न कहा ? पुत्र ने कहा—आपने ही तो कहा था—लोगों के सामने जोर से नहीं बोलना चाहिये। पिता विवश हो खेद करते हुए घर दौड़े ; पर इतनी देर में तो सब स्वाहा हो चुका था। ऐसे वक्रजड़ों के अनेक दृष्टान्त हैं।

ऋजु प्राज्ञ विषयक दृष्टान्त

अजितनाथ भगवान् आदि २२ तीर्थंकरों के शासनवर्ती एक मुनिराज भिक्षाचरी के लिए गये हुये थे मार्ग में नटों का नृत्य देखने लग गये और विलम्ब से पहुंचे। गुरु महाराज के पूछने पर यथार्थ बात कही गुरु ने भविष्य में नाटक देखने जैसे आचरण न करने का आदेश दिया। उसने सविनय स्वीकार किया और पहले देखने का मिथ्यादुष्कृत दिया। एक बार नृत्याङ्गना का नृत्य हो रहा था। गोचरी गये हुए वे मुनि



कल्पसूत्र
६

वहाँ खडे न रहे और विचार किया कि रागोत्पत्ति का कारण होने से गुरुदेव ने नृत्यदर्शन का निषेध किया था ; मुझे स्त्री-पुरुष किसी का भी नृत्य नहीं देखना चाहिये। यह ऋजु, प्राज्ञ सरल व बुद्धिमान का लक्षण है।

साधु-साध्वी जिस क्षेत्र में वर्षाकाल में चातुर्मास रहें 'वह क्षेत्र कैसा हो' यह वर्णन करते हैं :—

[1]चिक्खिल्ल पाण थंडिल वसही गोरस जिणाउले विज्जे।
ओसह निचयाहिवई पाखंडी भिक्ख सज्झाए॥

अर्थ :—१ जिस ग्राम या नगर में कीचड थोड़ा हो। २—द्वीन्द्रियादि-कृमि-कीड़े मकोड़े चींटियाँ मक्खी-मच्छर मत्कुण (खटमल) कुन्थु आदि जीवों की उत्पत्ति थोड़ी होती हो। ३—स्थण्डिल भूमि निरवद्य-जीव रहित हो। ४—स्थान अनुकूल हो। स्त्री पशु आदि रहित हो। ५—दुग्ध दधि छाछ प्रचुर गोरस मिलते हो। ६—श्रावकों के गृह अधिक हो। ७—वैद्य हो। ८—औषधियाँ मिलती हो। ९—धान्यादि वस्तुओं का विपुल संग्रह हो। १०—ग्रामाधिप आर्य-नीतिमान हो। ११—अन्य दर्शनी थोड़े हों। १२—भिक्षा सुलभ हो। १३—स्वाध्याय ध्यान निर्विघ्न हो सकता हो।

कदाचित् उपर्युक्त तेरह सुविधाएँ न हों तथापि चार तो अवश्य हों। यथा :—

[2]महई विहारभूमि वियार भूमि अ सुलह सज्झाओ।
सुलहा भिक्खा य जहिं जहन्नं वासखित्तं तु॥

अर्थ १—जिस ग्राम में तीर्थंकरों के मन्दिर और २—स्थण्डिल भूमि हो। ३—जहाँ स्वाध्याय ध्यान

---

१ संस्कृतच्छाया —पङ्क प्राणा स्थण्डिलो वसतिर्गोरसं जिनाकुलं वैद्यः। औषधं निचयाधिपतिः पाखण्डी भिक्षा स्वाध्यायः॥

२ सस्कृतच्छाया :—महती विहार भूमिर्विचार भूमिश्च सुलभस्वाध्यायः। सुलभा भिक्षा च यत्र जघन्यकं वर्षाक्षेत्रस्तु॥

सुख पूर्वक हो सके। ४—भिक्षा सुख से मिल सके, वह क्षेत्र वर्षाकाल में रहने योग्य है। इन चार सुविधाओं वाला क्षेत्र जघन्य और उपर्युक्त तेरह सुविधाओ वाला वर्षाकाल में रहने योग्य उत्कृष्ट क्षेत्र कहलाता है।

पर्यूषण महिमा

सभी लौकिक और लोकोत्तर पर्वों में पर्यूषण पर्व सर्वोत्कृष्ट है इसका वर्णन करते हैं।

मन्त्राणां परमेष्ठि मन्त्र महिमा तोर्थेषु शत्रुञ्जयो,
दाने प्राणिदया गुणेषु विनयो ब्रह्म व्रतेषु व्रतम्।
सन्तोषो नियमे स्तपस्सु च शमः तत्त्वेषु सद्दर्शनं,
सर्वेषूत्तमपर्वसु प्रगदितः श्रोपर्वराजस्तथा ॥१॥

अर्थ :—मन्त्रों में नमस्कार मन्त्र की महिमा, सर्व तीर्थों में शत्रुञ्जयतीर्थ, दान में अभयदान, गुणों में विनय, व्रतों में ब्रह्मचर्यव्रत, नियम में सन्तोष, तपस्याओं में उपशम (क्षमा) तप, सर्व तत्त्वों में सम्यग्दर्शन तत्त्व श्रेष्ठ है वैसे ही सर्व पर्वों में उत्तम पर्यूषण पर्व सर्वोत्कृष्ट है।

जैसे दुग्ध में गाय का दूध, जल में गंगाजल, रेशमी वस्त्रों में हीर वस्त्र में चीर (सूक्ष्म सूत वाला वस्त्र-मर्सराइज्ड) अलंकारों में चूड़ामणि, ज्योतिषियों में चन्द्रमा, अश्वों में पञ्चवल्लभ किशोर, नृत्य कलाकारों में मोर, वनों में नन्दनवन, काष्ठों में चन्दन, तेजस्वियों में सूर्य, साहसिकों में विक्रमादित्य, न्यायवानों में श्रीरामचन्द्र, रूपवानों में कामदेव, सतियों में राजिमती, शास्त्रों में भगवती, वाद्यों में भंभा, स्त्रियों में रम्भा, सुगन्धित वस्तुओं में कस्तूरी, वस्तुओं में तेजमतूरी (वह मिट्टी जिसे गर्म करने पर स्वर्ण बन जाय) पुण्य श्लोकों (यशस्वियों) में नलनृपति और पुष्पों में सहस्रदल कमल होता है, वैसे ही सर्व पर्वों में पर्यूषणापर्व सर्वोत्तम जानना चाहिये।

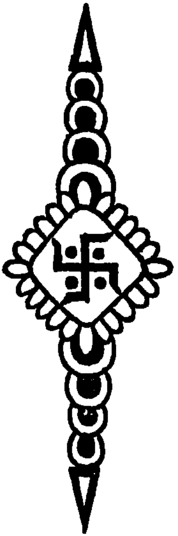
इस पर्यूषणापर्व के आने पर पूर्वाचार्यों[1] ने मंगल के लिए श्रीसंघ के सम्मुख कल्पसूत्र बाँचने की रीति प्रवृत्त की।

यह श्री कल्पसूत्र जो दशाश्रुत स्कन्ध का उद्धार रूप है, भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित है। वह श्री संघ के मगलार्थ बाँचा जा रहा है।

अब कल्पसूत्र श्रवणका माहात्म्य बतलाते हैं :—

एगग्गचित्ता जिणसासणम्मि पभावणपूअपरानरा जे।
तिसत्तवारं निसुणन्तिकप्पं भवण्णवं ते लहु सन्तरंति ॥

१—वीरनिर्वाण सं० ९८० वर्ष में आनन्दपुर (वर्तमान गुर्जर देशान्तर्गत वडनगर में) में ध्रुवसेन शासन करते थे, उनके सेनागद नामक राजकुमार का पर्यूषण पर्व जब समीप ही थे, स्वर्गवास हो गया। राजा को अत्यन्त शोक हुआ और शोक ग्रस्त होने के कारण राजा पर्यूषण आराधनार्थ तत्रस्थित आचार्य के पास नहीं आया। राजा के अन्य राज्य कर्मचारी मन्त्री आदि एवं राजमान्य अन्य सामन्त श्रेष्ठी वर्ग आदि भो न आये, क्योंकि "यथा राजा तथा प्रजा" तब धर्महानि देखकर स्वयं आचार्यदेव राजा ध्रुवसेन के पास पधारे और बोले राजन्। आपके शोकाकुल रहने से सारा देश और विशेषतः नगरजन भी शोकाभिभूत हो रहे हैं। शरीर अनित्य है, वैभव भी अशाश्वत है तथा आयु भी अस्थिर है यह संसार ही असार है, आप के सदृश जैन धर्म के तत्वज्ञों को अधिक शोक करना उचित नहीं। पर्यूषण का आराधन करिये। भद्रबाहु स्वामी द्वारा नवमपूर्व से उद्धृत दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र का अष्टम अध्ययन कल्पसूत्र है। वह आपने पहले कभी नहीं सुना है, वह मंगल स्वरूप और महाकर्मक्षय कारक है। तथा विशिष्ट शास्त्र है। आपको धर्मस्थान में पधार कर सुनना चाहिये। अपूर्व लाभ दे रहे है। राजा ने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और सपरिवार उपस्थित हुआ। आचार्यदेव ने नव वाचनाओं से राजा के समक्ष कल्पसूत्र का वाचन किया, प्रभावना हुई। तब से सभा के समक्ष कल्पसूत्र वाँचने की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। इससे पहले मुनिजनों मे ही इसका वाँचन होता था। समाचारी मे तो विशेप मुनिधर्म ही वर्णित है।



अर्थ—जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो, जैनशासन में प्रभावना पूजा में तत्पर होते हुये इक्कीस वार श्रीकल्पसूत्र को सम्यक् प्रकार से श्रवण करते हैं ; वे शीघ्र ही संसार समुद्र को पार कर लेते हैं। इस पर्यूषणा महापर्व के आने पर साधुओं के करने योग्य कार्य बतलाते हैं :—

संवत्सर प्रतिक्रान्ति लुंच्चनं चाष्टमं तपः।
सर्वार्हद्द भक्ति पूजा च संघस्य क्षामणाविधिः ॥२॥

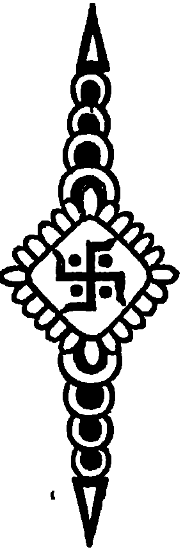
अर्थात् १· सांवत्सरिक प्रतिक्रमण, २· लुञ्चन, ३· अष्टम-तेले का तप, ४· सर्व अर्हन् चैत्यों में भाव-भक्ति पूजा करना अर्थात् चैत्य परिपाटी करना और ५· समस्त श्री संघ व जीवों के साथ क्षमा का आदान प्रदान करना। इन पाँच कर्त्तव्यों के पालनार्थ तीर्थंकरों और गणधरों ने पर्यूषणा पर्व स्थापित किया है। यह साधु-साध्वियों के कर्तव्य हैं।

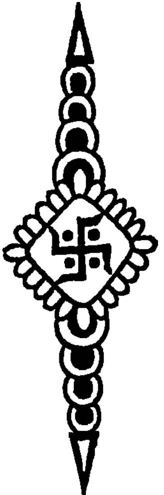
श्रावकों को भी इस महान् पर्व की आराधना करनी चाहिये। जिनेश्वरों की द्रव्य व भावपूजा, आरम्भ का परित्याग, सुपात्रदान, ब्रह्मचर्यपालन, अमारी उद्घोषणा, रथयात्रा, कल्पसूत्रमहिमा श्रुतभक्ति पूजा, चैत्य-परिपाटी, प्रभावना, साधर्मीजनभक्ति आदि शासनप्रभावना के कार्य करने चाहिये। तथा अष्टमतप, सांवत्सरिक प्रतिक्रमण और श्री संघ के साथ क्षमापना करना चाहिये। इन कर्त्तव्यों का पालन करते हुये श्रावक जन भी मुक्ति प्राप्त करते हैं।

इन करणीय कृत्यों में से अष्टम तप का माहात्म्य बतलाते हैं।

अष्टम तप पर नागकेतु का दृष्टान्त

चन्द्रकान्ति नगरी में विजयसेन राजा राज्य करता था। उसी नगरी में श्री आर्हत्धर्मी श्रीकान्त सेठ रहता था। उसके शील गुण रूप सम्पन्ना श्रीसखी नामक पत्नी की रत्न कूक्षी से एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।



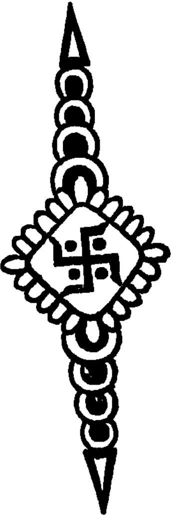


पर्यूषण पर्व आने पर लोकों के मुख से पर्व की बात सुन कर छोटे से बालक को भी जातिस्मरण ज्ञान हो
गया और उसने भी अष्टम तप कर लिया।

वह बालक पूर्व जन्म में भी जैन कुल में उत्पन्न हुआ था, वहाँ पर्यूषण पर्व पर तेला करने का निश्चय
करके सो रहा था कि विमाता ने उसके घर में आग लगा दी थी ; इससे मर कर यहाँ उत्पन्न हुआ और
पूर्व संस्कारवश जातिस्मरण हो जाने से तेले का तप किया।

माता का स्तनपान न करने से मूर्च्छित हो गया। अत्यन्त हार्दिक दुःख के कारण हृदय गति रुक जाने
से माता-पिता का देहान्त हो गया। सम्बन्धिजन अग्नि-संस्कार करने ले गये। बालक को भी मृत जानकर
ले जाने को प्रस्तुत हुए। तभी धरणीन्द्र ब्राह्मण रूप धर कर वहाँ आया और बालक को गोद में लेकर
सचेत किया। उधर राजा के पुरुष भी निःसन्तान समझ कर धन गृहादि सेठ की सम्पत्ति पर अधिकार
करने आये थे ; वे भी बालक को जीवित जान विस्मित हो गये। धरणीन्द्र ने कहा—इस बालक ने तेला
किया है, अतः मूर्च्छित हो गया था। यह जैन शासन का महा प्रभावक होगा ! इस अद्भुत घटना को सुन
कर स्वय राजा वहाँ आया। वह भी यह देखकर आश्चर्य चकित हो गया। सबने उस बालक का नाम
'नागकेतु' रख दिया क्योंकि धरणीन्द्र नागकुमार देवों के इन्द्र होते हैं। स्वयं धरणीन्द्र ने विप्ररूप से उसका
पालन पोषण किया। युवा होने पर उस बालक ने जैन धर्म की महाप्रभावना की।

एकदा राजा ने किसी निरपराधी को चोर समझ कर मृत्यु-दण्ड दिया। वह मर कर व्यन्तर हुआ।
विभग ज्ञान से पूर्वभव देखकर वहाँ आया एव राजा को शत्रु जान सिंहासन से गिरा दिया और नगर को
नष्ट करने के लिए बडी भारी शिला विकुर्वण कर सबको डराने लगा। नागकेतु ने जिन प्रतिमा,
जिन प्रासादादि सर्व की रक्षार्थ प्रासाद के ऊपर चढकर शिला को हाथ से रोक लिया। उसके तेज से
हतप्रभ व्यन्तर शिला संवरण कर नागकेतु को नमस्कार कर राजा को स्वस्थ बना कर अपने स्थान पर
चला गया। नागकेतु राजमान्य श्राद्ध बना।

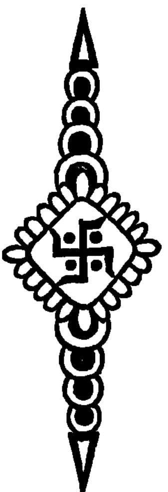


किसी दिन भगवान की पूजा करते हुये नागकेतु को पुष्प में रहेहुये सर्प ने डस लिया, तब शुक्लध्यान में लीन हो जाने से केवलज्ञान हुआ, शासन देव ने साधुवेष दिया। नागकेतु केवली भगवान् चिरकाल पर्यन्त पृथ्वीतल पर विचरे। अनेक भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर मुक्त हुये। इस प्रकार जो भव्य प्राणी इस पर्व में अष्टम तप करते हैं वे भी क्रमशः शिव सुख प्राप्त करेंगे।

जिस प्रकार जैन शासन में यह संवत्सरी पर्व महान् माना जाता है; उसी प्रकार सनातन धर्म में भी इस दिन का अर्थात् ऋषिपंचमी का बड़ा माहात्म्य है।

ऋषिपंचमी माहात्म्य कथा

पुष्पवती नामक नगरी में अर्जुन नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र का नाम गङ्गाधर था। गङ्गाधर के माता-पिता का देहान्त हो गया। सयोगवश पिता अपने ही पुत्र के यहाँ बैल रूपसे उत्पन्न हुआ और माता भी वहीं कुत्ती बनी, दोनों को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। माता-पिता का श्राद्ध दिन आने पर स्वजनों को गंगाधर ने भोजन का निमन्त्रण दिया और क्षीर आदि उत्तम भोज्य पदार्थ बनाये। उसी दिन वृषभ को एक तेली मांग कर ले गया था। भट्टी पर कड़ाही में खीर पक रही थी। कुत्ती दूर बैठी देख रही थी कि पकती हुई खीर में छप्पर में बैठे हुये सर्प के मुख से विष गिर रहा है। उसने सोचा—अरे, इस खीर को खाने से सब कुटुम्ब मर जायगा। उसने खीर के पात्र को मुख से उच्छिष्ट कर दिया, गंगाधर खीर में कुत्ती के मुंह डालने से उच्छिष्ठ हुई देख कर क्रोध में आ गया और लकड़ी से कुत्ती को मारा। उसकी कमर में भारी चोट आने से वह चिल्लाई। गंगाधर ने उसे गोष्ठ कक्ष में ले जाकर बाँध दिया। उसने दूसरा दूध मॅगवा कर खीर बनाई तथा सर्व आमन्त्रित स्वजनादि को भोजन कराया। सन्ध्या को तेली बैल को लेकर आया, गंगाधर ने बैल को गोष्ठ (वाड़े) में बाँध दिया। कुत्ती भी वहीं बैठी रो रही थी। बैल ने पूछा आज तू क्यों रो रही है? उसने उत्तर दिया—तुम्हारे पुत्र ने लकड़ी से मेरी कमर तोड़ दी! मैंने तो आज



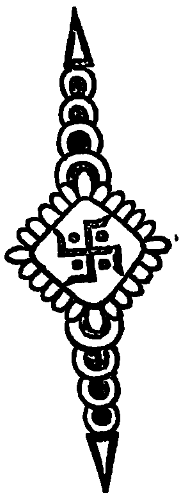
सारे कुटुम्बादि की विष मरण से रक्षा की, उपकार किया और तुम्हारे पुत्र ने उसका यह बदला दिया। वृषभ ने कहा—प्रिये ! इस पापात्मा पुत्र ने मुझे भी आज तेली को दे दिया था उसने दिन भर घाणी में चलाया, अब यहाँ पहुँचा गया है। मै तो दिन भर भूखों मर गया। इन दोनों का ऐसा वार्त्तालाप समीप में ही सोये हुये गंगाधर ने सुना। माता-पिता की भारी दुर्दशा देख कर उसे अत्यन्त खेद हुआ। इनकी सद्गति कैसे हो ? ऐसा सोचने लगा और गृह छोड़ कर तपोवनों में गया। तपस्वी जनों से माता-पिता की दुर्गति का कारण पूछा तब उन्होंने पर्व में अब्रह्म (मैथुन) सेवन, इसका कारण बताते हुये कहा—भाद्रपद शुक्ला पंचमी का व्रत करो, पारणे के दिन तथा उत्तर पारण के दिन अकर्षित (हल चलाये बिना उगने वाले) धान्य का भोजन करो ; इस तप के प्रभाव से तुम्हारे माता-पिता की सद्गति हो जायगी। उसने ऋषियों के वचन से व्रत किया जिससे माता-पिता की सद्गति हुई। तब से यह दिन 'ऋषिपञ्चमी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

यह पर्यूषण पर्व तृतीय वैद्य की औषधि के समान कर्म रोग को नष्ट करने वाला और सर्व सुख करने वाला है।

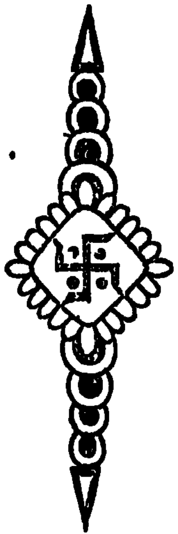
वैद्यों का उदाहरण

किसी नगर में एक राजा शासन करता था, उसके एक ही पुत्र था, राजा ने पुत्र की नीरोगता, पुष्टि और काया-कल्प के लिए वैद्यों को बुलाया और उनसे पूछा—राजकुमार का शरीर पुष्ट, कान्तिमान् और नीरोग रहे तथा भविष्य में रोग प्रतिरोध की शक्ति प्राप्त हो, ऐसी औषधि दीजिये। वहाँ सर्वोपरि तीन वैद्य आये थे।

प्रथम वैद्य बोला—राजन् ! मेरी औषधि शरीर में रोग हो तो रोग दूर करती है पर कदाचित् रोग न हो तो नया रोग उत्पन्न कर देती है राजा ने सुनकर कहा—ऐसी औषधि किस काम की ? यह तो सुप्तसिंह को जगाने के समान अनिष्टकारक है।



कल्पसूत्र
१६



दूसरे वैद्य ने कहा—मेरी औषधि ऐसी है कि रोग हो तो नष्ट कर दे और रोग न हो तो हानि भी न करे। उसकी बात सुनकर राजा बोला—आपकी औषधि भी रहने दो, वह भी राख में होमे हुये घी के समान है।

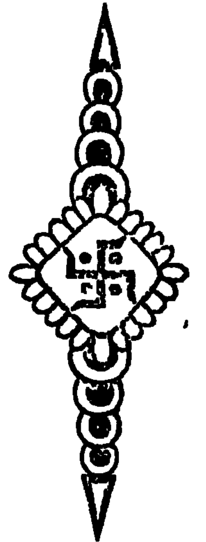
तत्पश्चात तीसरा वैद्य बोला—राजन्! मेरी औषधि रोग हो तो उसे दूर करती है, कदाचित् रोग न हो तो शरीर में तुष्टि-पुष्टि सौभाग्य और आरोग्यवर्द्धिनी और भावी रोग का प्रतिरोध करने वाली है। राजा ने कहा—यह औषधि अच्छी है, करनी चाहिये; आपकी औषधि रसायन है। उस वैद्य ने राजकुमार की चिकित्सा की। राजपुत्र नीरोग बलवान् और दीर्घायु हुआ। उसी प्रकार यह पर्वाराधन व कल्पसूत्र श्रवण भी कर्म सहित जीव के पूर्वोपार्जित कर्मों को नष्ट करता है लघुकर्मा बनता है। लघुकर्मा और क्षीणकर्मा बनकर आराधक अजरामर पद भागी होता है अर्थात् मुक्त होता है। [इति प्रस्तावना]

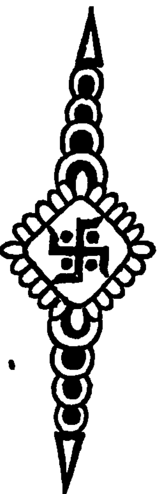
प्रथम वाचना

अब श्री भद्रबाहु स्वामी मंगल के अर्थ पंचपरमेष्ठि नमस्कार मन्त्र बोलते है :—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।
एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥१॥

व्याख्या :—इन्द्रादि के द्वारा पूजनीय, अथवा रागद्वेषादि कर्म शत्रुओं को जीतने वाले अर्हन्तों-अरिहन्तों को नमस्कार हो ॥१॥





सित्-बद्धकर्मों को ध्यानाग्नि से जला देने वाले अर्थात् अष्टकर्म रूप कर्म मण्डल को धमन करने वाले सिद्धो को नमस्कार हो ॥२॥

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार एवं वीर्याचार पाँच आचारों को पालन करने वाले व कराने वाले आचार्यो को नमस्कार हो ॥३॥

जिनके समीप आकर अन्य साधु द्वादशांगी आगमादि ग्रन्थ पढ़ते है। वे उपाध्याय कहलाते हैं। उन उपाध्यायो को नमस्कार हो ॥४॥

मोक्ष मार्ग की साधना करने वाले साधु होते हैं। उन सर्व साधुओं को नमस्कार हो ॥५॥

यह पाँच नमस्कार रूप महामन्त्र सर्वपापों का नाश करने वाला एवं सर्वमंगलों में पहला मंगल है।

इस पंच परमेष्ठि मन्त्र में नव 'पद' आठ सम्पदायें, सात गुरु अक्षर और इकसठ लघु अक्षर है। सब अडसठ अक्षर है।

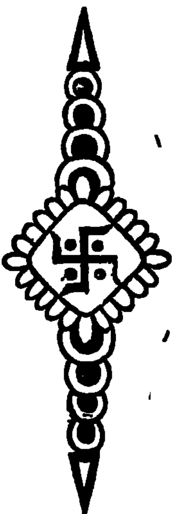
नमस्कार मन्त्र के जापका प्रभाव

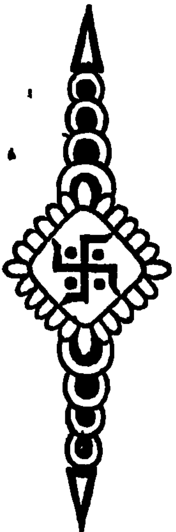
इहलोगम्मि तिदंडो सा, दिव्वं माउलिंग वण मेव।
परलोए चंडपिंगल, हुंडय जक्खो य दिट्ठंता ॥१०॥

शब्दार्थ :—पंच परमेष्ठि नवकार मन्त्र के माहात्म्य पर इस लोक में त्रिदण्डी एवं दिव्य बिजोरे का और परलोक में चण्डपिङ्गल तथा हुण्डक यक्ष का दृष्टान्त है।

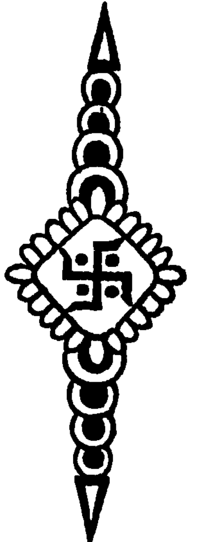
इसभव में अपूर्व फल प्राप्ति पर शिवकुमार का प्रथम दृष्टान्त

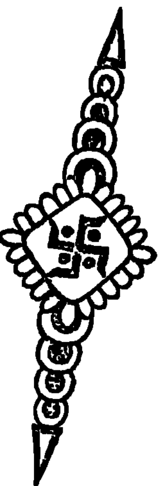
कुसुमपुर नगर में धन नामक सेठ था। उसका पुत्र शिवकुमार द्यूतादि व्यसन वाला हो गया और व्यसनों में धन नष्ट करने लगा। वह पिता के द्वारा समझाने पर भी न मानकर स्वच्छन्द आचरण करता





रहता था। पिता ने व्याधिग्रस्त होने पर पुत्र को समझाया कि तू मेरे परलोक जाने पर द्यूतादि व्यसनों के कारण अनेक दुःखों का भागी बनेगा तो एक बात मेरी स्वीकार कर ले, पंच परमेष्ठि मन्त्र सीख ले। आपत्ति काल में इस मन्त्र का स्मरण तेरी आपत्तियों को दूर कर देगा। तब पिता के मुख से परमेष्ठि मन्त्र ग्रहण किया। पिता का स्वर्गवास हो गया। शिवकुमार ने पिता की अन्त्येष्ठि आदि सर्व क्रिया की। शिवकुमार व्यसनों में सर्वस्व खोकर ऋणग्रस्त हुआ नगर से बाहिर ही भटकता रहता था। एक बार एक वनवासी त्रिदण्डी ने उससे पूछा—भद्र! 'तू दीनहीन खिन्न बना हुआ वन में क्यों भटक रहा है? शिवकुमार ने अपनी वास्तविक अवस्था उससे कही; तब त्रिदण्डी ने कहा—खेद मत करो, यदि मेरा कहा करोगे तो अक्षय सम्पत्ति प्राप्त करोगे। शिवकुमार बोला—कैसे? त्रिदण्डी ने कहा—एक अंगवाला शव लाओ और दूसरी सामग्रियाँ मेरे पास हैं ही। उस लोभी ने कहीं से शव लाकर योगी को दिया। दण्डी ने भट्टी पर तैल से भरा कडाह चढा दिया, नीचे अग्नि प्रज्ज्वलित करके उस नीच योगी ने कहा—तुम इस शव का तैल से मर्दन करो। शिव ने वैसा हो किया। दण्डी अरीठे के फलों की माला लेकर जाप करने लगा। शिवकुमार ने विचार किया—इस दण्डी को मैं पहचानता नहीं हूँ, न पहले कभी इसकी सेवा ही की है—यह मुझपर एकाएक कैसे अनुग्रह करेगा? यह तो अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा है मेरा यहाँ कौन रक्षक है? हा! बड़ी आफत आ गई! अब क्या होगा? उस समय पिता का वचन याद करके मनमें नमस्कार मन्त्र का स्मरण करने लगा। योगी जाप करके शव को उठाने लगा; किन्तु नमस्कार मंत्र के प्रभाव से शव गिर पड़ा, दण्ड ने कहा शिव! क्या कोई मंत्र जाप कर रहे हो? जिससे कार्य सिद्धि में विघ्न हो रहा है? शिव ने कहा—कुछ भी नहीं। योगी फिर जाप करने लगा। शिव भी अपने मंत्र जाप का प्रभाव समझ गया और फिर प्रयत्न पूर्वक एकाग्रता से नवकार मन्त्र के जाप में लग गया। दण्डी का जाप का पूरा होने पर शव फिर उठा किन्तु पूर्ववत् पुनः गिर पड़ा। शिव से पूछने पर पूर्ववत् उत्तर पाकर योगी तीसरी बार जाप करने लगा अन्त





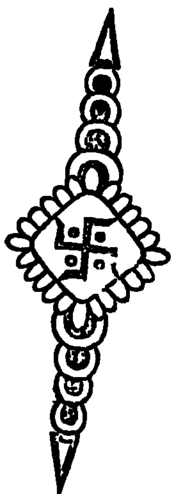
में शव ने उठकर उस योगी को ही खौलते हुए कड़ाह में फेक दिया। वह योगी उसमें गिरते ही स्वर्णपुरुष बन गया। शिवकुमार हर्षित होता हुआ उस स्वर्णपुरुष को लेकर अपने घर आ गया। इस अक्षय सम्पत्ति से वह सुखी हुआ। पिता के दिये मन्त्र से रक्षा हुई सम्पत्ति मिली अतः उनके उपदेश को याद कर व्यसनों का त्याग करके धर्माराधन में तत्पर रहने लगा और अन्त में सद्गति प्राप्त की।

(२) श्रीमती की कथा

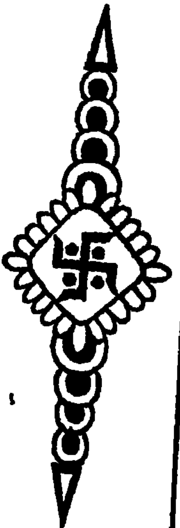
सौराष्ट्र देश के एक ग्राम निवासी श्रावक की पुत्री किसी अन्यदर्शनी के साथ धोखे से विवाहित कर दी गई थी। वह जिनेन्द्र-भक्त थी और प्रतिदिन नमस्कार मंत्र का जाप करती थी। श्वसुर सास आदि ने उसे जैनधर्म छोडने देने को कहा पर उसने किसी भी प्रकार जैनधर्म नहीं छोड़ा, तब सबने सोचा यह किसी प्रकार मर जाय तो दूसरी पुत्रवधू ले आवें। पति ने भी इस बात को स्वीकार कर लिया। उसे मारने के लिए एक सँपेरे से काला साँप मँगवाकर उसके पति ने एक घडे में डाल दिया, घड़े का मुख बन्द कर किसी अन्धकारमय कमरे में रख दिया। दूसरे दिन प्रातः पति ने विष्णुपूजा करते हुये पत्नी से कहा कि कमरे के अन्दर घडे में पुष्पमाला रखी है, ले आओ! जिससे पुष्प पूजा की जाय! श्रीमती ने पति आज्ञा स्वीकार की और अन्धेरे कमरे में घड़े का ढक्कन उठाकर 'ॐ णमो अरिहंताणं' का स्मरण करते हुए हाथ डालकर पुष्पमाला निकाल ली और उसे जब पति को लाकर देने लगी तो वह माला भयकर कृष्ण सर्प रूप बन गई। पति उसे देखकर भयभीत हो गया और विचार किया—अहो! इसका धर्म श्रेष्ठ है! और पत्नी के मुख से समझकर जैनधर्म स्वीकार कर लिया।

(३) जिनदास सेठ का दृष्टान्त

नदी तीर पर एक नगर था। वर्षा ऋतु में नदी में बाढ़ आई हुई थी; तट पर कुछ गोपालक गायें चरा रहे थे। उन्हे बाढ़ में बहता हुआ एक बिजौरे का फल दिखाई पडा, गोपालकों ने वह फल ले लिया और



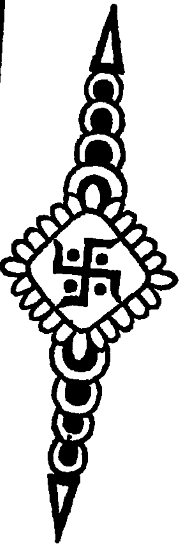
कल्पसूत्र
२०



अपूर्व समझकर राजा को भेंट कर दिया। वह फल अत्यंत सुगंधित और स्वादिष्ट था। राजा उसे भक्षण कर बहुत प्रसन्न हुआ और गोपालकों को बुलाकर पूछा कि यह फल कहाँ से मिला ? उन्होंने कहा हमें तो बाढ (नदी प्रवाह) में मिला है। राजा ने नदी के किनारे किनारे उस फल के उत्पत्ति—स्थान की खोज करवाई। एक उद्यान में बिजौरे के वृक्षों में फल लगे देखे पर जब फल लेने लगे तो देववाणी हुई कि उद्यान में आकर फल लेनेवाला मारा जायगा। गये हुए राजसेवकों ने लौटकर राजा को निवेदन किया। राजा ने रसनालोलुप होकर एक घट में सब नगरजनों के नामांकित पत्र डाल दिये। प्रातःकाल एक कुमारी के हाथ से एक पत्र निकलवाने लगा। जिसके नाम का पत्र निकलता था वही बिजौरा लेने जाता। बिजौरे का फल तोड़कर वह उद्यान से बाहिर फेंकता। फल को बाहिर रहे राजसेवक उठाकर ले जाते किन्तु इधर फल तोड़नेवाले को यक्ष मार देता था। एक बार जिनदास श्रावक की वारी आई। जिनदास ने जिनपूजा गुरुवन्दन आदि नित्य-कर्म कर के सागारी अनशन कर लिया और नवकार मन्त्र का उच्चारण करते हुये उद्यान में प्रवेश किया। नमस्कार मन्त्र सुन कर यक्ष ने अपना पूर्व भव देखा। वह धर्म विराधना करने के कारण यक्ष बना था। उसने जिनदास को श्रावक जानकर नमस्कार किया और बोला—आप मेरे धर्मगुरु है ! वर माँगिये ? मै प्रसन्न हुआ हूँ। जिनदास ने कहा—मानव हत्या का त्याग करो। यक्ष ने स्वीकार किया और बोला—अबसे मैआपके पास नित्य बिजौरेका फल पहुँचाऊँगा, आपको यहाँ आने की आवश्यकता नहीं। अब मै जीवहिंसा नहीं करूंगा और नमस्कार मन्त्र का जाप करूंगा। जिनदास राजा के पास आया, सबको भारी विस्मय हुआ तथा जिनदास का नया जन्म पाने का महोत्सव मनाया।

(४) चण्डपिङ्गल का दृष्टान्त

चण्डपिङ्गल नामक एक चोर था। वह एक कलावती वेश्या पर मोहित था। एक वार वेश्या ने उससे रानी का हार माँगा। उसने चोरी से वह हार लाकर वेश्या को दिया। राजा ने हार की खोज कराई पर



अर्थात्—गुणों का आकर, गूढार्थ भावयुक्त और लक्ष्मी के निधान रूप युक्त वल्लभ रचित प्रिय इष्ट फलवाले श्री कल्पसूत्र नामक महान् आगम का यह प्रथम व्याख्यान परिपूर्ण हुआ। इस श्लोक में टीकाकार ने अपना नाम भी युक्ति से गूंथ दिया है।

इति श्री उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ विरचित श्री कल्पद्रुमकलिका में प्रथम व्याख्यान सम्पूर्ण हुआ।

अथ द्वितीय व्याख्यान

वंदामि भद्दबाहुं, पाईणं चरम सयल सुयनाणिं।

सुत्तस्सकारगंइसिं, दसाणुकप्पे य ववहारे॥

अर्थात्—प्राचीन गोत्रीय, समस्त श्रुतज्ञानियों में अन्तिम और दशाश्रुतस्कंध, वृहत्कल्प तथा व्यवहार ३ छेद सूत्रों की रचना करने वाले महर्षि भद्रबाहु को नमस्कार करता हूँ।

अर्हन् भगवान् श्रीमान् महावीर देव के शासन में अतुल मंगलमाला के प्रकाशक श्री पर्यूषण पर्वराजाधिराज के आने पर श्री कल्पसूत्र वाँचा जाता है। उसमें तीन अधिकार हैं :—जिनचरित्र, स्थविरकल्प और समाचारी। श्रीजिनचरित्राधिकार में पश्चात्तुपूर्वी से श्री महावीर के छः कल्याणक संक्षिप्त से कहे। अब द्वितीय वाचना में विस्तृत रूप से श्रीसंघ के मंगलार्थ श्री महावीर प्रभु के छः कल्याणकों का वर्णन करते हैं।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे, अट्ठमे पक्खे, आसाढ सुद्धे, तस्स णं आसाढसुद्धस्स छट्ठी दिवसेणं महा-विजय-पुप्फुत्तर-पवर-पुंडरीयाओ दिसासोवत्थियाओ वद्धमाणगाओ महाविमाणाओ वीसं सागरोवमट्ठिइयाओ आउक्खएणं, भवक्खयेणं, ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता॥

उस काल उस समय में अर्थात् अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे में ग्रीष्मऋतु के चतुर्थ मास अष्टम पक्ष

अर्थात्-आषाढ शुक्ला छट्ठ के दिन महाविजय पुष्पोत्तर प्रवरपुण्डरीक दिशा सौवस्तिक वर्द्धमान नामक महाविमान से वहाँ का आयुक्षय हो जाने से भवक्षय जाने से और स्थितिक्षय हो जाने से च्यवन हुआ। च्यवकर

इहेव जंबुद्दोवे दीवे, भारहेवासे दाहिणड्ढ भरहे इमीसे ओसप्पिणीए सुसम सुसमाए समाए वइक्कंताए ॥१॥ सुसमाए समाए वइक्कंताए ॥२॥ सुसम दुसमाए समाए वइक्कंताए ॥३॥ दुसम सुसमाए समाए बहु वइक्कंताए सागरोवम कोडाकोडोए बायालीस वाससहस्सेहिं ऊणिआए पंचहत्तरोए वासेहिं अद्धनवमेहिय मासेहिं सेसेहिं ॥४॥ इक्वोसाइ तित्थयरेहिं इक्खागकुल समुप्पन्नेहिं कासवगुत्तेहिं, दोहिं य हरिवंसकुल समुप्पन्नेहिं गोयम गुत्तेहिं तेवोसाए तित्थयरेहिं वइक्कंतेहिं ॥

इसी जम्बूदीप नामक द्वीप में भारतवर्ष के दक्षिणार्द्ध भरत में इसी अवसर्पिणी के सुषम सुषमा नामक प्रथम आरे के व्यतिक्रांत हो जाने पर, सुषमा नामक द्वितीय आरा व्यतीत हो जाने पर, सुषम दुःषम संज्ञक तृतीय आरे के पूर्ण होने पर दुःषम-सुषमा नामक चतुर्थ आरे के बयालीस हजार वर्ष न्यून (एक कोटा कोटी सागर प्रमाण का होता है) बहुत अधिक व्यतीत हो जाने पर अर्थात् पचहत्तर वर्ष साढे आठ मास मात्र शेष रहने पर शेष सर्व के व्यतिक्रांत हो जाने पर इक्कीस तीर्थंकर इक्ष्वाकु कुल काश्यप गोत्र में उत्पन्न हो चुके थे, दो तीर्थंकर-मुनिसुव्रत स्वामी और अरिष्टनेमि भगवान् हरिवंशकुल और गौतम गोत्र में उत्पन्न हो चुके थे। इस प्रकार ऋषभदेव से लेकर पार्श्वनाथ भगवान् पर्यन्त तेवीस तीर्थंकरों के हो जाने पर।

नोट :—प्रसङ्गवश छः आरों का स्वरूप अन्य शास्त्र के अनुसार यहाँ संक्षिप्त रूप से वर्णन करते है :—

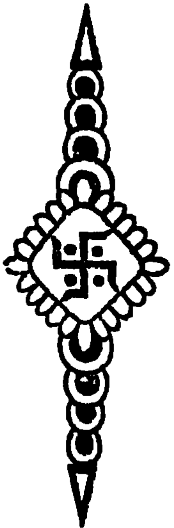
सुषम सुषमा नामक प्रथम आरा चार कोटा कोटी सागरोपम का होता है। युगलिक मनुष्य और तिर्यञ्चों का आयु तीन पल्योपम का होता है। तीन कोश ऊँचा देहमान व २५६ पसलियाँ होती है, तीन-तीन दिन के अन्तर से कल्पवृक्ष द्वारा दिया हुआ तुवर की दाल जितना आहार करते हैं। उनपचास दिन तक सन्तान पालन करते हैं और मरकर स्वर्ग में जाते हैं।

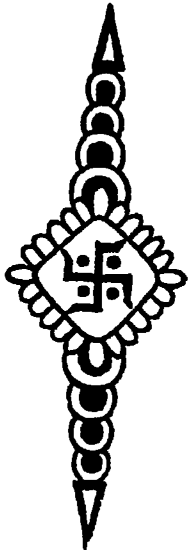
द्वितीय सुषमा नाम आरा तीन कोटा कोटी सागर प्रमाण होता है। दो पल्योपम का आयुष्य, दो कोश ऊचा शरीर, १२८ पसलियाँ होती हैं। दो दो दिन के अन्तर से बदरीफल (बोर) जितना आहार करते हैं और २६४ दिन अपत्य पालन कर स्वर्गगामी होते हैं।

सुषम दुःषमा नामका तीसरा आरा २ कोटा कोटी सागरोपम का होता है। आरम्भ में एक पल्योपम का व अन्त मे एक क्रोड पूर्व का आयु एक क्रोश का आरम्भ में व ५०० धनुष का अन्त में देहमान व ६४ पसलियाँ होती है। एक दिवस के अन्तर से आँवले जितना आहार करते है। उन्यासी दिन सन्तति पालन कर स्वर्गगामी होते हैं। इन तीन आरों मे युगलिये होते है। उनकी सभी आवश्यकताएँ दश प्रकार के कल्पवृक्षों द्वारा पूर्ण होती है।

चौथा दुःषम सुषमा नामक आरा होता है। इसका प्रमाण बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटा कोटी सागरोपम का होता है। पाँच सो धनुष का देहमान कवल प्रमाण आहार करने वाले नित्यभोजी मानव होते हैं। मृत्यूपरांत चारों गतियों में तथा मोक्षगति में जानेवाले होते है।

दुःषम नामक पाँचवाँ आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। देहमान ७ हाथ का, आयु १२० से १३० वर्ष का होता है। मरकर चारोंगतियों में जाते हैं। चौथे आरे में उत्पन्न जीव मुक्ति में जाते हैं। पाँचवें आरे मे उत्पन्न हुये मोक्ष में नहीं जाते।





छट्ठा दुःषम दुःखम नामक आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। एक हाथ का शरीर, सोलह वर्ष का आयु होता है। इस आरे के प्राणी निर्दय व क्रूरकर्मा होते हैं। न्यायमार्ग का अभाव होता है, मरकर दुर्गति में जाते हैं।

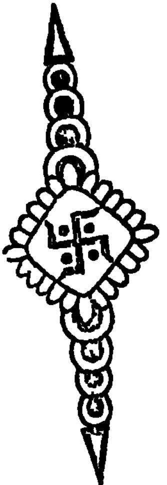
समणे भगवं महावीरे चरम तित्थयरे पुव्वतित्थयरनिद्दिट्ठे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणोए जालंधरस्स गोत्ताए पुव्वरतावरत्त काल समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहार वक्कंतीए, भवक्कंतीए, सरीर वक्कंतीए, कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥३॥

पुर्वतीर्थङ्कर-भगवान् ऋषभदेव द्वारा निर्दिष्ट, चरमतीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर, ब्राह्मणकुण्ड नामक नगर में कोडालसगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या (धर्मपत्नी) जालन्धरगोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में मध्यरात्रि के समय हस्तोत्तरा अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चन्द्रमा के आने पर देव सम्बन्धी आहार भव और शरीर के व्यतिक्रात (पूर्ण) हो जाने पर गर्भरूप से आकर उत्पन्न हुये।

"तुम्हारा पुत्र मरीचि अन्तिम तीर्थंङ्कर होगा" ऐसा भगवान् ऋषभदेव ने भरत चक्रवर्ती को पूर्व में कहा था—उस समस्त सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए भगवान् महावीर के सत्ताईश भवों का वर्णन करते हैं—

श्रमण भगवान महावीर के २७ भव

ग्रामेश[1] स्त्रिदशो[2] मरोचि[3] रमरो[4] षोढा परिव्राट्[10] सुरः[16],
संसारो बहु विश्वभूति[17] रमरो[18] नारायणो[19] नारकः[20]।



सिंहो[२१] नैरयिको[२२] भवेषु बहुशश्चक्री[२३] सुरो[२४] नन्दनः[२५],
श्री पुष्पोत्तर निर्जरो[२६] ऽवतु भवाद् वीर[२७] स्त्रिलोकी गुरुः ॥१॥

अर्थ :—ग्रामाधिप, देव, मरीचि, देव तथा परिव्राजक व पुनः पुनः देव बारह भवः मध्य में बहुशः ससार भ्रमण, विश्वभूति, देव, वासुदेव, नैरयिक, सिंह, नैरयिक पुनः कई क्षुल्लक (छोटे) भव, चक्रवर्ती, देव, नन्दन नृप, दशम देवलोक में देव तथा महावीर, ऐसे तीन लोक के गुरु महावीर संसार से रक्षा करें।

प्रथम भव

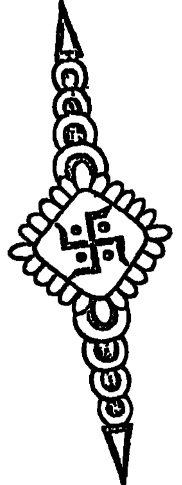
इस जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में प्रतिष्ठानपुर के राजा का नयसार नामक कर्मचारी था। राजाज्ञा से बहुत शकट व सेवकों को साथ लेकर काष्ठ लेने वन मे गया था। एक वृक्ष के नीचे स्वयं बैठ गया और अन्य सबको काष्ट सग्रह की आज्ञा दी। उस समय सार्थभ्रष्ट कितने ही साधु उधर आ निकले। नयसार ने देखा और तत्काल विनयपूर्वक सम्मुख जाकर वन्दन करके वृक्ष के नीचे ले आया। और अपने लिए लाए हुए भोजन में से मुनिराजो को दिया। धर्मोपदेश श्रवण करके मुनिवरों को मार्ग दिखाया। मानवता के योग्य इन अतिथि-सत्कार, विनय आदि गुणों वाले नयसार ने सद्गुरु को वन्दन, आहारदान, मार्गदर्शन, उपदेशश्रवण से सम्यक्त्व प्राप्त किया। यह प्रथम भव हुआ। अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्ति जिस भव मे हो उस भव से गणना होती है।

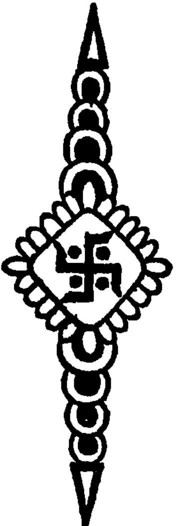
द्वितीय भव

नयसार के भव में धर्माराधन करके आयुक्षय होने पर प्रथम देवलोक में देवता बने।

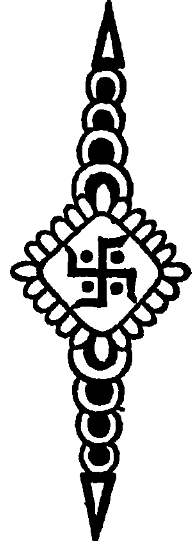
तृतीय भव

प्रथम देवलोक से च्यवकर भरत चक्रवर्ती के मरीचि नामक पुत्र हुये। भगवान् ऋषभदेव की देशना से प्रतिबोध पाकर दीक्षित हुये। उस समय भरतचक्री के अन्य पाँच सौ पुत्रों और सात सौ पौत्रों ने भी

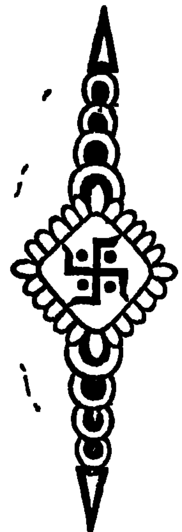




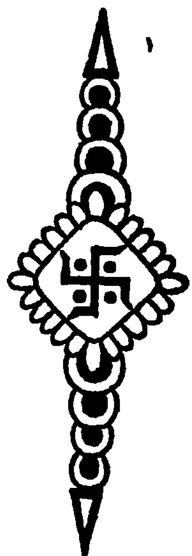
दीक्षा ली थी। मरीचि संयम पालन में शिथिल हो गये और साधुवेश का परित्याग करके त्रिदण्डो (संन्यासी) बन गये। पाँवों में पादुकाएँ धारण करली, लोच कराने में असमर्थ हो मुण्डन कराने लगे, हाथ में कमण्डलु रख लिया। गेरुआ वस्त्र धारण कर लिये और इस वेष से समवसरण के बहिर्द्वार के समीप रहने लगे। जो व्यक्ति उनके पास धर्मश्रवणार्थ आते उन्हें प्रतिबोध देकर भगवान् के पास दीक्षा दिला देते थे। एकवार भरतजीने समवसरण स्थित भगवन् की वन्दना करके प्रश्न किया—भगवन्! इस अवसर्पिणी में कितने तीर्थंकर होंगे? भगवान् ऋषभदेव ने कहा—चौवीश तीर्थङ्कर होंगे। पुनः प्रश्न किया—प्रभो! इस समवसरण में किसी तीर्थंकर का जीव है या नहीं? भगवान् ने कहा—समवसरण के तोरण द्वार पर बैठा रहने वाला तुम्हारा पुत्र मरीचि सन्यासी वेष में रहता है। वह चौवीसवाँ तीर्थङ्कर महावीर, वर्द्धमान नामक होगा और इससे पूर्व इस भरतक्षेत्र में प्रथम वासुदेव और महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती भी होगा। यह सुनकर भगवान् से मरीचि को वन्दना करने की आज्ञा लेकर प्रसन्न मन वाले भरत मरीचि को वन्दना करके बोले हे मरीचि! तुम भरतक्षेत्र में प्रथम वासुदेव बनोगे और महाविदेह में प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती भी। तथा फिर इसी भरतक्षेत्र में चौवीसवें तीर्थंकर बनोगे; अतः मै वन्दना करता हूँ। वासुदेव व चक्रवर्ती बनोगे इसलिए नहीं। (जैसे वर्त्तमान तीर्थंकर वन्दनीय हैं, वैसे ही भावि तीर्थंकर भी वन्दनीय है) ऐसा कह कर भरतजी अपने घर चले गये। मरीचि तो यह सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और गर्व से बोले—अहा! मेरे पिता चक्रवर्ती हैं। और पितामह (दादा) तीर्थंकर। और मै चक्रवर्ती वासुदेव और तीर्थंकर भी बनूंगा। मुझे वासुदेव पद अधिक प्राप्त होगा! अतः मेरा कुल अति उत्तम श्रेष्ठ है। ऐसा कहकर वार-२ भुजाओं को ठोकता हुआ नाचने लगा। इस प्रकार कुलमद-गोत्रमद करके नीच गोत्रकर्म बांध लिया। एक बार मरीचि रोगाक्रान्त हुये। तब किसी साधु ने उनकी सेवा नहीं की। मरीचि ने विचार किया—जब मेरा शरीर स्वस्थ हो जायेगा, मै भी किसी एक को शिष्य बनाऊंगा। जो मेरे अस्वस्थ होने पर सेवा करेगा। अब

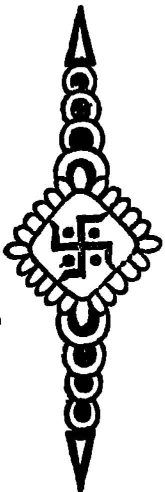


कितने ही दिनों पश्चात् मरीचि स्वस्थ हुये तब एक कपिल नामक राजकुमार मरीचि के पास आये। मरीचि के मुख से धर्मसुनकर प्रतिबुद्धकपिल ने कहा—मुझे दीक्षा दीजिये ! तब मरीचि ने कहा—भगवान् ऋषभदेव से दीक्षा लो। समवसरणादि महान् ऐश्वर्यधारक ऋषभदेव भगवान् को देखकर कपिलने पुनः मरीचि से कहा—ऋषभदेव के पास कोई धर्म नहीं, वे तो राज्यवत् ऐश्वर्यशाली सुख भोग रहे है। तुम मे कुछ धर्म है या नहीं ? मरीचि ने जाना—"यह व्यक्ति मेरे योग्य है" और बोले मुझमें भी धर्म है, नहीं क्यों? दीक्षा लो। मै तुम्हें दीक्षा दूंगा। इस प्रकार स्वार्थवश उत्सूत्र भाषण किया और इस लेशमात्र उत्सूत्र भाषण से एक कोडा कोडी सागर प्रमाण संसार में भव भ्रमण बढा लिया। चौरासी लाख पूर्व का आयु पूर्ण करके मरीचि समाधि मरण करके पंचम स्वर्ग में देवरूप से उत्पन्न हुये। यह तीसरा चौथा भव हुआ। पाँचवें भव में ब्राह्मण बने तापसी दीक्षा ले अज्ञान तप किया। वहाँ से मर कर फिर देव बने छठा भव हुआ। वहाँ से च्यवकर फिर ब्राह्मण बने तापस बन कर तप किया स्वर्ग में गये। सातवाँ आठवाँ भव हुआ। पुनः ब्राह्मण तपस्वी (९) पुनरपि देव(१०)। फिर ब्राह्मण तपस्वी (११)देव(१२)। ब्राह्मण तपस्वी(१३)देव(१४)। ब्राह्मण तपस्वी(१५) देव(१६)। इस प्रकार सोलह भव किये। देवत्व से च्यवकर कई छोटे-छोटे भव किये। सतरहवें भव में—राजगृही नगर में चित्रनन्दी राजा थे, उनके प्रियङ्गु नाम की रानी थी। और विशाखनन्दी नामक पुत्र था। राजा के छोटे भाई विशाखभूति थे जो युवराज थे उनकी धारिणी नामक रानी की कूक्षि मे मरीचिके जीव नेअवतार लिया। गर्भ समय पूर्ण होने पर पुत्र रूप से उत्पन्नहुये। विश्वभूति नामकरण किया गया। शिक्षित बने। तरुणावस्था में पिता ने विवाहित कर दिया। विश्वभूति अपनी पत्नियो के साथ राजवाटिका में निवास करके क्रीड़ा करते रहते थे। एकबार राजकुमार विशाखनन्दी ने विश्वभूति को क्रीडा करते हुए देखकर मन में विचार किया—अहो ! मुझे धिक्कार हो ! मै राजकुमार हूँ, यह युवराजकुमार है। मै कभी राजवाटिका में क्रीड़ा करने नहीं जा सकता, क्योंकि इसने सदा के लिये राजवाटिका रोक ली है। मेरा जीवन तभी सफल है



जब मैं भी अपनी स्त्रियों के साथ राजवाटिका में विश्वभुति सदृश क्रीड़ा कर सकूं। अमर्षवश पिता से निवेदन किया विश्वभूति को राजवाटिका से निकाल देना चाहिये। क्योंकि मै वहाँ क्रीड़ा करूंगा। पिता ने कहा—कुछ प्रपञ्च रचकर विश्वभूति को वहाँ से हटा देंगे और तुम्हें राजवाटिका दे देंगे; ऐसा कह कर पुत्र को सन्तुष्ट कर दिया। और विश्वभूति को निकालने के लिए निम्न उपाय का अवलम्बन लिया। कोई सिंह नामक सामन्त विद्रोही हो रहा था। उसे वश में करने को राजा ने नगर में उद्घोषणा करवाई कि राजा सिंह को वश में करने के लिए प्रयाण कर रहा है। विश्वभूति ने लोगों के मुख से सुना और राजा के पास जाकर बोले—वह सिंह तो एक क्षुद्र सामन्त है। उस पर आप क्यों चढ़ाई कर रहे हैं ? उसके लिए तो मै ही यथेष्ट हूँ। उसे बाँध कर सेवा में ले आऊँगा। ऐसा कह कर सेना ले प्रस्थान कर गये। इधर राजा ने विश्वभूति की पत्नियों को राजवाटिका से निकाल कर अन्तःपुर में भेज दिया। और विशाखनन्दी को राजवार्टिका दे दी। विशाखनन्दी अपनी पत्नियों के साथ क्रीडा करता हुआ वहां रहने लगा। कुछ ही दिनों में विश्वभूति सिह को जीत कर उसे बाँध ले आये और राजा को समर्पित कर दिया। विश्वभूति का महान् यश हुआ। विश्वभूति अपनी पत्नियो को लेकर राजवाटिका के द्वार पर पहुँचे। वहाँ पर विशाखनन्दी के भृत्यों ने कहा—कुमार ! राजवाटिका के भवनों में राजकुमार विशाखनन्दी अपनी पत्नियों के साथ क्रीडा कर रहे हैं। आप न जाइये। महाराज ने राजकुमार को यह वाटिका दे दी है। विश्वभूति ने मन में विचार किया—अहो ! राजा ने छल से मुझे यहाँ से निकाल दिया और अपने पुत्र को राजवाटिका में रख दिया। असार संसार को धिक्कार हो। सभी जीव मोहग्रस्त हैं। पाप कराने वाले इस मोह को धिक्कार हो। विश्वभूति को संसार से विरक्ति हो गई। अपना बल दिखलाने को द्वार पर खड़े कपित्थ वृक्ष पर मुष्टिप्रहार करके सारे कपित्थफल भूमि पर गिरा दिये और बोले—इतनी ही देर मुझे शत्रुओं का शिरच्छेद करने में लगती; परन्तु लोकापवाद से डरता हूँ ! ऐसा कह



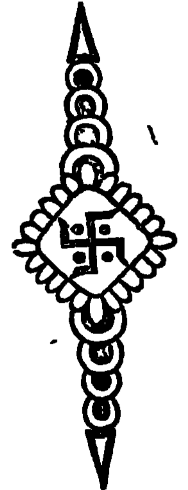


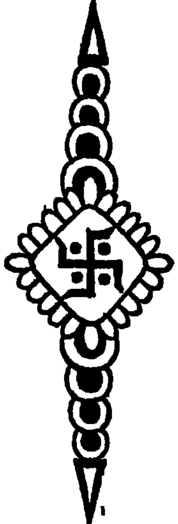
कर चले गये और किन्हीं मुनिराज से दीक्षा ले घोर तप करने लगे।

एक बार विश्वभूति विचरते हुए मथुरा मे आये। मासक्षमण के पारणे के लिए आहार की गवेषणा करते हुए एक वीथिका में से चले जा रहे थे। किसी नवप्रसूता गाय ने उन्हे नीचे गिरा दिया। संयोगवश विशाखनन्दी भी मथुरा मे अपनी बहिन के घर आया हुआ था और झरोखे में बैठे हुए उसने विश्वभूति मुनि को गाय द्वारा गिराया जाता देखा। और बोला—अरे। विश्वभूति। तुम्हारा वह बल कहाँ गया? कि एक मुष्टि प्रहार से सारे कपित्थफल भूमि पर गिरा दिये थे। यह वचन सुनकर विश्वभूति मुनि ने ऊपर देखा—विशाखनन्दी को पहचान कर मन में अहंकार आ गया कि—अभी भी यह मेरा परिहास कर रहा है? यह नीच मन में गर्व करता है। यह सोचता है कि इसका बल नष्ट हो गया है! यह साधु बन गया है। मुझमें बल है यह नहीं जानता। अतः इसे बल दिखाऊँ। यह विचार कर उसी गाय के सींग पकड कर अपने शिर पर घुमा कर नीचे रख दिया और विशाखनन्दी से कहा—"मेरा बल कही नही गया है। यदि मेरे तप का फल है तो मै भावान्तर में तुम्हे मारने वाला बनूँ" ऐसा निदान (नियाणा) कर दिया। विश्वभूति मुनि एक करोड वर्ष पर्यन्त चारित्र पाल कर अन्त मे अनशन करके अठारहवे भव मे देव बने।

उन्नीसवाँ भव

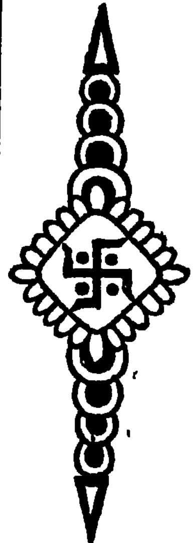
पोतनपुर में प्रजापति नामक नृपति शासन करते थे, उनके धारणी नाम की रानी और चार महास्वप्नों से सूचित जन्मवाला अचाल नामक राजकुमार था। अत्यन्त रूपवती द्वितीया मृगावती रानी थी। विश्वभूति का जीव स्वर्ग से च्यवकर मृगावती की कूक्षि में उत्पन्न हुआ। मृगावती ने सात महास्वप्न देखे, गर्भ-समय पूर्ण होने पर पुत्र ने जन्म लिया। राजा ने पुत्र जन्म का महोत्सव करके बालक का नाम त्रिपृष्ठ रखा। अनुक्रम से त्रिपृष्ठ तरुण हुआ। उस समय अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव का शासन था। शखपुर



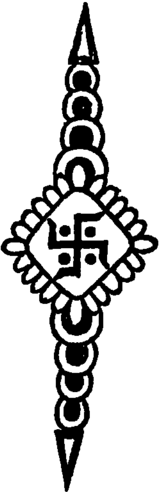


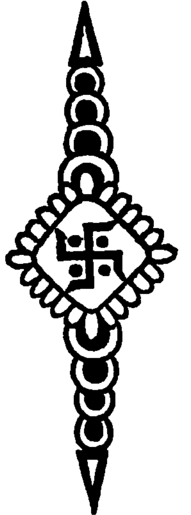
नगर के पास तुंग पर्वत की उपत्यका में प्रतिवासुदेव के शालिक्षेत्र थे ! उसी पर्वत की एक गुफा में विशाखनन्दी का जीव जो सिह बना था, रहता था और शालिक्षेत्र के रक्षक मनुष्य का भक्षण कर लेता था। प्रतिवासुदेव ने प्रतिवर्ष अधीनस्थ राजाओं को क्रमशः भेजना निश्चित किया। तदनुसार रक्षार्थ राजागण जाने लगे। एकदा प्रजापति नरेश की वारी आयी, तब पिता की आज्ञा से अचल और त्रिपृष्ठ राजकुमार सेना लेकर शालिक्षेत्र की रक्षार्थ गये। त्रिपृष्ठ कवच शस्त्रादि धारण कर रथ में बैठ सिंहगुफा के बाहिर पहुचा। रथ का शब्द सुन सिंह गुफा से निकला। त्रिपृष्ठ ने देखा और विचार किया यह कवचविहीन और शस्त्र रहित है, रथ पर भी नहीं बैठा है; अतः मुझे शस्त्रादि त्याग कर युद्ध करना चाहिये क्योंकि युद्धनीति का पालन करना वीर का कर्त्तव्य है। त्रिपृष्ठ ने रथ से उतर कवचशस्त्र आदि त्याग सिंह को ललकारा। सिंह ने भी क्रोधित हो आक्रमण किया। महाबली त्रिपृष्ठ ने सिंह के ओष्ठों को पकड़ जीर्ण वस्त्र के समान फाड़ डाला और पृथ्वी पर गिरा दिया। सिंह तड़फने लगा, प्राण नहीं निकल रहे थे मानो यह विचार रहा था कि मुझे किसी सामान्य व्यक्ति ने मार दिया। उस समय सारथी ने सिंह से कहा अरे ! वनराज। तुम मृगों के राजा हो तो यह भी नरराज है, जिसने तुम्हें मारा है। ऐसे वैसे से नहीं मारे गये हो ! उसी क्षण सिंह ने प्राण त्याग दिये और मरकर नरक में गया।

प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव और त्रिपृष्ठ में युद्ध हुआ। सनातन रीति के अनुसार त्रिपृष्ठ द्वारा प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव मारा गया और त्रिपृष्ठ वासुदेव बने। एकबार त्रिपृष्ठ शयन कर रहे थे। विदेश से आये हुए गायकों का गान हो रहा था। वासुदेव ने शय्यारक्षक को कहा—मुझे नींद आ जाय तब गायकों को विदा कर देना। वासुदेव को थोड़ी देर में नींद आ गई; परन्तु सगोत रस के रसिक शय्यारक्षक ने गायकों को विदा नहीं किया। क्षण में वासुदेव जागृत हो गये और क्रोधित हो, शय्यापालक से बोले— क्यों रे ! इन गायकों को विदा क्यों नहीं क़िया ? शय्यारक्षक ने सत्य ही कहा—देव ! ये गायक



बहुत सुन्दर कर्णप्रिय गायन कर रहे थे; अतः मै सुनने में तल्लीन हो गया। वासुदेव अधिक क्रोधाविष्ट हो गये और शय्यापालक के कान में गर्म शीशा ढालने का दण्ड दिया। शय्यापालक मरके नरक में गया। वासुदेव भी चौरासी लाख वर्ष का आयु पूर्ण कर सप्तम नरक में गये। बीसवां भव हुआ। वहाँ से निकलकर सिंह[21] बने और पुनः चतुर्थ नरक[22] में उत्पन्न हुये। नरक से निकल बहुत से मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी भव किये।





तेइसवाँ भव प्रियमित्र चक्रवर्त्ती

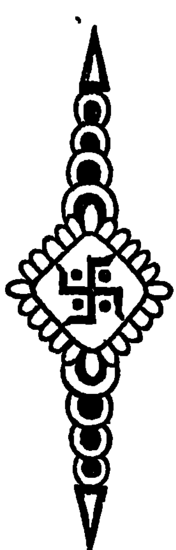
पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में मूका नगरी के राजा धनञ्जय थे; धारिणी नामक रानी थी। उसकी कूक्षि में मरीचि के जीव ने अवतार लिया। माता ने चौदह स्वप्न देखे। पूर्णमास होने पर पुत्र हुआ प्रियमित्र नाम दिया, युवावस्था में चक्रवर्त्ती बने। वृद्धावस्था में सर्वत्यागी हो एक क्रोड़ वर्ष पर्यन्त शुद्ध चारित्र पालन किया और तपस्या की। त्रुटितांग (चौरासी लाख पूर्व) आयु पूर्ण कर अन्त में अनशन समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर सप्तम स्वर्ग में सतरह सागरोपम की आयु वाले महर्द्धिक देव[24] हुये।

पच्चीसवाँ भव

नन्दन नृप

वहाँ से च्यवकर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की छत्राग्रा नगरी के नन्दन नामक राजा बने। चौवीश लाख वर्ष पर्यन्त गृहवास में रहे। पोट्टिलाचार्य सद्गुरु से प्रतिबुद्ध हो संयम धारण किया और एक लाख वर्ष तक मासक्षमण तप किया। वीशस्थानक की आराधना कर तीर्थङ्कर नामकर्म उपार्जन किया अनशन कर समाधिपूर्वक शरीर त्याग दशम देवलोक के महाविजय पुष्पोत्तर प्रवर पुण्डरीक महाविमान में वीश सागरोपम की आयु वाले दिव्य देव[26] बने।

कल्पसूत्र
३४



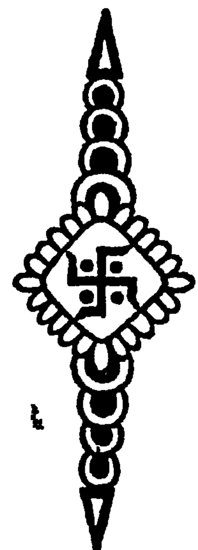
सत्ताईसवाँ भव
श्रमण भगवान् महावीर

ते णं कालेणं ते णं समये णं समणे भगवं महावीरे, तिन्नाणु व गए या वि होत्था। 'चइस्सामि'त्ति जाणइ।—'चयमाणे' न जाणइ। 'चुए' मि' त्ति जाणइ॥३॥ जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिसि गब्भत्ता वक्कन्ते, तं रयणिं च णं सा देवाणंदा माहणी सयणि ज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेयारूवे ओराले, कल्लाणे, सिवे, धन्ने, मगल्ले, सस्सिरीए, चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिवुद्धा॥४॥

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान सहित थे। जब देवविमान से च्यवेगे उस समय जानते थे कि मै इस देवविमान से च्यवूंगा और जब देव विमान से च्यवते हैं तब नहीं जानते कि मेरा च्यवन हो रहा है क्योंकि समय अत्यन्त सूक्ष्म होता है। तथा जब देवविमान से च्यवकर देवानन्दा की कूक्षि में अवतार लिया, तब जाना कि मैं देवविमान से च्यवकर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ।

अब जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर ने जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में अवतार लिया, उस रात्रि में वह देवानन्दा ब्राह्मणी शय्या में सोती हुयी और कुछ जागती हुई इस प्रकार के उदार, कल्याणकारक, शिव-अर्थात् उपद्रवनाशक, धनकारक, मंगलमय, शोभा सहित चवदह महास्वप्नों को देखती है। इन स्वप्नों को देखकर जागृत हुई। वे स्वप्न ये थे :—

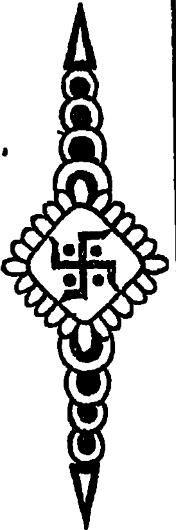
तं जहा :—गय-वसह-सोह-अभिसेअ-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं।
पउमसर-सागर-विमाणभुवण-रयणुच्चय सिहिं च॥१॥५॥



वे स्वप्न ये हैं—१· हाथी, २· वृषभ, ३· सिंह, ४· अभिषेक—लक्ष्मीदेवी का अभिषेक, ५· दाम-पुष्प माला युग्म, ६· चन्द्रमा, ७· सूर्य, ८· ध्वजा, ९· कुम्भ, १०· पद्मसरोवर, ११· क्षीरसमुद्र, १२· विमान अथवा भुवन (स्वर्ग से आया हो तो विमान अन्यथा भुवन) १३· रत्न राशि और १४ निर्धूम अग्नि।

तए णं सा देवाणंदा माहणी इमेआरूवे उराले, कल्लाणे, सिवे, धण्णे, मंगल्ले, सस्सिरीए सुमिणे पासइ, पासित्ता णं पडिबुद्धा समाणी हट्ठ तुट्ठ चित्तमाणंदिया, पीअमणा, परम सोमणसिआ, हरिसवसविसप्पमाणहिअया, धाराहयकयंब पुप्फगं पि व समुस्ससिअरोम कूवा सुमिणुग्गहं करेइ, सुमिणुग्गहं करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठित्ता अतुरिअं, अचवलं, असंभंताए, अविलंबियाए, रायहंसीसरिसगईए, जेणेव उसभदत्ते माहणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उसभदत्तमाहणं जए णं विजये णं वद्धावेइ, वद्धावित्ता भद्दासणवरगया, आसत्था, वीसत्था, सुहासण वरगया करयलपरिग्गहिअं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी ॥६॥

तब वह देवानन्दा ब्राह्मणी इस प्रकार के उदार कल्याणकारक आदि गुणों वाले स्वप्नों को देखकर जागृत होने पर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दचित्त, प्रीतमना-प्रेममयी सन्तुष्ठमनवाली, अत्यन्त सुन्दर मानसवाली, हर्षवश प्रफुल्लित हृदयवाली, मेघ की धाराओं से आहत कदम्बपुष्पवत् समुल्लसित विकसित रोमराजी वाली हो गई। पहले देखे हुये स्वप्नों को हृदय में धारण किया, फिर शय्या से उठकर शीघ्रता न करके चञ्चलता रहित, अस्खलित, घबराहट विहीन अविलम्बित-मार्ग में देर न करती हुई, राजहंसी सदृश गति (चाल) से चलती हुई जहाँ ऋषभदत्त ब्राह्मण थे, वहाँ आई। ऋषभदत्त ब्राह्मण को जय विजय शब्दों से बधाया और



भद्रासन पर बैठकर आश्वस्त और विश्रान्त होकर सुखासन से बैठ गई। मस्तक पर अञ्जलि करके इस प्रकार निवेदन किया।

एवं खलु अहं देवाणुप्पिआ! अज्ज सयणिज्जंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमे-आरूवे उराले जाव सस्सिरीए चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तं जहा, गय जाव सिहिं च ॥७॥

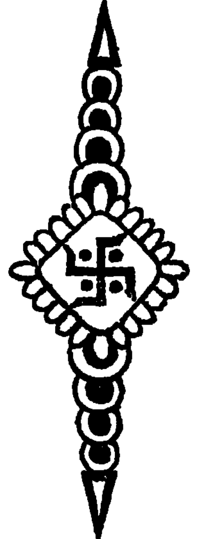
हे देवानुप्रिय। मैने आज शयनीय—शय्या में कुछ सोते कुछ जागते बार-बार नींद लेते हुये इस प्रकार के उदार यावत् शोभायुक्त चौदह महास्वप्नों को देखकर जग गई। वे स्वप्न ये थेः—गज से लेकर अग्नि पर्यन्त स्वप्नों का स्वरूप बतलाया। अब फल पूछती है—

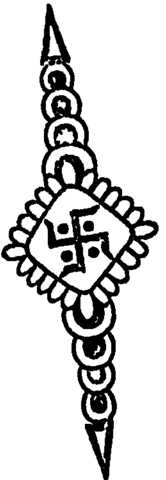
एएसिणं देवाणुप्पिया! उरालाणं जाव—चउद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फल-वित्तिविसेसे भविस्सइ?

हे देवानुप्रिय! इन उदार यावत् शोभायुक्त चौदह महास्वप्नों का विचारती हूँ कि इनका कल्याणकारी क्या फल—पुत्र प्राप्ति रूप, वृत्ति—आजीविका रूप होगा?

तएणं से उसभदत्ते माहणे देवाणंदाए माहणीए अंतिए एअमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठ तुट्ठ जाव हिअए धाराहत कयंब पुप्फगंपिव समुस्ससिय रोमकूवे सुमिणुग्गहं करेइ, करित्ता ईहं अणु पविसइ, पविसित्ता अप्पणो साहाविएणं मइपुव्वएणं बुद्धि विन्नाणेणं तेसिं सुमिणाणं अत्थुग्गहं करेइ, करित्ता देवाणंदं माहणिं एवं वयासी ॥८॥

तब वे ऋषभदत्त विप्रवर ने देवानन्दा ब्राह्मणी के इस स्वप्नविषयक अर्थ को सुनकर हृदय में धारण

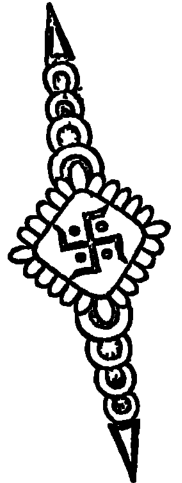




किया। हृष्ट तुष्ट चित्त यावद् हर्षवश प्रसृत हृदय, मेघधारासिक्त कदम्ब पुष्पवत् समुच्छ्वसित रोमावलियुक्त होते हुये स्वप्नों को अर्थावग्रह रूप से धारण करते हैं, धारण करके अर्थविचार करते हैं और अपने स्वाभाविक मतिसहित[1] बुद्धि[2] विज्ञान[3] से उन स्वपनों का अर्थ ग्रहण करके देवानन्दा ब्राह्मणी से कहा—

ओरालाणं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणा सिवाधन्ना मंगल्ला सस्सिरिया आरोग्गं तुट्ठि दीहाउ कल्लाण मंगल्ल कारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, तंजहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सुक्खलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं सुकुमाल-पाणिपायं अहीणपडिपुन्न पंचिंदिय शरीरं, लक्खण वंजणगुणोववेयं माणुम्माण पमाण पडिपुन्न सुजाय सव्वंगसुंदरंगं ससि सोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं देवकुमारोवमं दारयं पयाहिसि ॥६॥

अर्थात्—हे देवानुप्रिये। तुमने उदार स्वप्न देखे है। ये स्वप्न कल्याण, शिव, धन्य, मांगल्यप्रद, शोभायुक्त, आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण मगल करनेवाले हैं। इस स्वप्नों के प्रभाव से अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ, सौख्य लाभ होगा। इस प्रकार निश्चय ही नवमास साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर सुकोमल हाथ पाँवों वाला, हीनता रहित प्रतिपूर्ण पञ्चेन्द्रिय शरीर वाला, लक्षण[4] व्यंजन



कल्पसूत्र
३८

---

१ अनागत काल विषया मति होती है, २ बुद्धि प्रत्यक्ष-दर्शिनी होती है, ३ अतीत अनागत और वर्त्तमान के विमर्श को विज्ञान कहते है, ४ बत्तीस लक्षण युक्त। बत्तीस लक्षण ये हैं —

गुणोपपेत मानोन्मान प्रमाण प्रतिपूर्ण सुजात सर्वाङ्गसुन्दर चन्द्र के समान सौम्य आकार वाला, कान्त प्रियदर्शन उत्तमरूपवान् देवकुमारोपम पुत्र उत्पन्न होगा।

से वि य णं दारए उम्मुकबालभावे, विण्णाय परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते, रिउव्वेअ, जउव्वेअ, सामव्वेअ अथव्वणवेअ इइहास पंचमाणं, निघंटु छट्ठाणं संगोवंगाणं सरहस्साणं चउण्हं वेआणं सारए पारए धारए संडगवी, सट्ठितंत विसारए, संखाणे, सिक्खाणे, सिक्खाकप्पे वागरणे, छंदे, निरुत्ते, जोइसामयणे अण्णेसु य बहुसु बंभवाणेसु, परिव्वायएसु नयेसु सुपरिनिट्ठिए आवि भविस्सइ ॥१०॥

इह भवति सप्तरक्तः षडुन्नतः पञ्चसूक्ष्मो दीर्घश्च। त्रिविपुल लघु गम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षण. स पुमान् ॥

जिस पुरुष के अंग में सात—हाथ पाँव नख जिह्वा ओष्ठ तालु नेत्रों के कोने ये रक्त हों, कक्षा-बगल, ठुड्डी, नासिका, नख मुख हृदय ये छः उन्नत-ऊँचे हों, दाँत, केश, अंगुलियों के पर्व, चर्म, नख, ये पाँच सूक्ष्म—पतले हों, आँखें वक्ष-स्थल नासिका, श्मश्रु-दाढ़ी मूँछ, भुजाएँ ये पाँच लम्बे हों, ललाट, स्वर, मुख, ये तीन विशाल हों, जंघा, लिंग, ग्रीवा—गर्दन ये तीन छोटे हों, स्वर-नाभि धैर्य तीन गहरे हो, वह पुरुष बत्तीस लक्षण युक्त होता है।

व्यञ्जन—मषतिल आदि। गुण—धैर्य गाम्भीर्य औदार्य आदि से युक्त। मान उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण—

मान—जल से भरे हुए नाप करने योग्य कुण्ड मे प्रवेश करने पर २५६ पल (चार तोले का एक पल) जल बाहिर निकल जाय वह पुरुष मानोपेत कहलाता है। उन्मान तोलने पर अर्द्धभार जितना हो।

प्रमाण—अपनी अंगुलियों से १०८ अंगुल लम्बा हो।

वह पुत्र जब उन्मुक्त बालभाव अर्थात् आठ वर्ष का होगा तब विज्ञात परिणत मात्र अर्थात् अत्यन्त बुद्धिमान् देखने मात्र से ही सर्व विज्ञान-शिल्प शास्त्र आदि को जान लेने वाला और युवावस्था आने पर तो ऋग्वेद[१] यजुर्वेद सामवेद[३] अथर्वणवेद[४] पाँचवां इतिहास—महाभारत (पुराण) छट्ठा निघण्टु नाममाला शास्त्र अर्थात् शब्दकोश इन ग्रन्थो सहित अगोपांग युक्त, सरहस्य आम्नायसहित, चारवेदों का स्मारक अध्यापन आदि मे अन्य को प्रवृत्त करने वाला, अथवा स्मारक—अन्य जन जो भूल गये हों उन्हे भी स्मरण कराने वाला, पारग—इन शास्त्रो का पारगामी अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञाता, धारक धारण करने वाला अर्थात् याद रखने वाला, षडङ्गवित्, वेद के छः अगों को जाननेवाला छः अंगों के नाम—शिक्षा[१] कल्प[२] व्याकरण[३] निरुक्त[४] ज्योतिषियों की गति[५] और छन्दोरचना , षष्ठीतन्त्र विशारद—कापिलीय शास्त्र में निष्णात, सख्यान-गणित शास्त्र में, शिक्षा का प्रतिपादन करते है उन आचार शास्त्रों में निपुण होगा। कल्प यज्ञादि विधि शास्त्रो को जाननेवाला—व्याकरण-इन्द्र, चन्द्र, काशिकृत्स्न, आपिशली, शाकटायन, पाणिनीय, अमर और जैनेन्द्र इन आठ व्याकरणों का ज्ञाता होगा। निरुक्त—पद भञ्जन अर्थात् प्रत्येक पद की व्युत्पत्तिपूर्वक व्याख्या करना, ज्योतिषशास्त्र-सूर्यादि ग्रहों की गति आदि जानना, अर्थात् गणित एवं फलित दोनो प्रकार के ज्योतिषशास्त्र में विज्ञ होगा। छन्दोरचना—पद्य लक्षणनिरूपक शास्त्र का ज्ञाता होगा। अन्य भी बहुत से ब्राह्मणशास्त्रो—वेद व्याख्या रूप शास्त्रों में परिव्राजक शास्त्रों में—संन्यास धर्म बतलानेवाले शास्त्रों और न्यायशास्त्रो में परम निष्णात होगा।

तं ओरालाणं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठा, जाव आरुग्ग-तुट्ठ-दीहाउय-कल्लाण-मंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए! सुमिणा दिट्ठेत्ति कट्टु भुज्जो-भुज्जो अणुवूहइ ॥११॥

हे देवानुप्रिये। तुमने उदार स्वप्न देखे हैं। यावत् आरोग्य तुष्टि दीर्घायुष्क कल्याण मांगल्यकारक स्वप्न देखे है। ऐसा कहकर बार-बार अनुमोदन करता है।

तए णं सा देवाणंदा माहणी उसभदत्तस्स माहणस्स अंतिए एअमट्ठं निसम्म सोच्चा हट्ठतुट्ठ जाव हयहिअया करयल परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु उसभदत्तं माहणं एवं वयासी ॥१२॥

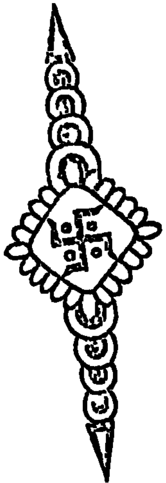
तत्पश्चात् वह देवानन्दा ब्राह्मणी ऋषभदत्त से इस प्रकार का अर्थ सुनकर हृष्टतुष्ट यावत् हर्षवश प्रफुल्ल हृदय वाली हो गई और मस्तक पर अञ्जलि करके अपने पति को इस प्रकार कहा—

एवमे अं देवाणुप्पिया ! तहमे अं देवाणुप्पिया ! अवितहमे अं देवाणुप्पिया । असंदिद्धमे अं देवाणुप्पिया ! इच्छिअमे अं देवाणुप्पिया ! पडिच्छिअमे अं देवाणुप्पिया ! इच्छिअ पड़िच्छिअमे अं देवाणुप्पिया ! सच्चेणं एसमट्ठे, से जहे अं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ पडिच्छित्ता उसभदत्त माहणेणं सद्धिं उरालाइं माणु सग्गाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ ॥१३॥

हे देवानुप्रिय ! यह ऐसा ही है। जैसा आपने कहा वैसा ही है, सत्य है असंदिग्ध, व मुझे इष्ट है। आपके मुख से जो निकला उसे मैने ग्रहण कर लिया है। मेरा इष्ट मैने ले लिया। यह अर्थ जो आपने कहा सत्य है। ऐसा कहकर उन स्वपनों को भली प्रकार स्मरण करती है। स्मरण करके अपने पति ऋषभदत्त के साथ गृहस्थ धर्म का पालन करती हुई रहने लगी।

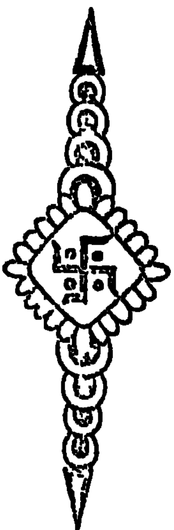
नव वाचना की अपेक्षा से पथम व्याख्यान सम्पूर्ण हुआ।

(इग्यारह की अपेक्षा द्वितीय व्याख्यान पूर्ण हुआ)



तेणं काले णं, ते णं समये णं सक्के, देविंदे, देवराया, वज्जपाणी, पुरन्दरे, सयक्कउ, सहस्सक्खे, मघवं, पागसासणे, दाहिणड्ढ लोगाहिवई, बतीस विमाण सयसहस्साहिवई, एरावण-वाहणे, सुरिंदे, अयरंवरवत्थ धरे आलइ अमालमउडे, नवहेम चारुचित्तचंचल कुंडलविलिहिज्जमाण गल्ले महिड्ढीए, महज्जुइए, महब्बले, महायसे, महाणुभावे, महासुक्खे, भासुरबोंदी, पालंब पलंबमाण घोलंत भूसण धरे, सोहम्मकप्पे सोहम्मवडंसए विमाणे सुहम्माए सभाए सक्कंसि सीहासणंसि, से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणवास सयसाहस्सीणं, चउरासीए सामाणिअ साहस्सीणं तायत्तीसाए तायत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिस्सीणं, सपरिवाराणं तिण्हंपरिसाणं सत्तण्हं अणीआणं सत्तण्हं अणी आहिवइणं, चउण्हं चउरासीणं आयरक्ख देवसाहस्सीणं अन्नेसिं च बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणिआणं देवाणं देवीण य आहेवच्चं, पोरेवच्चं, सामितं, भट्टित्तं, महत्तरगत्तं, आणाईसर सेणावच्चं, कारेमाणे, पालमाणे महया-हय-नट्ट-गीअ-वाइय-तंती-ताल-तुडिअ, घण-मुइंग-पडु-पडहवाइय रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ॥१४॥

उस काल उस समय मे शक्र-अर्थात् शक्रनामक सिहासन पर बैठने से इन्द्र का नाम शक्र है देवताओं का इन्द्र, देवताओ का राजा, हाथ में वज्र रखनेवाला, पुरनामक दैत्य-नगर को नष्ट करनेवाला अतः पुरन्दर, शतक्रतु-सौ अभिग्रह करनेवाला, (कार्तिक सेठ१ के भव मे सौ अभिग्रह किये थे।)

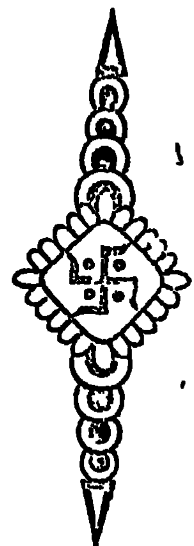


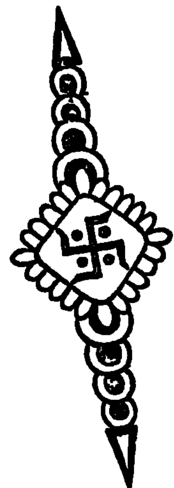
१ कार्त्तिक श्रेष्ठि कथा

हस्तिशीर्ष नगर में जितशत्रु राजा राज्य करते थे। वहीं महाधनाढ्य और प्रतिष्ठित कार्त्तिक श्रेष्ठि निवास करते थे, वे सम्यक्त्वधारी परम श्रावक थे। वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और सर्वज्ञ प्रकाशित धर्म इन तत्वों के पूर्ण आराधक थे। किसी समय उसी नगर में मासक्षमण मासक्षमण तप करने वाला कोई गैरिक नामक तापस वहां आया, सभी नगरजन उसकी सेवा में प्रतिदिन आने लगे; किन्तु केवल कार्त्तिक सेठ नहीं आये। तापस के पूछने पर कि—कौन नहीं आता है? नगरजनों ने कहा—कार्त्तिक सेठ सेवा में कभी उपस्थित नहीं हुये। सुन कर तापस को अमर्ष हुआ।

एकदा नृपति ने तापस को पारणा का निमन्त्रण दिया। तापस बोला—कार्त्तिक सेठ स्वयं अपने हाथ से पारण करावे तो आपके यहाँ भोजन कर सकता हूँ (कहीं पीठ पर थाली रख कर' भोजन करावे तो करूं ऐसा भी उल्लेख है) राजा ने स्वीकार कर लिया और कार्त्तिक सेठ को भी उक्त प्रतिज्ञा की सूचना दी। रायाभियोगेणं का विचार करके कार्त्तिक सेठ ने राजाज्ञा पालनार्थ यह स्वीकार कर लिया और तापस को उसी प्रकार पारणा कराया। तापस ने भोजन करते समय नाक पर अंगुली फेरते हुए मानो यह जतलाया कि—अब तो नाक कट गई न?।

श्रेष्ठिवर्य इस इंगित को समझ कर विचारने लगे हा! यदि मै पूर्व ही प्रव्रजित हो जाता—दीक्षा ले लेता तो आज यह अपमान क्यों सहन करना पड़ता। अस्तु, अब अवश्य शीघ्रातिशीघ्र संयम धारण करना है। तदनुसार घर आकर सप्तक्षेत्रों में लक्ष्मी का सदुपयोग करके एक सहस्र पुरुषों के साथ भगवान् मुनि-सुव्रत स्वामी के पास दीक्षित हो गये। बारह वर्ष पर्यन्त चारित्र का निरतिचार पालन कर एक सौ बार अभिग्रह पूर्वक तपस्या की, अन्त मे अनशन पूर्वक समाधिमरण किया और प्रथम स्वर्ग में इन्द्र बने। वह गैरिक तापस भी अज्ञानतप के प्रभाव से उसी देवलोक में इन्द्र का वाहन ऐरावण रूप देव बना।





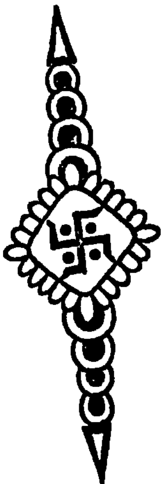
गजराज ने विभंगज्ञान से अपना पूर्वभव देखा और इन्द्र का भी। अभिमानवश वाहन बनने को प्रस्तुत न होकर अपने स्थान से भाग गया। इन्द्र ने ज्ञान से पूर्वभव का सम्बन्ध जानकर बलात् उसे पकडकर उस पर आरोहण किया। गज ने दो रूप बनाये तो इन्द्रने भी दो रूप बना लिए। इस प्रकार जितने रूप गज बनाता गया, इन्द्र महाराज भी उतने ही बनाते गये। अन्त में देवेन्द्र ने कहा—भद्र ! कृतकर्म अवश्य भोगने पडते हैं ! अब खेद या अभिमान करने से क्या होगा ? शान्ति से किये हुए कर्म भोगो, पूर्वभव में मेरा अकारण अपमान किया था, उसी का यह फल है। सुन कर ऐरावण देव शान्त हुआ और इन्द्र का वाहन बन गया।

सहस्राक्ष :—इन्द्र के पांच सो मन्त्री होते है, उनके एक हजार नेत्र होने से सहस्राक्ष कहलाता है। पौराणिक मान्यता कुछ अन्य है, जिसका यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं।

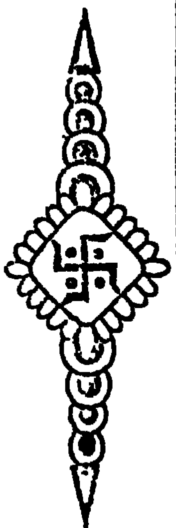
मघवा :—इस नाम का एक विशिष्ट देव इन्द्र का सेवक है। अथवा महयते इति मघवा व्युत्पत्ति सिद्ध शब्द है।

पाक शासन :—पाक नामक दैत्य पर शासन करने वाला।

दक्षिणार्द्ध लोकाधिपति :—भरत क्षेत्र के दक्षिण अर्द्ध भाग का अधिपति है। बत्तीस लाख विमानों के स्वामी, ऐरावण वाहन वाले, सुरों के इन्द्र, रज रहित निर्मल आकाशवत् वस्त्र धारण करने वाले, यथास्थान लगी हुई मालाओं वाले मुकुट के धारक, नवीन सुवर्ण से रचित मनोहर चञ्चल चित्तवत् हिलते हुये कपोलों का स्पर्श करनेवाले कुण्डलों को धारण करने वाले। महाऋद्धि वाले महाद्युतिमान्, महाबलशाली महायशस्वी, महानुभाव, महासुखी, देदिप्यमान शरीर वाले चमकते हुए आभूषणों को अथवा नीचे तक लटकती हुई माला को धारण करने वाले, सौधर्म देवलोक के सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में स्थित शक्रनामक सिंहासन पर विराजमान हैं। वे वहाँ बत्तीस लाख विमानों, चौरासी हजार सामा-

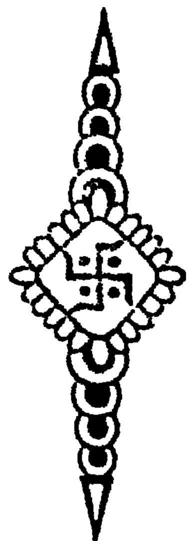


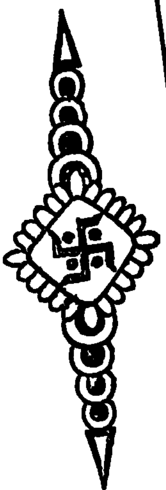
कल्पसूत्र
४४

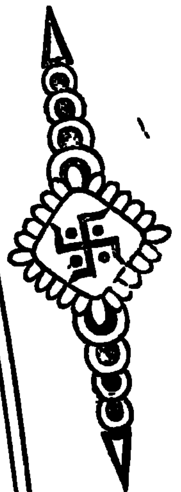


निक देवों—इन्द्रके समान ऋद्धि वाले देवों—तेतीस त्रायस्त्रिंश देवों, पुरोहित स्थानीय देवों, सोम, यम, वरुण, कुबेर इन चार लोकपालों और पद्मा, शिवा, शची अञ्जू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी इन आठ अग्रमहिषियो-महारानियों के स्वामी होते हैं। एक-एक अग्रमहिषी के सोलह-सोलह हजार देव सेवक होते हैं जो सब मिलकर एक लाख अट्ठाइस हजार होते हैं। तीन परिषद् होती हैं—बाह्य परिषद्, मध्य-परिषद् और आभ्यन्तर परिषद्। इन्द्र के सात प्रकार की सेना होती है :—हाथी, घोड़े, रथ, पदाति वृषभ नर्त्तक और गन्धर्व। सात सेनाओं के सात ही सेनाधिपति होते हैं। प्रत्येक दिशा मे चौरासी हजार देव सशस्त्र व सावधान रहकर सेवा करते हैं इनको चार गुण करने पर तीन लाख छत्तीस हजार होते हैं। इतने देव नित्य इन्द्र महाराज को सेवा में उपस्थित रहते हैं। अन्य भी सौधर्म स्वर्गवासी देव और देवाङ्गनाएँ हैं। उन सबकी रक्षा इन्द्र करते हैं। उन सबका अधिपत्य पुरोगामित्व-अग्रेसरत्व, स्वामित्व, भट्टित्व महत्तर गतत्व करते हुए आज्ञा ऐश्वर्य सेनापतित्व करते हुए इन्द्र रहते हैं। जोरो से बजते हुए तन्त्री-वीणा आदि वाद्य, ताल कंसाल तूर्य शंख मृदङ्ग आदि बाजे मेघ के समान गंभीर गर्जन करते हुए कानों को सुख देने वाले होते है। नाटक होते रहते हैं। देवसम्बन्धि दिव्य भोगों को भोगते हुए देवराज वहाँ रहते हैं।

इमं च णं केवलकप्पं जम्बूद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे विहरइ, तत्थणं समणं भगवं महावीरं जंबूद्दीवे दीवे भारहेवासे दाहिणड्ढ भरहे माहणकुंड ग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस गुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भताए वक्कंतं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदाए, णंदिए, परमाणंदिए, पीइमणे परमसोमणसिए हरिसवस विसप्प माणहिअए, धाराहय कयंब सुरहि कुसुम चंचुमालइय

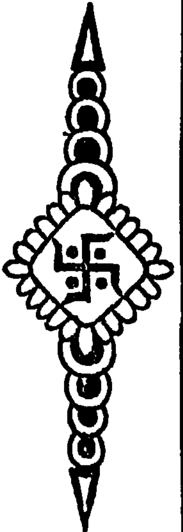






ऊससिअ रोमकूवे, विअसिअवरकमलाणण नयणे, पचलिअवरकडग-तुडिअ, केउर-मउड कुंडल हारविरायंत वच्छे, पालंबपलंबमाण घोलंतभूसण धरे, ससंभमं, तुरियं चवलं सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता वेरुलिय वरिट्ठ रिट्ठंजण निउणोविअ मिसिमिसिंत मणिरयण मंडियाओ पाउयाओ ओमुअइ, ओमुइत्ता एगसाडिअं उत्तरासंगं करेइ करित्ता अंजलिमउलिअग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइं, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ,पच्चुण्णमित्ता कउगतुडिअ थंभिआओ भुआओ साहरेइ साहरित्ता करयल परिग्गहिअं दसनहं सिरसा वत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासो ॥१५॥

अर्थात् इन्द्र इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को विस्तीर्ण अवधिज्ञान से विलोकन करते हुए रहते है। उस अवसर में इन्द्रने जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर में कोडालस गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की धर्मपत्नी जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में श्रमण भगवान् महावीर को गर्भरूप से उत्पन्न देखा। देखकर हृष्टतुष्टचित्त से आनन्दित, हर्षधन से समृद्ध, परम आनन्दित, चित्त में अत्यन्त प्रीतिवाला, परम संतुष्ट, हर्षवशप्रसृत हृदयवाला, मेघधाराहत कदम्ब पुष्पवत् प्रफुल्लित रोमवाले हो गये तथा मुख और नयन कमल विकसित हो गये। तब ससम्भ्रम सिहासन से उठने के कारण हाथों में धारण किये श्रेष्ठ कड़े भुजाओं पर त्रुटित-भुजबन्द शिर पर मुकुट कुण्डल और वक्ष पर उत्तम हार आदि आभूषण हिलने लगे। इन्द्र महाराज ससम्भ्रम शीघ्र चपलता से सिंहासन से उठ गये। उठ कर पादपीठ पर पांव रखा और वैडूर्य्य-लशनिया श्रेष्ठ अरिष्ट अंजनादि मणि-रत्नों से जडित उत्तम शिल्पियों द्वारा निर्मित पादुकाओं का परित्याग करके एक पट

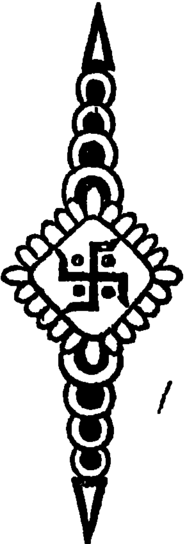


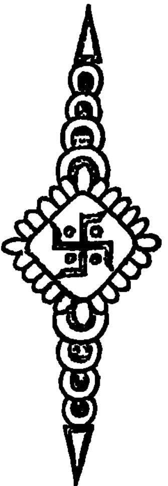
वाले वस्त्र का उत्तरीय धारण कर तीर्थंकर भगवान् की दिशा की ओर मुख करके, शिर पर अञ्जलिपूर्वक सात आठ पाँव आगे गये, बायें घुटने को ऊँचा कर दाहिना घुटना पृथ्वी पर रख कर तीन वार मस्तक से पृथ्वी को स्पर्श करके कुछ झुके हुए कड़े भुजबन्द आदि आभरणों से स्तम्भित भुजाओं वाले हाथों को जोड़कर मस्तक पर लगा कर इस प्रकार स्तुति करने लगे—

शक्रस्तव

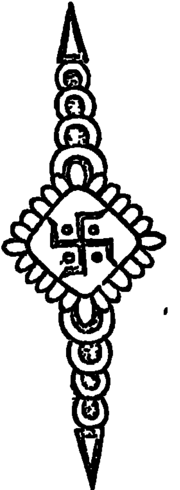
णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं ॥१॥ आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं ॥२॥ परिसुत्तमाणं पुरिस सोहाणं पुरिसरवर पुंडरीयाणं पुरिसवर गंधहत्थीणं ।३। लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं ॥४॥ अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ॥५॥ धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत चक्कवट्टीणं ॥६॥ दीवोत्ताणं सरणगईपइट्ठा अप्पडिहय वरनाणदंसणधराणं वियट्ट छउमाणं ॥७॥ जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं ॥८॥ सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिव मयल मरुय मणंत मक्खय मव्वावाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणंसंपत्ताणं नमोजिणाणं जियभयाणं ॥८॥

व्याख्या :—नमस्कार हो अरिहन्तों को, अरिहन्त शब्द की तीन प्रकार से वाचना की गई है। अर्हद्भ्य, अरिहन्तृभ्यः, अरुहद्भ्यः। अर्हद्भ्यः अर्थात् इन्द्रादि द्वारा पूजित होते हुए। अरि अर्थात्





कर्मरूप शत्रुओं का हन्ता-नाश करने वाले। अरुहदूभ्य :—मुक्त हो जाने के पश्चात् पुनः संसार में उत्पन्न
नहीं होते। भगवंताणं—जिनके भग अर्थात् ज्ञान है उनको नमस्कार हो। भगशब्द के बारह अर्थ हैं :—
१· सूर्य २· योनि ३· ज्ञान ४· माहात्म्य ५· यशः ६· वैराग्य ७· मुक्ति ८· रूप ९· इच्छा १०· धर्म ११· लक्ष्मी
और १२· ऐश्वर्य। प्रथम और द्वितीय अर्थ को छोड कर शेष सभी अर्थों की तीर्थंकर देव मे विद्यमा-
नता होती है। आइगराणं—अपने-अपने तीर्थों—साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ अथवा
शासन के आदिकर्त्ता-आरंभ करने वालों को नमस्कार हो। तित्थयराणं—तीर्थंकरों को नमस्कार हो—तीर्थ
चतुर्विध सघ के सस्थापक। सयंसंबुद्धाणं—स्वयं सम्बुद्ध—बिना उपदेश के बोधिप्राप्त करने वालों को
नमस्कार हो। पुरिसुत्तमाणं—पुरुषों में उत्तम। पुरिससीहाण—पुरुषों में सिंह। पुरिसवर पुंडरीयाणं[1] —
पुरुषों में श्रेष्ठ कमलवत्। पुरुषों मे गन्ध हस्तिवत्[2]। लोक में उत्तम, लोक के नाथ लोक का हित करने
वाले, अर्थात् धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति, जीवास्ति, पुद्गलास्ति इन पॉच अस्तिकायों के प्ररूपक
हैं। लोक मे प्रदीप, लोक में प्रद्योत करने वाले अभय देने वाले अर्थात् सप्तभय—इहलोक भय, परलोक भय,
आदान भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय, मरण भय और अपकीर्त्ति भय इनसे अभय देने वाले, ज्ञान
चक्षु देने वाले, जीवन-अमरता देने वाले, बोधि-सम्यक्त्व देने वाले, धर्म देने वाले, धर्म का उपदेश देने वाले,
धर्म के नायक, धर्म सारथि,—जैसे सारथि उन्मार्ग में जाने वाले अश्वों को मार्ग पर चलाता है वैसे ही
तीर्थंकर भगवान् भी पथभ्रष्ट जीवों को सन्मार्ग प्राप्त कराते है।



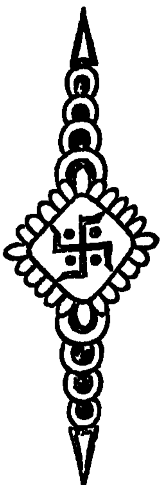
१· पुण्डरीक कमलवत् निर्लेप रहने वाले।

२ गन्धहस्ति के गन्ध से अन्य गजों का मद उतर जाता है। तीर्थंकर के प्रभाव से उपद्रव नष्ट हो जाते है।

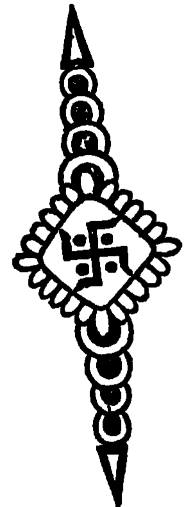
यथा—मेघकुमार[1] को महावीर प्रभु ने सत्पथ-चारित्र में स्थिर किया।

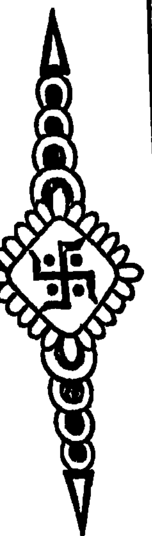
१ मेघकुमार का दृष्टान्त

राजगृही में श्रेणिक राज्य करते थे, उनकी धारिणी राणी एक बार गर्भवती हुई। गर्भ के प्रभाव से रानी को दोहद हुआ कि वर्षाऋतु का सुख अनुभव करूं। जोरों की वर्षा हो रही हो, मेघ गर्जें, विजलियाँ चमकें, मेंढक बोलते हों, मोर केकारव कर रहे हों, नदियाँ कलुष जलवाली होकर जोर से बहती हों। ऐसे मनोहर समय में हाथी पर चढ़कर नगर में घूमती हुई बाह्य-प्रदेशों—पर्वत उद्यान नदी सरोवर आदि में क्रीड़ा करूं। किन्तु उस समय वर्षाकाल नहीं था। अतः इच्छापूर्ण न होने से धारिणी दिन-२ कृश होने लगी और उदास भी रहने लगी। राजा ने आग्रह पूर्वक पूछा तब रानी ने अपना मनोरथ प्रकट किया। महाबुद्धिशाली अभयकुमार ने पूर्वजन्म के मित्र देव द्वारा धारिणी का मनोरथ पूर्ण करवाया। मेघ का मनोरथ होने से पुत्र का जन्म होने पर मेघकुमार नाम दिया गया। युवा होने पर पिता ने आठ रूपवती एवं कुलीन कन्याओं के साथ विवाह किया। कन्याओं के पितृजनों ने आठ कोड़ सौनैये-स्वर्णमुद्राएं, आठ करोड़ रुपये, आठ करोड़ रत्न, आठ श्रेष्ठ भवन, उत्तम वस्त्राभूषण दास दासी आदि दहेज में दिये। दोगुन्दुकदेववत् मेघकुमार सुख भोग कर रहे थे। भगवान् महावीर गुणशील उद्यान में समवसरे। देसना सुनकर मेघकुमार को वैराग्य हो गया और मातापितादि को आज्ञा ले संयमी बने। सबसे छोटे होने के कारण रात्रि में सर्व साधुओं के अन्त में पथारी बिछाई गई। रात्रि में पढने के लिए, लघुनीति आदि परठने के लिए आने जाने वाले साधुओं के पाँवों में लगी हुई धूल से पथारी भर गई कई बार पाँव भी लगे। मेघकुमार मुनि को रात भर निद्रा नहीं आई। मेघमुनि ने विचार किया—यह दीक्षित जीवन कैसे व्यतीत होगा ? आज ही साधुओं ने मेरा आदर सम्मान नहीं किया तो भविष्य में कौन मानेगा। लोकोक्ति



है कि—"विवाह मण्डप मे ही दम्पति के कलह हो जाय तो आगे गृहस्थ सुख की बात ही क्या ?"। अत. प्रातः भगवान् महावीर को पूछ कर घर ही चला जाऊँगा, अभी तो कुछ नहीं बिगड़ा, माता पिता पत्नियाँ आदि सब यही हैं। प्रातः भगवान के चरणो में उपस्थित हुए। भगवान् ने कहा—क्यों मेघमुनि ! रात्रि में क्या सकल्प विकल्प किये ? इन साधुओ ने तुम्हे क्या दुःख दिया ? क्या इतने में ही विचलित हो गये ? किन्तु स्मरण करो। इस भव के पहले तीसरे भव में तुम वैताढ्य पर्वत पर एक हजार हथनियों के स्वामी छह दाँत वाले सुमेरु नामक श्वेतवर्ण के हाथी थे वन में दावानल लगने से भागते हुये कर्दम-कीचड में फँस गये। उस समय तुम्हारे शत्रु गज ने दाँतों के प्रहार से तुम्हे घायल कर दिया। सात दिन महावेदना भोगी और मर कर विन्ध्याचल गिरि पर चार दाँतवाले मेरुप्रभ नामक लालवर्ण के गजराज बने। सात सौ हथनियों के स्वामी थे। अन्यवन में दावानल देखकर जातिस्मरण ज्ञान हुआ तब सब की व अपनी सुरक्षा के विचार से तुमने एक योजन लम्बा-चौडा मडल बनाया। ग्रीष्मऋतु में उस वन में भी दावाग्नि लगी। तुम उस मंडल में आये; परन्तु भयभीत जन्तुओं से वह पहले ही भर चुका था, बैठने के लिए कहीं स्थान न था, बडी कठिनाई से चार पाँव रखने योग्य स्थान मिला। शरीर में खुजली होने से पाँव ऊँचा उठाया तो उस स्थान पर एक शशक (खरगोश) आ बैठा। उसे देखकर करुणावश पाँव नीचे नहीं रखा। तीन दिन तक पाँव ऊँचा रखने मे महाकष्ट हुआ। चौथे दिन दावानल शान्त हो जाने पर सभी जन्तु चले गये। शशक भी चला गया। तुमने पाँव नीचा रखने का प्रयत्न किया, परन्तु अकड जाने से नीचे नहीं रख सके और तुम टूटे हुये गिरि शिखर के समान पृथ्वी पर गिर पडे, उठ न सके। तीन दिन तक महावेदना भोग कर जीव दया के फलस्वरूप शुभ कर्म का बन्ध होने से वहाँ से मर कर मेघकुमार बने हो। भद्र ! तुमने वहाँ पशु होते हुए भी जीवदया के लिए इतना कष्ट सहन किया था; वहाँ दुःख नहीं माना। अब साधुओं के पाँव लगने से क्या उससे अधिक वेदना हुई है। ? चारित्र से

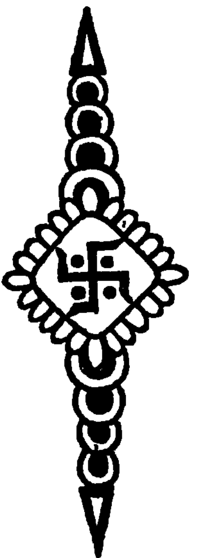


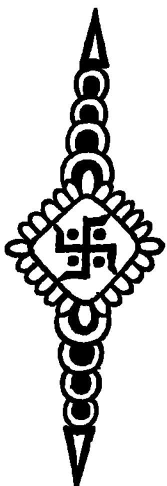


धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं—धर्मचक्र से चारगतियों का अन्त करके सिद्धि प्राप्त करने वाले। अप्पडिहय[२] वरनाण दंसणधराणं—अप्रतिहत किसी के द्वारा न रोके जाने वाले श्रेष्ठ ज्ञानदर्शन को धारण करने वाले, दीवोत्ताणं शरणगइ परिट्ठा—द्वीप के समान शरणागत को आश्रय रूप, विउट्टछउमाणं—छद्मस्थता से मुक्त, जिणाणं—रागद्वेष को जीतने वाले, जावयाण—उपदेश द्वारा अन्यों को जयप्राप्त कराने वाले, तिन्नाणं-ससार समुद्र से तिरे हुए, तारयाणं—अन्यों को तिराने वाले, बुद्धाणं-स्वयबोधि प्राप्त, बोहियाण—अन्यों को बोध देने वाले, मुत्ताणं—मुक्त, मोयगाणं—अन्यों को मुक्त करने वाले, सव्वन्नूणं-सर्वज्ञ, सव्वदरिसीणं—सर्वदर्शी, सिवमयलमरुअमणंत मक्खयमव्वावाह मपुणरा-वित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं—सिव-निरुपद्रव अचल रोगरहित अक्षय अव्याबाध जहाँ जाकर पुनः कोई नहीं आता है ऐसे सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त, नमोजिणाणं जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार हो, भयों को जीतने वाले भगवान् को नमस्कार हो। इस प्रकार सर्व अर्हन्तों की स्तुति करके अब भगवान् महावीर को नमस्कार करते हैं।

विचलित कैसे हो रहे हो? देवानुप्रिय! अब दुर्लभ मानव भव मिला है, मेरे वचनों से प्रतिबुद्ध हो वैभव का भोगों का त्याग किया है, सयमी बने हो, चारित्र से मन शिथिल क्यों कर रहे हो? यह कार्य तुम्हारे योग्य नहीं!

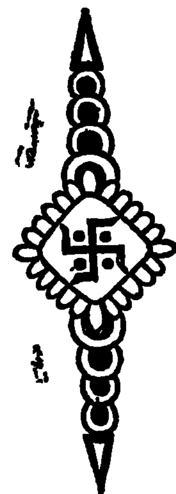
इस मधुर उद्बोधन ने मेघ मुनि को सावधान कर दिया। उन्हे जातिस्मरण हुआ। पूर्वभव की घटनाएँ जानकर सयम में स्थिर बन गये और ऐसा अभिग्रह किया कि अब आज से ही नेत्रों के अतिरिक्त शरीर के किसी भी अङ्ग प्रत्यङ्ग की शुश्रूषा नहीं करूंगा। महातप करने लगे। द्वादश वर्ष पर्यन्त निरतिचार चारित्रपालन कर अन्त में अनशन किया। शरीर त्यागकर अनुत्तर विमानवासी देव हुये। वहाँ से महाविदेह में उत्पन्न हो दीक्षा ले मोक्ष जायेंगे।



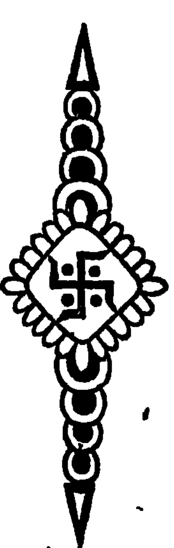


णमुत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स, चरमतित्थयरस्स पुव्वतित्थयर निदिट्ठस्स जाव संपाविउकामस्स ॥ वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इहगये, पासउ मे भगवं तत्थगए, इहगयं त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं वंदंति, नमस्संति, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने ॥१६॥

अर्थ :—श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार हो, धर्म की आदि करने वाले, चरम तीर्थंकर, पूर्व-तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् द्वारा निर्दिष्ट, सम्पूर्णमनोरथ, यावत् मुक्ति जाने की इच्छावाले, ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में स्थित आपको मै नमस्कार करता हूँ। मै इन्द्र सौधर्म देवलोक में रहा हुआ हूँ आप देवानन्दा की कूक्षि में रहे हुए मुझे देवलोक में रहे हुए को आप देखे। ऐसा कह कर वारवार भगवान् को वन्दना नमस्कार करके सिंहासन पर पूर्वदिशाभिमुख बैठ गये।



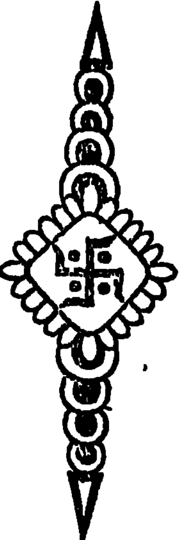
तए णं तस्स सक्कस्स, देविंदस्स देवरन्नो अयं एयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए, पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पजित्था। नो खलु एवं भूयं, न एवं भव्वं, न एवं भविस्सइ, जं णं अरिहंता वा, चक्कवट्टी वा, वलदेवा वा, वासुदेवा वा, अंतकुलेसु वा, पंतकुलेसु वा, तुच्छकुलेसु वा, दरिद्दकुलेसु वा, किविणकुलेसु वा; भिक्खायरकुलेसु वा, माहणकुलेसु वा, आयाइंसु वा, आयाइंति वा, आया-इस्संति वा ॥१७॥ एवं खलु अरिहंता वा, चक्कवट्टो वा, वलदेवा वा, वासुदेवा वा, उग्गकुलेसु वा,



भोगकुलेसु वा, रायन्नकुलेसु वा, इक्खागकुलेसु वा, खत्तियकुलेसु वा, हरिवंसकुलेसु वा अण्णयरेसु तहप्पगारेसु विसुद्ध जाइकुलवंसेसु, आयाइंसु वा, आयाइंति वा आयाइस्संति वा ॥१८॥

अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर के दर्शन के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराज के मन में इस प्रकार का आत्मिक प्रार्थित चिन्तित संकल्पित विचार उत्पन्न हुआ—न ऐसा भूतकाल में हुआ, न वर्त्तमान काल में होता है, न आगामी काल में ऐसा होगा कि अरिहन्त चक्रवर्ती बलदेव या वासुदेव अन्त्य-शूद्रकुल अधमकुल तुच्छ-अल्पकुटुम्ब या अल्पर्द्धिवाले कुल, दरिद्रकुल, कृपणकुल, भिक्षाचरकुल, अथवा ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुये हों। निश्चय से अरिहन्त चक्रवर्त्ती बलदेव अथवा वासुदेव उग्र—(भगवान् ऋषभदेव ने जिन्हें आरक्षक-रूप से नियुक्त किया) कुल में भोग—(भगवान द्वारा गुरुजन रूप में प्रतिष्ठित) कुल में, राजन्य-मित्ररूप से स्थापित-कुल में, इक्ष्वाकु कुल में क्षत्रिय कुल में, हरिवश कुल में अथवा अन्य इसी प्रकार के विशुद्ध जाति कुलवंश वाले ज्ञात मल्ल लिच्छवि कौरव आदिकुलों में ही उत्पन्न हुए हैं, होते हैं और भविष्य में होंगे। तब भगवान् देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में कैसे उत्पन्न हुए।

अत्थि पुण एसे वि भावे लोकऽच्छेरयभूए अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं ओस्साप्पिणीहिं विइक्कंताहि (कयावि) समुप्पज्जइ। (ग्रन्थाग्र १००) नाम गुत्तस्स वा कम्मस्स अक्खीणस्स अवेइयस्स अणिज्जिण्णस्स उदए णं, जं णं अरिहंता वा चक्कवट्टीवा बलदेवा वा वासुदेवा वा अंतकुलेसु वा पंतकुलेसु वा तुच्छकुलेसु वा दरिद्दकुलेसु वा भिक्खाग कुलेसु वा किविणकुलेसु वा माहणकुलेसु वा आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा, कुच्छिसि



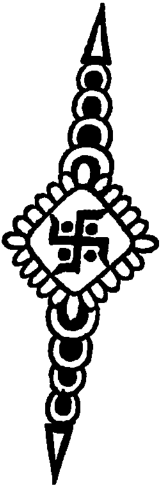
गब्भत्ताए वक्कमिंसु वा वक्कमंति वा वक्कमिस्संति वा, नो चेव णं जोणी जम्मण निक्खमणेणं निक्खमिंसु वा निक्खमंति वा निक्खमिस्संति वा ॥१९॥

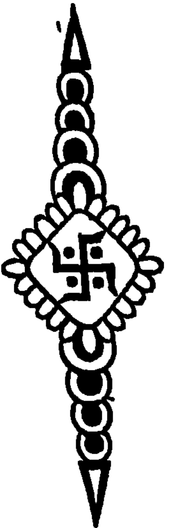
अयं च णं समणे भगवं महावीरे जंबूदीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरसगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥२०॥

अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी व्यतीत हो जाने पर इस प्रकार के भाव जो लोक में आश्चर्यंकर हैं, होते है कि अर्हन्त चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव उक्त अन्त प्रान्त तुच्छ दरिद्र भिक्षाचर कृपण ब्राह्मणादि कुलो में आये है, आते है व आवेगे। कुक्षि में उत्पन्न हुए है, होते हैं, और भविष्य में होंगे। किन्तु न कभी जन्म हुआ, न होता है, न होगा।

ये श्रमण भगवान् महावीर, चौवीशवे तीर्थङ्कर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में ब्राह्मणकुण्डगाम नगर में कोडालसगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में गर्भरूप से उत्पन्न हुये हैं।

तं जोयं एयं तिय पच्चुपन्न मणागयाणं सक्काणं, देविंदाणं देवराइणं अरिहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो, अंतकुलेहिंतो पंत तुच्छ दरिद्द भिक्खाग किविणकुलेहिंतो माहण कुलेहिंतो वा तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा, भोग कुलेसु वा रायण्ण, णाय खत्तिय हरिवंस कुलेसु वा, अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइ कुलवंसेसु, जाव रज्जसिरिं कारेमाणेसु पालेमाणेसु साहराविन्तए, तं सेयं खलु ममवि समणं भगवं महावीरं, चरमतित्थयरं पुव्वतित्थयरनिदिट्ठं माहणकुण्ड गामाओ

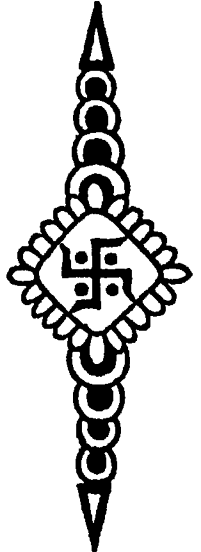


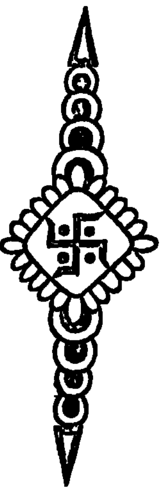


नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगोतस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स-गुत्ताए कुच्छिओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठस्सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविंत्तए जे वि य णं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराविंत्तएत्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता हरिणगमेसिं पायत्ताणियाहिवइं देवं सद्दावेइ, सद्दाविंत्ता हरिण गमेसिं देवं एवं वयासी ॥२१॥

अतः अतीत वर्त्तमान और भविष्य काल के शक्र देवेन्द्र देवराजाओं का यह कर्त्तव्य है कि अर्हन् भगवान् को तथा प्रकार के अन्त प्रान्त तुच्छ दरिद्र भिक्षाचर कृपण ब्राह्मणकुलों से तथा प्रकार के उग्र भोग राजन्य ज्ञात क्षत्रिय हरिवंशादिकुलों में अथवा वैसे ही विशुद्ध जाति कुल वाले राज्यशासन करते हुए किसी कुल में संहरण करादें। इसी कारण निश्चय से मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मै श्रमण भगवान् महावीर को जो अन्तिम तीर्थङ्कर है और प्रथमतीर्थङ्कर ऋषभदेव भगवान् द्वारा निर्दिष्ट है। ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर वासी कोडालसगोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की जालन्धर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि से वशिष्टगोत्रीया त्रिसला क्षत्रियाणी की कूक्षि में गर्भ का संक्रमण करवादूं। और त्रिसला क्षत्रियाणी के गर्भ को देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि में संक्रमण करवा दूं। इस प्रकार विचार किया, करके पादातिसेना के अधिपति हरिणैगमेषी देव को बुलाकर ऐसा कहा—

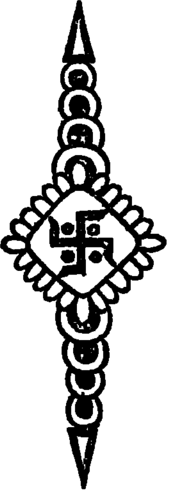
एवं खलु देवाणुप्पिया। न एयं भूयं न एयं भव्वं न एयं भविस्सइ, जं णं अरिहंता चक्कि बल वासुदेवा वा, अंत पंतकिविण दरिद्द तुच्छ भिक्खाग माहण कुलेसु वा आयाइंसु वा





आयाइंति वा आयाइस्संति वा एवं खलु अरिहंता वा चक्किबल वासुदेवा वा उग्ग कुलेसु वा भोग राइन्न नाय खत्तिय इक्खाग हरिवंस कुलेसु वा अन्नयरेसुवा तहप्पगारेसु विसुद्ध जाइ कुलवंसेसु आयाइंसु वा आयाइंति वा आयाइस्संति वा ॥२२॥ अत्थि पुण एसेवि भावे लोगच्छेरये भूए अणंताहिं उस्सप्पिणीहिं अवसप्पिणोहिं वइक्कंताहिं समुपज्जइ ।

हे देवानुप्रिय ! ऐसा न हुआ है, न होता है न होगा कि अर्हन् चक्रवर्त्ती आदि ने अत प्रांतादि कुलों मे जन्म लिया हो, लेते हो या भविष्य मे लेगे। इसी प्रकार निश्चय से तीर्थंकरादि उग्र भोगादि कुलो में जन्मे हैं, जन्मते हैं ओर जन्मेंगे। किन्तु पुनः ऐसा भी होता है। अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी व्यतीत हो जाती है तब हुडावसर्पिणी काल में ऐसी आश्चर्यकारक घटनाएं होती हैं। इस अवसर्पिणी काल में निम्नलिखित दश आश्चर्य हुए हैं :—



दश आश्चर्य

उवसग्ग गब्भहरणं इत्थोए तित्थं अभाविया परिसा । कण्हस्स अमरकंका, अवतरणं चंद सूराणं ॥१॥
हरिवंस कुलुप्पत्ति चमरुप्पाओय अट्ठसयसिद्धं । असंजयाणं पूआ दस वि अणंतेणकालेण ॥२॥

अर्थ :—१. उपसर्ग २. गर्भापहरण ३. स्त्री द्वारा तीर्थस्थापना ४. परिषद् का अभावित रहना ५. कृष्ण का अमरककागमन ६. चन्द्रसूर्य का मूलविमान सहित आना ७. हरिवशकुलोत्पत्ति ८. चमरेन्द्र का उत्पात ६. एक सौ आठ का एक समय में सिद्ध होना ओर १० असयतों का पूजा सतकार ॥

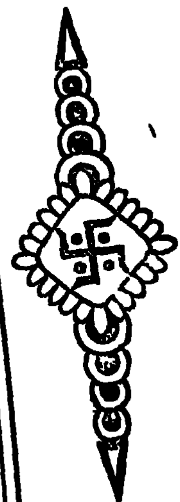
सस्कृतच्छाया—उपसर्गगर्भहरण स्त्रियास्तोर्थं अभाविता परिपद् । कृष्णस्या ऽमरकङ्का अवतरण चन्द्रसूर्ययोः ॥१॥
हरिवंश कुलोत्पत्ति श्चमरोत्पातश्चाष्टशत सिद्धाः । असयताना पूजा दशाऽपि अनन्तेन कालेन ॥२॥

प्रथम आश्चर्य

समवसरण में भगवान् महावीर को उपसर्ग

श्रमण भगवान महावीर प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् कुशिष्य गोशालक द्वारा फेंकी गई तेजोलेश्या से भगवान के सामने समवसरण में ही सुनक्षत्र, सर्वानुभूति मुनि भस्म हो गये और स्वयं भगवान को रक्तातिसार हो गया[1] ।

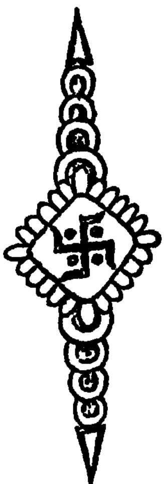
१—एक बार जगद्गुरु महावीर देव विचरते हुए श्रावस्ती नगरी में पधारे। देवताओं ने समवसरण की रचना की। गोशालक भी स्वयं को —"मैं जिन हूँ" ऐसा घोषित करता हुआ वहां ही आ पहुँचा। समस्त नगरी में प्रसिद्ध हो गया कि श्रावस्ती में दो जिन भगवान विराजते हैं। भगवान इन्द्रभूति गौतम गणधर ने भी यह सुना। उन्होंने भगवान से पूछा—प्रभो! यह कौन अपने आपको तीर्थंकर कह रहा है? प्रभु ने कहा—गौतम! यह जिन नहीं किन्तु सरवण ग्रामवासी मंखली और सुभद्रा का पुत्र है और अधिक गायों वाली विप्र गोशाला में उत्पन्न होने से इसका नाम गोशालक दिया गया। यह मेरा शिष्य बना था, कुछ श्रुतवान् बनकर स्वयं को व्यर्थ जिन बता रहा है। यह बात नगर में प्रसिद्ध हो गई और गोशाला ने भी सुनी तो क्रुद्ध हो गया। भिक्षाचरी के लिए गये हुए श्री महावीर प्रभु के शिष्य आनन्द मुनि को देखकर उनसे कहा—अरे! आनन्द! एक कथा सुन! - कुछ वणिक धनार्जन करने को शकटों मे क्रयाणक वस्तुएँ भर कर विदेश चले। मार्ग में भयंकर वन आया, पास का जल समाप्त हो चुका था, उन प्यासे जनों ने जल खोजते हुए चार वल्मीकशिखर (दीमकों द्वारा रचित मृत्तिकामय स्तूप) देखे और उनमें से एक शिखर को तोड़ा। उसमें से जल निकला सबने पिपासा शान्त की और साथ में रहे जलपात्र भी भर लिए। एक वृद्ध बोला चलो अपनी आवश्यकता पूर्ण हो गई। अब दूसरा शिखर मत तोड़ो। किन्तु उन्होंने वृद्ध की बात न मानकर दूसरा शिखर तोड़ दिया। उसमें सुवर्ण निकला। उसी प्रकार तीसरा तोड़ने पर रत्न निकले। अब वृद्ध ने बार-२ कहा—चौथा मत तोड़ना। परन्तु उन लोभान्ध वणिकों ने एक न सुनी और चौथा शिखर भी तोड़ डाला उसमें से दृष्टिविष सर्प निकला जिसकी दृष्टि पड़ने मात्र से सब काल के अतिथि बन गये। वह हितोपदेशी वणिक आसन्नवर्ती किसी देव के द्वारा बचाया



द्वितीय गर्भापहार आश्चर्य

प्रस्तुत वाचना में इसी का वर्णन आ रहा है।

जाकर अपने स्थान पर पहुँचा दिया गया। इसी प्रकार आनन्द। तुम्हारे धर्माचार्य भी अपनी इतनी सम्पदा होते हुये भी
असन्तुष्ट हो मुझे जैसे-तैसे बोलते हैं और क्रुद्ध करते हैं। मैं अपने तप के प्रभाव से तुम्हारे गुरु को भस्म कर दूंगा। अतः
तुम शीघ्र जाकर अपने गुरु को समझा दो कि मेरे विषय में कुछ न बोलें। तुम्हें वृद्ध वणिक्‌वत् बचा लूंगा। भयभीत आनन्द
मुनि भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और सर्व वृत्त कहा। भगवान् बोले—आनन्द। तुम शीघ्र गौतमादि मुनियों को साव-
धान कर दो कि गोशालक आ रहा है, उसके साथ कोई सम्भाषण न करें, सब इधर-उधर चले जायँ। आनन्द ने सबको निवे-
दन किया, सब इधर-उधर हो गये। गोशालक आया और भगवान् से बोला—ओ काश्यप। 'क्या तुम ऐसा कहते हो कि
गोशालक मंखलीपुत्र है, मेरा शिष्य था'। इत्यादि। किन्तु तुम्हारा वह शिष्य तो मर गया। मैं तो अन्य ही हूँ। गोशालक
के शरीर को परिपहादि सहन करने में समर्थ जानकर इसमें अधिष्ठित हो गया हूँ। इस प्रकार भगवान् के तिरस्कार को सुनक्षत्र
और सर्वानुभूति मुनिराज नहीं सह सके और बीच में उत्तर प्रत्युत्तर करने लगे। गोशाला क्रोध से जलने लगा और तेजोलेश्या
से दोनों मुनियों को वहीं भस्म कर दिया। करुणामूर्ति भगवान् ने कहा—भद्र। तुम वही गोशालक हो, अन्य नहीं, व्यर्थ
अपने को क्यों छुपाते हो, इस प्रकार आत्मा नहीं छुपाया जा सकता। जैसे कोई चोर पुलिस द्वारा देखा जाकर स्वयं को
अंगुली या तिनके से छुपाने का प्रयत्न करे तो क्या वह छिप सकता है? इस तरह भगवान् के यथार्थ कहने पर गोशाला आग
बबूला हो गया और भगवान् पर तेजोलेश्या फेंकी; वह तेजोलेश्या श्रमण भगवान् महावीर को तीन प्रदक्षिणा देकर पुनः
गोशालक के शरीर में प्रविष्ट हो गई। गोशालक का शरीर जलने लगा, वह त्रस्त हो अपने स्थान पर चला गया और विविध
महावेदनाएँ भोग कर सातवीं रात्रि में मर गया। भगवान भी तेजोलेश्या के ताप से छ महीने तक अस्वस्थ रहे, प्रभु को रक्तातिसार
हो गया। वेदनीय के उदय से हुआ था; किन्तु गोशालक द्वारा फेंकी गई तेजोलेश्या से उक्त व्याधि हुई, ऐसी संसार में प्रसिद्धि
हो गई। यह अधिकार भगवती सूत्र के १५वें शतक में है।

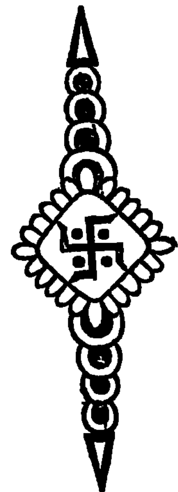


तृतीय स्त्रीतीर्थङ्कर आश्चर्य

इसी जम्बूद्वीप के पूर्वमहाविदेह क्षेत्र को सलिलावती विजय में वोतशोका नगरी में महाबल नृपति शासन करते थे। एकदा वैराग्य-वासित हो, अपने छहों बाल मित्रों सहित संयम धारण किया और हम सातों ही मुनि एक-सा तप करेंगे, ऐसी परस्पर प्रतिज्ञा की। ऐसा निश्चय करके सुखपूर्वक सातों ही मुनि तपस्या करने लगे।

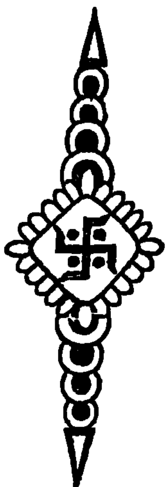
महाबल मुनि को विचार आया कि इन सबसे मै अधिक तप करूं कि जिससे मैं इनसे अधिक बनूं। तदनुसार पारणे के दिन कह देते आज मेरा सिर दुःखता है मै पारणा नहीं करूंगा, आप सब पारणा कर लोजिये। इस प्रकार कपटाचरण से उन्हे पारणा करा देते और स्वयं उपवास कर लेते। इस प्रकार माया से विंशति स्थानक को आराधना करके तीर्थंकर नाम कर्म बाँध लिया; किन्तु माया वश स्त्रीवेद भी बंध गया। महाबल आदि सातों ही मुनि समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर जयन्त अनुत्तर विमान में देवरूप से उत्पन्न हुए। महाबल का जोव वहाँ से च्यव कर पूर्व मायावश मिथिला नगर के नृपति कुम्भ की महारानो प्रभावती देवी की कूक्षि में आकर पुत्रो रूप से उत्पन्न हुआ। माता ने चौदह महास्वप्न देखे। गर्भ समय पूर्ण होने पर जन्म हुआ! मल्लिकुमारी नाम स्थापन किया। युवती होने पर उनके साथ विवाह करने को अपना पूर्वभव नहीं जानते हुये, वे छओं पूर्वभव के मित्र[1] एक साथ ही आ उपस्थित हुए, तब मल्लिकुमारो ने स्वर्णपुत्तलिका के दृष्टान्त से उन्हें प्रतिबोध दिया और स्वयं ने भी वर्षीदान देकर दीक्षा ले ली।

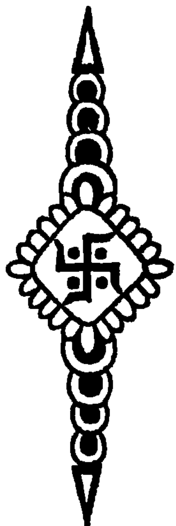
१ अयोध्या नगरी के सुप्रतिबुद्ध नृपकी पद्मावती रानी नेनाग पूजा के लिए बहुत सुन्दर हार बनवाया था, हार देख कर राजा अत्यन्त हर्षित हुआ और अपने चरों से पूछा—तुमने ऐसा सुन्दर हार कहीं देखा



है ? दूत बोले—देव ! इससे भी अत्यधिक सुन्दर हार मल्लिकुमारी का देखा है। उसके सामने यह लक्षांश
भी नहीं ! राजा ने मल्लि के विषय मे पूछा तब दूतों ने सारा परिचय दिया। पूर्व प्रेम सम्बन्ध से राजाने
मल्लि के लिए कुम्भराजा के पास अपना दूत भेजा ॥१॥

२—चम्पानगरी में अर्हन्नक आदि व्यापारी रहते थे। एक बार व्यापार करने को अर्हन्नक आदि
कई व्यापारी जहाजो में क्रयाणक भर कर गम्भीरपत्तन गये और वहाँ से अन्य द्वीप को प्रस्थान किया।
उस समय इन्द्र ने अपनी सभा में अर्हन्नक की प्रशसा की कि—आज भरतक्षेत्र में अर्हन्नक सदृश
दृढसम्यक्त्वधारक अन्य कोई नहीं है। एक मिथ्यात्वी देव इस प्रशसा को नहीं सह सका और वहाँ आकर
समुद्र मै भारी उत्पात करने लगा। जोरों की आँधी चलने लगी समुद्र मे पर्वताकार तंरगे उठ रही थी,
जहाज डगमगाने लगे। अर्हन्नक के अतिरिक्त सभी सांयात्रिक भयभीत हो गये और अपने मान्य हरिहर
भूत-प्रेत भैरव देव-देवी आदि की आराधना करने लगे। मनौतियाँ मानी। अर्हन्नक तो श्रावकश्रेष्ठ था;
अतः सागारी अनशन लेकर वीतराग का स्मरण करता हुआ अक्षुब्ध रहा। देव ने कई प्रकार से चलाय-
मान करने के प्रयत्न किये, पर वह अचल और निर्भय रहा। देव ने कहा अमुक देव की आराधना
कर। तब उत्पात दूर करूं ! नहीं तो तेरे इस अधर्म से सबको समुद्र मे डुबा दूंगा और यह पाप तेरे शिर
होगा। और सबने भी सेठ अर्हन्नक से देवी-देवताओं की आराधना करने का आग्रह किया; परन्तु
अर्हन्नक श्रावक सम्यक्त्व में दृढ रहा। देव ने पराजय स्वीकार की और सन्तुष्ट हो तीन प्रदक्षिणा
देकर करबद्ध हो विनम्र भाव से इस प्रकार स्तुति की—हे अर्हन्नक श्रावक। श्राद्धशिरोमणि ! आप धन्य
है ! कृतपुण्य है !! आपका जन्म और जीवन सफल है !!! इन्द्र महाराज ने जो आपकी प्रशसा की
वह यथार्थ है मै आप पर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ ? आपकी इच्छा हो सो माँगिये ? अर्हन्नक बोले—इस भव
परभव और भव-भव में सभी सुख प्राप्त कराने वाला जैन धर्म रूप चिन्तामणि रत्न मिला है, मुझे किसी



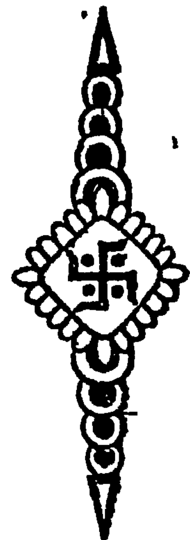


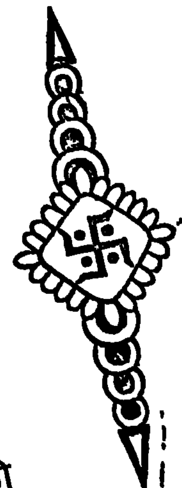
वस्तु की अभिलाषा नहीं। इस प्रकार का धैर्य और निःस्वार्थ भाव देखकर 'देव दर्शन व्यर्थ नहीं जाता' ऐसा कहकर दो जोडे कुण्डल अर्पण करके देव अपने स्थान को चला गया।

वे व्यापारी गम्भीरपत्तन[२] कुशलतापूर्वक[१] पहुँचे और वहाँ से वापिस लौटते हुये मिथिला नगरी आये। वहाँ कुम्भनृपति को एक कुण्डल जोड़ी भेंट की। राजा ने मल्लिकुमारी को दे दिये। उधर अर्हन्नकादि चम्पानगरी में पहुँचे और वहाँ के स्वामी इन्द्रच्छायनृप को पास में रही कुण्डल जोड़ी भेंट की। राजा ने कुशल पूछी और प्रवास के समाचार भी। प्रवास का वर्णन करते हुए मल्लिकुमारी के अद्भुत रूप का वर्णन भो किया। जिसे सुनकर राजा ने उसके साथ विवाह का विचार किया और कुम्भ राजा के पास मल्लि की याचना करने अपने दूत को भेजा।

३—एक बार मल्लिकुमारी का वह दिव्यकुण्डल टूट गया उसे ठीक करने को एक स्वर्णकार को बुलाया। उसने कहा देव! यह तो दिव्य कुण्डल है, इसे मैं मर्त्यलोकवासी ठीक करने में असमर्थ हूँ। तब कुम्भराजा ने क्रोधित हो उसे देश निर्वासित कर दिया। स्वर्णकार वहाँ से वाराणसी नगरी जाकर रहने लगा। एकदा वह राजसभा में गया था। राजा शंख ने देश निर्वासन का कारण पूछा तब उसने सारी घटना का वर्णन करते हुए मल्लिकुमारी के अलोकिक सौन्दर्य की बात कह दी। पूर्व स्नेहवश शंखनृप ने भी मल्लि की इच्छा की और अपना दूत कुम्भनृप के पास भेजा।

४—कुणाला नगरी के रुक्मी राजा को सुबाहु नामा कन्या ने पर्वविशेषका चातुर्मासिक स्नान करकेषोडश शृंगार धारण किये और अपने पिता को नमस्कार करने राजसभा में आई। पुत्री के अपूर्व रूप को देख कर राजा ने सभा से प्रश्न किया कि ऐसी रूपवती कोई अन्य कन्या है क्या? विदेशों से आये हुये दूतों ने मल्लिकुमारी का रूप सर्वाधिक सुन्दर बताया। पूर्वभव के स्नेहवश राजा ने मल्लि की याचनार्थ दूत भेजा।

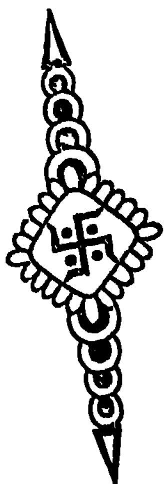




५—कुम्भराजा के पुत्र मल्लदिन्न कुमार ने चित्रकारों से अपने लिए एक चित्रशाला बनवाई। सिद्ध चित्रकार ने परदे के पीछे बैठी हुई मल्लिकुमारी का मात्र अंगुष्ठ देखकर वास्तविक चित्र चित्रित किया था। एकदा मल्लदिन्नकुमार अपनी स्त्रियो के साथ उस चित्रशाला मे क्रीड़ा कर रहा था उसकी दृष्टि उक्त चित्र पर पड़ी उसे साक्षात् मल्लिकुमारी जानकर वह अत्यन्त लज्जित हो गया। और यथार्थता प्रकट होने पर क्रुद्ध हो चित्रकार के हाथ कटवा दिये एवं देश से निकाल दिया। चित्रकार हस्तिनापुर की राजसभा मे पहुँचा ओर अदोनशत्रु नरेश के सम्मुख मल्लिकुमारी के दिव्य रूप सौन्दर्य का वर्णन किया। सुनकर अदोनशत्रु राजा ने भी मल्लि के साथ विवाह करने इच्छा से दूत को कुम्भ राजा के पास भेजा।

६—एकबार अपने पिता की राजसभा में मल्लिकुमारी ने धार्मिक वाद-विवाद में एक परिव्राजिका को जीत लिया। अपना मानभ्रष्ट हो जाने से वह परिब्राजिका अमर्ष धारण करती हुई काम्पिल्यपुर के अधिपति जितशत्रु के पास गई और उसके सम्मुख मल्लिकुमारी का देव दुर्लभ सौन्दर्य चित्रपट पर चित्रित करके दिखाया। देवाङ्गनाओं को भी लज्जित करने वाला अत्यन्त रमणीय रूप देखकर राजा मोहित हो गया और अपने लिए मल्लि की याचना की।

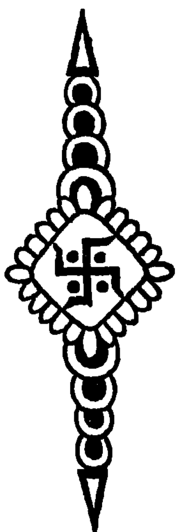
इस प्रकार छओं राजा के दूत एक साथ ही कुम्भ राजा के समीप पहुँचे और अपने-अपने राजाओं का सन्देश निवेदन किया। कुम्भनृप ने कहा—मै अपनी पुत्री किसी को भी नहीं दूंगा और सभी के दूतों को अपमानित करके निकाल दिया।



दूतगण अपने स्वामियों की सेवा में उपस्थित हुये ओर सर्व वृत्त कहा। सभी राजागण अपने इस अपमान को सहन न कर सके और अपनी-२ सेनाएँ लेकर मिथिला नगरी को चारों ओर से घेर लिया। कुम्भ राजा ने युद्ध किया; परन्तु पराजित होना पड़ा। राजा ने नगर के दरवाजे बन्द कर लिए और प्राचीर पर युद्ध करने लगा।

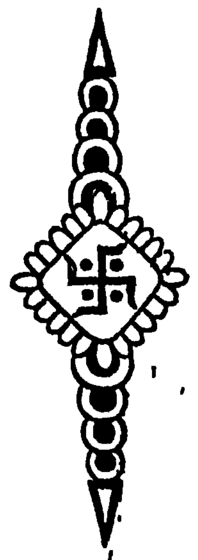
कल्पसूत्र
६२

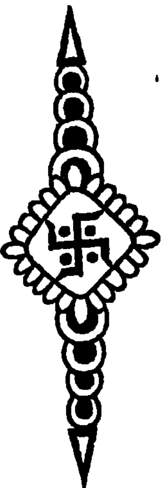
कल्पसूत्र
६२



मल्लिकुमारी ने अवधिज्ञान से जान लिया कि ये तो पूर्वभव के मित्र हैं इन्हें प्रतिबोध देना चाहिए। ऐसा विचार कर सात प्रकोष्ठ-कमरों वाला एक गोलाकार मोहनगृह बनवाया और मध्य में अपने सदृश एक स्वर्ण पुत्तलिका जिसके शिर में ढक्कन सहित छिद्र था, बनवाई और प्रतिदिन एक ग्रास उस छिद्र में डालने लगी। मल्लिकुमारी ने प्रपञ्च वचनों से छओं राजाओं को बुलाकर मोहनगृह के छओं कमरों में बैठा दिया। मध्य गृह को ओर के द्वार खोल दिये। मल्लि की प्रतिकृति को साक्षात् मल्लि समझकर प्रेम विमोहित हो कर वे सर्व अनिमेष दृष्टि से देखने लगे। इतने में ही मल्लि ने गुप्त रूप से आकर यन्त्रमय पुतली के शिर का आवरण दूर कर दिया। जिससे अत्यन्त दुर्गन्ध फैल गई। उस दुर्गन्ध को नहीं सहन कर सकने के कारण वस्त्र से नाक ढँककर थू-थू करते हुए शिर पर पॉव रखकर भागने लगे। उनको प्रतिबोध देने के लिए मल्लिकुमारी ने प्रकट होकर कहा—महानुभावों! यदि स्वर्णरत्नमयी प्रतिमा में आहार संसर्ग से ऐसी दुर्गन्ध आ रही है कि जिसको गन्ध तक सहन नहीं की जा सकती, दुःखदायी है; तब स्वाभाविक शरीर जिसमें मांसरुधिर पूय मल-मूत्र आदि अपवित्र और दुर्गन्धित वस्तुएं भरी पडी हैं और उसका तो कहना ही क्या? सदा काल अपवित्र रहने वाला स्त्री शरीर तो अत्यधिक घृणास्पद है, और उस पर इतना राग और पाने का आग्रह क्यों किया जाय? आप रागान्ध क्यों हो रहे हो? हम सब पूर्वभव के मित्र हैं! यदि करिये! हमने ऐश्वर्य का त्याग करके संयम लिया था, तपस्या की थी, वहाँ से अनशन पूर्वक देह परित्याग कर अनुत्तरवासी देव बने थे। पूर्व पुण्य प्रभाव से उत्तम कुलादि सामग्री मिली है, मनुष्य भव मिला है। इसे व्यर्थ खो देना बुद्धिमानी नहीं।

सुनकर छओं को जातिस्मरण ज्ञान हुआ, प्रतिबोध पाया और बोले अब क्या करना चाहिये? मल्लिकुमारी ने कहा—अभी तो आप अपने-२ निवास स्थान जायें। मुझे केवलज्ञान होने पर शीघ्र आवें। मल्लिकुमारी को केवलज्ञान हुआ तब आये और संयमी बने। अन्त में सभी मोक्ष में पधार गये।





भगवान् मल्लिनाथ ने मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी को दीक्षा ली और उसी दिन संध्या समय केवलज्ञान हो गया। तीर्थ की प्रवृत्ति की, स्त्री तीर्थंकर बने। इनकी पर्षदा में स्त्रियाँ आगे और पुरुष पीछे बैठते थे। यह तृतीय आश्चर्य हुआ।

चतुर्थ आश्चर्य : देशना की निष्फलता

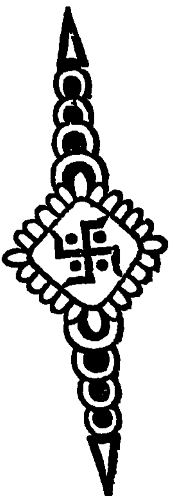
श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् परिषद् एकत्र हुई। देशना सुनकर किसी ने भी व्रत प्रत्याख्यान ग्रहण नहीं किये। (क्योंकि उस समय केवल देव देवी ही उपस्थित थे, मनुष्य नहीं) कभी व्यर्थ न होने वाली तीर्थंकर भगवान की देशना निष्फल हो गई। यह भी लोक में आश्चर्यभूत घटना मानी गई।

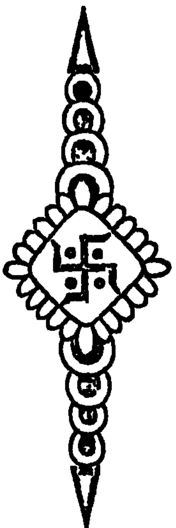
पांचवाँ आश्चर्य : कृष्ण का धातकीखण्ड गमन

वासुदेव मिलन

काम्पिल्यपुर में द्रुपद राजा शासन करते थे। चुल्लनी नामक पट्टराज्ञी से उत्पन्न रूपवती द्रौपदी नाम वाली कन्या थी। उसके यौवनवती होने पर पिता ने राधावेध स्वयंवर करने का निश्चय किया और सभी राजाओं को आमन्त्रण भेजा। आमन्त्रित राजागण स्वयंवर मण्डप मे उपस्थित थे। हस्तिनापुर से युधिष्ठिरादि पाँचों पुत्रो सहित पाण्डु नृप भी आये थे। अर्जुन ने राधावेध सिद्ध किया, द्रौपदी ने अर्जुन के कण्ठ में वरमाला आरोपित की; परन्तु देव प्रभाव से वह वरमाला पांचों भाइयों के कण्ठ में दिखाई देने लगी इसका कारण द्रौपदी का सुकुमालिका के भव में किया हुआ निदान (नियाणा) था।

किसी भव में द्रौपदी का जीव एक ब्राह्मण की पत्नी रूप में था। एक बार किन्हीं मुनि को कटुक तुम्बे का आहार देने से बहुत अशुभ कर्मों का उपार्जन किया और फलस्वरूप अनेक बार नरक तिर्यञ्च

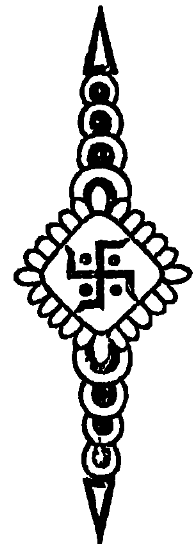


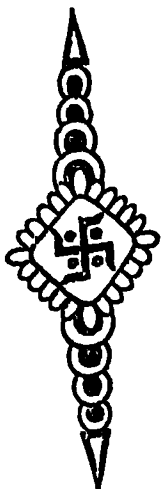


गतियों भ्रमण करके कृत कर्म का अधिकांश फल भोग कर किसी महर्द्धिक के घर पुत्री रूप से अवतार लिया। सुकुमालिका नाम दिया गया। विवाह योग्य होने पर किसी इभ्यपुत्र के साथ विवाह किया। उस इभ्यपुत्र के शरीर में कन्या के स्पर्श से महादाघ (घोर जलन) उत्पन्न हो गया[1]। जिससे उसने पत्नी को छोड़ दिया। "सुकुमालिका पिता के घर रहने लगी। पिता ने एक रंक के साथ पुनर्विवाह किया ; किन्तु उसके स्पर्श को सहन न कर सकने से वह भी नहीं रह सका और चुपचाप गुप्त रूप से पलायन कर गया। अन्त में दुःखी होकर दुःख-गर्भित वैराग्य से आर्याओं के पास भागवती दीक्षा ले ली और तपस्या करने लगी। साधुओं के समान आतापना लेने की भावना होने से गुरुणीजी से आज्ञा माँगी कि मैं भी आतापना लूँगी। गुरुणीजी ने शास्त्र विरुद्ध होने से स्वीकृति नहीं दी, फिर भी स्वच्छन्दता से वन में जाकर आतापना करने लगी। एक बार उस वन में एक गणिका (वेश्या) पाँच पुरुषों के साथ क्रीड़ा कर रही थी। सुकुमालिका साध्वी को यह दृश्य देखकर अपना दुर्भाग्य स्मरण हो आया और विकार वशीभूत हो उसने निदान कर लिया कि मेरे तप के प्रभाव से मुझे भी पाँच पति मिले। इसी कारण से वरमाला पाँचों के गले में दिखाई देने लगी और देवताओं ने आकाशवाणी की—द्रौपदी पाँच पति वाली होने पर भी सती है।

पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हो गया। उस समय पाण्डव वनवासी थे। अवधि पूरी होने पर हस्तिनापुर आये और सुखपूर्वक निवास करने लगे।

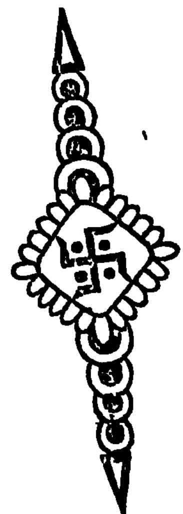
एकदा नारद मुनि आये, पाण्डवों ने यथोचित आदर सत्कार किया। कुछ समय पाण्डवों के पास बैठ कर नारदर्षि अन्तःपुर में द्रौपदी को देखने आये। द्रौपदी ने नारद मुनि को अव्रती अप्रत्याख्यानी मिथ्यात्वी जानकर अभ्युत्थान आसन दानादि सत्कार भी नहीं किया तब नारदजी के मन में क्रोध आ गया कि इस द्रौपदी को पाँच की पत्नी होने का अत्यन्त गर्व है। मेरा नाम तभी नारद! "जब कि इसको किसी महा सकट में डालकर इसका गर्व दूर करूँ।" ऐसा विचार कर नारद मुनि धातकी खण्ड के पूर्व दिशा के

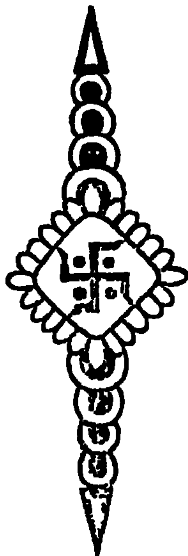




भरतक्षेत्र में अमरकङ्का नगरी के राजा, कपिल वासुदेव के सेवक पद्मनाभ के यहाँ पहुँचे। वह पद्मनाभ उस समय अशोकवाटिका में अपनी स्त्रियों के साथ क्रीडा कर रहा था। नारद ऋषि भी वहीं जा पहुँचे। पद्मनाभ ने नमस्कार किया और सम्मान सहित बैठाया। इधर-उधर की बातें होने के पश्चात् पद्मनाभ ने पूछा—देवर्षे। आप सर्वत्र भ्रमण करते रहते हैं, जैसी मेरी स्त्रियाँ रूपवती हैं वैसी किसी अन्य के हैं क्या? अवसर उपस्थित हुआ जानकर नारद ने कहा—पद्मनाभ तुम तो कुए के मेंढक दिखते हो। जैसे—एक समुद्र का मेढक किसी तरह एक कुएँ में जा पहुँचा और वहाँ के मेंढक से मिला। कूएँ का दर्दुर बोला—अरे ? तुम कहाँ रहते हो ? समुद्र के मेंढक ने कहा—समुद्र में रहता हूँ वहीं से आया हूँ। कूपवासी बोला—तुम्हारा समुद्र कितना बडा है ? और अपनी टाँग फैला कर पूछा ? —इतना बड़ा है ? उत्तर मिला—बड़ा है। कूप मेढक ने कूए के एक कोने से दूसरे कोने तक जाकर कहा—तब इतना बड़ा है ? समुद्रवासी ने उत्तर दिया—इससे भी बहुत बड़ा है। कूए में प्रदक्षिणा कर कूपदर्दुर ने पूछा—तो फिर समुद्र इतना बड़ा होगा। समुद्र मेंढक ने कहा—अरे मित्र समुद्र तो बहुत बड़ा है ? यह सुनकर कूप मेंढक क्रोधित हो बोला—दूर हट चल! तू झूठा बोलता है यदि हमारे कूप से बड़ा है तो वह समुद्र है ही नहीं। वैसे ही तुम हो। ऐसा नारद मुनि ने कहा। तुमने इतनी ही स्त्रियाँ देखी हैं। ओर इन्हे ही श्रेष्ठ मान रहे हो। किन्तु मैने हस्तिनापुर में पाँडवों की पत्नी द्रौपदी जैसी रूपवन्ती स्त्री देखी वैसी तीन लोक में भी नहीं है उसके बाँए अँगूठे के नख पर तेरी सब स्त्रियाँ न्योछावर की जा सकती हैं।

नारद मुनि तो इतना कहकर अन्यत्र प्रस्थान कर गये। पद्मनाभ ने मन में सोचा—अहा। मेरा जन्म तभी सफल है जब कि द्रौपदी जैसी सुन्दरी मेरे अन्तःपुर में हो! किन्तु उस सुन्दरी को कैसे लाया जाय? उसे यहाँ लाने का कोई उपाय करना चाहिये। ऐसा विचार कर पौषधशाला में तीन उपवास कर पूर्वभव के मित्रदेव की आराधना की। तीसरे दिन देव प्रकट होकर बोला—तुमने किस प्रयोजन से मेरा आराधन

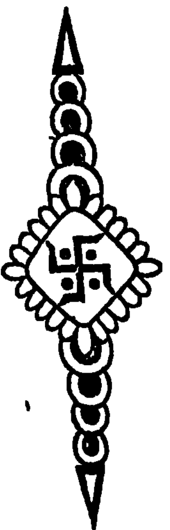


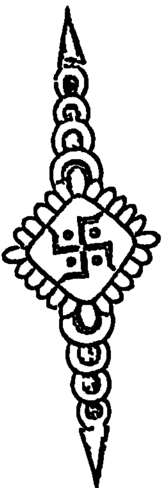


किया है ? कार्य बतलाओ। यह सुन पद्मनाभ ने कहा—द्रौपदी को ला दो। देव बोला—वह सती है, शील खण्डन नहीं करेगी। किन्तु कामान्ध राजा ने कहा—कोई बात नहीं, तुम तो उसे यहाँ लाकर मुझे सौंपो। अच्छा। ऐसा कह कर देव अन्तर्धान हो गया और हस्तिनापुर में अपने भवन में पर्यंक पर निद्रा लेती हुई द्रौपदी को दिव्य शक्ति से उठाकर ले आया और पद्मनाभ को दे दिया। राजा ने अशोक वाटिका में द्रौपदी को सुला दिया। देव ने पद्मनाभ से कहा—तुमने मेरे द्वारा सती नारी का अपहरण करवाया यह अनर्थ किया, भविष्य में मेरा स्मरण न करना। मै नहीं आऊँगा। ऐसा कह कर देव अपने स्थान पर चला गया।

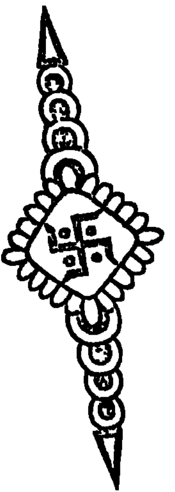
इधर प्रातःकाल होने पर द्रौपदी जागृत हो चकित मृगीवत् इधर उधर देखने लगी—वह कौन सी वाटिका है ? यह किसका प्रासाद है ? मै कहाँ आ गई हूँ ? मेरा भवन कहाँ रह गया ? मेरे पति कहाँ हैं ? ऐसा विचार कर ही रही थी कि इतने में पद्मनाभ आकर बोला—द्रौपदी ! चिन्ता न करो, मै पद्मनाभ राजा हूँ, मैंने ही भोगार्थ देवशक्ति से तुम्हारा अपहरण करवाया है ; मेरे साथ स्नेह पूर्वक निवास करो। मैं तुम्हारा आज्ञाकारी बन कर रहूँगा। तब अपने सतीत्व-शील रक्षार्थ द्रौपदी बोली—भद्र ! छः मास पर्यन्त मेरा नाम भी मत लो, छः महीने में मेरे पति और उनके भाई श्री कृष्ण वासुदेव अवश्य यहाँ खोजते आयेंगे। यदि छः महीने में न आयें तो फिर जो भावी भाव है, वह होगा। मैं छः मास तक आयम्बिल का तप करूंगी। तब तक आप मुझसे कुछ न कहे। द्रौपदी के ऐसा कहने पर पद्मनाभ ने सोचा यहाँ कौन आ सकता है। मध्य में २ लक्ष योजन का लवण समुद्र है। बोला—अच्छा ! और अपने स्थान पर चला गया। द्रौपदी अशोक वाटिका में तप करती हुई रहने लगी।

उधर हस्तिनापुर में प्रातः जब पाण्डवों को द्रौपदी भवन में न दिखाई पड़ी तो सर्वत्र खोज की गई ; पर कहीं भी पता न लगा। तब कुन्ती ने द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण से कहा—वत्स ! किसी देव दानव राक्षस

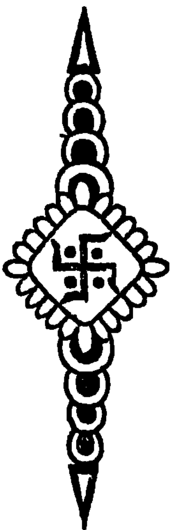


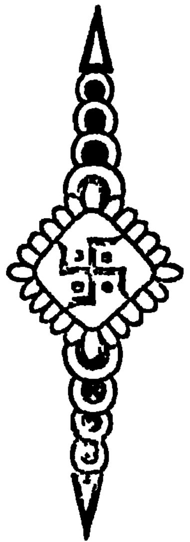


या विद्याधर के द्वारा अपने भवन में सोती हुई ही द्रौपदी का अपहरण कर लिया है, सर्वत्र खोज की गई ; पर कही भी नही मिल रही है। अब तुम्हीं खोज कर सकते हो। कृष्ण ने सस्मित कहा—पाँच पाण्डव जैसे पति एक पत्नी की रक्षा न कर सके। मै तो अकेला ही बत्तीस हजार की रक्षा करता हूँ। कुन्ती ने कहा— यह हास्यावसर नहीं है। शीघ्र द्रौपदी को खोज करो। कृष्ण वासुदेव द्रौपदी को खोजने का उपाय सोच ही रहे थे कि इतने में नारद मुनि आ गए और कृष्ण को चिन्तातुर देखकर पूछा—आज यादवेन्द्र चिंतित से क्यो दिखाई पड रहे है ? कुन्ती देवी कैसे आयीं थीं ? कृष्ण ने कहा आप देवर्षि है। आपने भ्रमण करते हुए कहीं द्रौपदी देखी है या नही ? उसका किसो ने अपहरण कर लिया ज्ञात होता है। नारद बोले—वह ऐसी ही दुष्टा थी, किसी भी तापस श्रमण योगी आदि को नहीं मानती थी। ऐसे दुष्टों पर जितना भी दुःख पडे उतना थोडा। मै तो उसे अच्छी तरह पहचानता भी नहीं ; किन्तु वैसी ही स्त्री एक बार धातकी खण्ड में अमरकङ्का के राजा पद्मनाभ की अशोकवाटिका में देखी थी ; परन्तु अच्छी तरह नहीं जानता। इतना कह कर नारदर्षि चले गये। कृष्ण समझ गये, यह सब इन्हीं की लीला है। कृष्ण पाण्डवों और सेना सहित अमर-कङ्का जाने को चले। अखण्ड प्रयाण करते हुए क्रमशः समुद्र तट तक आ पहुँचे। वहाँ तीन उपवास करके वासुदेव ने लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव का आराधन किया, देव ने प्रकट होकर कहा—किस कार्य के लिए मेरा आराधन किया है ? आपको जो कार्य हो कहिये। तब कृष्ण बोले—हमें धातकी खण्ड की अमरकङ्का नगरी में जाना है हमारी सेना को मार्ग दीजिये, हमें द्रौपदी को लाना है। देव ने कहा—इन्द्र की आज्ञा बिना मार्ग नहीं दिया जा सकता। यदि आपकी आज्ञा हो तो मै द्रौपदी को यहीं ले आऊँ ? और पद्मनाभ को नगरी सहित समुद्र में गिरा दूँ। श्रीकृष्ण बोले—हे देवानुप्रिय ! तुम ऐसे ही शक्तिशाली हो ; किन्तु हमारे केवल छः रथों को मार्ग दे दो, मै ही जाऊँगा और पद्मनाभ को इसका फल चखाऊँगा। तब देव ने



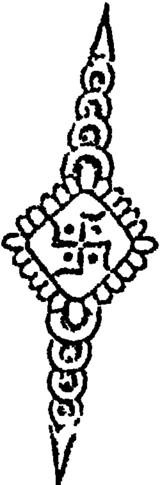
कल्पसूत्र
६८



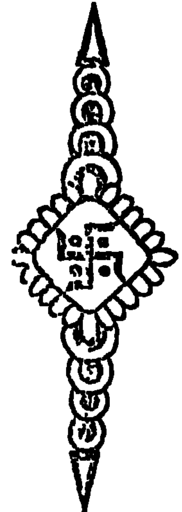


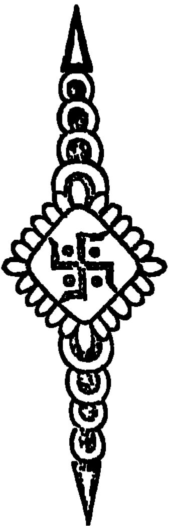
छः रथों को मार्ग दे दिया। कृष्ण पाण्डवों सहित अमरकङ्का के बाहिर एक उद्यान में ठहर गये और वहाँ से पद्मनाभ के पास दूत भेज कर कहलाया कि द्रौपदी को भेज दो। दूत ने पद्मनाभ से जाकर कहा—भरतक्षेत्र से श्री कृष्ण वासुदेव पधारे हैं, द्रौपदी को मेरे साथ भेज दीजिये, आपने पाण्डवो की पत्नी का अपहरण करके अच्छा नहीं किया! तथापि कोई बात नहीं द्रौपदी को मेरे साथ भेज दीजिये। यह सुनकर पद्मनाभ ने कहा—मै वापिस देने के लिये द्रौपदी को नहीं लाया, जाओ। अपने स्वामी से कह दो। मै द्रौपदी को अपने बल पर लाया हूँ, आप आगये हैं तो युद्ध के लिये तैयार हो जाइये! देर न करिये। मै भी क्षत्रिय हूँ। ऐसा कह कर दूत को अपमानित करके निकाल दिया। उस दूत ने श्री कृष्ण के पास आकर सारी बाते निवेदन की।

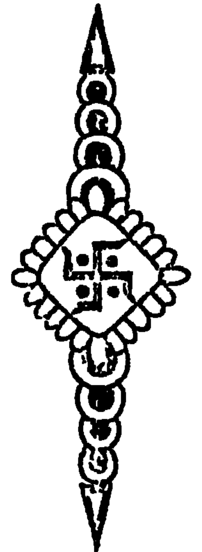
श्री कृष्ण ने सोचा—असाध्य रोग तीव्र ओषधि बिना नहीं मिटता ; अतः युद्ध के लिए शस्त्रादि से सज्जित होने लगे तब पाण्डव भी शस्त्र धारण कर रथ में चढ आ पहुँचे और बोले स्वामिन्? यह कार्य हमारा है, हम युद्ध करेंगे, यदि हम भागे तो पीछे से हमारी सहायता करियेगा। सुनकर श्री कृष्ण बोले—आप श्रेष्ठ योद्धा हैं; किन्तु इस अवसर पर निकली हुई आपकी वाणी पराजय की सूचक है। यह सुनकर भी पाण्डव श्री कृष्ण की आज्ञा से युद्ध करने चल दिये। पद्मनाभ भी बड़ी भारी सेना लेकर पाण्डवों के साथ युद्ध करने लगा। भवितव्यतावश पाण्डवों की पराजय हो गई, भागते हुए उन्होंने सिंहनाद किया। कृष्ण ने सिंहनाद सुन पांडवो की पराजय जान ली। रथ में बैठ शार्ङ्ग धनुष धारण कर अकेले श्री कृष्ण पद्मनाभ की सेना को रथ से ही मथने लगे। धनुष की टकार के शब्दमात्र से पद्मनाभ के सभी योद्धा भाग गये। कृष्ण के सामने से पद्मनाभ भी प्राण लेकर भाग छूटा और पुरमें जाकर नगर द्वार बन्द करवा बैठ गया। श्री कृष्ण क्रोधित हो सोचने लगे—यह बेचारा मुझे अपने दुर्ग का बल दिखला रहा है। अब तो मेरा नाम तब ही हरि कि मै हरि (सिंह) के समान इस पद्मनाभ रूप हाथी को मार दूं। ऐसा कह



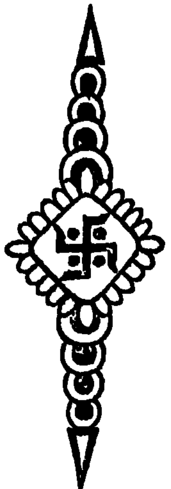
सिंह का रूप बना, एक हत्थड मात्र से ही सारा दुर्ग गिरा दिया। सारा नगर ऐसे हिल उठा मानों जोर का भूकम्प आ गया हो। समस्त भवन गिर पडे। श्री कृष्ण का ऐसा पराक्रम देख पद्मनाभ भयभीत हो द्रौपदी का शरण मे आकर प्रार्थना करने लगा—हे महासति! बचाओ! बचाओ। मुझे श्री कृष्ण से बचाओ। तब द्रौपदी बोली—अरे दुष्ट! मैंने पहले ही कहा था कि मेरी खोज करने कृष्णादि अवश्य आयगे। वे सब महा बलवान् है। अस्तु, श्री कृष्ण महासत्पुरुष है। यदि जीवित रहने की इच्छा करते हो तो मेरी कही बात मानो! स्त्री वेश धारण कर मुख मे तिनका ले मुझे आगे कर श्री कृष्ण के पास चलो। वे नम्र होने वाले पर क्रोध नही करते। ऐसा करने पर ही तुम जीवित बच सकते हो। अब जीवन का दूसरा उपाय नही है। तब पद्मनाभ ने वैसा ही किया। जब कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा तो श्री कृष्ण बोले—पद्मनाभ! तुम नही जानते थे ? कि यह कृष्ण की भाभी है क्या इसके लिए श्री कृष्ण नहीं आयेंगे ? किन्तु अन्धे मनुष्य शिर टकराने पर चेतते है। जाओ! जीवित छोड देता हूँ, अपने किये का फल भोगोगे। द्रौपदी ने तुम्हे जीवित छोड दिया। द्रौपदी को साथ ले पाण्डवों सहित श्रीकृष्ण वहाँ से रवाना हो गये। प्रसन्न हो पचजन्य शख से नाद किया। जिसे वहाँ के वासुदेव कपिल ने जो मुनिसुव्रत तीर्थंकर भगवान के समवसरण मे बैठे हुए थे, सुना। तीर्थंकर देव से पूछा—भगवन्। मेरा शख किसने बजाया ? क्या कोई नया वासुदेव उत्पन्न हो गया है ? तब भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी ने श्रीकृष्ण वासुदेव के धातकी खड में आने का कारण बतलाया। सुनकर तीर्थंकर भगवान् से आज्ञा लेकर कपिल वासुदेव श्रीकृष्ण से मिलने के उठकर शीघ्र समुद्र के किनारे आये। छ रथों को समुद्र में जाते हुये देखा। शंख के शब्द से कहा—हे मित्र! ठहरिये! ठहरिये! एकबार वापिस पधारिए ? मै आपके दर्शनार्थ आया हूँ। श्रीकृष्ण ने भी शंख में ही कहा—बन्धुवर! हम बहुत सा समुद्र उल्लंघन करके आ गये हैं, अब वापिस लौटना संभव नहीं। आप कृपा रखियेगा, स्नेह में वृद्धि करियेगा। ऐसा कहकर श्री कृष्ण आगे रवाना हो गये। कपिल वासुदेव

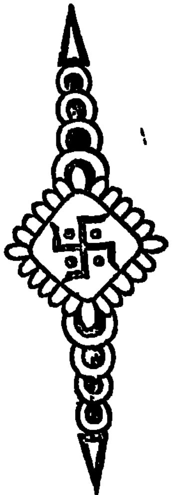






पद्मनाभ की निर्भर्त्सना करके अपनी राजधानी में चले गये। श्रीकृष्ण भी समुद्र मार्ग का उल्लंघन करके गङ्गा के तट पर स्थित हुए और लवण समुद्र के अधिपति देव के साथ बातें करने लगे। पांडवों से कहा—बन्धुओं। मै जब तक लवणाधिप के साथ बात करूँ, तब तक आपलोग नाव से गंगा पार कर के नाव पुनः मेरे लिए लौटा देना। पांडव द्रौपदी सहित नाव में आरोहण कर गगा पार जा पहुँचे और नावको छुपा कर देखने लगे कि श्रीकृष्ण भुजाओं से गगा तैर कर आते है या नहीं ? नाव नहीं भेजी। श्रीकृष्ण बहुत समय तक बैठे रहकर नाव की प्रतीक्षा करते रहे। जब नाव न आई तो चिन्तित हो गये कि पांडव कहीं डूब तो नही गये, अथवा नाव टूट तो नहीं गई। ऐसा विचार कर चार भुजाएँ बनाई। एक भुजा से सारथी सहित रथ को उठाया, दूसरी भुजा से शस्त्र लिए, तीसरी भुजा से घोडों को उठाया और चतुर्थ भुजा से गङ्गा नदी जो साढे बासठ योजन लम्बी थी, उसे तैरने लगे। इस प्रकार कृष्ण चार भुजाओं से गङ्गा तैरते हुये अत्यन्त खिन्न होकर बीच मे ही थक गये तब गङ्गा देवी ने प्रकट होकर श्रीकृष्ण की सहायता की। बीच में स्थल बनाया, वहाँ विश्राम लेकर पुनः स्वस्थ हो, गंगा पार के तट पर आ पहुँचे। वहाँ हँसते हुये पाडवों को नाव सहित देखकर श्रीकृष्ण वासुदेव अत्यन्त क्रुद्ध हुए। बोले—बन्धुओं! आपने मेरे लिए नौका क्यो नहीं भेजी ? पाडवों ने कहा—हमने आपका बल देखने की इच्छा से नाव नहीं भेजी थी। अब तो श्रीकृष्ण के क्रोध का पारा बहुत ऊँचा चढ गया—अरे। पद्मनाभ के सामने से तुम पाँचों ही भाग छूटे थे। मैने अकेले ही उसे परास्त किया और द्रोपदी लाकर आपको सौंपी, तब आपलोगो ने मेरा बल नहीं देखा। जो अब गगा तैरने में बल देखने को खड़े है। जाओ दुष्टों! मेरी आंखों से दूर हो जाओ! आप मेरे देश मे मत रहो। ऐसा कहकर अपनी गदा से पाँचों रथों को चूर्ण कर दिया और स्वय द्वारिका आ गये। उधर कुन्ती ने जब सुना कि श्रीकृष्णदेव ने रुष्ट होकर पांडवों को देश से निकाल दिया है तो वह श्रीकृष्ण के पास आई और अपराध क्षमा करने को प्रार्थना को। कृष्ण तो सत्पुरुष थे, पांडवों के क्षमा





गये। पाण्डवों को क्षमादान दिया। तब पाण्डवों ने
माँगने और कुन्ती की दुःखपूर्ण प्रार्थना से द्रवित हो गये। पाण्डवों को क्षमादान दिया। तब पाण्डवों ने कृष्ण की आज्ञा से जहाँ रथ तोड़े गये थे वहीं रथमर्दनपुर नामक नगर बसाया, कितने ही उस नगर को पाण्डुमथुरा कहते हैं। पाण्डव कृष्ण की सेवा करने लगे।

कृष्ण वासुदेव धातकी खण्ड में गये, कपिलवासुदेव के साथ शङ्ख से वार्तालाप किया। यह भी पाँचवाँ आश्चर्य हुआ।

छट्ठा आश्चर्य

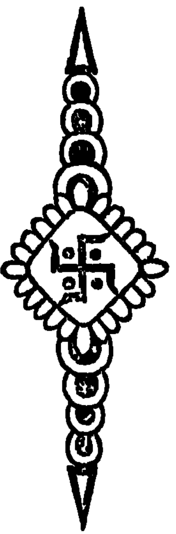
सूर्य चन्द्र मूल विमान सहित आये

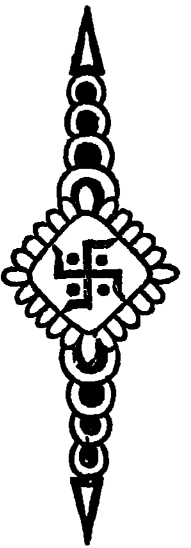
कौशाम्बी नगरी में महावीर प्रभु का समवसरण हुआ। वहाँ सूर्य और चन्द्रमा अपने मूल-विमान में बैठकर आये। क्योंकि कोई इन्द्र या देव-देवी मूल विमान सहित नहीं आते, ये आये; अतः आश्चर्यजनक घटना हुई।

सातवाँ आश्चर्य

युगलिक नरक-गमन

कौशाम्बी नगरी में वीरनामक कौलिक रहता था। उसकी पत्नी वनमाला अत्यन्त रूपवती थी। राजा उस पर मोहित हो गया वनमाला भी राजा को देखकर मोहित हो गई। प्रधानमन्त्री ने दूती के द्वारा वनमाला को अन्तःपुर में बुला लिया। राजा वनमाला के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। उधर वीर कौलिक वनमाला के विरह में उन्मत हो, हा। वनमाला !! हा। वनमाला !! रटता हुआ नगर के बडे छोटे मार्गों में भटकने लगा। एक बार वर्षा ऋतु में राजा और वनमाला एक झरोखे में बैठे हुए नगर की शोभा और वर्षा का आनन्द ले रहे थे। वीर कौलिक को इस प्रकार भटकते और वनमाला को रटते देख कर



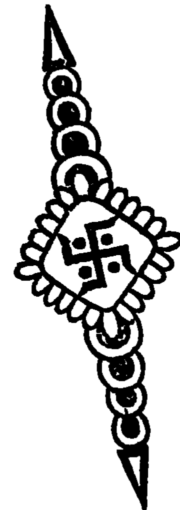


राजा को पश्चात्ताप होने लगा—हा ! मुझ पापी ने परस्त्री का अपहरण कर लिया ! वनमाला ने भी विचार किया—हा ! मुझ पापिनी ने ऐसे स्नेही पति को "जो मेरे विरह में पागल हो गया है" उसे छोड़ दिया। हम दोनों की क्या गति होगी ? इस प्रकार पश्चात्ताप करते हुए उन दोनों पर दैवयोग से बिजली गिर पड़ी। दोनों ही शुभध्यान से मरकर हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिक हुए। वीर कौलिक भी उन्हें मृत सुन कर ठीक हो गया और तापस बन गया। मर कर तप के प्रभाव से किल्विषी देव हुआ। अवधिज्ञान से राजा और वनमाला को युगलिक रूप में जानकर मन में विचार किया—हुँ ! ये युगलिये मर कर देव बनेंगे ! 'ये मेरे शत्रु देव बनें' ? यह मै सहन नहीं कर सकता ! ऐसा सोचकर उन युगलिक बालकों को उठाकर चम्पानगरी में—जहाँ का राजा पुत्र रहित ही मर गया था और प्रजा आदि सर्व-चिन्तित थे कि किसको राजा बनायें ? वहाँ ले आया और अमात्यादि सर्वलोकों को सौंप दिया। और सबको सिखा दिया कि मै ये कल्पवृक्ष दे रहा हूँ, जब भूख लगे तो इनके फलों में मांस मिलाकर इन्हे भोजन कराना और इनसे मृगया—शिकार करवाना ! मन में जाना मांस-भक्षण करने से ये दोनों नरक में चले जायेंगे तब मेरा प्रतिशोध (बदला) पूर्ण होगा। उनका नाम हरि हरिणी बतला कर देव अपने स्थान पर चला गया। देव के आदेशानुसार लोको ने वैसा ही किया। उन युगलिकों से हरिवंश कुल की उत्पत्ति हुई। युगलिक मर कर देव ही बनते हैं ; पर ये मांस भक्षणादि के कारण नरक में गये। यह आश्चर्यजनक अनहोनी घटना घटित हुई।

आठवाँ आश्चर्य

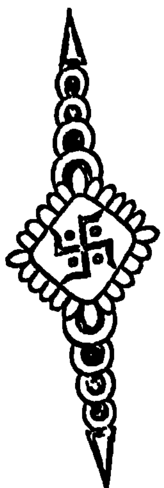
चमरेन्द्र का उत्पात

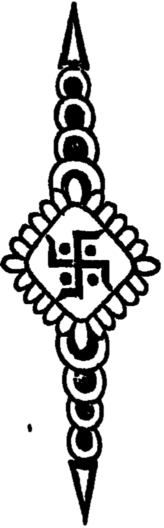
इसी भरतक्षेत्र में विभेल सन्निवेश में पूरण नामक सेठ रहता था। वह तापस बन गया और बेले २ पारणा करने लगा। पारणा के दिन चार कोने वाले पात्र में भिक्षा लेता था। प्रथम कोने में आई हुई भिक्षा

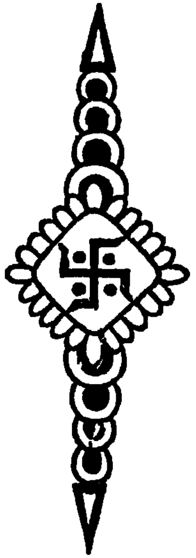


जलचर-मीन आदि जन्तुओं को देता था, दूसरे कोने की काक आदि पक्षियों को, तीसरे में आई हुई अभ्यागत तपस्वियो को और चौथे कोने में आये हुये भिक्षान्न को इक्कीस बार पानी से धोकर स्वयं खाता था। बारह वर्ष तक ऐसा तप किया। मरकर तप के प्रभाव से चमरचञ्चा नगरी का स्वामी चमरेन्द्र (भुवनपति इन्द्र) हुआ।

अवधिज्ञान से जानने देखने लगा, ठीक अपने मस्तक की सीध में सौधर्मेन्द्र के चरण देखे ; देखते ही क्रोधावेश में आ गया और अपने अमात्य (मन्त्री) स्थानीय सभी देवों को बुलाकर पूछा—देवों ! यह कौन दुष्ट, अप्रार्थ्य वस्तु की प्रार्थना (इच्छा) करने वाला मेरे शिर पर पाँव रखकर बैठा है ? तब वे देव बोले—स्वामिन् ! यह स्थिति अनादि कालीन है, इसमें रोष करने जैसी कोई बात नहीं। आप सदृश इन्द्र पहले भी बहुत से हुये हैं। उनके ऊपर भी इसी प्रकार ऊपरस्थित इन्द्र के पाँव रहते आये हैं ; अतः क्रोध न करिये। तब भी चमरेन्द्र ने उनकी बात नहीं मानी और क्रोध से काँपता हुआ इन्द्र अपनी आयुधशाला में आकर परशु शस्त्र हाथ में ले, सौधर्म देवलोक में जाने की इच्छा की। असुरकुमार देवों ने बहुत समझाया पर न माना और बडा भयंकर रूप बनाकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर सुसुमारपुर में कायोत्सर्ग स्थित थे, वन्दना कर मन में शरण ले ऊपर गया। वहाँ सौधर्मावतंसक विमान में जाकर एक लाख योजन प्रमाण के रूप से एक पाँव से सौधर्मावतंसक विमान की पद्मवर वेदिका को आक्रान्त कर, (अर्थात् उस पर पाँव रख) दूसरे पाँव से सौधर्मसभा को आक्रान्त किया और उच्च स्वर से बोला—अरे देवों ! कहाँ है वह दुष्ट ! तुम्हारा इन्द्र जो मुझ पर पाँव रख बैठता है। वह नीच अप्रार्थ्य वस्तु का प्रार्थी (इच्छुक) कृष्णचतुर्दशी या अमावस्या में उत्पन्न हुआ दिखता है ! उस दुष्ट को मै इस परशु से मारूंगा इस प्रकार देवों को डराने लगा। मुख से अग्नि की ज्वालाएँ निकालता हुआ, लम्बे-लम्बे औष्ठ, कूप जैसा गला, बिल जैसी नासिका, अग्निके से प्रज्वलितनेत्र, सूप जैसे दोनों कान, कुशवत् लम्बे तीखे दाँत बना लिए।







गले में सर्प धारण किये, हाथों में बिच्छू लटका लिए, कहीं शरीर में चूहे, कहीं नेवले आदि जन्तु और गोहे आभूषण स्वरूप धारण कर रखे थे। अत्यन्त काला वर्ण (रंग) था। इस प्रकार का भयङ्कर रूप देख कर सभी देव और देवाङ्गनाएँ भयभीत हो गये। कोलाहल सुनकर देवराज इन्द्र आये और देखा तो जाना कि यह तो चमरेन्द्र है। मुझे मेरे सिंहासन से गिराने आया है। तब क्रोधित हो हाथ में वज्र लेकर धमकाया और वज्र फेका। अग्नि ज्वालाएँ उगलते हुए वज्र को आता देखकर भयभीत चमरेन्द्र भागा। भागते हुए चमरेन्द्र का शिर नीचा और पाँव ऊँचे हो गए। पीछे-२ वज्र और आगे-२ चमरेन्द्र तीव्रगति से नीचे आ रहे थे। स्थान-२ पर चमरेन्द्र के उक्त आभूषण गिर रहे थे। चमरेन्द्र की नीचे जाने की शक्ति अधिक थी और वज्र की ऊपर जाने की। अतः चमरेन्द्र को वज्र नहीं लगा। चमरेन्द्र भय से अपना शरीर संकुचित करता हुआ जहाँ भगवान महावीर प्रभु कायोत्सर्ग करके खड़े थे; वहाँ आया और वज्र से डरा हुआ भगवान् के चरण मध्य में शरण लेकर रहा। वज्र भगवान् को प्रदक्षिणा देने लगा।

उधर सौधर्मेन्द्र ने सोचा—यह चमरेन्द्र अवश्य किन्हीं का मन में शरण लेकर आया होगा। मेरा वज्र उसके पीछे-पीछे जायगा। किसी मुनि या तीर्थंकर भगवान् के बिम्ब को मेरा वज्र विनष्ट न कर दे। तत्काल इन्द्र भी पीछे-२ आ गये और वज्र को पकड़ लिया। चमरेन्द्र को भगवान् के चरणों में शरण लिया देख अपना स्वधर्मी जान छोड़ दिया। श्रमण भगवान की स्तुति करके नमस्कार कर अपराध की क्षमा मांग चमरेन्द्र के साथ मैत्री करके इन्द्र अपने स्थान पर चले गये। उधर चमरेन्द्र भी अपने स्थान पर चला गया।

नवम् आश्चर्य

एक समय में १०८ का सिद्धिगमन

रिसहो रिसहस्ससुया, भरहेण विवज्जिया नवनवई। अट्ठेन भरहस्ससुया, सिद्धिगया एग समयंमि॥

अर्थ :—भगवान् ऋषभदेव, ऋषभदेव के निन्याणवें पुत्र और आठ भरत चक्रवर्ती के पुत्र—ये सभी १०८ उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाले एकही समय में सिद्धिगति को प्राप्त हुए। एक समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले इतने सिद्ध हुए यह आश्चर्यजनक बात हुई।

दशवाँ आश्चर्य

नववें तीर्थंकर श्री सुविधिनाथ भगवान के मुक्तिगमन पश्चात् कितनाक समय व्यतीत हो जाने पर साधुओं का विच्छेद हो गया। लोको ने सर्वत्यागी मुनिजनों के अभाव में असंयमियों की पूजा वन्दना और मान्यता की। जब अनन्त अवसर्पिणियाँ उत्सर्पिणियाँ व्यतीत हो जाती हैं तब दस आश्चर्य होते हैं। अब कौन-२ से तीर्थकरों के शासन में कौन-२ से आश्चर्य हुए, उन्हे कहते हैं :—

रिसहे अट्ठहिय सयसिद्धं, सीयरु जिणंमि हरिवंसो। नेमिजिणे अमरकंकागमणं कण्हस्स संपन्नं ॥१॥
इत्थी तित्थं मल्ली पूआ असंजयाण नवम जिणे। अवसेसा अच्छेरा वीर जिणन्दस्स तित्थम्मि ॥२॥
सिरि रिसह सीयलेसु एक्केक्कं मल्लिनेमिनाहेयं। वीर जिणंदे पंचओ, एगं सव्वेसु पाएणं ॥३॥

१. ऋषभदेव भगवान् के समय में १०८ उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध हुये। २. भगवान् शीतलनाथ के समय में हरिवश कुल की उत्पत्ति हुई। ३. नेमिनाथ भगवान् के समय में कृष्ण वासुदेव का अमरकङ्का में गमन हुआ। ४. मल्लिनाथ स्त्री तीर्थङ्कर हुए। ५. सुविधिनाथ भगवान् के मुक्ति गमनानन्तर असंयतियों की पूजा हुई। ६. गर्भापहरण। ७. चमरेन्द्र का उत्पात। ८. प्रथम देशना का निष्फल होना। ९. सूर्य-चन्द्रमा का मूल विमान सहित समवसरण में आगमन। १०. गोशाला द्वारा समवसरण में तेजोलेश्या द्वारा दो मुनियों का घात और भगवान् को घोर तेज से रक्तातिसार होना। ये ५ आश्चर्य भ० महावीर के समय में हुए।

कल्पसूत्र
७६

नाम गुत्तस्स वा कम्मस्स, अक्खोणस्स अवेइअस्स, अणिज्जिण्णस्स उदएणं जं णं अरिहंता वा, चक्क-बल वासुदेवा वा अन्तकुलेसु वा, पंत-तुच्छ-किविण-दरिद्द-भिक्खाग कुलेसु वा आयइंसु वा ३ नो चेव णं जोणी जम्मण निक्खमणेणं निक्खमिंसु वा ३ ॥१३॥

देवेन्द्र ने हरिणैगमेषि देव से कहा—हे देवानुप्रिय ! नाम गोत्र कर्म का क्षय न होने से, न भोगने से, निर्जीण न होने से उसका उदय होने पर अर्हन् चक्री बलदेव वासुदेव अन्तप्रान्त तुच्छ कृपण दरिद्र भिक्षुक आदि कुलों में आये हैं, आते हैं, भविष्य में भी आवेंगे; किन्तु उनका जन्म नहीं होता।

अयं च णं समणे भगवं महावीरे इहेव जंबूदीवे दीवे भारहे वासे माहणकुंडग्गामे नयरे उसभदत्त माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥२४॥

ये श्रमण भगवान् महावीर यहाँ जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर में कोडालस गोत्र वाले ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी जालंधर गोत्रवाली देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षी में गर्भ रूप से उत्पन्न हुए हैं।

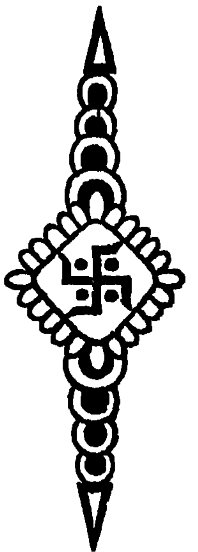
तं जीयमेयं तीय-पच्चुपन्न-मणागयाणं सक्काणं देविंदाणं, देवराईणं, अरिहंते भगवंते तहप्पगारेहिंतो अंतकुलेहिंतो पंत तुच्छ-किविण-दरिद्द-भिक्खाग जाव माहण कुलेहिंतो, तहप्पगारेसु उग्गकुलेसु वा, भोगकुलेसु वा, रायन्न नाय खत्तिय इक्खाग हरिवंस कुलेसु वा अन्नयरेसु वा तहप्पगारेसु विसुद्धजाइकुल वंसेसु साहराविक्तए ॥२५॥

अतः सभी अतीत वर्त्तमान और भावी शक्रों देवेन्द्रों देवराजों का यह जीत (आचार-कर्त्तव्य) है कि अरिहंत भगवान् को तथा प्रकार के अन्त प्रान्त तुच्छ कृपण दरिद्र भिक्षुक ब्राह्मणादि कुलों से तथा प्रकार के उग्र भोग राजन्य ज्ञातादि क्षत्रियकुली में इक्ष्वाकु हरि आदि वंशों में अथवा तथा प्रकार के विशुद्ध जाति कुल वंशादि में संहरण करें।

तं गच्छ णं तुमं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं माहणकुंड गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालसगुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणोए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छोओ खत्तिय-कुंडगामे नयरे नायाणं खत्तियाणं सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासवगुत्तस्स भारियाए तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि। जे वि य णं से तिसलाए खत्तिया-णोए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणोए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहराहि, साहरित्ता मम एयं आणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणाहि ॥२६॥

अतः हे देवानुप्रिय! तुम जाओ! श्रमण भगवान् महावीर को ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगरसे कोडालस गोत्रीय ऋषभदत्त ब्राह्मण की भार्या जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षी से क्षत्रियकुण्ड ग्रामनगर के ज्ञातक्षत्रिय काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ नृप की पत्नी वासिष्ठ गोत्रीया त्रिसलारानी की कूक्षी में गर्भ रूप से संहरण करो (ले जाओ) संहरण करके मुझे अवगत करो (अर्थात् मेरी आज्ञा पालन करके मुझे कार्य हो जाने की सूचना दो)।

तए णं से हरिणेगमेसी पायत्ताणाहिवई देवे सक्केणं, देविंदेणं देवरन्ना एवं वुत्ते समाणे हट्ठे, जाव-हयहियए करयल-जाव-त्ति कट्टु एवं जं देवो आणावेइत्ति। आणाए विणयेणं वयणं



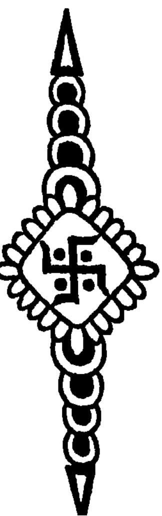
पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता ॥

तदनन्तर वह हरिणैगमेषी पदाति सेनाका अधिपति देव शक्रेन्द्र देवेन्द्र देवराज के ऐसा कहने पर हृष्ट-तुष्ट यावत् अत्यन्त प्रसन्न होकर दोनों हाथों से अञ्जलि करके—जैसी देव की आज्ञा ! आज्ञा को वचनों को सुनता है; सुनकर शक्र देवेन्द्र देवराज के पास से प्रस्थान करता है। वहाँ से प्रस्थान करके—

उत्तर पुरत्थिमं दिसिभागं अवकम्मइ, अवक्कमइत्ता वेउव्विअ समुग्घाएणं समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दडं निसिरइ। तंजहा-रयणाणं, वइराणं, वेरुलिआणं, लोहियक्खाणं मसारगल्लाणं, हंसगब्भाणं, पुलयाणं, सोगंधियाणं, जोइरसाणं, अंजणाणं, अंजणपुलयाणं, रयणाणं, जायरूवाणं, सुभगाणं, अंकाणं फलिहाणं, रिट्ठाणं अहा बायरे पुग्गले परिसाडेइ परिसाडित्ता, अहासुहमे पुग्गले परिआदियइ ॥२७॥

वह हरिणैगमेषी देव उत्तरपूर्व दिशा के बीच में अर्थात् ईशान कोण में आकर वैक्रियक समुद्घात करता है। वैक्रियक शरीराक्रान्त जीव प्रदेशों को निकालना समुद्घात कहलाता है। संख्यात योजन लम्बा दण्ड—जीव प्रदेशों कर्म पुद्गल समूह रूप निकलता है। वह दण्ड रत्नमय होता है। उसमें भाँति-भाँति रत्न जैसे—वज्र-हीरा, वैडूर्य, (लशनिया) लोहिताक्ष, मसारगल्ल हंसगर्भ पुलक सौगन्धिक ज्योतिरस अञ्जन अञ्जनपुलक, जात रूप अङ्क स्फटिक आदि होते हैं। इन रत्नों के असार भाग को हटा कर सार भाग लेकर देव उत्तर वैक्रिय रूप धारण करता है। मूल रूप जो भवधारणोय है वहीं रखता है। नवीन रूप बना कर मनुष्य लोक में आता है उसी प्रकार हरिणैगमेषो देव भी—

परियादित्ता दुच्चंपि वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता उत्तर वेउव्विय रूवं



विउव्वइ, विउव्वित्ता उक्किट्ठाए तुरियाए, चवलाए, चंडाए, जयणाए, उद्धूयाए, सिग्घाए दिव्वाए देव गइए वोईवयमाणे वोईवयमाणे, तिरियं असंखिज्जाणं दीव समुद्दाणं मज्झं मज्झेण जेणेव जंबूद्दीवे दीवे भारहेवासे, जेणेव माहणकुंडगामे नयरे, जेणेव उसभदत्तस्स माहणस्स गेहे, जेणेव देवाणंदा माहणो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता ॥

यथा सूक्ष्म परमोत्तम रत्नों का अंश लेकर दूसरी बार वैक्रियसमुद्घात करके उत्तर वैक्रियक रूप बना कर उत्कृष्ट त्वरित चपल चण्डादि गति से प्रयाण[1] करता हुआ हरिणैगमेषी देव दिव्य देवगति से क्षणमात्र में असंख्यात द्वीप समुद्रों को उल्लंघन करता हुआ जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में दक्षिणार्द्ध के मध्य खण्डवर्त्ती क्षत्रियकुण्ड के उपनगर ब्राह्मणकुण्ड ग्राम में जहाँ ऋषभदत्त ब्राह्मण का निवास-गृह था, जहाँ देवानन्दा ब्राह्मणी शय्या में सो रही थी; वहाँ आया और आकर दिव्य अवधिज्ञान से देखा।

---

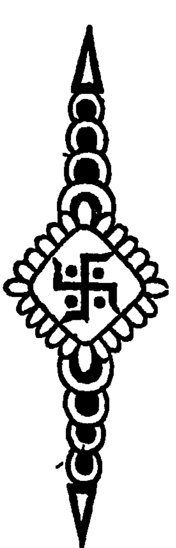
१ दिव्य देवगतियों चालों का वर्णन

(१) चण्डागति :—दो लाख, तियासी हजार पाँच सौ अस्सी योजन छह कला प्रमाण अर्थात् एक पादान्तराल (पाँवड़े) में इतना क्षेत्र उल्लंघन करता है।

(२) चपलागति :—चार लाख बहत्तर हजार, छह सौ तेवीस योजन का एक पादान्तराल होता है।

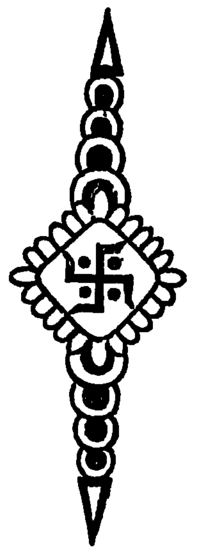
(३) यतनागति :—छह लाख, इकसठ हजार, छह सौ छियासी योजन चौवन कला इतना क्षेत्र एक पादान्तराल में पार करता है।

(४) वेगवती गति :—आठ लाख पचास हजार, सात सौ चालीस योजन अट्ठारह कला, इतना क्षेत्र एक पादान्तराल में उल्लंघन करता है। इन चालोंसे चलने वाला भी छह मास तक चले फिर भी मनुष्य लोक में नहीं पहुँच सकता।



आलोए समणस्स भगवओ महावीरस्स पणामं करेई, करित्ता देवाणंदा माहणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलइत्ता, असुहे पुग्गले अवहरइ, अवहरइत्ता, सुहे पुग्गले पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अणुजाणउ मे भयवं ति कट्टु समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं दिव्वेणं पहावेणं करयल संपुडेणं गिण्हइ, समणं भगवं महावीरं जाव करयल संपुडेणं गिण्हित्ता, जेणेव खत्तियकुंडग्गामे नयरे, जेणेव सिद्धत्थस्स खत्तियस्स गेहे, जेणेव तिसला खत्तियाणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिसलाए खत्तियाणीए सपरिजणाए ओसोवणिं दलइ, ओसोवणिं दलइत्ता असुहे पुग्गले अवहरइ अवहरित्ता, सुहे पुग्गले पक्खिवइ पक्खिवइत्ता, समणं भगवं महावीरं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं तिसलाए खत्तियाणीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ, साहरित्ता जे वियणं से तिसलाए खत्तियाणीए गब्भे तं पि य णं देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरइ साहरित्ता, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ॥२८॥

देखते ही हरिणैगमेषी देव ने श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया। तदनन्तर परिजनसह देवानन्दा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निद्रा से सुधि रहित करके अशुभ पुद्गलों का अपहरण करके शुभ पुद्गलों का प्रक्षेपण किया और हे भगवन्! आज्ञा दीजिए! ऐसा कह कर अपनी दिव्य देवशक्ति से अव्याबाध भगवान् को बड़ी सावधानी से करतल सम्पुट में ग्रहण करके क्षत्रियकुण्ड ग्राम निवासी सिद्धार्थ राजा के भवन में जहां महाराज्ञी त्रिसला का शयनगृह था, वहाँ आया और तत्रस्थ सर्व परिजनों सहित



त्रिसला रानी को अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित करके अशुभपुद्गलों को निकाल कर शुभपुद्गलों का प्रक्षेप किया बडी सावधानी से भगवान् को गर्भाशय में रखकर त्रिसला रानी के पुत्रीरूप गर्भ को ग्रहण करके देवानन्दा की कूक्षि में स्थापन किया और जिधर से आया था, उधर रवाना हो गया।

ता ए उक्किट्ठाए, तुरियाए चवलाए चंडाए जयणाए उद्धुयाए सिग्घाए दिव्वाए देवगइए तिरियं असंखि ज्जाणं दीव समुद्दाणं मज्झं मज्झेणं जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं उप्पयमाणेहि उप्पयमाणे जेणामेव सोहम्मेकप्पे सोहम्मवडिंसिगे विमाणे सक्कंसि सीहासणंसि सक्के देविंदे देवराया, तेणामेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एयं आणंतियं खिप्पामेव पच्चप्पिणत्ति ॥२६॥

उसी प्रकार की उत्कृष्ट त्वरित चपल चण्डा जयणादि गतियों से भी विशेष दिव्यदेव गति से तिर्यग्लोक के असख्यद्वीप समुद्रादि उल्लंघन करके उड़ता हुआ जहा सोधर्म देवलोक सौधर्मावतसक विमान मे शक्र का सिंहासन है और इन्द्र महाराज स्वयं विराजमान हैं, वहाँ उपस्थित हुआ और शक्रेन्द्र को अपने कार्य का समस्त विवरण दिया इन्द्र महाराज ने अपने पदाति सेनाधिपति हरिणैगमेषी देव को पारितोषिक आदि से सत्कार करके उसे विदा कर दिया।

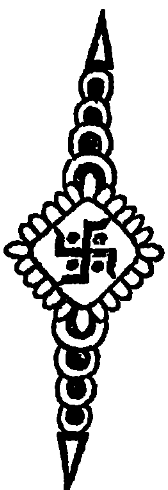
तेणं काले णं, तेणं समये णं समणे भगवं महावीरे तिन्नाणोवगए आवि हुत्था तं जहा-साहरिज्जिस्सामि त्ति जाणइ, साहरिज्जमाणे न जाणइ, साहरिए त्ति जाणइ ॥३०॥

उस काल उस समय में अर्थात् इसी अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में जबकि हरिणैगमेषी देव ने श्रमण भगवान् महावीर का संहरण किया उस समय भगवान् तीनज्ञान—मति, श्रुत और अवधिज्ञान युक्त

थे। "यहाँ से मै संहरण किया जाऊँगा" यह जानते थे। किन्तु जिस समय संहरण किया जा रहा था न जान सके क्योंकि वह कार्य शीघ्रता से अल्प समय में किया गया था। त्रिसला रानी के गर्भाशय में रख देने पर जाना कि मै यहाँ हरिणेगमेषी देव द्वारा ले आया गया हूँ।

तेणं कालेणं तेणं समयेणं समणे भगवं महावीरे जे से वासाणं तच्चे मासे, पंचमे पक्खे, आसोय बहुले, तस्सणं आसोय बहुलस्स तेरसी पक्खेणं, बायासीइ राइंदियेहिं विइक्कंतेहिं, तेयासोइमस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स हियाणुकंपएणं देवेणं हरिणेगमेसिणा सक्कवयण संदिट्ठेणं माहणकुंडग्गामाओ नयराओ उसभदत्तस्स माहणस्स कोडालस्स गुत्तस्स भारियाए देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिओ खत्तियकुंडग्गामे नयरे नायाणं खत्तिआणं सिद्धत्थस्स खत्तिअस्स कासवगुत्तस्स भारियाए, तिसलाए खत्तिआणीए वासिट्ठस्सगुत्ताए, पुव्व रत्तावरत्त काल समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं अव्वाबाहं अव्वाबाहेणं कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए ॥३१॥

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर, जबकि वर्षाऋतु का तृतीय मास अर्थात् आश्विन का महिना था, कृष्णपक्ष की त्रयोदशी थी। देवानन्दा के गर्भ में ८२ दिन व्यतीत हो चुके थे। ८३वाँ दिन वर्त्तमान था। तब हितानुकम्पा वाले भक्तदेव हरिणैगमेषी ने इन्द्रदेव की आज्ञा से भगवान को भक्ति से ब्राह्मणकुण्ड ग्राम नगर से देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षि से लेकर त्रिसला महारानी की कूक्षी में आधीरात के समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चन्द्रमा का योग आने पर सुख से संक्रमित किया।



जं रयणी च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणीए जालंधरस्स गुत्ताए कुच्छिओ तिसलाए खत्तिआणोए वासिट्ठस्सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणी च णं सा देवाणंदा माहणो सयणिज्जंसि सुत्तज्जागरा ओहीरमाणी ओहीरमाणी इमेएया रूवे ओराले, कल्लाणे, सिवे धन्ने, मंगल्ले सस्सिरोए चउद्दस महासुमिणे तिसलाए खत्तोयाणोए हडेत्ति पासित्ता णं पडिबुद्धा, तं जहा—गय० ॥१॥ ॥३२॥

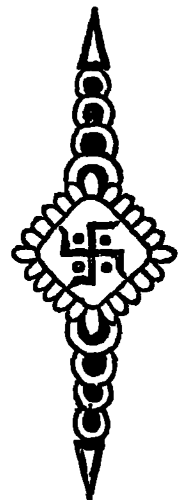
जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर जालंधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कूक्षी से त्रिसलाक्षत्रियाणी की कूक्षि में ले जाये गये उस रात्रि मे शय्या पर किञ्चित् सुप्त किञ्चित् जागृत देवानन्दा ने पूर्वोक्त उदार कल्याणमय शिव धन्य मागलिक शोभायुक्त चतुर्दश महास्वप्नों को त्रिसला रानी द्वारा हरण किये जाते देखे। और घबरा कर जग गई।

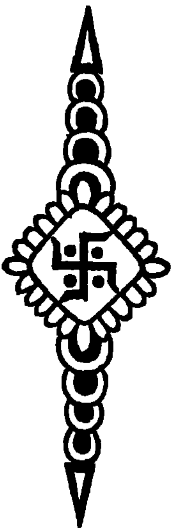
उधर सिद्धार्थ राजा के यहां शयन भुवन में सोती हुई त्रिसला रानी ने चवदह महास्वप्न देखे। वे किस प्रकार के थे, इत्यादि समस्त वर्णन तृतीय वाचना में होगा।

—इति गर्भापहार वर्णन—

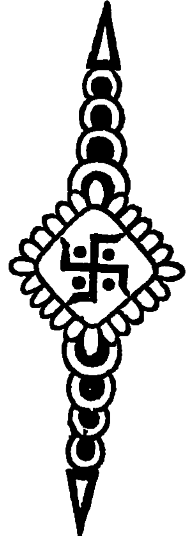
श्री कल्पसूत्र वर नाम महागमस्य गूढार्थभाव सहितस्य गुणाकरस्य।
लक्ष्मी निधेर्विहित वल्लभकामितस्थ व्याख्यानमाप परिपूर्त्तिमिह द्वितीयम्।

॥ द्वितीय व्याख्यान सम्पूर्ण ॥





तृतीय व्याख्यान

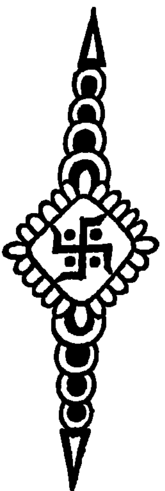


तीर्थङ्कर भगवान् श्रीमद् महावीर प्रभु के शासन में अनुपम मंगल श्रेणियों को प्रकट करने वाले श्री पर्यूषण पर्वाधिराज के आने पर श्रीसंघ के समक्ष श्री कल्पसूत्र का प्रवचन होता है। श्री कल्पसूत्र में तीन अधिकार हैं। प्रथम अधिकार में जिन चरित्र, दूसरे में स्थविरावलि और तीसरे में साधुसमाचारी है। द्वितीय व्याख्यान में महावीर प्रभु का च्यवन कल्याणक और गर्भापहार कल्याणक का वर्णन किया गया। अब तृतीय व्याख्यान में त्रिसला महारानी ने चवदह महास्वप्न देखे उनका वर्णन सूत्रकार श्री भद्रबाहु स्वामी इस प्रकार करते हैं :—

जं रयणो च णं समणे भगवं महावीरे देवाणंदाए माहणोए, जालंधरस्सगुत्ताए कुच्छिओ तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठस्सगुत्ताए कुच्छिंसि गब्भत्ताए साहरिए, तं रयणी च णं सा तिसला खत्तियाणी तं सि तारिसगंसि वासघरंसि अब्भिंतराओ सचित्तकम्मे, बाहिराओ दूमियघट्ठमट्ठे विचित्त-उल्लोयचित्तिअतले, मणिरयणपणास अंधयारे, बहुसमसुविभत्त-भूमिभागे, पंचवन्न सुरस सुरभिमुक्क पुप्फपुंजोवयार कलिए, कालागुरु पवर-कुंदरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत धूव मवमघंत गंधु-द्धुयाभिरामे, सुगंधवरगंधिए गंधवट्टीभूए।

जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर देवानदा की कूक्षि से त्रिसला की कूक्षि में गर्भरूप से सक्रमित किये गये, उस रात्रि में त्रिसला ने जिस शयनकक्ष में शयन करते हुए चवदह महास्वप्न देखे थे, उस शयन-कक्ष का स्वरूप बतलाते है।

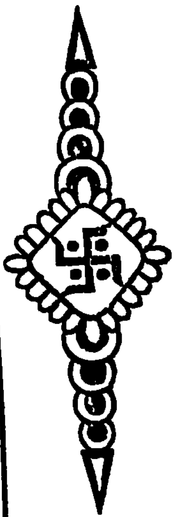
शयन कक्ष की भित्तियाँ अन्दर की ओर नाना प्रकार के सुन्दर चित्रों से चित्रित थी। बाह्य भाग भी अत्यन्त श्वेत और कोमल पाषाणों से घोट कर चिकना और चमकदार बनाया हुआ था। ऊपर छत के

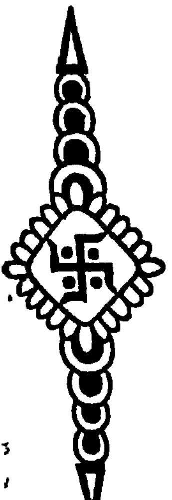


मध्य में सुन्दर सुचित्रित चन्द्रोपक-चँद्रवे बँधे हुये थे, चन्द्रकान्तादि मणियों और वज्रादि रत्नों से अन्धकार प्रणष्ट हो रहा था। गृहाङ्गण ऊँचा नीचा न होकर सुवर्ण के थाल के समान सम था। पंचवर्ण के सरस सुगन्धि बिखेरने वाले पुष्पपुञ्जों से शोभायमान था—अर्थात् गुलदस्तों में सुगन्धित पुष्पों के गुच्छे रखे हुए थे। धूपदानों में सुगन्धित धूप-कालागुरु कृष्णागरु चीड सेल्हारस चन्दनादि से बना हुआ दशांग धूप जल रहा था। जिससे भवन महक रहा था। मानो कस्तूरी कर्पूर व केशर आदि की गुटिका ही हो ऐसा सुगन्धित हो रहा था। ऐसे सुन्दर सुचित्रित और सुरभित शयनकक्ष में—त्रिसला महाराज्ञी जिस शय्या पर निद्राधीन थी उस शय्या का वर्णन इस प्रकार है :—

तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि सालिंगण वट्टिए उभओ विब्बोअणे, उभओ उन्नए, मज्झेण य गंभीरे, गंगापुलिण वालुअ उद्दाल सालिसए, ओ अविय खोमिअ-दुग्गुल्लपट्ट पडिच्छन्ने सुविरइ अ रयत्ताणे, रत्तंसुयसंवुए, सुरम्मे, आईणगरूअ-बूर-णवणीअ तूलफासे, सुगंधवर कुसुमचुन्न सयणोवयार कलिए, पुव्वरत्ता-वरत्तकाल समयंसि सुत्तजागरा ओहीरमाणी, ओहीरमाणो इमे एयारूवे ओराले, कल्लाणे जाव चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा, तं जहा—

उस प्रकार तादृश अवर्णनीय ऐश्वर्यशालियों के शयन करने योग्य पल्यंक पर जिसकी ईसें और उपले स्वर्णमय थे और प्रवालमय पाये थे। रेशमी डोरी से चित्रविचित्र भाँति से ग्रथित (बुना हुआ) था और जिस पर हंस की पाँखों के रोमों तथा अर्क तूल से भरा हुआ कोमल विस्तर (गद्दा) विछा हुआ था। जो शरीर प्रमाण दीर्घ गण्डोपधान (तकियों) सहित दोनों ओर से ऊँचा था क्योंकि शिर और पाँयताने तकिये लगे हुये थे। बीच में गहरा था ! गंगा के किनारे की बालु में पाँव रखने से जैसे पाँव नीचे धँस जाता हे वैसे ही शय्या पर शयन करने वालों को अनुभव होता था। अच्छे सुन्दर एकपट्ट वाले क्षौम-रेशमी वस्त्र से—रज-





स्त्राण से आच्छादित रहती थी, लाल रंग के वस्त्र से बनी हुई मच्छरदानी लगी हुई थी। सुरम्य चर्ममय वस्त्र रूई-बूरो (वनस्पति विशेष) नवनीत व तूल के तुल्य कोमल स्पर्शवाली, श्रेष्ठ सुगन्धित पुष्प और चूर्ण से शयनोपचार कलित—अर्थात् सुरभिमय बनी हुई ऐसी उत्तम शय्या पर सोती हुई अर्द्धरात्रि के समय कुछ निद्राधीन और किञ्चिद् जागृत इस प्रकार के इस रूप वाले उदार चवदह महास्वप्नों को देख कर जग गई। वे स्वप्न ये थे।—

गय-वसह-सीह-अभिसेअ-दाम-ससि-दिणयरं झयं कुंभं।

पउमसर-सागर-विमाण भवण रयणुच्चय-सिहिं च ॥१॥

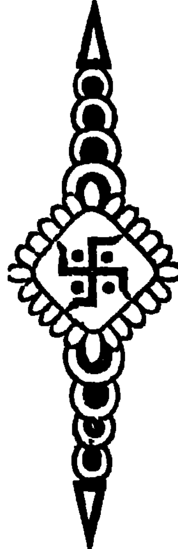
गज, वृषभ, सिंह अभिषेकयुक्त लक्ष्मी, पुष्पमाला युगल, चन्द्रमा, सूर्य, ध्वजा, कुम्भ, पद्मसरोवर, क्षीर-सागर, विमान या भवन रत्नोच्चय और निर्धूम अग्नि।

ऋषभदेव आदि तीर्थंकरों की माताओं ने क्रमशः वृषभ हाथी—अर्थात् ऋषभदेव भगवान् की माता ने प्रथम वृषभ और अजितनाथ से पार्श्वनाथ पर्यन्त तीर्थंकरों की माताओं ने सर्वप्रथम हस्ति देखा तथा महावीर प्रभु की माता ने आदि में सिंह देखा। बहुपाठ की रक्षार्थ प्रथम गज का ही वर्णन किया जाता है।

चतुर्दश महास्वप्नो का वर्णन

प्रथम गज स्वप्न

तए णं सा तिसला खत्तिआणी तप्पढमयाए ततोअ चउद्दंत मूसिअ-गलिअ-विपुल जलहर हारनिकर खीर सागर ससंककिरण दगरय रयय महासेल पंडुरतरं समागय महुयर सुगंध दाण वासिअकपोलमूलं देवरायकुंजरं (व) वरप्पमाणं, पिच्छइ, सजल घण विपुल जलहरगज्जिअगंभीर चारुघोसं, इभं, सुभं सव्वलक्खण कदंबियं वरोरुं ॥१॥ ३४॥

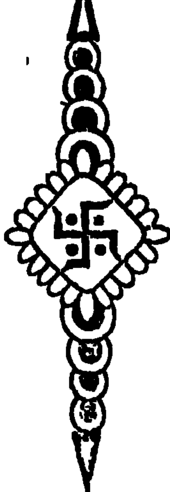


त्रिसला महाराज्ञी ने प्रथम स्वप्न में इस प्रकार का गज देखा—महाबलवान् तेजस्वी चार दाँत वाला, अत्यन्त ऊँचा, जलवर्षणानन्तर श्वेतमेघ सदृश उज्ज्वलहारों के पुञ्जवत् क्षीरसागर, चन्द्रकिरण, जलकण और रजतमय महाशैल वैताढ्य पर्वत के समान अत्यन्त उज्ज्वल, झरते हुये मद की सुगन्ध से आये हुये भौंरों वाले गण्डस्थल वाला, सजल महामेघ की गर्जनावत् गम्भीर और मधुर गर्जन करता हुआ, सर्वलक्षणों के समूह से युक्त शुभ इन्द्र महाराज के गज ऐरावण हस्ति के समान श्रेष्ठ प्रमाण वाला ऊँचा उत्तम विशाल श्वेत गजराज देखा।

द्वितीय वृषभ स्वप्न

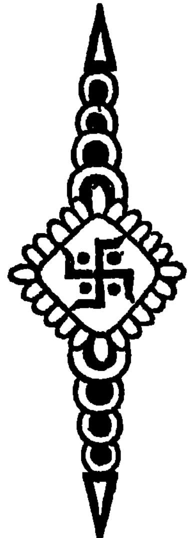
तओ पुणो धवल कमल पत्तपयराइरेगरूवप्पभं पहासमुदओव-हारेहिं सव्वओचेव दीवयंतं अइसिरिभर पिल्लणाविसप्पंत कंत सोहंतचारु ककुहं तणु सुद्ध सुकुमाल लोमनिद्धच्छविं थिरसुबद्धमंसलोवचिअ लट्ठ सुविभत्त सुंदरंगं पिच्छइ घण वट्ट लट्ठ उक्किट्ठ विसिट्ठ तुप्पग्ग तिक्खसिंगं दंतं सिवं समाण सोहंत सुद्धदंतं वसहं अमियगुणमंगलमुहं ॥२॥३५॥

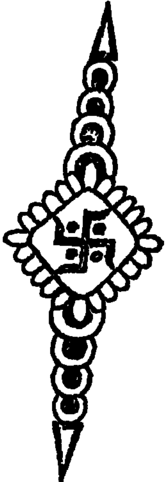
गज देखने के पश्चात् वृषभ देखा वह ऐसा था—श्वेत कमल के पत्तों से भी अधिक रूप कान्ति-वाला, अपनी उज्ज्वल कान्ति के समूह से दशो दिशाओं को दीप्त करता हुआ, अत्यन्त शोभा की राशि की प्रेरणा से विस्तृत कान्ति वाले मनोहर ककुद् (स्तूम्भी-थूआ) वाला सूक्ष्म निर्मल सुकुमार स्निग्ध कान्ति वाली रोम राजिवाला, स्थिर-दृढ़ सुबद्ध मासल पुष्ट श्रेष्ठ यथास्थित सर्वावयव सुन्दर अंगवाला, घनवर्तुल—(गोल) श्रेष्ठातिश्रेष्ठ उत्कृष्ट विशिष्ट चमकीले तीक्ष्ण शृंगों वाला, सौम्य निरुपद्रव उज्ज्वल, समान पंक्तिवाले दाँतोंवाला, अमित गुणवाले मांगलिक मुखवाला वह वृषभ था।



तओ पुणो हारनिकर खीरसागर-ससंक किरण दग रय ग्ययमहासेल पडुरंगं (ग्रं० २००) रमणिज्ज, पिच्छणिज्जंथिरलट्ठ पउट्ठं, वट्टपीवर सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ तिक्खदाढाविडंबिअमुहं परिकम्मिअ जच्चकमलकोमलपमाणसोहंतलट्ठउट्ठं, रत्तुप्पलपत्तमउअसुकुमालतालु निल्लालियग्गजीहं मूसागय पवर कणग ताविय आवत्तायंत वट्टतडिअविमल सरिसनयणं, विसालपीवरवरोरुं, पडिपुन्नविमलखंधं, मिउ-विसय सुहुम लक्खणपसत्थविच्छिन्नकेसराडोवसोहिअं, ऊसिअ-सुनिम्मिअ-सुजाय-अप्फोडिअलंगूलं, सोमं सोमाकारं लीलायंतं जिंभायंतं नहयलाओ ओवयमाणं, नियगवयण मइवयंतं, पिच्छइ, सा, गाढतिक्खग्गनहं, सीहं, वयणसिरिपल्लवपत्त चारुजीहं ॥३॥ ३६॥

वृषभ देखने के पश्चात् त्रिसला महाराज्ञी सिंह देखती है। सिंह वर्णन :—हार समूह; क्षीरसमुद्र चन्द्र-किरण जलकण और रजत (चाँदी) मय वैताढ्य पर्वत के समान श्वेत अगोंवाला, रमणीय होने से देखने योग्य, दृढ़ प्रधान पंजोंवाला, गोल बड़ी-२ परस्पर मिली हुई विशिष्ट तीखी दाढाओं से शोभित मुखवाला, चित्रित, श्रेष्ठ कमलवत्कोमल प्रमाणयुक्त होने से सुशोभित और अत्यन्त लाल ओष्ठ वाला, लाल कमल सदृश मृदु और सुकुमार तालु वाला, लपलप करने वाली सुन्दर जिह्वा वाला मूषा में रहे हुये द्रवित सुवर्ण सदृश चञ्चल, गोल, और चमकती हुई बिजली के समान देदीप्यमान नेत्र वाला। जिसकी जङ्घाये विशाल व पुष्ट थी। प्रतिपूर्ण निर्मल स्कन्धयुक्त, मृदु उज्ज्वल सूक्ष्म प्रशस्त लक्षणवाली केसर सटा के आटोप से शोभायमान, ऊँची सुनिर्मित कुण्डली बनाई हुई शोभायुक्त मस्तक पर दोनों कानों के मध्य में जिसकी

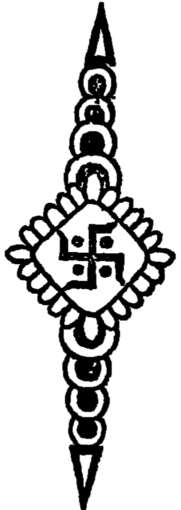




शिरा थी ऐसी श्रेष्ठ पूँछवाला था। अत्यन्त तीखे अग्र भाग वाले नख थे। और मुख की शोभा के लिये पत्ते के समान फैलाइ हुई चारु जिह्वा से सुशोभित था। सौम्य एवं सौम्य आकार वाला था। विलासपूर्ण चाल से जभाई लेते गगन से उतरता हुआ और अपने मुख में प्रवेश करता हुआ सिह त्रिसला माता ने तृतीय स्वप्न में देखा।

चतुर्थ श्री देवी स्वप्न

तओ पुणो पुन्नचंदवयणा, उच्चगयठाण लट्ठसंठियं पसत्थरूवं, सुपइट्ठियकणग कुंभ सरिसोवमाणचलणं, अच्चुन्नयपोण रइअमंसलोवचिय तणुतंबनिद्ध नहं, कमल पलास सुकुमाल कर चरण कोमलवरंगुलिं, कुरुविंदा वत्तवट्टाणुपुव्वजंघं, निगूढजाणुं गयवर कर सरिस पीवरोरुं, चामीकर रइअमेहलाजुत्तकंत विछिन्न सोणिचक्कं, जच्चंजण भमर जलय पयर उज्जु असम संहिअ तणुअ आइज्ज लडह सुकुमाल मउअ रमणिज्ज रोमराइं, नाभिमंडल सुंदर विसालपसत्थ जघणं, करयलमाइअ पसत्थतिवलिय मज्झं, नाणामणिकणग रयणविमल महातवणिज्जाभरण भूसण विराइयं गोवंगिं, हारविरायंतकुंदमालपरिणद्ध जल जलितं थणजुअल विमल कलसं, आइयपत्तिअ विभूसिएणं सुभगजालुज्जलेणं मुत्ताकलावएणं, उरत्थदोणारमाल विरइएणं कंठ मणिसुत्तएण य, कुंडलजुअलुल्लसंत अंसोवसत्तसोभंत सप्पभेणं, सोभागगुणसमुदएणं, आणणकुडुंबिएणं, कमलामलविसाल रमणिज्जलोअणं, कमलपज्जलंत करगहिअ मुक्कतोयं, लीलावायकयपक्खएणं, सुविसदकसिणघण



सण्हलंबंतकेसहत्थं पउमदह[1] कमलवासिणों सिरिं भगवइं पिच्छइ हिमवंत सेलसिहरे, दिसागइं दोरु पीवर कराभिसिच्चमाणिं ॥४॥३७॥

सिंह देखने के पश्चात् पूर्ण चन्द्रवदना त्रिसला ने लक्ष्मीदेवी को देखा। उन लक्ष्मीजी का स्वरूप इस प्रकार है :—

अत्यन्त ऊँचे हिमवान् पर्वत पर श्रेष्ठ कमल[1] पर बैठी हुई, प्रशस्तरूपवती, सुप्रतिष्ठित सुवर्णमय कछुओं

---

१ लक्ष्मी देवी के निवास स्थान का वर्णन :—

इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में हिमवान् नामक सुवर्ण का शाश्वत पर्वत है वह एक हजार बावन योजन १२ कला चौड़ा और एक सौ योजन ऊँचा है। उस पर पद्मद्रह (सरोवर) है। वह सर पाँच सौ योजन चौडा और एक हजार योजन लम्बा तथा दश योजन गहरा व निर्मल जल से भरा हुआ है। उस सरोवर का तल वज्रमय है। मध्य में देवी के निवास योग्य कमल है वह एक योजन का लम्बा चौड़ा है, दश योजन पानी में, दो कोश पानी के ऊपर और कुछ अधिक तीन योजन की परिधि वाला है। उनका तल भी वज्र रत्नमय है, अरिष्ट रत्नमय मूल, लालरत्नमय स्कन्ध, वैडूर्य रत्नमयमाल, रत्न सुवर्णमय पत्र और किञ्चिद् जाम्बूनद सुवर्णमय बाह्यपत्र है। उस कमल पुष्प के मध्य में बीजकोश रूप सुवर्णमय कर्णिका सुशोभित है। उसमें जो रत्न सुवर्णमय अर्थात् रत्नजड़ित दो-दो कोश लम्बी चौड़ी केशर है वह भी एक कोश ऊँची पिण्ड रूप है उसकी परिधि तीन कोश की है। उस कर्णिका के मध्य में श्री (लक्ष्मी) देवी के निवास योग्य एक महाप्रासाद है वह एक कोश लम्बा आधा कोश चौड़ा और कुछ न्यून तीन कोश ऊँचा है। उस प्रासाद के पूर्व दक्षिण और उत्तर दिशाओं में तीन द्वार हैं जो पाँच सौ धनुष ऊँचे और ढाई सौ धनुष चौड़े हैं। उस भवन के मध्य में ढाई सौ धनुष प्रमाण एक मणिमयी वेदिका (चबूतरा) है। उस पर श्री देवी की महार्ह-दिव्य शय्या है।

प्रथम वलय :— अब जो मूल कमल है वह एक सौ आठ कमलों से वलय रूप में परिवेष्टित हैं, ये कमल मूल कमल से आधे प्रमाण वाले अर्थात् आधा कोश लम्बे चौड़े है। उन एक सौ आठ कमलों में श्री देवी व आभूषणादि रहते हैं।

जैसे श्री देवी के चरण थे, जो अत्यन्त ऊँचे ओर लाक्षारस (अलता) से रंगे हुए थे। उन्नत कोमल स्निग्ध और रक्तवर्ण नखावलि से सुशोभित पाँवों के अङ्गुष्ठ और कोमल अङ्गुलियाँ थी कुरुविन्द केला के समान आवर्त्तवली गोल और ऊपर से मोटी नीचे से कृश जङ्घायें (पिण्डलियाँ) थीं। घुटने गुप्त थे। अर्थात्

द्वितीय वलय :– प्रथम वलय के चारों ओर कमलों का द्वितीय वलय है। पूर्व दिशा के चार कमलों में श्री देवी की चार महत्तरा देवियाँ रहती हैं, अग्निकोण के आठ हजार कमलों में श्री देवी की आभ्यन्तर पर्षद् में बैठने वाले गुरु स्थानीय आठ हजार देव रहते है। दक्षिण दिशा के दश हजार कमलो में मध्यम पर्षद् में बैठने वाले मित्र स्थानीय दश हजार देवता निवास करते है। नेऋत्य कोण में बारह हजार कमलों में किंकर (दास) स्थानीय बारह हजार देव रहते है। पश्चिम दिशा के सात कमलों मे लक्ष्मी देवी की सात प्रकार की सेनाएँ—हस्ति, घोड़े, रथ, पदाति, महिष, गान्धर्व, नाटक करने वाले के सात अधिपति रहते हैं। वायव्य कोण उत्तर दिशा और ईशान कोण के चार सहस्र कमलों मे श्री देवी के चार हजार सामानिक देव निवास करते हैं।

दूसरे वलय के चारों ओर तीसरा वलय है। इसमें सोलह हजार कमल है; जिनमें श्री देवी के सोलह हजार आत्म-रक्षक देवों का निवास हैं।

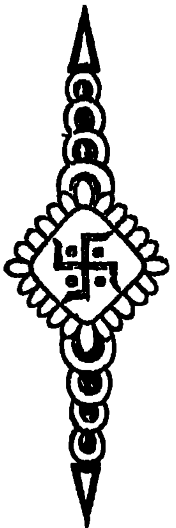
तीसरे के चारों ओर चौथा वलय है। उनमें श्री देवी के बत्तीस लाख आभ्यन्तर आभियोगिक देवों के निवास करने के बत्तीस लाख कमल हैं।

ऐसे ही पाँचवें वलय में श्री देवी के मध्यम आभियोगिक देवों के चालीस लाख कमल हैं जिनमें चालीस लाख मध्यम आभियोगिक देवों के निवास है।

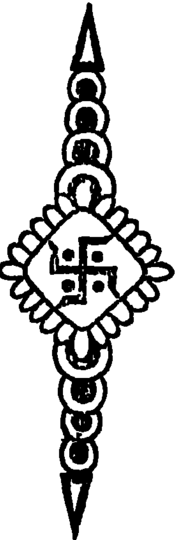
छठे वलय में अड़तालीस लाख कमल हैं जिनमें अड़तालीस लाख बाह्य आभियोगिक देव रहते हैं।

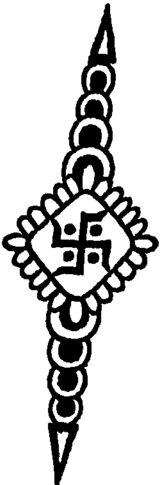
इस प्रकार सब एक क्रोड़ बीस लाख पचास हजार एक सौ बीस (१२०५०१२०) कमल है जो रत्नमय हैं और वनस्पति कायिक कमलों के समान दिखाई देते हैं। इन सब कमलों में निवास करने वाले देव देवी श्रीदेवी की सेवा करते हुए रहते है।

कल्पसूत्र
६२



अस्थियाँ नहीं दिखती थीं। हस्ति शुण्डावत् सरस और पुष्ट उरुद्वय थे। सुवर्ण रचित कटिसूत्र से युक्त मनोहर विस्तीर्ण कटिप्रदेश था। जात्यञ्जन, भ्रमर, मेघ समूह वत् श्याम, सरल, सम, संहित-मिली हुई सूक्ष्म आदेय ललित, सुकुमार, मृदुल और रमणीय रोमराजि नाभि से स्तनपर्यन्त शोभायमान थी। (यद्यपि स्त्रियों के अति रोमावलि होना अशुभ सूचक माना गया है, तथापि शृङ्गार वर्णन की अपेक्षा से कवि ने वर्णन कर दिया है। वैसे सूक्ष्म रोम होना स्वाभाविक है क्योंकि मनुष्य के सारे शरीर में साढ़े तीन क्रोड रोम होते हैं। दवों का शरीर यद्यपि वैक्रियक—दिव्य होता है फिर भी अङ्ग-प्रत्यङ्ग वर्णादि अत्यन्त सुन्दर होते हैं।) सुन्दर नाभिमण्डल से युक्त विशाल प्रशस्त जघनस्थल (पेडू) था। मुष्टिग्राह्य और त्रिवली से युक्त मध्य भाग अर्थात् कटि व उदर थे। चन्द्रकान्तादि नानाभाँति की मणियों वज्र वेडूर्य्यादि रत्नों से जड़े हुये सुवर्ण के ग्रैवेयक (नेकलेस) कङ्कण आदि एव मुद्रिकादि आभरणों से सुशोभित अंगोपांग थे। हार—मोतियों के एकावलि आदि कुन्दमाल—पुष्पों की माला से व्याप्त विमलकलशवत् वक्षस्थल (स्तन युगल) था अद्भुत व उत्तम शिल्पियों द्वारा निर्मित नेत्रानन्ददायी और चतुर स्त्रियों द्वारा धारण कराये गये सभी आभूषणों से भूषित थी। सुभग जाज्वल्यमान मुक्तागुच्छकों से युक्त, उरस्थल पर दीनारमाला, गले में मणिसूत्र, कन्धों को स्पर्श करते हुये और अद्भुत चमकदार कुण्डलों से सुशोभित, शोभा गुण समूह से युक्त, मुख के मानों दास हों ऐसे मुख पर धारण करने के भूषणों से विभूषित, (जैसे दासों से नृप शोभित होता है वैसे ही आभूषणों से श्री देवी का मुख सुशोभित था। कमल के समान निर्मल विशाल और मनोहर नेत्र थे। हाथों में धारण किये हुये कमलों से मकरन्द (पुष्परस) झर रहा था। लीला के लिये (न कि पसीना सुखाने को, क्योंकि दिव्य शरीरधारियों को पसीना नहीं आता) वींजते हुये तालवृन्त (पंखे) से शोभित थी। लम्बे श्याम घने सूक्ष्म (पतले) केशों की कली से युक्त थी। पूर्वोक्त कमल पर निवास करनेवाली, हिमवान पर्वत के शिखर पर दिग्गजों द्वारा पुष्ट शुण्डाओं से अभिषिक्त होती हुई भगवती श्री को देखा।

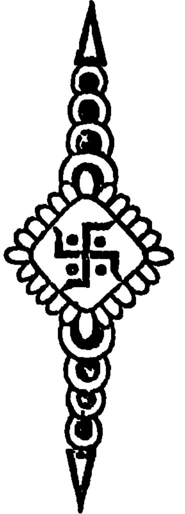


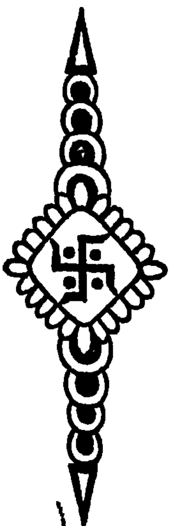


पञ्चम माला युगल स्वप्न

तओ पुणो सरसकुसुम मंदार दाम रमणिज्ज भूअं, चंपगा सोग पुन्नाग नाग पिअंगु सिरीस मुग्गरग मल्लिआ जाइजूहि अंकोल्ल कोज्ज कोरिंट पत्तदमणय नवमालिअ बउल तिलय वासंतिअ पउमुप्पल पाडल कुंदाइमुत्त सहकार सुरभिगंधिं, अणुवम मनोहरेणं गंधेणं दसदिसाओ वि वासयंतं, सव्वोउअ सुरभि कुसुम मल्ल धवल विलसंत कंत बहुवण्ण भत्तिचित्तं, छप्पय महुअरि भमरगण गुमगुमायंत निलिंत गुंजंत देसभागं, दामं पिच्छइ नहगणतलाओ ओवयंतं ॥५॥३८॥

तत्पश्चात् त्रिशला माता ने पाँचवें स्वप्नमें पुष्पोंकी दो मालायें देखी तो यह मालायें सद्यः विकसित कल्पवृक्ष के पुष्पों से अत्यन्त मनोहर थी। उन मालाओं में चम्पा, अशोक, पुन्नाग, नागकेशर, प्रियङ्गु, शिरीष नामक वृक्षों के, मोगरा, मल्लिका, जाति, जूही नवमालिका वासन्तिका नामक लताओं के अंकोल, कोज, कोरंट आदि वृक्षों के, मौलश्री, तिलक, पद्म, कुमुद, पाटल, कुन्द, अतिमुक्तक (माधवी) आदि के पुष्प थे। तथा मध्य-२ में आम्रमंजरी लगाकर अत्यन्त कुशलता से गूँथी हुई थीं, इन सर्व प्रकार के सुगन्धित पुष्पों के पराग से दशों दिशाओं को सुगन्धित बना रही थी। छओं ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले सुमन इन मालाओं में गुँथे हुये थे। दीप्तिमान और सुन्दर विविध वर्ण वाले पुष्पों की सुरुचिपूर्ण रचना से आश्चर्यकारक चित्रमय लग रही थी। सारांश कि श्वेतवर्ण के पुष्प अधिक व अन्य वर्णों के पुष्प यथास्थान सुन्दरता के लिए गुँथे हुये थे। उन मालाओं की मनोहर सुगन्ध से आकर्षित अनेक वर्ण वाले मधुकर षट्पद भ्रमरी आदि कीट पतङ्ग गुञ्जारव करते हुये, एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ते हुये बैठकर मकरन्द पान कर रहे थे। ऐसी मालाये आकाश से उतरती हुई और अपने मुख में प्रवेश करतीं हुईं देखीं।





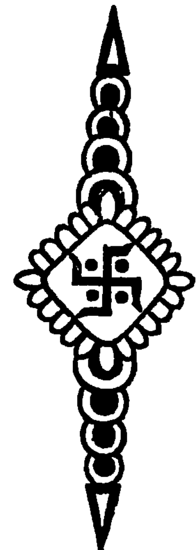
षष्ट पूर्ण चन्द्र स्वप्न

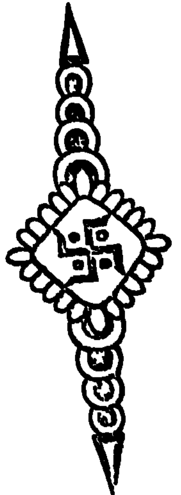
ससिं च गोखीर-फेण-दगरय-रयय कलसपंडुरं, सुभं हिययनयणकंतं, पडिपुन्नं, तिमिरनिकर घणगुहिर वितिमिरकरं, पमाणपक्खंतरायलेहं, कुमुअवण विबोहगं, निसासोहगं, सुपरिमट्ठदप्पण-तलोवमं, हंसपडुवन्नं जोइसमुहमंडगं, तमरिपुं, मयणसरा पूरगं, समुद्दग पूरगं, दुम्मणंजणं दइअवज्जिअं पायएहिं सोसयंतं, पुणो सोमचारुरूवं, पिच्छइ सा गगणमंडलविसाल सोमचंकम्म-माणतिलगं, रोहिणिमणहिअय वल्लइं देवो पुण्णचंदं समुल्लसंतं ॥६॥३६॥

अर्थ :—तदनन्तर त्रिशला महाराज्ञी ने छट्ठे स्वप्न में पूर्णचन्द्र देखा—गोदुग्ध फेन जलकण और चाँदी के कलश के समान श्वेत, शुभ, हृदय और नयनों का वल्लभ, प्रतिपूर्ण, अन्धकार के समूह से अत्यन्त गम्भीर (गहरे) वृक्षों की घटा आदि के तिमिर का नाश करनेवाला, वर्ष मास आदि काल प्रमाण का कर्त्ता, शुक्ल कृष्ण दोनों पक्षों में कलाओं से शोभित, कुमुदवन का विकासक, रात्रि की शोभा करनेवाला, भली प्रकार स्वच्छ किये हुए दर्पण के समान, हंसवत् उज्ज्वल, ज्योतिषियों के मुख का मण्डन, अन्धकार का शत्रु, कामदेव का तूणीर, समुद्र जल का पूरक, अर्थात् ज्वार लानेवाला विरह व्याकुल बने हुए जनों व विरहिणो स्त्रियों का अपनी किरणों से शोषण करनेवाला पुनः सौम्य होने से सुन्दर स्वरूप वाला, आकाश मण्डल का विशाल चलता हुआ तिलक, रोहिणी मनो हृदय वल्लभ ऐसे पूर्णचन्द्र को जो समुल्लसित था, उन त्रिसला महारानी ने देखा।

सप्तम सूर्य स्वप्न

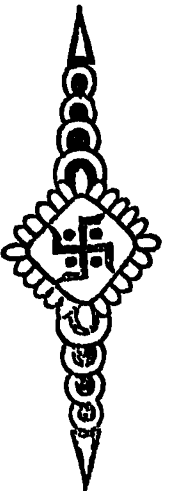
तओ पुणो तमपडल परिप्फुडं चेव तेअसा पज्जलंतरूवं, रत्तासोग-पगासकिंसुक सुअमुह





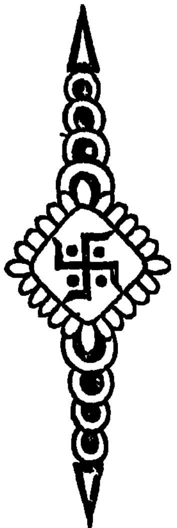
गुंजद्धराजसरिसं कमलवनालंकरणं, अंकणंजोइसस्स, अंबरतल पइवं, हिमपडलगलग्गहं, गहगणोरुनायगं रत्तिविणासं, उदयत्थमणेसुमुहुत्तसुहदंसणं, दुन्निरिक्खरूवं, रत्तिमुद्धंत दुप्पयारपमद्दणं, सीअवेगमहणं, पिच्छइ, मेरुगिरि सययपरियट्टयं, विसालं, सूरं, रस्सीसहस्सपयलियदित्तसोहं ॥७॥४०॥

अर्थ :—तत्पश्चात् सातवे स्वप्न में त्रिसला माता सूर्य देखती हैं:—वह सूर्य अन्धकार के समूह का नाशक और अपने तेज से जाज्वल्यमान है। अर्थात् सूर्यमण्डल में बादर पृथ्वीकाय के जीव तो स्वभाव से शीतल हैं; किन्तु आतप नाम कर्म के उदय से मात्र तेज से ही लोक को व्याकुल करते हैं। रक्त अशोक वृक्ष, प्रफुल्लित किंशुक, शुक की चोंच और गुञ्जा (चिरमी) के आधे भाग के समान लाल रगवाला है। सूर्य विकासी कमलवन का अलकार—अर्थात् विकासित करनेवाला होने से भूषण रूप है। राशि परिवर्त्तनादि द्वारा ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्मण्डल की गतिविधि को बतलाने वाला है। आकाश का उत्कृष्ट दीपक, हिमसमूह का गलग्रह—अर्थात् गला कर निकालनेवाला, ग्रह समुदाय का नायक, रात्रि विनाशक, उदय और अस्त समय मे मुहूर्त्तपर्यन्त सुख से देखा जा सकता है, अन्य समय में नहीं। रात्रि में उच्छृङ्खल वृत्ति से भ्रमण करनेवाले चोर व्यभिचारी आदि अनैतिक कार्य करनेवालों के भ्रमण में बाधक है। शीत का नाशक, सर्वदा मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करता हुआ भ्रमण करता रहता है। अत्यन्त दीप्तिमान चन्द्र आदि की प्रभा को अपनी सहस्र किरणों[1] से विलुप्त कर देता है। अर्थात रोक देता है। ऐसे विशाल तेजस्वी मण्डल वाले सूर्य को त्रिशला माता ने देखा।



१ यहाँ सूर्य को सहस्र किरण बताया वह लोकरुढि से है। अन्यथा ऋतु अनुसार किरणें घटती बढ़तो रहती हैं, परन्तु सहस्र से कम कभी नहीं होती अतः सहस्रकिरण कहलाता है।

ग्रन्थान्तर में किरणों के विषय में इस प्रकार वर्णन है :—



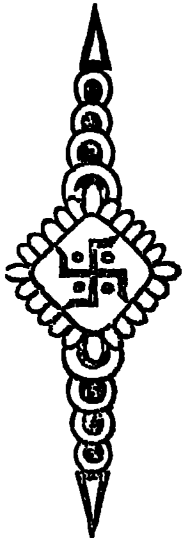
"शतानि द्वादशमधौ, त्रयोदश तु माधवे। चतुर्दश पुनर्ज्येष्ठे, नभोनभस्ययो स्तथा ॥१॥
पञ्चदशैव त्वाषाढ़े, षोडशैव तथा ऽऽश्विने। कार्त्तिके त्वेकादश च शतान्येवं तपस्यपि ॥२॥
मार्गे च दशसार्द्धानि शतान्येव च फाल्गुने। पौष एव परं मासि, सहस्रं किरणा रवेः ॥३॥

भावार्थः—चैत्रमास में १२००, वैशाख में १३००, ज्येष्ठ में १४००, आषाढ़ में १५००, श्रावण भाद्रपद में १४००, आश्विन में १६००, कार्त्तिक मे ११००, मार्गशीर्ष में १०५०, पौष मे १००० और माघ फाल्गुन मे १०५० क्रमश सूर्य किरणें होती हैं।

अष्टम स्वप्न पञ्चवर्णध्वज

तओ पुणोजच कणगलट्ठि पइट्ठिअं, समूहनील रत्त-पीय सुक्किल सुकुमालुल्लसिय मोरपिच्छकय मुद्धयं, अहिय सस्सिरीयं, फालिअसंखंक कुंद दगरय रययकलस पंडुरेण मत्थयत्थेण सोहेण रायमाणेण रायमाणं भित्तुं गगणतल मंडलं चेव ववसिएणं, पिच्छइ सिवमउय मारुय लयाहय कंपमाणं, अइप्पमाणं, जणपिच्छणिज्जरूवं ॥८॥४१॥

अर्थ—तदनन्तर आठवें स्वप्न में माता ने ध्वजा देखी। वह ध्वजा उत्तम जाति के सुवर्णमय दण्ड पर प्रतिष्ठित है अर्थात् उनका दण्ड सोने का है। उस ध्वजा के मस्तक पर स्थापित पञ्चवर्ण का रमणीय और सुकोमल मयूरपिच्छ मनुष्य के शिर पर रहे हुये केशों के समान् पवन से लहलहा रहा है ; अतः वह ध्वजा अत्यन्त शोभायुक्त है। उसध्वजा के अर्द्ध भाग में चित्रित स्फटिक अकरत्न शख कुन्दपुष्प, जलकण और चाँदी के कलश के समान सिंह की शोभा अपूर्व थी, और वह सिंह ध्वजा के हिलने से ऐसा लगता था मानो आकाश मण्डल को तोड़ देगा ! वह ध्वजा शान्त और मन्द पवन के स्पर्श से फहरा रही थी। ऐसी अत्यन्त ऊँची और दर्शनीय ध्वजा त्रिसला माता ने देखी।



नवम स्वप्न पूर्ण कलश

तओ पुणो जच्च कंचणुज्जलंतरूवं, निम्मलजलपुण्णमुत्तमं, दिप्पमाणसोहं, कमलकलावपरिराय माणं, पडिपुण्ण सव्वमंगलभेयसमागमं, पवररयणपरि रायंतकमलट्ठियं, नयणभूषणकरं, पभा-समाणं, सव्वओ चेव दीवयंतं सोभलच्छी निभेलणं, सव्वपावपरिवज्जियं, सुभं, भासुरं, सिखिरं, सव्वोउय सुरभिकुसुमआसत्त मल्लदामं, पिच्छइ सा रययपुण्ण कलसं ॥९॥४२

अर्थ—तदनन्तर त्रिशला माता नववें स्वप्न में उत्तमजाति के सुवर्ण सदृश दीप्तिमान् और निर्मल जल से पूर्ण श्रेष्ठ कलश को देखती है। दीप्तिमान् शोभावाला, कमल समूह से सुशोभित, समस्त मगलों के आगमन का संकेतस्थान, उत्तम प्रकार के रत्न कमल पर स्थापित, नेत्रों को आनन्द देने वाला, देदिप्यमान, सर्व दिशाओ को प्रकाशित करने वाला, प्रशस्त सम्पदाओं का निकेतन, सर्व पाप-अमगलों से रहित शुभ-मंगलमय चमकदार श्रेष्ठ कान्तियुक्त, सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले सुगन्धित पुष्पों की माला जिसके कण्ठस्थान मे धारण कराई गई थी, ऐसे जल से भरे हुये रजत-चाँदी के पूर्ण कलश को देखा।

दशम पद्मसरोवर स्वप्न

तओ पुणरवि रविकिरण तरुण बोहिय सहस्सपत्त सुरभितर पिंजरजलं, जलचर-पहकर-परिहत्थग-मच्छ-परिभुज्जमाण जलसंचयं, महंतं, जलंतमिव कमल कुवलय उप्पल तामरस पुंडरीय उरुसप्पमाण सिरि समुदएणं रमणिज्ज रूवसोहं, पमुइयंत भमरगण मत्त महुयरिगणुक्करोलिज्ज माण कमलं, कायंबग-बलाहय-चक्क-कलहंस-सारस-गव्विअ सउणगण मिहुण सेविज्जमाणसलिलं,

पउमिणिपत्तो-वलग्गजल विंदुनिचयचित्तं, पिच्छइ सा, हियय-नयणकंतं पउमसरं नाम सरं सररुहाभिरामं ॥१०॥४२॥

अर्थ :—तत्पश्चात् त्रिसला महारानी ने दशवें स्वप्न में पद्मसरोवर देखा। वह सरोवर तरुण रवि के किरणों से विकस्वर सहस्र दल कमलो को सुगन्धि से अत्यन्त सुरभित और पिञ्जर जलवाला था, जलचरों के समूह से परिपूर्ण था, मत्स्यों से परिभुज्यमान जलवाला अर्थात् उस सरोवर में भाँति-भाँति के मत्स्य निवास करते थे। वह अत्यन्त विशाल था। उसमें विविध प्रकार के कमल-सूर्यविकाशी, कुवलय-चन्द्र-विकाशी, उत्पल-रक्त कमल, तामरस-बड़े कमल, पुण्डरीक-श्वेतकमल इत्यादि थे। इनकी कान्ति के विस्तार से देदिप्यमान, रमणीय रूप शोभावाला था, उन कमलों पर प्रसन्न मनवाले भ्रमरगण और मत्त-भ्रमरी समूह गुञ्जारव करते हुए एक से दूसरे पर बैठते हुए मकरन्द पान कर रहे थे, तथा उस सरोवर के जल में कादम्बक-बतक, बलाहक-वक (कुर्जा) चक्रवाक राजहंस सारस आदि जलचर पक्षियों के जोड़े गर्व सहित निवास कर रहे थे। पुनः पद्मिनीपत्रों पर जलबिन्दुओं की रचना से चित्रमय लग रहा था, अर्थात् मानो पन्नों के रंगवाले पत्तों पर मोतियों से चित्रकारी की गयी हो ऐसे लगते थे। हृदय और नेत्रों को आनन्द देने वाला कमलों से मनोहर पद्मसरोवर माता ने देखा।

एकादश समुद्र स्वप्न

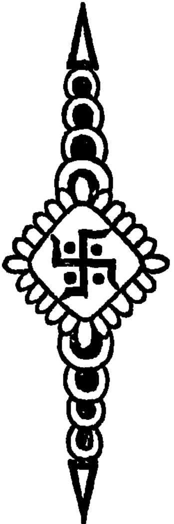
तओ पुणो चंदकिरणरासि-सरिस-सिरिवच्छसोहं, चउगमण पवड्ढमाण जलसंचयं, चवल चचलुच्चायप्पमाण कल्लोललोलंत तोयं, पडुपवणाहय-चलिय-चवल-पागड-तरंग-रंगंत-भंगखोखु-ब्भमाणं सोभंत निम्मलुक्कड-उम्मी-सह संबंध धावमाणो नियत्त-भासुरतराभिरामं, महामगरमच्छ

महानई तुरीयवेग-समागय-भम-गंगावत्त-गुप्पमाणुच्चलंत पच्चो नियत्त-भममाणलोल सलिलं, पिच्छइ खीरोय सायरं सारय तिमि-तिमिंगिल निरुद्ध तिलि तिलिया-भिधायक कप्पूर फेणपसरं, रयणिकर सोमवयणा ॥११॥४४॥

अर्थ :—तदनन्तर शारदीय चन्द्रमा की किरणो के समान सौम्यवदना त्रिसला माता ने चन्द्रकिरण समूह के समान कान्तिमय मध्यशोभावाला, तथा चारो दिशाओ में बढते हुये जलवाला, उस समुद्र के जल में अत्यन्त चपल और चञ्चल ऊँची कल्लोले उछल रही थी। तेज पवन से आहत चपल तरङ्गे नृत्य करती लग रही थी वे कल्लोले भयभ्रान्त सी शोभायमान और निर्मल तथा उत्कट महातरङ्गों से मिलकर दौडती हुई तट तक जाकर पुनः आ रही थी। इससे सागर रमणीय और द्युतिमान् था, महामगरमच्छ तिमितिमिङ्गिल नामक मत्स्य, छोटे तिलितिलिक मत्स्य, अनेक जल जन्तु उस समुद्र मे भ्रमण कर रहे थे। उनके द्वारा पूँछों के पछाडने से कर्पूर जैसा उज्ज्वल फेन फैल रहा था। गगा आदि महानदियों का प्रवाह समुद्र में जिस स्थान पर अत्यन्त वेग से आकर मिलता है, वहाँ आवर्त मे पडने से जल को अन्यत्र जाने का मार्ग न मिलने के कारण ऊपर उछलकर पुनः उसी में छुपता सा चक्रबन्ध भ्रमण करता हुआ चपल हो रहा था। ऐसा क्षीर समुद्र त्रिसला माता ने देखा ॥११॥

द्वादश देव विमान स्वप्न

तओ पुणो तरुणसूर मंडल समप्पहं, दिप्पमाणसोहं, उत्तमकंचण महामणि समूह पवरते-यअट्ठ सहस्स दिप्पंतनहपईवं, कणगपयरलंबमाणमुत्तासमुज्जलं, जलंतदिव्वदामं, ईहामिग-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग बालग किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-संसत्त कुंजर वणलय पउमल यभत्ति चित्तं,

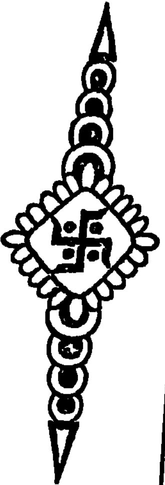


गंधव्वोपवज्जमाणं संपुण्णघोसं, निच्चं सजल घण-विउल-जलहर-गज्जिय सद्दाणुणाइणा देवदुंदुहि महारवेणं सयलमवि जीवलोयं पूरयंतं, कालागुरु पवर कुंदुरुक्क तुरुक्क उज्झंतधूववासंग उत्तम मघमघंत गंधुद्धुयाभिरामं निच्चालोयं, सेयं सेयप्पभं, सुरवराभिरामं पिच्छइ सा साओवभोगं वरविमाण पुंडरीयं ॥१२॥४५॥

अर्थ :—तत्पश्चात् त्रिसला माता बारहवें स्वप्न में देव विमान देखती है वह विमान तरुण सूर्यमण्डल के समान प्रभावाला है, जिसकी शोभा अत्यन्त दीप्तिमान है। विमान में उत्तम सुवर्ण के महामणियों के एक हजार आठ स्तम्भ है, जिनसे देदीप्यमान आकाश प्रदीप के जैसा वह विमान है। सुवर्ण प्रतरों में लटकते हुये मोतियो सी उज्ज्वल है। झलकती दिव्य पुष्पों की मालाओंवाला वह विमान है। उस विमान की भित्तियों पर ईहा-मृग (भेडिया) वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, मत्स्य विभिन्न जाति के पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु (मृग विशेष) अष्टापद, चमरी गाय, ससक्त (हत्यारा पशु विशेष) हाथी आदि पशुओं के एवं पद्मलताओं आदि के चित्र बने हुये होने से वह विमान आश्चर्यजनक और मनोहर था। उस विमान में गन्धर्वों द्वारा संगीत-वाद्य नृत्य और गान हो रहा था। सजल घन और विशाल जलधर की गर्जन के सदृश समस्त जीवलोक को पूर्ण करनेवाला देव दुन्दुभि का महानाद हो रहा था। पुनः कालागुरु (काला अगर) कुन्दुरुष्क, तुरुष्क सिलारस आदि सुगन्धि द्रव्यों के धूपोत्क्षेपण से महक रहा था। वह सदैव आलोकमय है अर्थात् विमान में कभी अन्धेरा नहीं होता। श्वेत वर्ण और श्वेत प्रभामय है। देवताओं से शोभायमान है। जहाँ सदा सातावेदनीय कर्म का ही उदय है। ऐसा श्रेष्ठ पुण्डरीक विमान देखा।

त्रयोदश स्वप्न रत्नराशि

तओ पुणो पुलग-वेरिंदनील सासग-कक्केयण-लोहियक्ख-मरगय-मसारगल्ल-पवाल फलिह



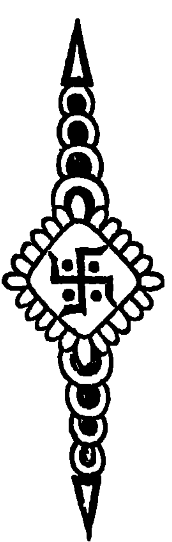
सोगंधिय हंसगब्भ अंजण चंदप्पह वर रयणेहिं महियल पइट्ठियं गगण मंडलं तं पभासयंतं तुंगं मेरुगिरि सन्निकासं पिच्छइ सा रयणनिकररासिं ॥१३॥४६॥

अर्थ :—तत्पश्चात् त्रिशला जननी रत्नों की राशि देखती है। पुलक रत्न, वज्र रत्न, (हीरा) इन्द्रनील रत्न (नीलम) सस्यक रत्न, कर्केतन रत्न, लोहिताक्ष रत्न, मरकत (पन्ना) रत्न मसारगल्लरत्न, प्रवालरत्न (मूगा) स्फटिक, सौगन्धिक रत्न, हसगर्भरत्न, अजनरत्न, चन्द्रप्रभरत्न आदि अनेक रत्नो का ढेर पृथ्वी पर रखा हुआ होने पर भी आकाश की सीमा को प्रकाशित करता हुआ, मेरु पर्वत के समान ऊ ँचा था। ऐसा स्वप्न माता ने देखा।

चतुर्दश स्वप्न अग्निशिखा

सिहिं च सा विउलुज्जल पिंगल महुधय परिसिच्चमाण निद्धूम धगधगाइय जलंत जालुज्जलाभिरामं, तरतमजोगजुत्तेहिं जालपयरेहिं अण्णुण्णमिव अणुप्पइण्णं, पिच्छइ जालुज्जलणगं अंबरं व कत्थइ पयंतं अइवेग चंचलं सिहिं ॥१४॥४७॥

अर्थ :—तदनन्तर त्रिसला महारानी ने चौदहवें स्वप्न में अत्यन्त विस्तीर्ण और निर्धूम अग्नि को देखा। उस अग्नि में स्वच्छ घृत और पिंगल मधु का सिञ्चन (आहुति) होने से वह निर्धूम है धगधग शब्द कर रहा है और उसमें से दीप्यमान और उज्ज्वल ज्वालाए ँ निकलने से वह अग्नि मनोहर है। कोई ज्वाला छोटी कोई बडी है इस प्रकार उन ज्वालाओं का समूह मानों अत्यन्त संकुल (मिला हुआ) है। एक ज्वाला ऊ ँची दूसरी उससे भी ऊ ँची और तीसरी तो मानो सबसे ऊ ँची जाने को उद्यत है। ऐसी स्पर्धावाली ज्वालाओं से युक्त अग्नि थी। पुनः वे ज्वालाए ँ एक दूसरे से आगे जाती हुई ऐसी लगती थीं मानों आकाश



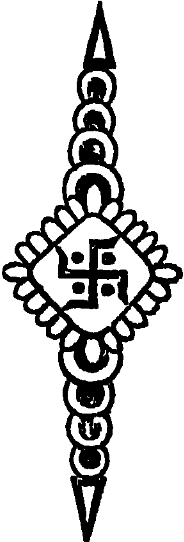
के किसी भाग को पका देंगी (जला देंगी) इस प्रकार अत्यन्त वेग के कारण चञ्चल स्वभाव वाले अग्नि को देखा।

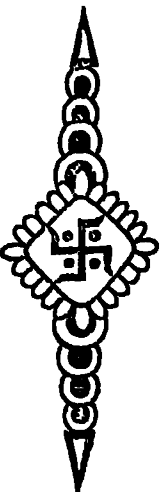
यहाँ यह विशेष ध्यान रखना है कि तीर्थंकर का जीव जब स्वर्ग से च्युत होकर आता है तब माता देवविमान देखती है तथा नरक से आता है, तब भुवन देखती है।

इमे एतारिसे सुभे सोमे पियदंसणे सुरूवे सुमिणे दट्ठूण सयणमज्झे पडिबुद्धा अरविंदलोयण हरिसपुलिअंगी। एए चउदस सुमिणे सव्वा पासेइ तित्थयरमाया। जं रयणिं वक्कमइ, कुच्छिंसि महायशो अरहा ॥४८॥

इस प्रकार के इन शुभ सोम्य, प्रिय दर्शन और शोभन रूपवाले स्वप्नों को देखकर शयन करती हुई 'कमललोचना' त्रिसला महादेवी जागृत हो गईं। उनके अग हर्ष से पुलकित हो गये। अर्थात् रोमांच हो गया। ये चवदह महास्वप्न सभी तीर्थंकरो की माताएँ महायशस्वी तीर्थंकर भगवान का जीव जिस रात्रि में गर्भ में उत्पन्न होता है, देखती हैं। इसी नियमानुसार त्रिसला माता ने भी भगवान महावीर के गर्भ में आने पर चवदह महास्वप्न देखे।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी इमे एयारूवे उराले चउदस महासुमिणे पासित्ता णं पडि-बुद्धा समाणी हट्ठतुट्ठ जाव हियया धाराहयकयंबपुप्फगं पिव समूस्ससिअरोमकूवा सुविणुग्गहं करेइ। करित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीठाओ पच्चोरुहइ। पच्चोरुहिता अतुरिअमचवल मसंभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसो ए गईए जैणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं

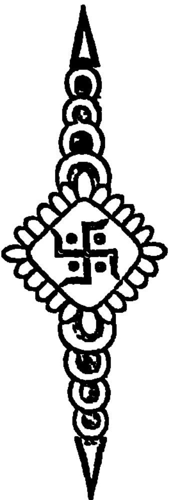




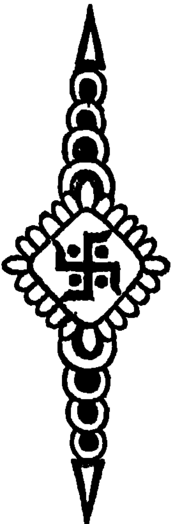
मणोरमाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मियमहुरमंजुलाहिं गिराहिं संलवमाणी संलवमाणी पडिबोहेइ ॥४६॥

अर्थ :—तदनन्तर वह त्रिसला क्षत्रियाणी उपर्युक्त इस प्रकार के उदार-प्रशसनीय चवदह महास्वप्न देखकर जागृत हो गई और हृष्ट-तुष्ट हर्षपूर्ण हृदया मेघ की धारा से सिञ्चित कदम्बपुष्प के समान उसके रोम-रोम विकसित हो गये। देखे हुए स्वप्नों को भली प्रकार स्मरण किया और शय्या से उठी, उठकर पादपीठ पर पॉव रखकर शय्या से नीचे उतर कर अत्वरित-मानसिक चञ्चलता रहित, अचपल-शारीरिक चपलताविहीन असम्भ्रान्त-घबराहट बिना, विलम्ब किये बिना, राजहस सदृश गति से चलती हुई, जहाँ सिद्धार्थ नृप[1] थे, वहॉ आई और अपने स्वामी क्षत्रियश्रेष्ठ सिद्धार्थ राजा को इष्ट, कान्त, प्रिय मनोहर, मनोरम, उदार, कल्याणमयी, उपद्रवनाशिका धन्य-प्रशंसनीय मङ्गलकारिणी शोभायुक्त अर्थात् अलङ्कारपूर्ण, शब्दालंकार अर्थालङ्कारयुक्त, हृदयङ्गम होने योग्य हृदय को अत्यन्त आह्लाद करने वाली मृदु-कोमल मधुर मंजुल वाणी से बोलती २ महादेवी त्रिसला ने अपने पतिदेव को जागृत किया।

तए णं सा तिसला खत्तियाणी सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुण्णाया समाणी नाणामणि कणगरयणभत्तिचित्तंसि भद्दासणसि निसीयइ। निसीइत्ता आसत्था वीसत्था सुहासण वरगया सिद्धत्थं खत्तियं ताहिं इट्ठाहिं जाव संलवमाणी संलवमाणी एवं वयासी ॥५०॥



१ नोट—गृहस्थ धर्म की मर्यादा कितनी उच्च थी, यह इस प्रसग से स्पष्ट जानी जा सकती है। पति-पत्नी एक शय्या तो दूर सम्भवत एक कक्ष में भी रात्रि भर शयन नहीं करते थे। केवल ऋतुदान के लिए ही सम्पर्क होता था। वह भी निषिद्ध काल – पर्वादि को छोड़कर। ऋतुकाल--स्त्री धर्म के चार दिन उपरान्त मात्र १२ रात्रि।

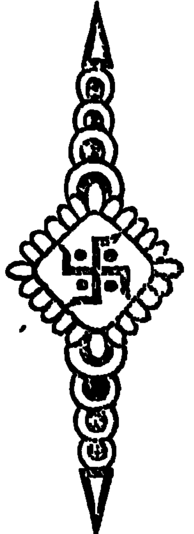


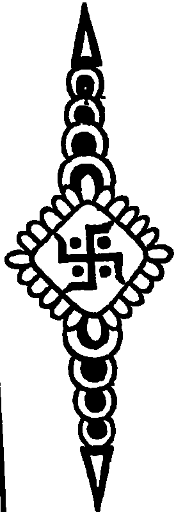
तब त्रिसला महादेवी सिद्धार्थ राजा से आज्ञा पाकर नाना मणि रत्नों से विचित्र भाँति से जड़ित स्वर्ण भद्रासन पर बैठ गई और बैठ कर गमनश्रम से उत्पन्न ग्लानि दूर हो जानेपर आश्वस्त हुई तथा क्षोभ दूर होने से विशेष स्वस्थ हो गई तब सुखासन से बैठी हुई उपर्युक्त इष्ट आदि गुणों से युक्त वाणी से बोलती हुई सिद्धार्थ महाराज से यों बोली :—

एवं खलु अहं सामी ! अज्ज तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि वण्णओ, जाव पडिबुद्धा, तं जहा—"गयवसह" गाहा.। तं ए एसिं सामी। उरालाणं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ? ॥५१॥

अर्थः—इस प्रकार निश्चय हे स्वामिन् ! आज मैंने शय्या पर सोते हुए (जिसका वर्णन पूर्व किया गया है) ऐसे गज वृषभ आदि चवदह महास्वप्न देखे और जागृत हो गई। अतः इन श्रेष्ठ चवदह महास्वप्नों का क्या कल्याणकारी फल-वृत्तिविशेष होगा ? ऐसा सोचती हूं।

तए णं से सिद्धत्थे राया तिसलाए खत्तियाणीए एयमट्ठं सुचा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयनीवसुरभिकुसुम चंचुमालइय रोमकूवे ते सुमिणे ओगिण्हेइ। ते सुमिणे ओगिण्हित्ता ईहं अणुपविसइ। ईहं अणुपविसित्ता अप्पणो सहाविएणं, मइपुव्वएणं बुद्धिविन्नाणेणं तेसिंसुमिणाणं अत्थुग्गहं करेई। करित्ता तिसलिं खत्तियाणिं ताहिं इट्ठाहिं जाव मंगल्लाहिं मियमहुर सस्सिरीयाहिं वग्गूहिं संलवमाणे संलवमाणे एवं वयासी ॥५२॥

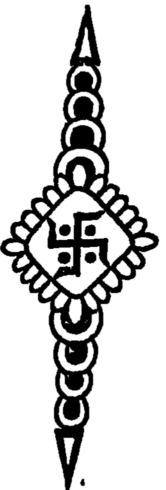


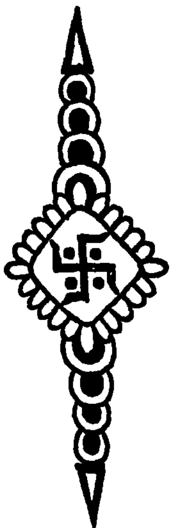


अर्थः—तदनन्तर सिद्धार्थ राजा त्रिसला महाराज्ञी से इन महास्वप्नों का वर्णन सुनकर हृदय में धारण करके हृष्टतुष्ट और प्रीत मन वाले अर्थात् तृप्त हो गये। मन अत्यन्त प्रसन्न हो गया। हर्षवश हृदय फूल गया। मेघ की धारा से सिञ्चित सुगन्धित कदम्ब पुष्प के समान उनकी रोमराजि विकसित हो गई। ऐसे सिद्धार्थ महाराज ने उन स्वप्नों को अपने चित्त में धारण किया। धारण करके अर्थ का विचार किया। विचारकर अपनी स्वाभाविक मति के बुद्धि विज्ञान से स्वप्नों के फल का निश्चय किया और निश्चय करके उस प्रकार की इष्टादि विशेषणों से युक्त कल्याणमङ्गलकारिणी मितमधुर और शोभनवाणी से बोलते हुये सिद्धार्थ नृप महादेवी त्रिसला से यों कहने लगे।

मूल—उरालाणं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, कल्लाणाणं तुमे देवाणुप्पिए सुमिणा दिट्ठा, एवं सिवा धन्ना मंगल्ला सस्सिरीया आरुग्ग तुट्ठि दीहाउ कल्लाण (ग्रं—३००) मंगल्लकारगा णं तुमे देवाणुप्पिए ! सुमिणा दिट्ठा, तंजहा—अत्थलाभो देवाणुप्पिए ! भोगलाभो देवाणुप्पिए ! पुत्तलाभो देवाणुप्पिए ! सुक्खलाभो देवाणुप्पिए ! रज्जलाभो देवाणुप्पिए ! एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए ! नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं अम्हंकुलकेउं, अम्हंकुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडिंसयं, कुलतिलयं, कुलकित्तिकरं, कुलवित्तिकरं, कुल दिणयरं, कुलाधारं, कुलनन्दिकरं, कुलजसकरं, कुलपायवं, कुलविवद्धणकरं, सुकुमाल पाणिपायं, अहीणसंपुण्णपंचिंदियसरीरं, लक्खणवंजणगुणोववेयं, माणुम्माणपमाण पडिपुण्ण सुजायसव्वंगसुंदरंगं, ससिसोमाकारं, कंतं, पियदंसणं, सुरूवं, दारयंपयाहिसि ॥५३॥

अर्थः -हे देवानुप्रिये। तुमने प्रशस्त स्वप्न देखे हैं, ये कल्याणकारक हैं ! उपद्रव दूर करनेवाले, धन



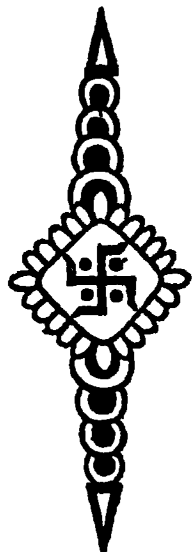


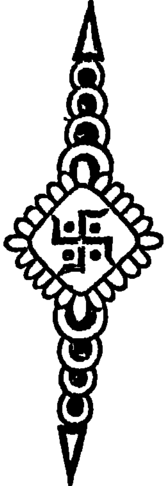
प्राप्त करानेवाले, मंगलकारक, शोभायुक्त और आरोग्य तुष्टि-सन्तोष दीर्घायु, कल्याणमंगल करनेवाले, हे देवानुप्रिये ! तुमने स्वप्न देखे हैं, इन स्वप्नों के प्रभाव से देवानुप्रिये ! धन, सुवर्ण, भोग-भोग्य पदार्थों का, पुत्रका, सुखका राज्यका—(स्वामित्व, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, सैन्य ये राज्य के सात अङ्ग हैं) लाभ होगा। इस प्रकार निःसन्देह हे देवि ! पूरे नव मास साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर तुम्हारे उत्तम पुत्र होगा। वह हमारे कुल में शोभावर्द्धक होने से ध्वजा सदृश्य, कुल का प्रकाशक होने से दीपक के समान, किसी के द्वारा पराभूत (पराजित) न होने से पर्वत के सम, कुल का मुकुट, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति करनेवाला, कुल का निर्वाहक, कुल में सूर्य समान, पृथ्वी के सदृश कुल का आधारभूत, कुल की समृद्धि करनेवाला, कुल का यश बढानेवाला, सर्वकुटुम्ब का आश्रयस्थान होने से कुल के लिये महावृक्षवत, कुल की विशेष वृद्धि करने वाला, सुकुमार हाथ पांवों वाला, किसी भी तरह की हीनतारहित उत्तमलक्षणयुक्त परिपूर्ण पञ्चेन्द्रिय शरीर वाला, लक्षण व्यञ्जन और गुणों से युक्त, मान, उन्मान, प्रमाण से प्रतिपूर्ण सुजात, सर्वाङ्ग सुन्दर तथा चन्द्र के समान आकारवाला कान्त प्रियदर्शन और सुरूप पुत्र उत्पन्न होगा।

मूल—से वि अणं दारए उम्मुक्कबालभावे, विन्नाय परिणयमित्ते, जुव्वण गमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कन्ते विच्छिण्ण विउलबल वाहणे रज्जवई रायाभविस्सइ ॥५४॥

तं उरालाणं तुमे देवाणुप्पिए ! जाव सुमिणा दिट्ठा, दुच्चंपि तच्चंपि अणुबूहइ। तए णं सा तिसला खत्तियाणो सिद्धत्थस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सुच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया करयल परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी ॥५५॥

अर्थः—वह बालक बाल्यावस्था व्यतीत हो जाने पर जब आठ वर्ष का होगा, तब अल्प अभ्यास से ही परिपक्व विज्ञानी हो जायगा, पुनः युवा होने पर दान देने में और अङ्गीकृत कार्य का निर्वाह करने में





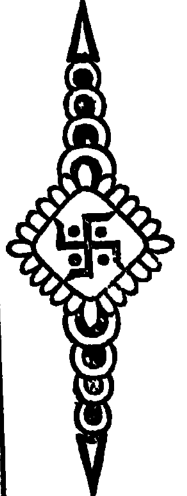
शूर-समर्थ होगा। रण युद्ध मे वीर तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में समर्थ, अति विस्तीर्ण सैन्य वाहिनी हाथी घोडे रथादिवाले राज्य का स्वामी राजा होगा।

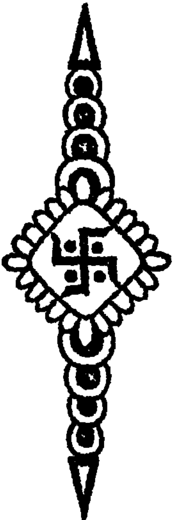
अतः हे देवानुप्रिये। तुमने प्रशस्त स्वप्न देखे हैं। कल्याणमंगल करनेवाले स्वप्न देखे हैं। इस प्रकार दो-तीन बार कहकर अत्यधिक प्रशसा की। तब वे त्रिसला महादेवी सिद्धार्थ महाराजा के पास से स्वप्नों का फल सुनकर और समझकर हर्षित तुष्ट और मुदित हृदय हो गई। दोनों हाथ जोडकर मस्तक पर अञ्जलि लगाकर यों बोली—

सूत्रः— एवमेयं सामो ! तहमेयं सामी ! अवितहमेयं सामी ! असंदिद्ध मेयं सामो ! इच्छिअमेय सामो ! पडिच्छिअमेयं सामी ! इच्छिअ पडिच्छिअ मेयं सामो ! सच्चे णं एसमट्ठे से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ। पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुन्नाया समाणो नाणामणिरयण भत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ। अब्भुट्ठित्ता अतुरिअमचवलम-संभंताए अविलंबियाए रायहंससरिसीए गईए, जेणेव सए सयणिज्जे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सयणिज्जं दुरूहइ दुरूहित्ता एवं वयासी ॥५६॥

अर्थः—हे स्वामिन, ऐसा ही है। जैसा आप कहते हैं विशेषतः ऐसा ही है, सत्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं, यही मुझे इष्ट अभीष्ट है, पुनः २ इष्ट अत्यन्त अभीष्ट है, इन स्वप्नों का फल जैसा आप कहते हैं; वैसा ही सत्य है।

ऐसा कहकर स्वप्नों को सम्यक् प्रकार से पुनः ग्रहण किया और सिद्धार्थ राजा की आज्ञा होने पर नाना मणि रत्नों से जटित भद्रासन से उठकर शीघ्रता चपलता और सम्भ्रम रहित कही विलम्ब न करती





हुई, राजहंस सदृश चाल से चलती हुई अपने शयनकक्ष में आ गई ओर शयनीय पर बैठकर यों बोली—

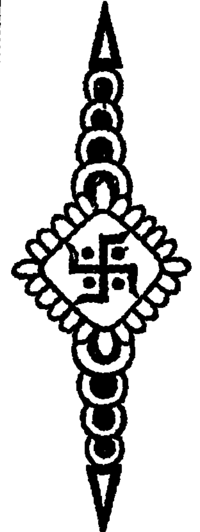
मूलः—मा मे ते उत्तमा पहाणा मंगल्ला सुमिणा दिट्ठा अण्णेहिं पाव सुमणेहिं पडिहम्मिस्संति त्ति कट्टु देवगुरुजण संबद्धाहिं पसत्थाहिं मंगल्लाहिं धम्मियाहिं लट्ठाहिं कहाहिं सुमिणजागरिअं जागरमाणी पड़िजागरमाणी विहरइ ॥५७॥

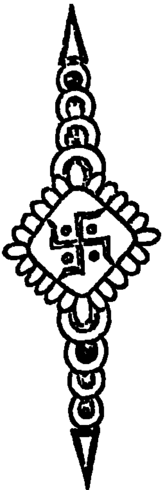
अर्थः—मेरे द्वारा पहले देखे गये ये उत्तम सुन्दर और अच्छा फल देनेवाले मंगलमय स्वप्न अन्य पापमय स्वप्नों को देखने से निष्फल न हो जायें। ऐसा विचार कर देव गुरूजन विषयक प्रशस्त मंगलकारिणी धार्मिक सुन्दर कथाओं से स्वप्न जागरिक विचार करती हुई उन्हीं स्वप्नों की रक्षा का उपचार करती हुई स्थित रही।

मूल :—तए णं सिद्धत्थे खत्तिए पच्चूसकालसमयंसि कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी ॥५८॥

अर्थ :—तदनन्तर सिद्धार्थक्षत्रिय ने उषःकाल के समय कोटुम्बिक पुरुष (कामदार) को बुलाया और कहा—

मूल :—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अज्ज सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गंधोदयसित्तं सुइअ संमज्जिओवलित्तं सुगंधवर पंचवण्णपुप्फोवयार कलियं कालागुरु-पवरकुंदरुक्कतुरुक्क डज्झंत धूव मघमघंत गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टि भूअं करेह। कारवेह करित्ता कारवित्ता य सीहासणं रयावेह रयावित्ता ममेयमाणत्तियं खिप्पामे व पच्चपिणह ॥५९॥

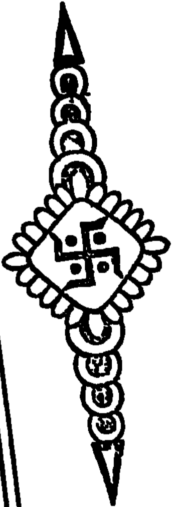


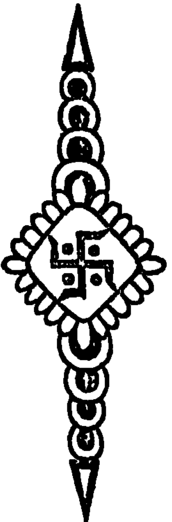


अर्थ :—हे देवानुप्रिय। आज विशेष उत्सव का दिन है; अतः बाह्य सभामण्डप को सुगन्धित जल छिडक कर पवित्र बनाओ, भली प्रकार मार्जन (झाडू) दिलवा कर स्वच्छ कराओ और गोमय आदि से लिप्त कराओ, पञ्चवर्ण पुष्पो के उपचार से कलित पूजित करो कराओ अर्थात् पुष्पवर्षाओ। कालागुरु श्रेष्ठ कुन्दरु सेल्हारस आदि के धूपक्षेपण से मघमघायमान (महकयुक्त) मनोहर, सुगन्धश्रेष्ठ गन्ध से युक्त सुगन्धित वटिका जैसा बनाओ, दूसरो से बनवाओ। यह सब कार्य करवा कर सिंहासन स्थापित कराओ और मुझे शीघ्र ही सूचना दो।

मूल :—तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ तुट्ठ जाव हियया करयल जाव कट्टु एवं सामि ! त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति पडि सुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेवबाहिरिया उवट्ठाण साला तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता खिप्पामेव सविसेसं बाहिरियं उवट्ठाणसालं गधोदग सित्तं जाव सिंहासणं रयाविंति, रयावित्ता जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥६०॥

अर्थः—सिद्धार्थ राजा की ऐसी आज्ञा होने पर कर्मचारीगण हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रसन्न होकर मस्तक पर अञ्जलि करके "हे देव। जैसी आज्ञाहै, वैसा ही करेंगे ऐसा कहकर सविनय आज्ञा स्वीकार की और सिद्धार्थ राजा के पास से चले गये। बाह्य सभामण्डप में जाकर शीघ्र ही सफाई आदि के समस्त कार्य करवाये और सिंहासन स्थापित करवाकर सिद्धार्थ नृपति के पास आये। अंजलि करके सभामण्डप तैयार होने की सूचना दी।

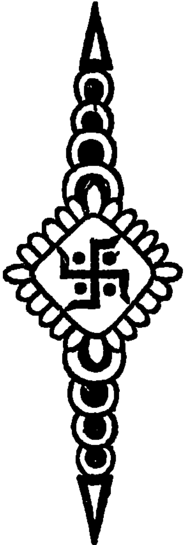


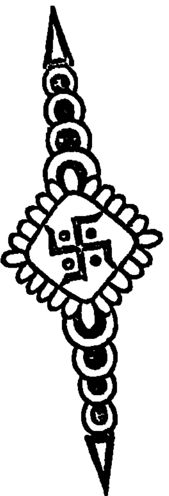


सूत्र :—तए णं (से) सिद्धत्थे खत्तिए कल्लं पाउप्प भायाए रयणीए फुल्लुप्पल कमल-कोमलुम्मीलियम्मि अहापंडुरे पभाए, रत्तासोग-प्पगास किंसुअ-सुअमुह-गुंजद्धराग-बंधुजीवग पारावयचलणनयण परहुअ सुरत्तलोयण-जासुअण कुसुमरासि-हिंगुलनिअराविरेअरेहंत-सरिसे कमलायर संड बोहए उट्ठिअम्मि सूरे सहस्स रस्सिम्मि दिणयरे तेअसा जलंते, तस्स य कर पहरापरद्धम्मि अंधयारे, बालायवकुंकुमेण खचिअव्व जीवलोए सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ ॥६१॥

अर्थ :—तदनन्तर अर्थात् कर्मचारियों द्वारा सभामण्डप तैयार हो जाने की सूचना पाने के पश्चात् सिद्धार्थ राजा प्रातःकाल आकाश में अरुणोदय होने पर, सूर्यविकाशी कमलों के विकसित होने और कृष्ण सार मृगों के नेत्रों के खुलने पर अर्थात् उज्ज्वल प्रभात हो गया था। रक्ताशोक पलाशपुष्प, शुकमुख गुञ्जा का अर्द्धभाग (चिरमी का आधा हिस्सा) दुपहरिया का कुसुम कपोतपद (कबूतर के पांव) और नेत्र, कोयल के रक्तनेत्र गुडहल के पुष्पों की राशि, हिंगुल का ढ़ेर, इनसे भी अधिक रक्तवर्ण वाले कमलाकर खण्ड अर्थात् तालाबों के कमलों को विकसित करनेवाले, तेज से जाज्वल्यमान लोकरूढ़ि से सहस्रकिरण ऐसे सूर्य का उदय हुआ, बाल सूर्य के आतप से सारी भूमि मानो कुंकुम बिछा दिया गया हो ऐसी दिखने लगी तब शय्या से उठे।

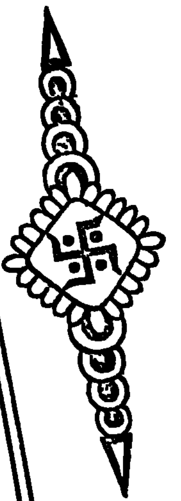
मूल :—अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता, जेणेव अट्टणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अणु पविसित्ता अणेग वायाम जोग्गवग्गण वामद्दण मल्लजुद्धकरणेहिं संते परिसंते सयपाग सहस्सपागेहिं सुगन्धवर तिल्लमाइएहिं पीणणो



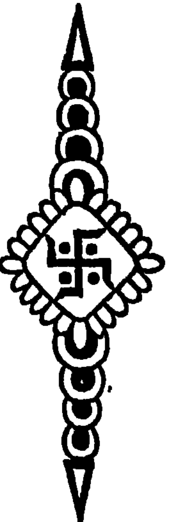


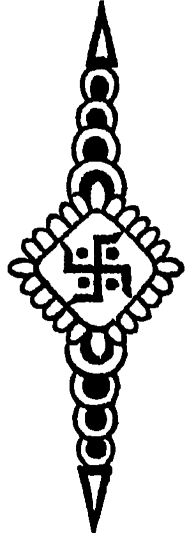
ज्जेहिं दीव्रणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहाणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं सव्विंदियगाय पल्हायणिज्जेहिं अब्भंगिए समाणे तिल्लचम्मंसि निउणेहिं पडिपुन्न पाणिपायसुकुमालकोमलतलेहिं अब्भंगण परिमद्दणु-व्वलण-करण-गुण निम्माएहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं जिअपरिस्समेहिं पुरिसेहिं, अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए सुहपरिक्कम्मणाए संवाहणाए संवाहिए समाणे अवगय परिस्समे अट्टणसालाओ पडिनिक्खमइ ॥६२॥

अर्थ :—उठकर पादपीठ पर पांवरखकर उतरे। उतरकर जहाँ व्यायामशाला है वहाँ आये। आकर व्यायाम के योग्य अनेक प्रकार के अभ्यास यथा—कूदना, व्यामर्दन (परस्पर भुजायें मरोड़ना) मल्लयुद्ध कुश्ती करना आदि से श्रान्त परिश्रान्त हो गये। तत्पश्चात् शतपाक,[1] सहस्रपाक[2] श्रेष्ठ सुगन्धित तैल आदि से जो प्रीणनीय—समस्त शरीरगत धातुओं को समत्व प्रदान करनेवाले, दीपनीय कान्तिवर्द्धक कामोत्तेजक, बृंहनीय—पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, सर्वेन्द्रिय शरीर को आनन्दित करनेवाले थे, उनसे मर्दन करवाया। मर्दन (मालिश) करनेवाले अपने कार्य में अर्थात् मालिश करने में निपुण, कोमल और परिपूर्ण हाथ-पांवो वाले, अभ्यङ्गन, तैल मर्दन, उद्वलन—हाथ-पांव आदि समस्तअंगावयवों को यथायोग्य मरोड़ना आदि जो मर्दन का अंग है उनमें निष्णात, अवसरज्ञ, दक्ष-समयोचित्त कार्य करने में कुशल श्रेष्ठ-मर्दनकारियों में प्रधान, विवेकशील, मेधावी जितपरिश्रम-नहीं थकनेवाले ऐसे थे। इस प्रकार के मल्लों से अस्थि मास त्वचा और रोमों को सुखकर यों चार प्रकार के गुणोंवाली अंगशुश्रुषा संवाहना (दबाना-चाँपना) से परिश्रम-व्यायाम से होने वाले खेद को दूर करके व्यायामशाला से बाहर आये।



(१) सौ औपधियों से निर्मित, (२) सहस्र औपधियों से निर्मित

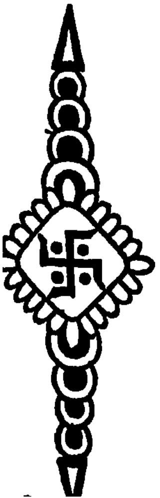




मूल—पडिनिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छई। उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ। अणुपविसित्ता समुत्तजालाकुलाभिरामे, विचित्त मणिरयण कुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि नानामणिरयण भत्ति चित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे, पुप्फोदएहि अ गंधोदएहि अ उण्होदएहि अ सुहोदएहि अ सुद्धोदएहि अ कल्लाण करण पवरमज्जणविहीए मज्जिए। तत्थ कोउअ सएहिं बहुविहेहिं कल्लाणग पवर मज्जणावसाणे पम्हल सुकुमाल गंधकासाइय लूहिअगे अहय सुमहग्घ दूसरयणसुसंवुडे सरस सुरभिगोसोस चंदणाणुलित्तगत्ते सुइ माला वण्णग विलेवणे आविद्धमणि सुवण्णे, कप्पियहारऽद्धहारतिसरयपालंब पलंबमाण कडिसुत्त सुकयसोभे, पिणद्धगेविज्जे अंगुलिज्जग ललिय कया भरणे (णाणामणिकणगरयण) वरकडगतुडिय थंभियभुए अहिअरूव सस्सिरोए कुंडल उज्जोइयाणणे, मउड दित्तसिरए हारोत्थयसुकयरइयवच्छे मुद्दिआपिंगलंगुलीए, पालंबपलंबमाणसुकय पड उत्तरिज्जे नाना मणिकणगरयण विमल महरिह निउणोयविय मिसिमिसिंत विरइअसुसिलिट्ठ - विसिट्ठलट्ठ - आविद्ध-वीरवलये, किं बहुणा ? कप्परुक्खए व्विव अलंकिअ विभूसिए नरिंदे, सकोरिंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेअवर चामराहिं उद्धुव्वमाणोहिं मंगलजयसद्दकयालोए, अणेगगणनायग दंडनायग राईसर तलवर माडंबिअकोडुंबिअ मंति महामंति गणग दोवारिअ अमच्च चेडपोढमद्द नगर निगम सिट्ठि सेणावइ सत्थवाह दूअ संधिवाल सद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहनिग्गए इव गहगणदिप्पंतरिक्ख तारागणाणमज्झे ससिव्व पियदंसणे

नरवई नरिंदे नरवसहे नरसीहे अब्भहिअरायतेअलच्छिए दिप्पमाणे मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ ॥६३॥

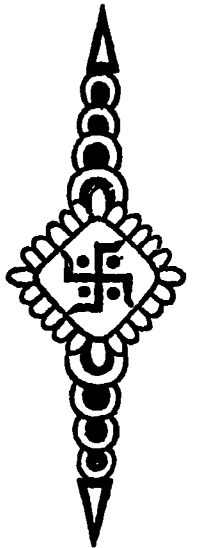
अर्थ :—बाहिर निकलकर स्नानगृह के पास आये और स्नानगृह में प्रवेश किया। स्नान मंडप मोतियों की जालियो से व्याप्त, विचित्र मणि रत्नों के आँगनवाला तथा रमणीय था। राजा नाना भाँति के मणि रत्नों से जड़े हुए स्नानपीठ पर सुख से बैठ गये। पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त पुरुषों ने सिद्धार्थ राजा को पुष्पोदक, गन्धोदक (गुलाबजल आदि) उष्ण जल, शुभ नीर (पवित्र स्थान-गंगा आदि से लाये हुये) निर्मल जल आदि विविध प्रकार के जल से कल्यणकारी श्रेष्ठ स्नान विधि से स्नान कराया। स्नानानन्तर पक्ष्मयुक्त (रोएँदार) सुकोमल, केसरचन्दन कपूर कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों से वासित किये हुये रेशमी वस्त्र से शरीर पोंछा गया। फिर सिद्धार्थ राजा ने अखण्ड, बिना जले हुये, अहत चारों कोनों से अकलंकित सुन्दर वस्त्र रत्न अर्थात् अधोवस्त्र (धोती) व उत्तरीय धारण किये। सरस सुन्दर गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया। पवित्र पुष्पमाला धारण की। मणिरत्नों से जटित सुवर्ण आभूषण पहने। अट्ठारह, नव और एक सर वाले हार हृदय पर धारण किये। बहुमूल्य हीरों से जड़ा हुआ मोतियों के गुच्छेवाला कटिसूत्र (कन्दोरा) पहना। कण्ठ में भी यथोचित भूषण पहने। अंगुलियों में अंगूठियाँ धारण की। नाना प्रकार के मणिरत्नजटित कड़े केयूर-भुजबन्द पहुँचियों आदि से हाथ और भुजाएँ शोभित की। रत्नजटित कुण्डलों से मुख अत्यन्त शोभित हो गया। मुकुट से शिर दीप्त था। इस प्रकार हार आदि से अलंकृत देखनेवाले प्रसन्न हों ऐसे वक्षवाले, मुद्रिकाओं से पिङ्गलवर्ण अगुंलियों वाले नृप ने लम्बा उत्तरीय पट धारण किया। विविध भाँति के रत्नो से जटित बहुमूल्य निपुण शिल्पियों द्वारा निर्मित, देदिप्यमान, सुयोजित सन्धियों वाला,, अतिरम्य, मनोहर वीरवलय धारण किया। अधिक क्या वर्णन करें ! सिद्धार्थ नृपति, कल्पवृक्ष जैसे पत्र पुष्प फल से अलकृत होता है वैसे ये वस्त्राभूषणों से विभूषित हो गये। कोरण्टवृक्ष के पुष्पों की मालाओं



से सुशोभित छत्र धारण किया। श्वेत चामर वींजे जा रहे थे। चारों ओर के लोक, राजा की जय जयकार कर रहे थे। इस प्रकार सब तरह अलंकृत होकर सिद्धार्थ राजा, गण-नायक स्व-स्व समुदायों के अध्यक्ष, दण्डनायक-कलक्टर (जिलाधीश) अथवा राष्ट्रचिन्तक, माण्डलिक, युवराज, तलवर—(तुष्ट हुए राजा ने जिसको पट्टबन्ध से विभूषित किया है वह) माडम्बिक-(जिस ग्राम के चारों ओर आधे योजन तक कोई ग्राम न हो उसे मडम्ब कहते हैं।) मडम्ब स्वामी, कौटुम्बिक-कुटुम्ब[1] के अधिपति, मन्त्री, महामन्त्री, ज्योतिषी, द्वारपाल, अमात्य-राजा के साथ जन्म लेने वाले वे व्यक्ति जिन्हें मन्त्री पद दिया गया। चेट-दास जन, पीठमर्दक-अर्थात् सदा समीप रहने वाले, नगरवासी जन, वणिक वर्ग, श्रेष्टिजन, सेनापति, सार्थवाह, दूतगण, सन्धिपाल, इन सबसे घिरे हुये स्नानागार से बाहर निकले। उस समय ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानो धवल मेघ मण्डल से निकला हुआ और नक्षत्र समूह से परिवेष्टित प्रियदर्शन चन्द्रमा हो। वे नरपति, नरेन्द्र, नरवृषभ, नरसिंह अत्यधिक राजतेज रूप कान्ति देदिप्यमान थे।

मूल—मज्जणघराओ पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता अप्पणो उत्तरपुरिच्छिमे दिसिभाए अट्ठभद्दभणाइं सेअवत्थापच्चुत्थयाइं सिद्धत्थयकयमंगलोवयाराइं रयावेइ ॥६४॥

अर्थ :—स्नानागार से निकल कर बाह्य सभामण्डप में पधारे और पूर्वाभिमुख हो सिंहासन पर विराजमान हो गये और अपने सिहासन से ईशानकोण में श्वेतवस्त्रों से आच्छादित, सिद्धार्थक-श्वेत सरसों द्वारा मंगलार्थ पूजित, आठ भद्रासन स्थापित करवाये।



१ ग्रामणी भी कहते हैं।

तृतीय वाचना

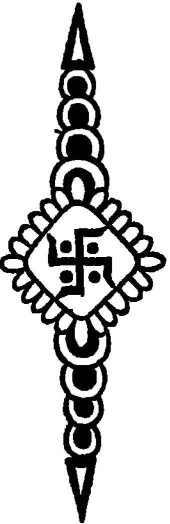
ज्जेहिं दीवणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विहाणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं सव्विंदियगाय पल्हायणिज्जेहिं

मूल—एयाविता अप्पणो अदूर सामंते नानामणिरयणमंडियं, अहिअ पिच्छणिज्जं, महग्घ-वरपट्टणुग्गयं, सण्हपट्टभत्तिसय-चित्तताणं, ईहामिअ उसभ तुरग नर मगर विहग वालग किन्नर रुरु सरभ चमर कुंजर वणलय पउमलय भत्तिचित्तं, अभिंतरियं जवणियं अंछावेइ, अंग-सुहफरिसं णाणामणिरयण भत्तिचित्तं, अत्थरयमिउमसूरगुत्थयं, सेअवत्थपच्चुत्थयं, सुमउअं, अंग-सुहफरिसं, विसिट्ठं तिसलाए खत्तिआणीए भद्दासणं रयावेइ। रयावित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासो ॥६५॥

अर्थ :—भद्रासन रखवा कर अपने से न दूर न समीप नाना मणिरत्नों से मंडित, अधिक दर्शनीय प्रधान वस्त्रोत्पादन स्थान में निर्मित, सैकडों चित्रों से युक्त, भेडिये, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, कृष्णसारमृग, शरभ-अष्टापद, चमरीगाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्रो से विचित्र दिखनेवाली आभ्यन्तरिक—अर्थात् सभामण्डप के अन्दर लगाई जानेवाली यवनिका 'कनात' बँधवाई। फिर उसके पीछे विविध मणिरत्न जटित कोमल रजरहित मसूरिका युक्त रेशमीडोर से गुंथा हुआ, श्वेत वस्त्राच्छादित सुकोमल, सुख स्पर्शवाला; अतः विशिष्ट भद्रासन त्रिसला क्षत्रियाणी के लिए स्थापित करवाया और पश्चात् कौटुम्बिक पुरुष—राजकर्मचारी को बुलवा कर यों कहा—

मूल—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अट्ठंगमहानिमित्तसुत्तत्थधारए, विविहसत्थकुसले सुविण-लक्खणपाढए सद्दावेह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थेणं रन्ना एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया करयल जाव पडिसुणंति ॥६६॥

कल्पसूत्र ११६



अर्थ :—हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही अष्टाग[1] महानिमित्त सूत्रार्थ के धारक, विविध शास्त्रों में कुशल स्वप्न लक्षण पाठकों को बुला लाओ। तब वे कार्यकर्ता व्यक्ति सिद्धार्थ महाराज के ऐसा कहने पर अत्यन्त हृष्टतुष्ट प्रसन्न हुए और अजंलि पूर्वक आज्ञा को शिरोधार्य किया।

मूल—पडिसुणित्ता सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति। पडिनिक्खमित्ता कुंडपुरंगामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सुविणलक्खण पाढगाणं गेहाइं तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता सुविणलक्खण पाढए सद्दाविंति ॥६७॥

अर्थ :—आज्ञा शिरोधार्य कर सिद्धार्थ नृपति के पास से निकले। निकल कर क्षत्रियकुंडग्राम नगर के मध्य में चलते हुये जहाँ स्वप्न लक्षण पाठकों के घर हैं; वहाँ आये और स्वप्न लक्षण पाठकों को सिद्धार्थराजा का आदेश कहा।

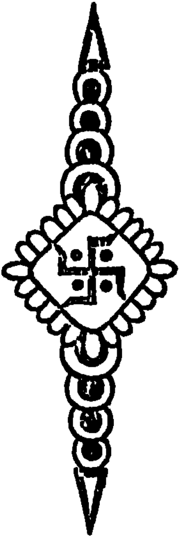
---

१ निमित्तशास्त्र के आठ अंग

अङ्गं स्वप्नं स्वरं चैव भौमं व्यञ्जन लक्षणे। औत्पात मन्तरिक्षं चाष्टाङ्ग निमित्तमुच्यते ॥

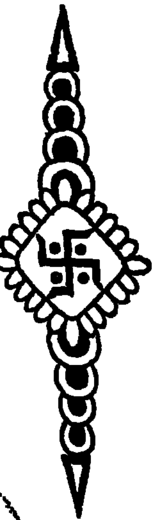
१ अङ्ग - मस्तक भ्रू नेत्र मुख कर पादादि के स्पर्शन गति स्थिति आकार स्फुरणादि द्वारा शुभाशुभ फलादि कहना[1]। २ स्वप्न के शुभाशुभ फल का ज्ञान। ३ स्वर—मनुष्य पशु पक्षी के स्वरानुसार शुभाशुभ फल कथन अथवा सूर्य, चन्द्र, सुषुम्ना नाड़ी (स्वर) द्वारा शुभाशुभ ज्ञान हो। ४ भौम—भूकम्पादि या पृथ्वी के वर्णगन्ध रस स्पर्शादि द्वारा शुभाशुभ फल कहना। ५—व्यञ्जन—तिल मषादि से शुभाशुभ कथन। ६ लक्षण—हाथ पावों की रेखाओं द्वारा या अंगों की प्रशस्तता अप्रशस्ततानुसार शुभाशुभ का ज्ञान। ७ औत्पात —बिजली, उल्कापात आदि द्वारा शुभाशुभ ज्ञान। जैसे—लालीयुक्त पीत बिजली की चमक से वायु, गहरी लाल से आतप पीली से वर्षा सफेद से दुर्भिक्ष होता है। ८ अन्तरिक्ष—ग्रह नक्षत्र आदि के चार गति द्वारा शुभाशुभ फल कथन।

१ अङ्गविज्जा नामक प्रकीर्णक जैन ग्रंथ मे विस्तृत वर्णन है।



मूल—तए णं ते सुविणलक्खण पाढगा सिद्धत्थस्स खत्तिथस्स कोडुंबिय पुरिसेहिं सद्दाविआ समाणा हट्ठ तुट्ठ जाव हय हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउअमंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवराइं परिहिआ, अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा, सिद्धत्थयहरिआली आकय मंगलमुद्धाणा, सएहिं सएहिं गेहेहिंतो निग्गच्छंति। निग्गच्छित्ता खत्तियकुंडग्गामं नगरं मज्झं मज्झेणं जेणेव सिद्धत्थस्स रण्णो भवणवरडिंसग पडिदुवारे, तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता भवणवरवडिंसगपडिदुवारे एगयओ मिलंति। मिलित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सिद्धत्थे खत्तिए तेणेव उवागच्छंति। उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं जाव अंजलिं कट्टु सिद्धत्थं खत्तियं जयेणं विजयेणं वद्धाविंति ॥६८॥

अर्थ :—तब वे स्वप्नलक्षण पाठक सिद्धार्थ राजा के कर्मचारियों द्वारा बुलाने से हृष्टतुष्ट हर्षित हृदय वाले हुए, स्नान किया, गृहदेवता की पूजा की, मषीतिलक किये मंगल के लिए दधि, दोब, अक्षत आदि का उपयोग किया, कुस्वप्न दुःस्वप्न से रक्षित रहें। अतः प्रायश्चित किया। शुद्ध, राजसभा के योग्य मंगलप्रद केशरिया आदि श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये, शरीर पर अल्प मूल्य व बहुमूल्य आभूषण पहने, मंगल के लिए मस्तक पर श्वेत सरसों और दूब रखी इस प्रकार सज धज कर अपने-अपने घरों से निकल और क्षत्रिय-कुण्ड के मध्य में चलते हुये, सिद्धार्थ राजा के प्रासाद के मुख्य द्वार पर पहुँच कर सब एकत्र हुए। फिर एक को नेता बना कर राजभवन में प्रवेश किया। सभा भवन में पहुँच कर करबद्धाञ्जलि पूर्वक सिद्धार्थनृपति को जय विजय शब्दों से वर्धापनिका देते हुए इस प्रकार आशीर्वाद दिया।



“दीर्घायु र्भव वृत्तवान् भव सदा श्रीमान् यशस्वी भव,
प्रज्ञावान् भव भूरि सत्वकरुणा दानैक शौण्डो भव।
भोगाढ्यो भव भाग्यवान् भव महा सौभाग्यशाली भव,
प्रौढ श्री र्भव कीर्तिमान् भव सदा विश्वोपजीव्यो भव॥”

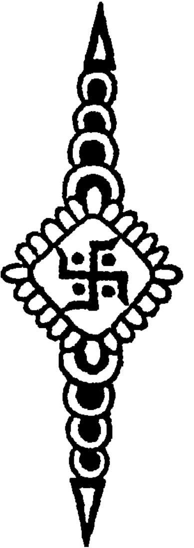
अर्थ :—हे राजन्! आप सदा दीर्घायु सुचरित्र श्रीमान्, यशस्वी बुद्धिमान् सभी जीवों को एक मात्र करुणा-अभयदान देने में अग्रणी हों भोगाढ्य भाग्यवान् महा सोभागशाली, विशाल समृद्धि वाले कीर्ति-युक्त और विश्व के आश्रय-आधार होंवें। पुनः सिद्धार्थ क्षत्रिय भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यों के उपासक थे; अतः इस प्रकार भी आशीर्वाद दिया :—

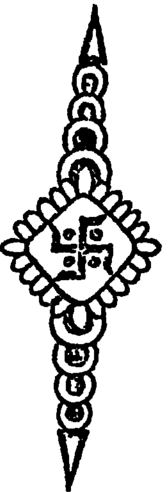
दशावतारो वः पायत् कमनोयाञ्जनद्युतिः।
किं दीपो ? नहि श्रीपः ? किन्तु वामाङ्गजो जिनः॥

अर्थ :—मनोहर; अञ्जन की सी कान्तिवाले भगवान्, जिनके दश अवतार हैं, वे आपकी रक्षा करें। कवि स्वयं शका को उद्भावना करता है कि यह क्या दीपक ? उत्तर नहीं। तब क्या श्रीपति विष्णु ? नहीं किन्तु वामा के पुत्र भगवान् पार्श्वनाथ।

हे राजन! आपका कल्याण हो, शिव हो, धन का लाभ हो, आप दीर्घायु हों, पुत्र जन्मरूप समृद्धि की प्राप्ति हो, आपके शत्रुओं का नाश हो! आपकी सदा जय हो, आपके कुल में सर्वदा श्रमण मुनियों की पूजा भक्ति सत्कार हो।

इति सम्पूर्ण तृतीय वाचना





अथ चतुर्थ वाचना

मूल—तए णं ते सुविणलक्खण पाढगा सिद्धत्थेणं रन्ना वंदिअ पुइअसक्कारिअ सम्माणिआ ताहिं इट्ठाहिं वग्गूहिं उवगहिया समाणा पत्ते अं २ पुव्वन्नत्थेसु भद्दासणेसु निसीयंति ॥६९॥

अर्थ :—तब वे स्वप्नलक्षणपाठक सिद्धार्थराज द्वारा वन्दित पूजित सत्कृत सम्मामित और प्रिय वाणी से अभ्यर्थित होकर पहले स्थापित किये गये पृथक् २ सिंहासनो पर बैठ गये।

मूल—तए णं सिद्धत्थे खत्तिए तिसलां खत्तियाणिं जवणि अंतरियं ठावेइ ठावित्ता पुप्फफल-पडिपुण्ण हत्थे परेणं विणएणं ते सुविणलक्खणपाढए एवं वयासी ॥७०॥

अर्थ :—अब सिद्धार्थ राजा ने त्रिशला महारानी को पर्दे के पीछे बैठाया और वह पुष्पफल नारियलादि हाथ में लिए बैठी क्योकि व्यवहार नीतिकार ने कहा है :—

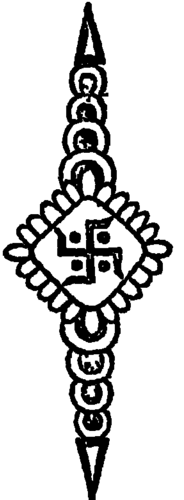
रिक्तापाणि र्न पश्येच्च राजानं दैवतं गुरुम्। निमित्तज्ञं च वैद्यं च फलेन फलमादिशेत् ॥

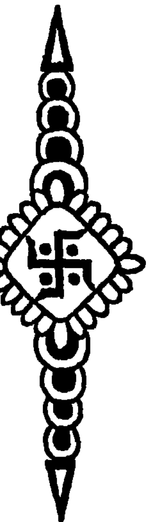
अर्थ :—राजा देवता गुरु निमित्तज्ञ और वैद्य के दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिये; क्योंकि फल से फल का निर्देश किया जाता है।

अतः फलादि लेकर अत्यन्त विनयपूर्वक उन पण्डितों से कहा—

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्ज तिसला खत्तियाणी तंसि तारिसगंसि जाव सुत्तजागरा ओहोरमाणो ओहोरमाणी इमे एयारूवे उराले चउद्दस महासुमिणे पासित्ता णं पडिबुद्धा ॥७१॥

तंजहा—'गयवसह' ॥७२॥





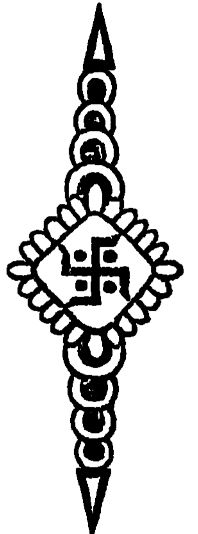
अर्थ :—हे महानुभावों ! आज त्रिसला महारानी शय्या पर शयन करते हुए कुछ सुप्त कुछ जागृत अवस्था में गज वृषभ सिंह लक्ष्मी आदि चवदह महास्वप्न देखकर जग गई।

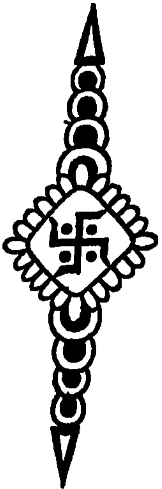
मूल—तं एएसिं चउद्दसण्णं महासुमिणाणं देवाणुप्पिया ! उरालाणं के मन्ने कल्लाणे फलवित्तिविसेसे भविस्सइ ॥७३॥

अर्थ :—तो देवानुप्रियों ! इन चवदह महास्वप्नों का जो अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, क्या कल्याणमय फलवृत्ति विशेष होगा ?

मूल—तयेणं ते सुविणलक्खण पाढगा सिद्धत्थस्स खत्तियस्स अंतिए एअमट्ठं सोच्चानिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया ते सुमिगे ओगिण्हंति। ओगिण्हित्ता इहं अणुपविसंति। अणुपविसित्ता अन्नमन्नेणं सद्धिं संलवेंति संलावित्ता तेसिं सुमिणाणं लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छिअट्ठा विणिच्छिअट्ठा अभिगयट्ठा सिद्धत्थस्स रण्णो पुरओ सुमिण सत्थाइं उच्चारेमाणा सिद्धत्थं खत्तियं एवं वयासी ॥७४॥

अर्थ :—तब वे स्वप्नलक्षणपाठक सिद्धार्थ राजा से यह सुनकर अत्यन्त हृष्ट तुष्ट रोमाञ्चित हो गये, उन स्वप्नों को अवधारण किया, अर्थ का विचार किया, परस्पर पर्यालोचना की। उन स्वप्नों का अर्थ अपनी बुद्धि से लगाया, परस्पर एक दूसरे का अभिप्राय जाना, अर्थ का निश्चय किया, स्वप्नशास्त्रों का प्रमाण देते हुये बोले—राजन् ! स्वप्न नव कारण से दिखते है :—अनुभव किया हुआ, सुना हुआ, देखा हुआ, प्रकृति-स्वभाव में विकार होने से, स्वाभाविक रूप से, चिन्ता से, देवानुभाव से, धर्म कर्म के प्रभाव से, और पाप के उद्रेक से। प्रथम के छः कारणों से होने वाले शुभ या अशुभ स्वप्न निरर्थक होते है। पीछे के तीन कारणों से दिखने वाले स्वप्न सत्य होते है।





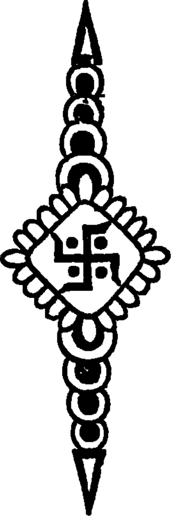
रात्रि के चारो प्रहरो में दिखाई देने वाले स्वप्न क्रमशः प्रथम प्रहर का एक वर्ष में द्वितीय प्रहर का छः मास मे तृतीय प्रहर का तीन मास में और चतुर्थ प्रहर का एक मास में फलदाता होता है। रात्रि की अन्तिम दो घडी में दिखने वाला दश दिन में और सूर्योदय के समय देखा गया तत्काल फलदायी होता है। दिन में देखा गया या आधिव्याधि से दिखनेवाला अथवा मल मूत्रादि की बाधा से होने वाला स्वप्न निरर्थक होता है।

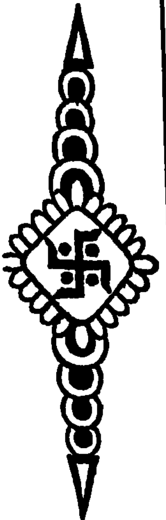
अच्छा स्वप्न देखकर नींद नहीं लेनी चाहिये और प्रातः सद्गुरु से कहना योग्य है तथा अशुभ स्वप्न देखे तो पुनः सो जाना योग्य है। किसी से कहना उचित नहीं। वातपित्त की समता से प्रशान्त, धार्मिक, नीरोग और जितेन्द्रिय को दिखाई पडने वाला शुभ या अशुभ स्वप्न सत्य होता है।

पहले अशुभ स्वप्न देखा गया हो और फिर शुभ देखे तो शुभ फल होता है। पहले शुभ देखा फिर अशुभ देखे तो अशुभ फलदाता होता है।

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं सुमिणसत्थे बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा, बावत्तरि सव्व सुमिणा दिट्ठा। तत्थ णं देवाणुप्पिया ! अरहंत मायरो वा चक्कवट्टी मायरो वा अरिहंतंसि (ग्रं० ४००) वा चक्कहरंसि वा गब्भं वक्कम माणंसि एएसिं तीसाए महासुमिणाणं इमे चउद्दस महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति ॥७५॥ तंजहा गय वसह० गाहा ॥७६॥

अर्थ :—इस प्रकार हे नरेश ! हमारे स्वप्न शास्त्र मे बियालीस स्वप्न सामान्य फल दाता और तीस महास्वप्न उत्तम फलप्रद यों बहत्तर स्वप्न बतलाये गये हैं। उनमें से हे देवानुप्रिय राजन् ! अर्हत् तीर्थंकर माता और चक्रवर्ती की माता तीर्थंकर अर्हत् या चक्रवर्ती के गर्भ में उत्पन्न होने पर तीस महास्वप्नों में से चवदह (हाथी वृषभ सिंहादि) महास्वप्न देखकर जागृत होती है।





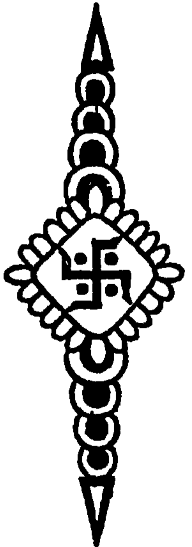
मूल—वासुदेव मायरो वा वासुदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हंमहा-सुमिणाणं अन्नयरे सत्त महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति ॥७७॥

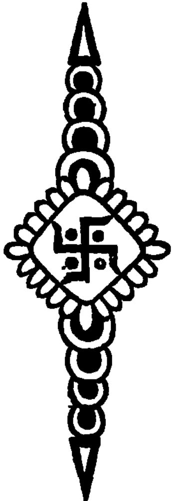
बलदेव मायरो वा बलदेवंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरे चत्तारि महासुमिणे पासित्ताणं पडिबुज्झंति ॥७८॥

मंडलिय मायरो वा मंडलियंसि गब्भं वक्कममाणंसि एएसिं चउद्दसण्हं महासुमिणाणं अन्नयरं एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥७९॥

अर्थ :—वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भ में आने पर इन चवदह महास्वप्नों में से सात स्वप्न, बलदेव की माता चार स्वप्न और देशाधिप की माता एक महास्वप्न देखती है।

मूल—इमे अ णं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए चउद्दस महासुमिणा दिट्ठा, तं उरालाणं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, जाव मंगल्ल कारगाणं देवाणुप्पिया ! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा। तं जहा अत्थलाभो देवाणुप्पिया ! भोगलाभो देवाणुप्पिया ! पुत्तलाभो०, सुक्खलाभो०, रज्जलाभो०, एवं खलु देवाणुप्पिया ! तिसला खत्तियाणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं विइक्कंताणं, तुम्हं कुलकेउं कुलदीवं, कुलपव्वयं, कुलवडिंसगं, कुलतिलयं कुलकित्तिकरं कुलवित्तिकरं कुलदिणयरं कुलाहारं कुलनंदिकरं कुलजसकरं कुलपायवं कुलतंतुसंतान विवद्धणकरं सुकुमाल पाणिपायं, अहीण पडिपुण्ण



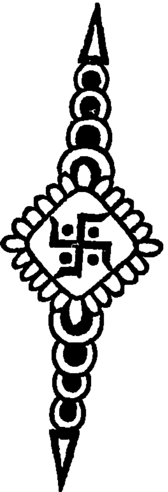


पचिंदिय सरीरं, लक्खण वंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाण पडिपुण्ण सुजाय सव्वंग सुंदरंगं ससि-सोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि ॥८०॥

अर्थ :—हे राजन् ! त्रिसलारानी ने चवदह महास्वप्न देखे हैं ! ये स्वप्न अत्यन्त उदार-श्रेष्ठ, यावत् मङ्गलकारक हैं । इन स्वप्नो के प्रभाव से आप श्रीमान् को धनलाभ भोगलाभ पुत्र, मुख और राज्य का लाभ होगा, और गर्भ के नव मास साढे सात दिन व्यतीत होने पर महारानी त्रिसलादेवी, आपके कुल में ध्वजा के समान कुलदीपक, कुलपर्वत, कुल में मुकुट सदृश, कुल का तिलक, कुल की कीर्ति करनेवाला, कुल का निर्वाह करनेवाला, कुल में सूर्यवत्तेजस्वी, कुल का आधार, कुल की समृद्धि बढानेवाला, कुल यश बढ़ानेवाला, अनेकों का आश्रय और रक्षक होने से कुल में वृक्ष जैसा, कुल परम्परा की वृद्धि करनेवाला, सुकोमल हाथ पाँवो वाला, अक्षीण सम्पूर्ण पञ्चेन्द्रिय शरीरधारी, लक्षण व्यञ्जनादि गुण युक्त, मान उन्मान प्रमाणोपेत, सुजात, सर्वाङ्गसुन्दर चन्द्रमा के समान सौम्य, कान्त-मनोहर, प्रिय दर्शन पुत्र को प्रसव करेगी ।

मूल—सेविय णं दारए उम्मुक्क बालभावे विन्नायपरिणयमित्ते जुव्वणगमणुपत्ते सूरे वीरे विक्कंते, विच्छिन्न विपुलबलवाहणे चाउरंत चक्कवट्टीरज्जवई राया भविस्सइ, जिणे वा तेलुक्क-नायगे धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टी ॥८१॥

अर्थ :—वह पुत्र बाल्यावस्था से किशोरवय प्राप्त होने पर समस्त प्रकार के विज्ञान से युक्त होगा । तरुण होने पर दानादि सत्कार्यों में शूर, युद्ध में वीर, अन्यों पर आक्रमण करने में समर्थ, विस्तीर्ण विशाल चतुरङ्ग सेना युक्त सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् होगा । अथवा जिन-तीर्थङ्कर त्रैलोक्यनायक धर्म में श्रेष्ठ सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् होगा ।



उन चवदह महास्वप्नों का (तीर्थंकर विषयक) फल निम्नलिखित हैं :—

१ चारदाँतोंवाला हाथी देखने से आपका पुत्ररत्न चतुर्विध दान, शील, तप और भावना रूप धर्म का उपदेशक होगा। २ वृषभ देखने से सम्यक्त्व रूप बीज को वपन करने वाला या धर्म धुरन्धर होगा। (३) सिंह देखने से अष्ट कर्म रूप गज का नाश करेगा। (४) लक्ष्मी देखने से सांवत्सरिक दान देकर जगत् के दारिद्र्य का नाश करनेवाला और तीर्थङ्कर पद रूप लक्ष्मी का भोक्ता होगा (५) पुष्पमालाओं के अवलोकन से त्रिभुवन के प्राणी उसकी आज्ञा शिरोधार्य करेंगे। (६) चन्द्रदर्शन से समस्त भव्य जीवों के नेत्र और हृदय को आल्हादित करनेवाला होगा। (७) सूर्यदर्शन से शिरः पृष्ठ भाग में देदिप्यामान भामण्डल युक्त होगा। (८) ध्वजा देखने से उसके आगे धर्मध्वज चलेगा। (९) पूर्णकलश अवलोकन से सम्पूर्ण यथाख्यात चारित्रवाला होगा। अथवा भक्तजनों के मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा। (१०) पद्मसरोवर देखने से विहार के समय देवता चरणों के नीचे स्वर्ण कमलों की रचना करेंगे। (११) क्षीरसमुद्र दर्शन से सम्यग्ज्ञान दर्शनादिगुणों का आकर और धर्म मर्यादा का धारक होगा। (१२) देवविमान देखने से देवमान्य देवपूज्य होगा। (१३) रत्नराशि दर्शन से समवसरण में विराजमान हो, धर्म देशना देनेवाला होगा। (१४) निर्धूम अग्निशिखा देखने से मिथ्यात्वरूप शीत निवारक और महातेजस्वी होगा।

हे राजन्! इन विशेषताओं के अतिरिक्त चवदह स्वप्न साथ देखे हैं; अतः आपका वह पुत्ररत्न चतुर्दशरज्ज्वात्मक लोक के मस्तक पर विराजमान होगा। अर्थात् अन्त में सिद्धावस्था को प्राप्त होगा।

मूल—तं उरालाणं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा, जाव आरुग्ग तुट्ठी दोहाऊ कल्लाण-मंगल्ल-कारगाणं देवाणुप्पिया! तिसलाए खत्तियाणीए सुमिणा दिट्ठा ॥८२॥

अर्थ :—अतः हे राजन्! देवानुप्रिय! त्रिशला महारानी ने आरोग्य तुष्टि दीर्घायु कल्याण मङ्गल करने वाले स्वप्न देखे हैं।

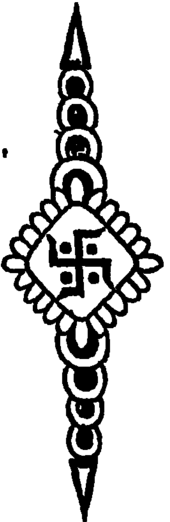
मूल—तए णं सिद्धत्थे राया तेसिं सुमिणलक्खण पाढगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठे तुट्ठे चित्तमाणंदिए पोअमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस विसप्पमाण हियए करयल जाव ते सुमिणलक्खण पाढगे एवं वयासो ॥८३॥

अर्थ :—तब सिद्धार्थ राजा उन स्वप्न-लक्षण पाठको से यह फल सुनकर हृष्ट तुष्ट आनन्दितचित्त संतृप्त मन और अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए। हर्ष से शरीर में रोमाञ्च हो गया। दोनों हाथ जोड़कर स्वप्नलक्षण पाठको से बोले :—

मूल—एवमेयं देवाणुप्पिया ! तहमेयं देवाणुप्पिया ! अवितहमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! पडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! इच्छियपडिच्छियमेयं देवाणुप्पिया ! सच्चेणं एसमट्ठे, से जहेयं तुब्भे वयह त्ति कट्टु ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ। पडिच्छित्ता ते सुमिण लक्खण पाढए विउलेणं असणेणं पुप्फ वत्थगंध मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ। सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउलं जोवियारिहं पोइदाणं दलइ। दलइत्ता पडिविसज्जेइ ॥८४॥

अर्थ :—हे देवानुप्रिय ! पण्डितों ! आपने जो स्वप्नफल बतलाया वह इसी प्रकार है, सत्य है। ऐसा ही इष्ट पुनः पुनः अभिलषित था। ऐसा कहकर स्वप्नों को फिर स्मरण किया और उन पण्डितों को भोजन कराया, पुष्प, भेट किये, तिलक लगाया, उत्तमवस्त्र दिये, पुष्पमालाएं पहनाई आभूषण अर्पण किये अर्थात् अत्यन्त सत्कृत और सम्मानित किया। जीविका के योग्य ग्राम आदि देकर, विदा किया।

मूल—तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए सोहासणाओ अब्भुट्ठेइ। अब्भुट्ठित्ता जेणेव तिसला



खत्तियाणी जवणि अंतरिया, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तिसला खत्तियाणिं एवं वयासी ॥८५॥

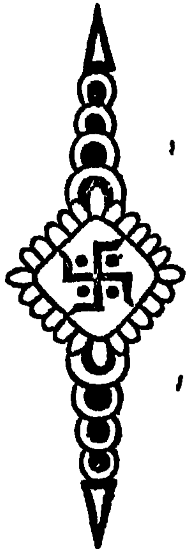
अर्थ :—तब सिद्धार्थराजा सिंहासन से उठे और जहाँ त्रिशला रानी पर्दे के पीछे बैठी थीं, वहाँ आये और त्रिशला से यों बोले—

मूल—एवं खलु देवाणुप्पिए! सुमिणसत्थंसि बायालीसं सुमिणा, तीसं महासुमिणा जाव एगं महासुमिणं पासित्ता णं पडिबुज्झंति ॥८६॥ इमे अ णं तुमे देवाणुप्पिए! चउद्दस महासुमिणादिट्ठा, तं उराला णं तुमे, जाव जिणो वा तेलुक्कनायगे धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टी ॥८७॥

अर्थ :—"हे देवानुप्रिये! स्वप्न-शास्त्र में बयालीस सामान्य और तीस विशेष, ऐसे बहत्तर शुभ स्वप्न बतलाये हैं" इत्यादि सर्व वर्णन किया और कहा—देवि! तुमने चवदह महास्वप्न देखे हैं; अतः तुम्हारे चक्रवर्ती या त्रैलोक्यनायक तीर्थंकर पुत्र होगा। (यद्यपि त्रिशला रानी ने पर्दे के पीछे बैठकर फलादि सब सुन लिया था; फिर भी राजाने अत्यन्त प्रेममग्न हो पुनः कहा। यह उत्कृष्ट दाम्पत्य प्रेम का सूचक है।)

मूल—तए णं सा तिसला खत्तियाणी एअमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियया करयल जाव ते सुमिणे सम्मं पडिच्छइ ॥८८॥

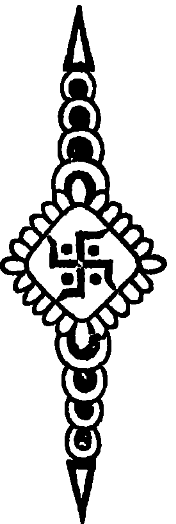
अर्थ :—त्रिशला महारानी ने यह सब सुना और अत्यन्त हर्षित सन्तुष्ट तथा मेघधारा से आहत कदम्बपुष्पवत् विकसित हृदया हो; अञ्जलि पूर्वक पुनः उन स्वप्नों का फल सुनकर अच्छी तरह से स्मृति में सुरक्षित कर लिया।



मूल—पडिच्छित्ता सिद्धत्थेणं रण्णा अब्भणुन्नाया समाणो नाणामणि रयणभत्तिचित्ताओ भद्दासणाओ अब्भुट्ठेइ। अब्भुट्ठित्ता अतुरिअं अचवलं असंभंताए अविलंबिया रायहंस सरिसीए गईए जेणेव सए भवणे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविट्ठा ॥८९॥

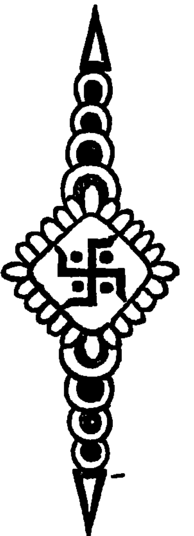
अर्थ :—स्वप्नों को स्मृति में स्थिर करके सिद्धार्थ राजा के द्वारा आज्ञा दिये जाने पर विविध मणि-रत्नजटित सिंहासन से उठकर अत्वरित धीर गम्भीर राजहंस जैसी चाल से चलती हुई अपने भवन में आ गईं।

मूल—जप्पभिइं च णं समणे भगवं महावीरे तंसि नायकुलंसि साहरिए तप्पभिइं च णं बहवे वेसमणकुंड धारिणो तिरियजंभगा देवा सक्कवयणेणं से जाइं इमाइं पुरापोराणाइं महानिहाणइं भवंति, तंजहा :—पहोणसामिआइं पहोण सेउआइं पहोणगुत्तागाराइं उच्छिन्नसामिआइं उच्छिन्नसेउआइं उच्छिन्नगुत्तागाराइं गामागरनगर खेडकब्बडमडंब दोणमुहपट्टणा समसंवाहसन्निवेसेसु सिंघाडएसु वा तिएसु वा चउक्केसु वा चच्चरेसु वा चउम्मुहेसु वा महापहेसु वा गामट्ठाणेसु वा नगरट्ठाणेसु वा गामनिद्धमणेसु वा नगरनिद्धमणेसु वा आवणेसु वा देवकुलेसु वा सभासु वा पवासु वा आरामेसु वा उज्जाणेसु वा वणेसु वा वणसंडेसु वा सुसाण-सुन्नागार गिरिकंदर संति सेलोवट्ठाण भवणगिहेसु वा सन्निक्खित्ताइं चिट्ठंति, ताइं सिद्धत्थराय भवणंसि साहरंति ॥९०॥



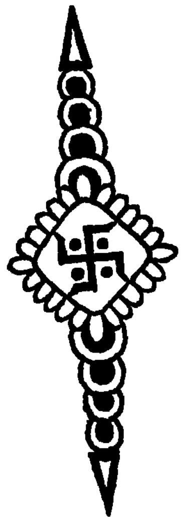
अर्थ :—जिस दिन से श्रमण भगवान् महावीर का उस ज्ञातकुल में संहरण हुआ ; उस दिन से धनद के आज्ञाकारी तिर्यग्जृंभक देव शक्रेन्द्र और धनद के आदेश से अत्यन्त प्राचीन महानिधान जिनके स्वामी स्थापित करने वाले-बढ़ानेवाले रक्षक, उनके वंशज सम्बन्धी आदि सभी नष्ट हो चुके थे, जिनके वंश और घरों का सर्वथा उच्छेद हो चुका था। निम्न स्थानों—ग्राम आकर (धातुओं की खाने) नगर (जहाँ किसी तरह का कोई भी कर नहीं देना पडता था) खेट-खेड़ा (जिसके धूलि का कोट हो) कर्बट-पर्वतों से घिरा हुआ गाँव, मडम्ब जिसके चारों ओर एक-एक योजन पर गाँव हों) द्रोणमुख—जहाँ जल व स्थल दोनों मार्ग हों। पत्तन-उत्तम वस्तुओं का उत्पत्ति स्थान, आश्रम—तापसो के निवास स्थान, संवाह—कृषकों का धान्य रक्षण स्थान, सन्निवेश (मंडो) अथवा व्यापारी सार्थों के ठहरने का स्थान, शृङ्गाटक—तिकोने स्थान, त्रिक—जहाँ तीन मार्ग मिलते हों (चौक), चत्वर—आँगन, चतुर्मुख—जहाँ से चार मार्ग जाते हों अथवा चार दरवाजे वाला स्थान (कटरा), राजमार्ग—मुख्य सडक (मेन रोड) उजड़े गाँव, उजड़े नगर, गाँव के नाले, नगर के नाले, बाजार, देव मन्दिर, सभा भवन, प्याउ, आराम-क्रीडावन, उद्यान, वन, वनखण्ड, श्मशान, शून्यगृह, गुफा, शान्तिगृह, पर्वत में बनाये गये घर, राजसभाभवन, धनियों के भवन, इत्यादि स्थानों में जो महानिधान मृत कृपण लोगों द्वारा गुप्त रूप से रखे गये थे, उन्हे तिर्यग्जृंभक देवों ने सिद्धार्थ राजा के भवन में लाकर रख दिया।

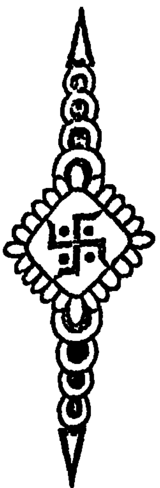
मूल—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे नायकुलंसि साहरिए तं रयणिं च णं नायकुलं हिरण्णेणं वड्ढित्था, सुवण्णेणं वड्ढित्था, धणेणं धन्नेणं, रज्जेणं, रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढित्था, विपुल धण कणग रयण मणि मोत्तिय संखसिलप्पवाल रत्तरयण माइएणं संत सारसावइज्जेणं पीइसक्कारसमुदएणं अईव अईव



अभिवड्ढित्था। तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापिऊणं अयमेयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुपज्जित्था ॥६१॥

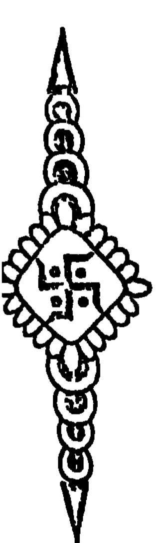
अर्थ :—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का ज्ञातकुल में सहरण किया गया। उस रात्रि से अर्थात् तब से ज्ञातकुल स्वर्ण रजत धन-धान्य राज्य-राष्ट्र बल-सेना वाहन कोश-खजाना कोष्ठागार-धान्य-गृह नगर अन्तःपुर जनपद (जिला) यशोवाद से अभिवृद्धि को प्राप्त हुआ। विशाल धन कनक रत्नमणि मौक्तिक दक्षिणावर्त्तशंख शिला—राजपट्टादिरूप प्रवाल पद्मरागादि, आदि शब्द से वस्त्र आभूषणादि, विद्यमान उत्तम स्वधन, प्रीति सत्कार अर्थात् जनता के प्रेम सत्कार आदि के समुदय से अत्यधिक समृद्ध हुआ। यह सब अनुभव करके श्रमण भगवान् महावीर के माता-पिता—महारानी त्रिसला और महाराज सिद्धार्थ के मन में यह इस प्रकार का अभ्यर्थित चिन्तित प्रार्थित संकल्प समुत्पन्न हुआ।





नामकरण संकल्प

मूल—जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते, तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो सुवण्णेणं वड्ढामो धणेणं धन्नेणं रज्जेणं रट्ठेणं बलेणं वाहणेणं कोसेणं कोट्ठागारेणं पुरेणं अंतेउरेणं जणवएणं जसवाएणं वड्ढामो, विपुल धण कणग रयण मणिमोत्तिय संखसिलप्पवाल रत्तरयणमाइएणं संतसारसावइज्जेणं पीइसक्कारेणं अईव अईव अभिवड्ढामो। तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ, तया णं अम्हे एअस्स दारगस्स एयाणुरूवं गुण्णं गुणनिप्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणुत्ति ॥६२॥



अर्थ :—जबसे हमारा यह बालक कूक्षी में गर्भरूप से आया है, तब से हम सोने चाँदी से समृद्ध बने है। धन धान्य राज्य राष्ट्र बल वाहन कोश कोठार नगर अन्तःपुर जनपद और यशः कीर्ति से बढ़ रहे हैं विपुल धन सुवर्णरत्न मणि मोती शंख कीमती पत्थर प्रवाल (मूंगा) वस्त्रालंकारादि से, वास्तविक उत्तमधन से प्रीति सत्कार से अत्यधिक अभिवृद्धि को प्राप्त हुए हैं। अतः जब हमारे इस बालक का जन्म होगा, तब हमारे इस बालक का नाम इस वृद्धि के अनुरूप गुण से आगत गुणनिष्पन्न 'वर्द्धमान कुमार' देंगे।

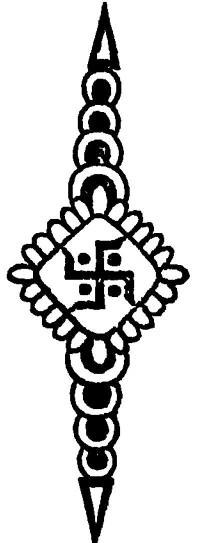
मूल :—तए णं समणे भगवं महावीरे माउअणुकंपणट्ठाए निच्चले निप्फंदे निरेयणे अल्लीण पल्लीणगुत्ते आवि होत्था ॥९३॥

मातृ अनुकम्पा से गर्भगत भगवान् का निश्चल होना

अर्थ :—श्रमण भगवान् महावीर को जब वे गर्भ में थे ऐसा ऐसा संकल्प हुआ कि मेरे हिलने डुलने से माता को कष्ट होता होगा ! इस विचार से निश्चल निष्पन्द और निष्कम्प हो गये, तथा अङ्ग प्रत्यङ्गों को संयमित सकुचित कर लिया।

मूल :—तए णं से तीसे तिसलाए खत्तियाणीए अयमेयारूवे जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था हडे मे सेगब्भे ? मडे मे से गब्भे ? चुए मे से गब्भे ? गलिए मे से गब्भे ? एस मे गब्भे पुव्विं एयइ इयाणिं नो एयइ त्ति कट्टु ओहयमण संकप्पा चिंता सोग सागर संपविट्ठा करयल पल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगय दिट्ठिया झियायइ। तं पि य सिद्धत्थरायवर भवणं उवरय-मुइंग तंती तल ताल नाडइज्ज जण मणुज्जं दीण विमणं विहरइ ॥९४॥

॥..

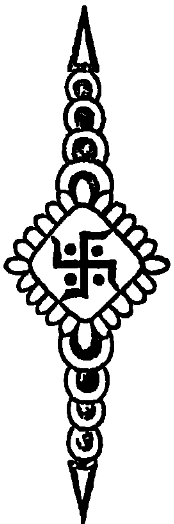


प्रभु के निश्चल होने से माता को शोक

अर्थ :—गर्भ के निश्चल होने से त्रिसला क्षत्रियाणी को इस प्रकार के संकल्प विकल्प होने लगे—हा। मेरा गर्भ किसी दुष्ट देव ने हरण कर लिया है। अथवा मर गया है। च्युत हो गया है ! या गल गया है। क्या हो गया। कुछ समझ मे नही आता ! यह मेरा गर्भ पहले स्पन्दित होता था—हलन चलन क्रिया होती थी, अब कुछ नहीं हो रहा ? इस विचार से उनके मन की आशाएँ निराशा मे परिणत हो गईं। चित्त कलुषित हो गया। चिन्ता और शोकसागर में निमग्न हुई माताजी हाथ पर कपोल रखकर भूमिपर दृष्टि लगाये आर्त्तध्यान करने लगीं :—

यदि वास्तव में मेरे गर्भ को कुछ हो गया है तो सचमुच ही मै अत्यन्त अभागिनी हूँ ! पृथ्वी पर मुझ जैसी कोई अन्य निष्पुण्या-पुण्यहीना नहीं है। क्या करूं। कहाँ जाऊं ! किससे कहूँ। दुष्ट देव ने यह क्या किया। मेरे मनोरथ रूपी वृक्ष को जड से उखाड डाला। सच है, भाग्यहीन के भवन में चिन्तामणि रत्न नही ठहरता और दरिद्र को निधान नहीं मिलता, कदाचित् मिल भी जाय तो वह उसकी रक्षा नहीं कर सकता। मरुभूमि में कल्पतरु कहाँ से प्रकट हो सकता है। भाग्यहीन तृषित को अमृत की प्राप्ति दुर्लभ है। हा। दैव। तुझे धिक्कार हो, आँखे देकर पुनः छीन ली। निधान दिखलाकर वापिस ले लिया। मेरु-पर्वत पर चढाकर नीचे गिरा दिया। भोजन सामग्री से भरा थाल सामने रखकर उठा लिया।

हे विधाता। मैने तेरा क्या अपराध किया था ? किस पाप के फल का यह दण्ड मिला है ? अब इस राज्य से मुझे क्या प्रयोजन है ? इन बहुमूल्य वस्त्र अलङ्कारों, सुन्दर शय्यासनादि सामग्रियो से परिपूर्ण निवास भवनों, आज्ञाकारी दास-दासी आदि परिजनों, सासारिक भोगों से मेरा मन अब विरक्त हो गया है। मेरा ससार ही उजड़ गया है। उन अत्यन्त श्रेष्ठ १४ महास्वप्नों से सूचित, त्रिजगत्पूज्य होने वाले पुत्र के बिना मेरे लिए सारा ससार शून्य है।

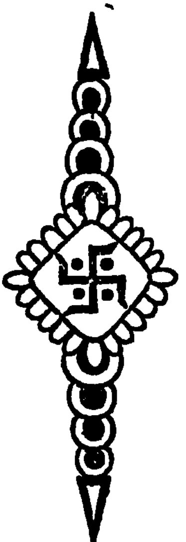


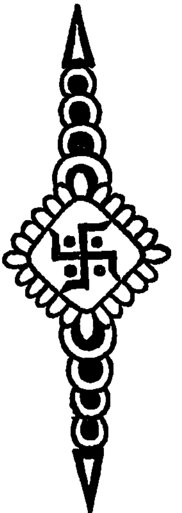
हा ! इस असार संसार को धिक्कार हो ! दुःखों से व्याप्त मधुलिप्त खड्गधारा को चाटने जैसे विषय सुख को धिक्कार हो ! अब क्या होगा ? कैसे जीवित रहुँगी ? अथवा इन विकल्पों से क्या ? मैने ही पूर्व-भव में कोई वैसा दुष्कर्म किया है। जिसका फल मुझे यों भोगना पड़ रहा है। महर्षियों ने धर्मशास्त्रों में कहा है :—

"पसु पक्खिमाणुसाणं, बाले जो वि विओअए पावो।
सो अणवच्चो जायइ, अह जायइ तो विवज्जिज्जा ॥"

भावार्थ :—जो पापी, पशु पक्षी और मनुष्यों के बालकों का वियोग करवाता है; वह निःसन्तान होता है। उसके बालक मर जाते हैं।

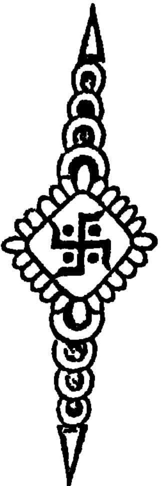
अथवा मुझ पापिनी ने भैंसों से स्तन-पान करते पाडे छुड़वाये होगे ! दूध के लोभ से, स्तनपान करते बछड़ों को हटाया होगा ! अथवा चूहों के बिलों में गर्मपानी डाला या धुआँ दिया होगा ? जिससे वे मर गये होंगे। या उनके बिल पत्थरों से चूने द्वारा बन्द करवाये होंगे, अथवा अण्डे सहित चींटियों के बिल, मकड़ों के बिल पानी से भरे होंगे। तोता मैना सारस बतख आदि के बच्चों का माता से वियोग कराया होगा। अथवा किन्हीं स्त्रियों या सपत्नियों के बच्चों पर क्रोध से करकड़े मोड़े होंगे, धर्मबुद्धि से कौओं के अण्डे फोड़े होंगे। ऋषियों को सताया होगा। स्त्रियों के गर्भपात किये करवाये होंगे। शील खण्डन किया होगा, करवाया होगा, उन्हीं महान् पापकर्मों का यह फल है ! इस प्रकार के विचार करतो हुयी भाग्य को उपालम्भ देने लगी। हे विधाता निर्दय ! निघृण ! पापी ! दुष्ट धृष्ट निष्ठुर निकृष्ट कर्म करनेवाले ! निरपराधी मनुष्यों को मारनेवाले मूर्तिमान् पाप ! विश्वासघात करनेवाले ! अकार्य प्रस्तुत ! निर्लज्ज ! क्यों निष्कारण शत्रु बन रहा है। मैने तेरा क्या अपराध किया है ? तू प्रकट होकर कह ? इस प्रकार विलाप करती हुई त्रिसला से सखियों ने पूछा—हे सखि ! तुम किसलिए ऐसा दुःख कर, रही हो ? तब त्रिशला

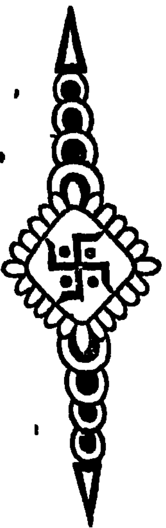




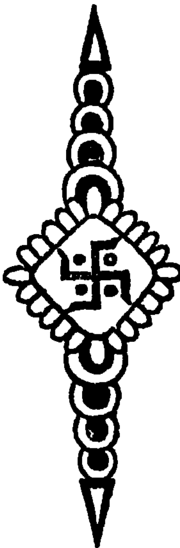
निःश्वास डालती हुयी बोली—हे सखियों ? क्या कहुँ ? कहने की बात नहीं ! मैं मन्दभागिनी हूँ। मेरा
जीवन नष्ट हो गया ! ऐसा कहकर अचेत हो गयी। तब पास में रही हुयी सखियों ने शीतोपचार करके
त्रिशला को सचेत किया। तब फिर विलाप करने लगी, कभी शून्य चित्त हो चुपचाप बैठी रहती, सखियाँ
बार-बार पूछती है, तो रोती हुयी गर्भ का स्वरूप कहती है। फिर मूर्छित हो जाती है। इस प्रकार की स्थिति
देख सुनकर सारे राजकुल के लोग चिन्तातुर हो गये। चारो ओर हा हा कार मच गया, तब कोई सखी
कुलदेवी से प्रार्थना करने लगी कि हे कुलदेवियों ? तुम कहाँ चली गईं ? हम सदा तुम्हारी पूजा में साव-
धान रहती हैं। फिर कुछ कुलवृद्धा स्त्रियों ने मन्त्र तन्त्र यन्त्र शान्तिक पौष्टिक आदि कर्म किये, कोई
ज्योतिषियों पूछताछ करने लगी। राजभवन में नृत्य गीत गायन वादन आदि सर्वथा बन्द कर दिये
गये। कोई भी जोर से नही बोलता है। महाराज सिद्धार्थ शोक सागर में निमग्न हो रहे हैं। राजकर्मचारी
किंकर्त्तव्य विमूढ बन गये हैं ? सारा राजभवन सूना सा लगता है सारी नगरी शोक मग्न है, राजभवन
दुःखागार सा हो रहा है। सभी लोग उद्विग्न हो स्नान भोजन पान दान भाषण शयन आदि आवश्यक कार्य
भी भूल से गये है। कोई किसी से कुछ पूछता है तो निःश्वास डालते हुए उत्तर मिलता है। आँसुओं से ही
मुखप्रक्षालन हो रहा है। सभी शून्यचित्त विमूढ बने हुए हैं। इस प्रकार सारा क्षत्रियकुण्ड शोक-समुद्र में मग्न
हो रहा है।

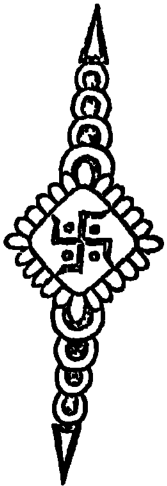
मूल :—तए णं से समणे भगवं महावीरे माऊए अयमेयारूवं अब्भत्थिअं पत्थिअं मणोगयं संकप्पं समुप्पन्नं वियाणिता एगदेसेणं एयई, तए णं सा तिसला खत्तियाणि हट्ठ तुट्ठा जाव हय-हिअया एवं वयासो ॥९५॥ नो खलु मे गब्भे हडे जाव नो गलिए मे गब्भे पुव्विं नो एयइ, इयाणिं एयइ त्ति कट्टु हट्ठ जाव एवं विहरई ॥





अर्थ :—तब गर्भ में रहे हुये श्रमण भगवान् महावीर ने माता को उत्पन्न हुये इस प्रकार के अभ्यर्थित इष्ट, प्रार्थित विशेष इष्ट मनोगत संकल्प को जानकर अपने एक अङ्ग को हिलाया। ऐसा करते ही माता त्रिसला हृष्ट तुष्ट प्रसन्न हो गयी। और बोली—निश्चय ही मेरा गर्भ न किसी ने हरण किया है और न गला है। पहले उसको हलन चलन क्रिया बन्द हो गई थी, अब वह क्रिया पुनः होने लग गयी है। उनका मुख कमल विकसित हो गया और सखियों से प्रसन्नता पूर्वक कहने लगी :—बहिनों ! मै भाग्यशालिनी हूँ, पुण्यवती हूँ, त्रैलोक्यमान्या हूँ, मेरा जीवन धन्य व श्लाघनीय है। देवगुरु की मुझ पर कृपा है। बाल्यावस्था से आराधन किया हुआ धर्म फलीभूत हुआ है। गोत्र-देवियाँ भी मुझ पर प्रसन्न है। इस प्रकार त्रिसला महाराणी को रोमराजो उल्लसित हो गयी, नेत्र कमल खिल गये, वदन भी विकसित हो गया। त्रिशला को हर्षित देखकर वृद्धास्त्रियाँ आशीर्वाद देने लगी। सधवा स्त्रियाँ मंगल गाने लगी। नर्तकियों ने नाटक करना आरम्भ कर दिया। नगर में सर्वत्र अष्टमंगल स्थापित किये गये। जगह जगह कुंकुम छिडका गया। ध्वजायें फहरायी गयी। मोतियों के स्वस्तिक किये गये। पंचवर्ण के पुष्पों की वर्षा की गयी। तोरण बाँधे गए, सब स्त्री पुरुषों ने नये वस्त्राभूषण धारण किये। सौभाग्यवती स्त्रियाँ श्रीफल सहित अक्षतों से भरे थाल लेकर मंगल गान करती हुयी त्रिशला महाराणी के पास बधाई देने आयी। राजभवन के विशाल आँगन में भाट विरुदावलो बोल रहे थे। हाथियों का शृंगार किया गया था, रथ तैयार किये गये थे, घोड़े सजाये गये थे, बाजे बज रहे थे, राजभवन का विस्तृत और विशाल चौक भी आज संकोर्ण हो गया था, नगर में सब लोग प्रसन्नता से इधर उधर जाते हुए दिखायी पड़ रहे थे। राज्य की ओर से देव प्रासादों-मन्दिरों में अष्टाह्निकोत्सव कराये गये, कारागारों से कैदियों को छोड़ दिया गया। साधु सन्तो, सन्यासियों को भक्तिपूर्वक आहारदान दिया गया। साधर्मी-वात्सल्य किया गया। भिक्षुओं को, दीन हीन अपङ्गों को भी यथायोग्य दान दिया गया। इस प्रकार समस्त नगर में आनन्द-आनन्द हो गया।





मूल :—तए णं समणे भगवं महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारुवं अभिग्गहं अभिगिण्हई—नो खलु मे कप्पइ अम्मापिउहिं जोवंतेहि मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइत्तए ॥९६॥

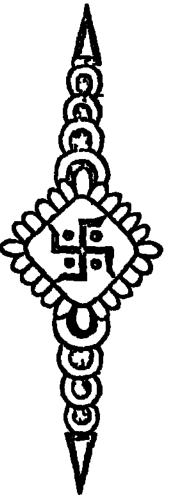
ये सारी परिस्थिति भगवान् ने अपने अवधिज्ञान से जानकर ऐसा अभिग्रह गर्भावस्था में ही कर लिया कि मुझे माता पिता के जीवनकाल में गृहस्थाश्रम छोड़कर अनगार नहीं बनना है। इसी बात को आवश्यक सूत्र में भी कहा गया है।

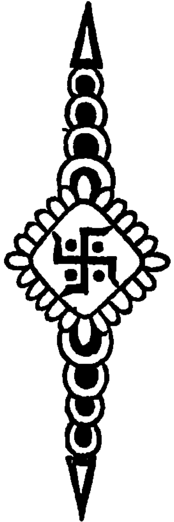
तिहि नाणेहिं समग्गो देवे तिसलाइ सोउ कुच्छिसि। अइवसइ सन्निगब्भे छम्मासे अद्धमासे अ ॥१॥

जब साढे छः महीने गर्भ के पूरे हो चुके थे, तब त्रिसला के गर्भ में रहे हुए भगवान् महावीर ने अभिग्रह किया था।

मूल :—तए णं सा तिसला खत्तियाणी ण्हाया कयबलि कम्मा कयकोउय मंगल पायच्छित्ता सव्वालंकार विभूसिया तं गब्भं नाइसीएहिं नाइउण्हेहिं नाइतित्तेहिं नाइकडुएहि नाइकसाइएहिं नाइअंबिलेहिं नाइमहुरेहिं नाइनिद्धेहिं नाइलुक्खेहिं नाइउल्लेहिं नाइसुक्केहिं ॥

अर्थ :—तदन्तर त्रिशला क्षत्रियाणी ने स्नान किया। और देवपूजा आदि नित्यकर्म किया। कौतुक तिलक मगल आदि किये। सर्व विघ्नों को दूर करने के लिए माङ्गलिक कार्य किये, वस्त्रालङ्कारों से विभूषित हुयी और गर्भ-रक्षा का ध्यान रखती हुयी इस प्रकार से आहार विहार करती है। अत्यन्त शीतल, अति उष्ण अत्यन्त तीक्ष्ण, सूठ मिर्च कुलिंजन आदि नहीं खाती है। अत्यन्त मीठी और अत्यन्त सूखी चीजें—चने आदि और अत्यन्त आर्द्र फल शाक आदि का भोजन नहीं करती है, अत्यन्त स्निग्ध और एकदम लूखी





वस्तुएं भी नहीं खाती थी। सारांश कि "अति सर्वत्र वर्जयेत्" की उक्ति को ध्यान रखती हुयी संतुलित आचरण[1] करती थी।

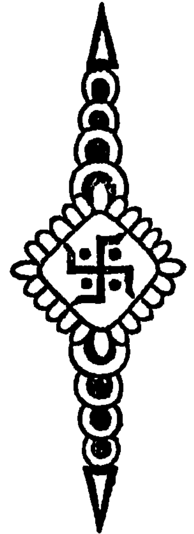
गर्भवती लवण का अधिक सेवन करे तो बालक की आँखें नष्ट तक हो सकती है, अत्यन्त शीतल बर्फ जैसा आहार वायु कुपित करने वाला, अत्युष्ण भोजन करने से बालक निर्बल होता है और मैथुन सेवन से तो मर भी जाता है।

आयुर्वेद शास्त्र में लिखा है :—गर्भवती को अत्यन्त सचेत रहना चाहिए क्योंकि दिन में शयन करने से बालक निद्रालु, आँखों में बार-बार अजन करने से अन्धा, रुदन करने से नेत्ररोगी, अधिक स्नान विलेपन से दु शील अधिक तेलमर्दन से कुष्ठादि चर्म रोगी, वार-वार नख काटने से कुनखी, दौड़ने से चञ्चल अधिक हँसने से कालेदाँत ओष्ठतालु और जिह्वावाला, अत्यन्त बोलने से वाचाल, अतिशब्द श्रवण से बधिर, अति क्रीडा करने से स्खलितगति—लड़खडाती चालवाला और प खे की अधिक हवा लेने से उन्मत्त होता है। अतः ये कार्य वर्जनीय है।

अधिक जलपान, विषमासन, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण मलोत्सर्ग व मूत्रत्याग का अवरोध—रोकना इन छह कार्यों से रोगोत्पत्ति होती है; अतः करना निषिद्ध बतलाया है।

जिन ऋतुओं में जो वस्तुएँ गुणकारी हैं, वे निम्न हैं :—

वर्षार्तु मे लवण, शरत् में जल, हेमन्त में गौ का दूध, शिशिर में आँवले का रस, वसन्त में घृत और ग्रेष्म में गुड गुणकर्त्ता माने जाते हैं।



---

१ वैद्यक शास्त्र मे कहा है :—

"वातलैश्च भवेद् गर्भ कुब्जान्ध जड वामन। पित्तलै स्खलित पिङ्ग श्वित्री पाण्डु कफात्मिभिः॥"

अर्थ —वायुकारक आहार करने से गर्भोत्पन्न शिशु कुब्ज, अन्धा मूर्ख और वामन होता है, पित्तकारक आहार से स्खलितगति पिङ्ग—पीले शरीर केशादिवाला और कुष्ठरोगी, पाण्डुरोगी, कफकारक भोजन से होता है।

गर्भवती स्त्रियो के लिए वर्ज्यकार्य—विषय सेवन, यान—सवारी पर वाहन—हाथी, घोड़े, ऊँट पर चढना, लम्बे मार्ग चलना, ऊँचे नीचे चढना उतरना, विषमभूमि—ऊँची नीची भूमि में चलना, कूदना भार वहन करना, क्लेश क्रोध अभिमान ईर्षा आदि करना, दास दासी बालक पशु आदि को मारना पीटना, ढोले मॉचे पलग पर सोना, छोटी शय्या पलग आदि पर सोना, संकड़े आसन पर बैठना, रूक्ष कटु तिक्त कषैला मधुर स्निग्ध आम्ल वस्तुएॅ अधिक प्रयोग करना, वमन विरेचन, अति भोजन, अतिनिद्रा। महारानी त्रिशला उपर्युक्त कार्य वर्जन करती हैं। सखियाॅ, वृद्धदासियाँ, कुलवृद्धाएॅ सदैव शिक्षा देती रहती हैं :—

मन्दसचर! मन्दमेव निगद! व्यामुञ्च। कोपक्रमम्,
पथ्यं भुंक्ष्व। बधान। नोवीमनघं मा अट्टहासं कृथा।
आकाशे नच शेष्व। नेव शयने नीचे बहि र्गच्छ मा,
देवी गर्भभरालसा निज सखी वर्गेण सा शिष्यते॥

अर्थ :—हे महारानी! आप धोरे चले, धोरे ही बोले, पथ्य भोजन करें, साडी ढीली बाँधे, जोर से अट्टहास न करें, छत पर खुले मे शयन न करे, नीचे-ऑगन में न सोये, बाहिर भी न पधारे! इस प्रकार गर्भ भार से अलस हुयो त्रिसला रानी को सखियाॅ शिक्षा देती रहती थीं।

सूत्र :—सव्वत्तुग भुयमाण सुहेहिं भोयणच्छायणगंधमल्ले हिं ववगय रोग सोग मोह भय परित्तासा जं तस्स गब्भस्स हिअं मियं पत्थं गब्भपोसणं तं देसे अ काले आहारमाहारे-माणो विवित्त मउएहिं सयणासणेहिं पइरिक्क सुहाए मणोणुकूलाए विहार भूमोए।

अर्थ :—सर्व ऋतुओं मे जो जो पथ्य आहार विहारादि है, उनका सेवन करती है। भोजन वस्त्र गन्ध माल्य—पुष्पादि सभी वस्तुएॅ ऋतु के अनुसार व्यवहार करती है। महारानी त्रिशला के सभी रोग शोक

मोह मूर्च्छा अज्ञान भय और त्रास सर्वथा दूर हो गये हैं। महा पुण्यपुञ्ज गर्भ के प्रभाव से वह आलौकिक आनन्द और महान् गौरव का अनुभव करती है। गर्भ को हितकर साथ ही परिमित व पथ्य गर्भपोषक देश काल के अनुकूल आहार विहार व्यवहार आदि करती है।

दोहद-गर्भवती के मनोरथ

सूत्र—पसत्थ दोहला, संपुण्ण दोहला, संमाणिअ दोहला, अविमाणिअ दोहला वुच्छिन्न दोहला, ववणीअ दोहला सुहंसुहेणं आसइ सयइ चिट्ठइ निसीअइ तुयट्टइ विहरइ सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥९७॥

अर्थ :—महारानी त्रिशला प्रशस्त दोहदवती थी, अर्थात् उत्तम मनोरथवाली थीं, उन्हे श्रेष्ठतम दोहद उत्पन्न होते थे, जैसे :—

"सत्पात्रपूजां किमहं करोमि, सत्तीर्थयात्रां किमहं तनोमि।
सद्दर्शनानां चरणं नमामि, सद्देवताराधन माचरामि ॥"

अर्थ :--भगवान् वीतरागदेव की आराधना—दर्शन पूजन स्तवनादि करूं, तीर्थ-शत्रुञ्जय गिरनार सम्मेतशिखर, राजगृह, चम्पापुरी, अयोध्या आदि की यात्रा करूं, संघयात्रा ले जाऊँ, सद्गुरु का दर्शन वन्दन करूं, उनकी देशना सुनूं, सुपात्रों को दान दूं।

"निष्कास्य कारागृहतोवराकान् मलीमसान् किं स्नपयामिसद्यः।
बुभुक्षितान् तानथ भोजयित्वा, विसर्जयामि स्वगृहेषु तुष्टान् ॥"

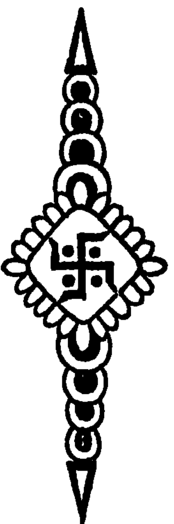
"पृथ्वीं समस्तामनृणां विधाय, पौरेषु कृत्वा परमं प्रमोदम् ।
करिण्यधिस्कन्ध मधिश्रिताहं भ्रमामि दानानि मुदा ददामि ॥"

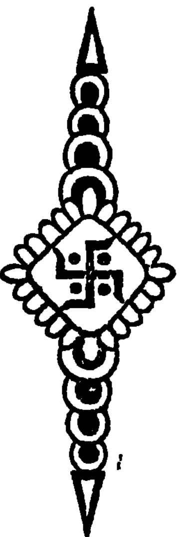
अर्थ :—बन्दी-कैदियों को कारागृह से मुक्त कर उन मलीन अपराधियो को शीघ्र स्नान कराउँ, उन भूखों को भोजन कराकर सन्तुष्ट कर अपने-अपने घर भेज दूं। हथिनी पर चढी हुई हर्ष दान देती हुयी, प्रजाजन को अत्यन्त प्रसन्न करूं। पृथ्वी पर निवास करने वाले सर्वजनों को ऋण रहित कर दूं। अर्थात् इतना अधिक दान दूं कि वे ऋण कर्ज चुका दे और निश्चित होकर सुखपूर्वक सदाचार का पालन करे।

समुद्रपानेऽमृत चन्द्रपाने, दाने तथा दैवत भोजने च ।
इच्छा सुगन्धेषु विभूषणेषु, अभूच्च तस्या वरपुण्य कृत्यै ॥

अर्थ :—समुद्र को ही पान कर लूँ, सुधापान चन्द्रपान करूं खूब दान दूं, दिव्य भोजन करूं, सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग करूं, श्रेष्ठ मणिरत्न जटित आभूषण धारण करूं, श्रेष्ठपुण्य कार्य—अमारी उद्घोषणा, सप्तव्यसन निषेध, देवाधिदेव प्रासादो का नवनिर्माण व जीर्णोद्धार कराऊँ, ज्ञानमन्दिर, विद्यालयादि की स्थापना करूँ, दानशालाएँ बनवाऊँ, दीन हीन अपाहिजों को दान दूँ, चिकित्सालय, धर्मशालाएँ, प्रपा आदि जनहित के कार्य करूँ, विश्व भर के जीवों को सुखी बना दूँ, सप्त व्यसनों का निषेध करदूं इत्यादि सैकडों शुभ मनोरथ होते थे, जिन्हे सिद्धार्थ नरेश ने यथाशक्ति पूर्ण किया।

एकदा त्रिशलारानी को मनोरथ हुआ कि मै स्वय बलात् इन्द्राणी के कानो से कुण्डल लेकर अपने कानों में धारण करूं। इसे इन्द्र ने इन्द्राणी सह आकर पूर्ण किया।





श्री महावीर प्रभु के जन्म समय का वर्णन

सूत्र :—ते णं काले णं तेणं समए णं समणे भवत्रं महावीरे जे से गिम्हाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे चित्त सुद्धे तस्स णं चित्त सुद्धस्स तेरसो दिवसेणं नवण्हं मासाणं बहु पडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वइक्कंताणं उच्चट्ठाणगएसु गहेसु।

अर्थ :—उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर प्रभु ग्रीष्मकाल के प्रथम मास—चैत्रशुक्ला त्रयोदशी के दिन जब गर्भ के पूर्ण नवमास और साढे सात दिन पूरे हो गये थे, सर्वग्रह परमोच्च स्थानवर्ती थे।

परमोच्चग्रह

मेषराशि के दशमांश में सूर्य, वृष के तृतीयांस में चन्द्र, मकर के अट्ठाइसवें में मंगल, कन्या के १५वें अंश में बुध, कर्क के पंचमांस में वृहस्पति, मीन के सत्ताइसवें अंश में शुक्र, तुला के बीसवें अंश में शनि, मिथुन के पन्द्रहवे अंश में राहु, धनु के अट्ठाइसवें अश में केतु हों वे परमोच्च कहलाते हैं। इन्हीं राशियों के अन्यांशों में उच्च है।

परमौच्च ग्रहो का फल

'तिहिं उच्चेहिं नरिंदो, पंचहिं उच्चेहिं अद्धचक्कीय। छहिं होइ चक्कवट्टी सत्तहिं तित्थंकरो होई॥'

अर्थ :—तीन उच्चग्रहोंवाला राजा, पाँचवाला वासुदेव, छः से चक्रवर्ती और सात उच्चग्रहो वाला तीर्थ-कर होता है।

इसी प्रकार तीन नीच ग्रह जिसके हों वह राजकुल में उत्पन्न होने पर भी दासत्व करता है। और जिसके तीन ग्रह उच्च के हो वह हीन कुल में जन्म लेने पर भी राजा बनता है। तीन स्वगृही ग्रहोंवाले मंत्री ओर तीन अस्त ग्रहों वाला मूर्ख होता है।

सूत्र :—पढमे चंदजोए सोमासु दिसासु वितिमिरासु विसुद्धासु जइएसु सव्व सउणेसु पयाहिणाणुकूलंसि भूमिसप्पिंसि मारुयंसि पवायंसि निप्फन्नमेइणोयंसि कालंसि पमुइय पक्कीलिएसु जणवएसु पुव्वरत्तावरत्त काल समयंसि हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं चंदेण जोगमुवागएणं आरुग्गा आरुग्गं दारयं पयाया ॥९८॥

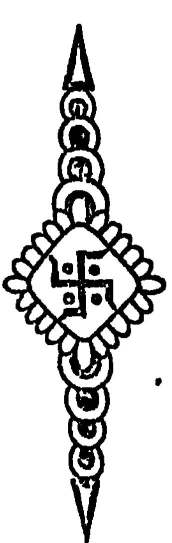
अर्थ :—प्रथम चन्द्र योग अर्थात् जब चन्द्रबल प्रधान था, सर्वदिशाएं सौम्य निर्मल—अन्धकार कुहरे आदि से रहित थीं, अतः विशेष शुद्ध थीं। जयकारी व शुभ सर्व प्रकार के शकुन हो रहे थे, सारे देश में हर्ष छाया हुआ था। जनता के हितानुकूल भुमिस्पर्शी वायु बह रहा था। पृथ्वी यथेष्ट धान्यादि की उत्पत्ति होने से प्रजाजन प्रमोद से क्रीड़ा कर रहे थे। ऐसे शुभ समय में उत्तराफाल्गुनी के साथ जब चन्द्रमा का सयोग हुआ तब अर्द्धरात्रि के समय आरोग्यवती त्रिशला महारानी ने आरोग्ययुक्त श्री तीर्थंकर भगवान् वर्द्धमान को जन्म दिया। श्री सघ का श्रेय मगल और कल्याण हो। शुभम्।

इति चतुर्थ व्याख्यान

अथ पंचम व्याख्यान

भगवान् महावीर का जन्मोत्सव

मूल :—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे जाए, सा णं रयणि बहूहिं देवेहिं देवीहिं य ओवयंतेहिं य उप्पयंतेहिं य देवुज्जोए एगालोए लोए देव सन्निवाया उप्पिंजल माणभूआ कह कहग भूआ आवि हुत्था ॥९९॥



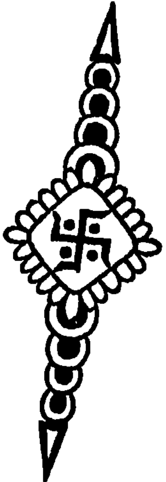
जिस रात्रि में भगवान् महावीर का जन्म हुआ उस रात्रि में जन्मोत्सव के लिये आते हुये इन्द्रादि अनेक देवताओं तथा दिक्कुमारियों आदि देवियों के स्वर्गलोक से भूमि पर आने और मेरु पर्वत आदि पर जाने को ऊँचा उछलने के कारण देवों के उद्योत से पुंजीभूत आलोक से भारी भीड़ एकत्र हो गई थी। तथैव आनन्दोल्लसित हास्य और अव्यक्त शब्दों से शान्तनिशा भी कोलाहल पूर्ण बन गई थी।

इस सूत्र से सूत्रकार श्री भद्रबाहु भगवान् ने छप्पन दिक्कुमारियों द्वारा किया गया प्रसूति कर्म एवं इन्द्रादि द्वारा मेरु पर्वत पर जन्माभिषेक को सूचित किया है।

श्री तीर्थङ्करदेव के जन्म समय तीन लोक में उजाला हो गया है, आकाश में देव दुन्दुभि बज रही है। सदा दुःखी रहनेवाले नैरयिकों को भी उस समय आनन्द का अनुभव हुआ पृथ्वी मानों उच्छ्वास ले रही हो, ऐसी मनोहर दृष्टिगोचर होने लगी।

अब तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय सर्व प्रथम छप्पन दिक्कुमारियाँ आकर अपना शाश्वत आचार—कर्त्तव्य इस प्रकार करती हैं, उसका वर्णन करते हैं :—

(१) भोगंकरा (२) भोगवती (३) सुभोगा (४) भोगमालिनी (५) सुवत्सा (६) वत्समित्रा (७) पुष्पमाला (८) अनिन्दिता, ये आठ दिक्कुमारियाँ जा अधोलोक निवासिनी हैं, वे आकर हर्ष पूर्वक प्रसूतिगृह में आईं। उन्होने प्रभु व माता त्रिसला को नमस्कार करके १ योजन भूमि को संवर्त्तक वायु द्वारा शुद्ध करके ईशान कोण में एक प्रसूतिगृह का निर्माण किया। इतने में ऊर्द्ध लोक से आठ दिक्कुमारियाँ (९) मेघंकरा (१०) मेघवती (११) सुमेघा (१२) मेघमालिनो (१३) तोयधारा (१४) विचित्रा (१५) वारिषेणा और (१६) बलालिका इन आठ कुमारियों ने आकर प्रभु व माता को नमस्कार किया तथा पुण्यरूप उद्यान को विकसित करनेवाले मेघ की रचना करके सुगन्धित जल की वर्षा की। साथ ही पूर्वदिशा के रुचकद्वीप से भी (१७) नन्दा (१८) उत्तरानन्दा (१९) आनन्दा (२०) नन्दिवर्द्धना (२१) विजया (२२) वैजयन्ती (२३)



जयन्ती और (२४) अपराजिता नाम की आठ दिक्कुमारियाँ पूर्व दिशा के रुचकपर्वत से आकर वहाँ उपस्थित होती है। पूर्ववत् माता पुत्र को नमस्कार कर हाथ में दर्पण धारण कर सम्मुख खडी हो जाती है।

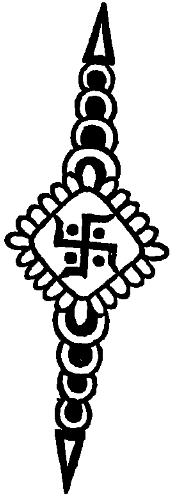
(१) समाहारा (२) सुप्रदत्ता (३) सुप्रबुद्धा (४) यशोधरा (५) लक्ष्मीवती (६) शेषवती (७) चित्रगुप्ता और (८) वसुन्धरा, ये आठ दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशा के रुचकगिरि से आकर स्वनाम निवेदन पूर्वक दोनों को नमस्कार करके चार पानी से भरे हुये भृंगार (कलश) तथा चार आभूषण लेकर खडी रहती है।

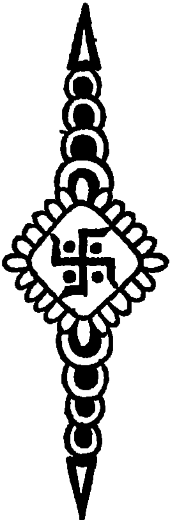
(९) इलादेवी (१०) सुरादेवी (११) पृथिवी (१२) पद्मावती (१३) एकनासा (१४) नवमिका (१५) भद्रा और (१६) सीता नाम की आठ दिक्कुमारियाँ भक्ति प्रेरित हो, प्रिय सखियों के समान प्रभु व मातेश्वरी की सेवा करने को पश्चिम दिशा के रुचक पर्वत से आकर दोनों को नमन कर गुणगान करती हुई पश्चिम दिशा मे खडी रहती है।

(१७) अलम्बुषा (१८) मिश्रकेशी (१९) पुण्डरीका (२०) वारुणी (२१) हासा (२२) सर्वप्रभा (२३) ह्री और (२४) श्री नाम की दिक्कुमारियाँ उत्तर दिशा के रुचक पर्वत से अपने-अपने आभियोगिक देवों द्वारा निर्मित मनोहर विमानों में बैठकर जन्मस्थल पर उपस्थित हो माता पुत्र को प्रणाम कर चामर वींजती हुई गुणग्राम करतो हैं।

(१) चित्रा (२) चित्रकनका (३) सतेजा और (४) सौदामिनी ये चार विदिशाओं के चारों रुचक पर्वतो से आकर नमस्कार पूर्वक हाथों में दीपक लिये ईशानादि चारों विदिशाओं में उपस्थित रहती है।

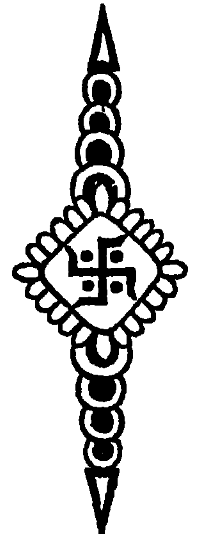
[१] रूपा [२] रूपासिका [३] सुरूपा और [४] रूपकावती ये चार रुचक द्वीप से आईं और चार अंगुल छोडकर प्रभु की नाभि से सलग्न नाल को छेदन करके एक गर्त्त खोदकर जरायु को गाडकर ऊपर से वैडूर्यरत्नों से उस गर्त्त को पूरा भर दिया और ऊपर चबूतरा बनाया। फिर उस पीठ पर दूर्वा-रोपण किया।

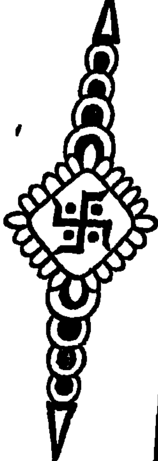




जन्मगृह से पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा में तीन केलिगृहों का निर्माण किया। तदनन्तर दक्षिण दिशा के केलिगृह में प्रभु व माता को सिहासन पर विराजमान कर शरीर का तैलादि से मर्दन किया और पूर्व दिशा के केलिगृह में ले जाकर स्नान करा के केशरचन्दनादि का विलेपन करके वस्त्राभूषण धारण कराये। इसके पश्चात् उत्तर के केलिगृह में सिंहासन पर बैठाकर अरणी काष्ठ से अग्नि प्रज्ज्वलित कर उत्तम चन्दनादि द्रव्यों से हवन किया, उस राख की पोटली बनाकर माता पुत्र दोनों के हाथों में रक्षा पोटली बाँधी, फिर उन दिक्कुमारियों ने प्रस्तर के दो गोले उछालकर 'पर्वतायुर्भव' ऐसा आशीर्वाद दिया और भगवान् व माताजी को जन्म स्थान पर ले आईं और अपनी अपनी दिशाओं में रही हुयी मंगलपूर्ण गुण गाने लगी। और गायन करती हुई भगवान् के सम्मुख बैठ गईं। इन सभी दिक्कुमारियों के प्रत्येक के चार चार हजार सामानिक देव, चार महत्तराएँ, सोलह हजार अंगरक्षक देव, सात प्रकार की सेना व सात सैन्याधिप होते हैं। और दूसरे भी अनेक महर्द्धिक देव देवियों के परिवार सहित ये अपने अपने आभियोगिक देवो द्वारा रचित योजनपरिमित विमान में बैठकर जन्मस्थान में आकर प्रसूतिकर्म करती हैं।

तत्पश्चात् सौधर्म इन्द्र का शक्रनामक सिंहासन जो पर्वतवत् अचल है, कम्पायमान होता है। इन्द्र अवधिज्ञान से तीर्थंकर देव का जन्म जानकर हर्षोत्फुल्ल हो गया। हरिणैगमेषी (इन्द्र की आज्ञा की प्रतीक्षा में तत्पर उपस्थित रहनेवाला देव) देव को बुलाकर कहा कि तीर्थंकर भगवान् का जन्म हुआ है। सुघोषा घण्टा बजा कर सर्व विमानवासियों को यह सूचित करो कि जन्माभिषेक करने मेरु पर्वत पर जाना है शीघ्र आवें। हरिणैगमेषी देव ने सुघोषा घण्टा बजवाया। जिससे प्रथम स्वर्ग के सभी बत्तीस लाख विमान स्थित घण्टे एक साथ बज उठे। हरिणैगमेषी देव ने उच्च स्वर से भगवान् के जन्मोत्सव में सम्मिलित होने के लिए इन्द्राज्ञा की उद्घोषणा की। जिसे सुनकर सभी अत्यन्त हर्षित हो गये और चलने की तैयारी करने लगे।



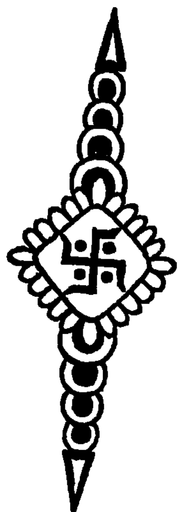


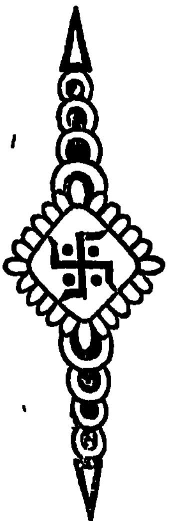
पालक नामक आभियोगिक देव द्वारा निर्मित विमान में (जो एक लाख योजन का होता है) इन्द्र महाराज सिंहासन पर बैठे। इन्द्र के सामने आठ अग्रमहिषियाँ (इन्द्राणियाँ) अपने भद्रासनों पर बैठीं, बाँयी ओर चौराशी हजार सामानिक देव अपने सिहासनों पर आसीन हुये। दाहिनी ओर आभ्यन्तर पर्षत् के १२ हजार देव, मध्य पर्षत् के चवदह हजार देव, बाह्यपर्षत् के सोलह हजार देव अपने-अपने भद्रासनों पर बैठ गये, देवेन्द्र के पीछे की ओर सात सेनापति अपने भद्रासनों पर बैठे, सेना भी उन्हीं के पीछे स्थित रही। सर्व के मध्यम में इन्द्र शोभायमान थे। इस प्रकार अन्य अनेक देवों से परिवेष्टित गन्धर्व देवों कृत गायन वादन नृत्यादि की शोभा से युक्त इन्द्र महाराज वहाँ से रवाना हुये।

इन सब देव देवियों में कितने ही इन्द्राज्ञा से, कई मित्रता के कारण, कितनेक देवाङ्गना से प्रेरित, कुछ कुतूहलवश, कई आश्चर्यान्वित होकर तो, कितने ही शुद्धभक्ति भाव पूर्वक और कितने ही देव देवी अपूर्व जनमाभिषेक देखने की भावना से अपने-अपने वाहनों पर आरूढ हो, देवलोक से तिर्यक्लोक की ओर जाने को रवाना हुये।

सिंहारूढ देव गजारूढ देव से कहता है—तुम्हारे हाथी को दूर हटालो ! नहीं तो मेरा यह सिंह अत्यन्ता दुर्धर्ष है, तुम्हारे हाथी को मार देगा ! इस प्रकार आगे निकलने की भावना से उत्साह पूर्वक एवं अभिमान पूर्ण व कई प्रेममय वचन कहते हुये आगे बढ रहे है। सर्व देव देवियों के गमन से आज विशाल गगनाङ्गण संकीर्ण लग रहा है। आगे बढ़ने की धुन में स्वजनादि की बात भी नहीं सुन रहे हैं। न कोई किसी की प्रतीक्षा में एक क्षण भी ठहरना चाह रहा है। भारी उमंग से दौड़े जा रहे हैं।

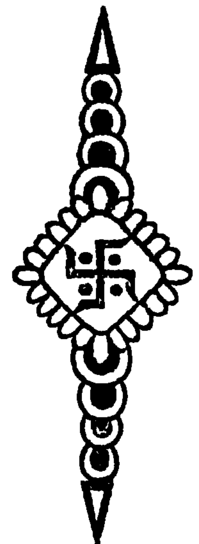
इस प्रकार देव देवियों से घिरे हुए देवराज इन्द्र शीघ्र नन्दीश्वर द्वीप में आ पहुँचे और सबने अपने विमानों आदि को छोटा बनाया। क्योंकि इतने बडे-बड़े विमान भरत क्षेत्र में कैसे जा सकते थे। अन्य

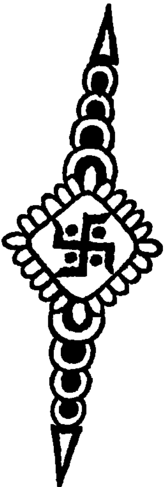




को मेरुपर्वत पर भेज दिया और थोड़े परिवार से इन्द्र ने भगवान् के जन्म स्थान में आकर भगवान् व माताजी को तीन प्रदक्षिणा दे वन्दन कर बोले, हे रत्न-कूक्षधारिके ! मातेश्वरी ! आपके पुत्र अन्तिम तीर्थंकर का जन्माभिषेक करने मैं सौधर्मेन्द्र सेवा में आया हूँ अतः आप भयभीत न हों। ऐसा कर माताजी को अवस्वापिनो विद्या से निद्रित कर दिया और भगवान् का प्रतिबिम्ब शून्यता निवारणार्थ पास में स्थापित किया। फिर भगवान् को हाथों में लेकर 'सारा श्रेयलाभ मै ही लूं' ऐसी अभिलाषा से अपने पाँच रूप बनाये, एक रूप से भगवान् को दोनों हाथों में ग्रहण किया, एक से छत्र किया, दो रूपो से दायें-बाएँ चामर धारण किये और पाँचवें रूप से भगवान् के आगे हाथ में वज्र लेकर चले। साथ में अन्य देव देवी भी चल रहे हैं। दिव्य देव गति से शीघ्र ही सौधर्मेन्द्र सुमेरुगिरि के पाण्डुकवन में मेरु की चूलिका से दक्षिण ओर अतिपाण्डु कमला नामक शिला पर स्वर्ण सिंहासन के ऊपर भगवान् को उत्संग (गोद) में लेकर पूर्व दिशाभिमुख बैठ गये। इस अवसर पर अन्य सभी ६४ इन्द्र सपरिवार वहाँ समुपस्थित हो गये थे।

१ सुवर्ण, २ रजत, ३ रत्न, ४ सुवर्णरजत, ५ सुवर्णरत्न, ६ रजतरत्न, ७ सुवर्ण रजत रत्न निर्मित, ८ और मृत्तिका घटित, प्रत्येक एक हजार आठ कलशादि मँगवाये। उन सबका प्रमाण बतलाते हैं—प्रत्येक कलश २५ हजार योजन ऊँचे, १२ योजन चौड़े और १ योजन की नालीवाले होते है। कलशों के जैसे ही १००८ भृंगार (कलश विशेष) होते हैं। इसी प्रकार दर्पण आदि अन्य सभी पूजोपकरण १००८ संख्या वाले होते है। फिर बारहवें स्वर्ग के अधिपति अच्युतेन्द्र कोटानुकोटी देवों को आज्ञा देते हैं कि—भगवान् का अभिषेक करने के लिये जल लाइये ! आज्ञा होते ही सर्व देव उल्लासपूर्ण हृदय से कलश ले क्षीरसागर की ओर रवाना हो गये ! कुछ देव सिद्धार्थादि औषधियाँ, कुछ गंगा आदि नदियों का पवित्र नीर, पद्महृदादि द्रहों से कमल इत्यादि विविध भाँति के सुगन्धित पुष्प चुल्लहिमवान् आदि पर्वतों से श्वेत सरसों आदि कई प्रकार की ओषधियाँ लेने गये। यह सभी सामग्री अच्युतेन्द्र अपने आभियोगिक देवों से मँगाते हैं। सब

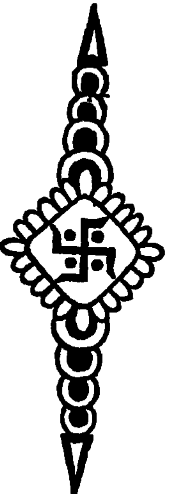


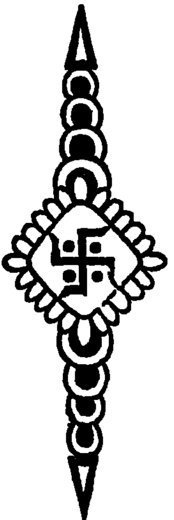


वस्तु आ जाने पर सभी देव कलशादि सर्व सामग्री लेकर भक्तिपूर्ण हृदय से इन्द्र की आज्ञा होने की प्रतीक्षा में उपस्थित हैं।

अपने-अपने वक्षस्थल के समक्ष रहे हुये क्षीरसमुद्र आदि के जल से भरे हुये कलशों से वे देव देवी मानों संसार समुद्र तरने के लिये प्रस्तुत हों ऐसे शोभित थे। जिनके हृदय में भक्ति भाव उमड़ता है वहाँ कोमलता भी होती है और ऐसा भक्तिभाव और कोमल वृत्ति कभी-कभी इष्ट की परमश्रेष्ठ शक्ति पर भी अविश्वास उत्पन्न कर देती है। वैसा ही यहाँ भी हुआ। सौधर्मेन्द्र का हृदय भक्ति में आप्लावित था। उन्होंने विचार किया—काल के प्रभाव से भगवान का यह लघु शरीर! भक्तिभाव से देव-देवियों द्वारा इतने जल से किया गया अभिषेक! कहीं अत्यधिक जल प्रवाह में ये छोटा सा शरीर बह न जाय! इस अशंका से सौधर्मेन्द्र अभिभूत हो गये और अभिषेक की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। विलम्ब होते देखकर भगवान् ने अवधिज्ञान का प्रयोग करके कारण जान लिया और तत्काल अपने बॉये पैर का अंगूठा नाम मात्र के लिये सिहासन से स्पर्श किया। इससे सारा मेरुपर्वत कम्पित हो उठा।

इस अप्रत्याशित घटना से सौधर्मेन्द्र प्रमुख सभी ६४ इन्द्र और देव देवीगण आकुल व्याकुल हो गये। सौधर्मेन्द्र ने कारण जानने को अवधिज्ञान का प्रयोग किया और भगवान् के पराक्रम की शंका करनेवाले स्वयं को ही इसका कारण जान कर अत्यन्त पश्चाताप करते हुये तत्काल भगवान् से यों क्षमा याचना करने लगे—हे नाथ! आपका असाधारण और अलौकिक महात्म्य मुझसा साधारणजन नहीं जान सकता! मै भूल गया कि तीर्थंकर अनन्त बलशाली होते हैं, और आपका लघु शरीर देखकर सामर्थ्य विषयक आशंका की! मेरा यह अपराध क्षमा के योग्य है, मै अपने इस दुश्चिन्तन का मिथ्यादुष्कृत देता हूँ। मेरा अपराध क्षमा कीजिये! और सौधर्मेन्द्र ने अभिषेक का आदेश दिया। तब सर्व प्रथम अच्युतेन्द्र (बारहवें स्वर्ग के स्वामी) ने अभिषेक किया तदन्तर सौधर्मेन्द्र को छोड़कर शेष ६२ इन्द्रों ने और फिर





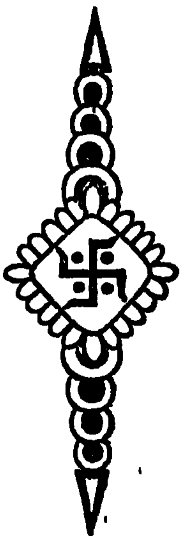
सामानिकादि सभी देव देवियों ने अभिषेक (स्नात्र) किया। सबके अभिषेक कर लेने पर ईशानेन्द्र ने शक्रेन्द्र से कहा— बन्धु। अब भगवान को मुझे दीजिये और आप अभिषेक करिये। तब सौधर्मेन्द्र ने वैसा ही किया, ईशानेन्द्र भगवान् को गोद में लेकर सिंहासन पर बैठ गये। सौधर्मेन्द्र ने चार वृषभरूप बनाये, बनाकर अपने शृंगों में क्षीरसागर का नीर भर प्रभु का अभिषेक किया। उत्तम कोमल सुगन्धित रक्त कौशेय वस्त्र से प्रभु के शरीर को पोंछकर श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन केशर वरास आदि का विलेपन कर श्रेष्ठ कोमल रेशमी वस्त्र पहनाये। फिर योग्य आभूषण धारण करवाये। धूप दीप नैवेद्य फलादि को सामने चढ़ाकर रत्न जटित पाटे पर अक्षत उज्ज्वल व शालि से अष्ट मङ्गल लिखे। यत :—

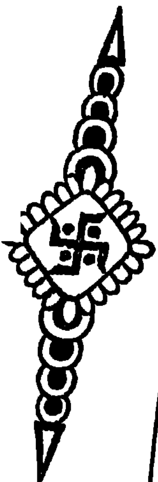
दर्पणो वर्द्धमानश्च कलशो मीनयोर्युगम्। श्रीवत्सः स्वस्तिको नन्द्यावर्त्त भद्रासने इति।

१ दर्पण २ वर्द्धमान शराव सम्पुट 3 कलश ४ मीनयुग्म ५ श्रीवत्स ६ स्वस्तिक ७ नन्द्यावर्त्त ८ भद्रासन फिर मलगदीप लवणोत्तारण आदि करके समस्त अरति का नाश करने वाली आरती की। फिर इन्द्र ने शक्रस्तव किया। सर्व देव देवी प्रभु की जय जयकार करते हुये गुणगान करते हुये हर्ष से नृत्य करते हुये कहने लगे—अहा। आज हमने मोक्ष पथ का सार्थपति पा लिया, अब हम ससार के फन्दे को तोड देंगे। इत्यादि गायन करने लगे। वाद्यों से गगन गूंज उठा।

सौधर्मेन्द्र ने उस समय ३२ क्रोड सौनये भगवान् पर न्योछावर किये। इस प्रकार जन्माभिषेक महोत्सव किया।

तत्पश्चात् आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्र, विकसित रोमराजि वाले सौधर्मेन्द्र त्रैलोक्यतिलक भगवान् को ईशानेन्द्र की गोद में से ले लिया। वहाँ से क्षत्रियकुण्ड ग्राम नगर में सिद्धार्थ नृपति के राजभवन में जन्मगृह में आकर माता के पास सुला दिया और अवस्वापिनी निद्रा तथा प्रतिबिम्ब का हरण अपनी दिव्य शक्ति से कर लिया। भगवान् के तकिये के नीचे दिव्यकुण्डल और कोमल वस्त्र युग्म रखकर चँदवे में श्री दामरत्न





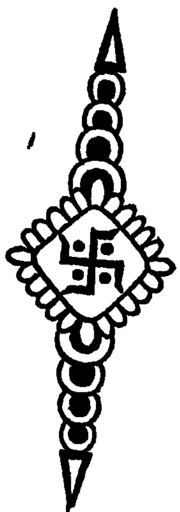
की डोरी से गुंथा रत्नजटित कन्दुक (गेंद) भगवान् के क्रीडार्थ स्थापित किया और कुबेर को आज्ञा देकर राजभवन के आँगन में ३२-३२ क्रोड सुवर्ण रत्न और रजत की वृष्टि करवाई। फिर आभियोगिक देवों द्वारा तीन लोक में उच्च शब्दों से घोषणा कराई कि—भगवान् और उनकी माता के ऊपर जो किसी प्रकार का अशुभ मन से विचारेगा, उसका मस्तिक एरण्ड कलिका के समान सप्तधा फूट जायगा। अर्थात् सिर के सात टुकडे हो जायँगे। तदूनन्तर भगवान् के अङ्गुष्ठ में अमृत का संचार कर सौधर्मेन्द्र आदि सभी ६४ इन्द्र अपने परिवार व अन्य देव देवियो सहित नन्दीश्वर द्वीप गये और वहाँ अष्टाह्निकोत्सव करके अपने-अपने स्थान पर सर्व चले गये।

इस प्रकार इन्द्रादि कृत जन्नोत्सव का वर्णन श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति उपांग सूत्र अनुसार लिखा गया है।

जन्म समय विविध द्रव्य वृष्टि वर्णन

जं रयणिं च णं समणे भगवं महावोरे जाए तं रयणिं च णं बहवे वेसमणकुण्डधारो तिरियजिंभगा देवा सिद्धत्थ राय भवणंसि हिरण्णवासं च सुवण्णवासं च रयणवासं च वयरवासं च वत्थवासं च आभरणवासं च पत्तवासं च पुप्फवासं च फलवासं च बोअवासं च मल्लवासं च गन्धवासं च चुण्णवासं च वण्णवासं च वसुहार वासं च वासिंसु ॥१००॥

अर्थ :—जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर प्रभु का जन्म हुआ; उस रात्रि में वैश्रवण-कुबेर की आज्ञा से इन्द्र महाराज के कोश की रक्षा करनेवाले तिर्यग्‌जृंभक देवों ने सिद्धार्थ नृपति के भवन में चाँदी सुवर्ण वज्ररत्नों (हीरा) देवदूष्यादि उत्तम वस्त्रों की, मुकुट कुण्डल हारादि विविध आभूषणों की नागरवेल अशोकादि पत्रों की गुलाब मोगरा आदि सुगन्धित पुष्पों की, आम्रादि और नारियलादि फलो की, शालि गेहूँ मूंगादि धान्य बीजो की, मालाओं चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं व सुगन्धित चूर्ण, हिंगुल आदि भाँति-

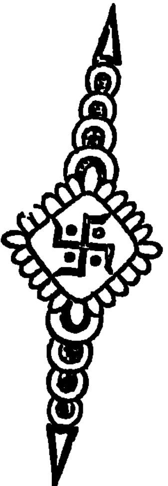


भाँति के वर्णयुक्त पदार्थों को तथा वसुधारा अर्थात् रोकड़ी रुपैये आदि मुद्राओं की वृष्टि की। यह सर्व देवादिकृत जन्म महोत्सव हो जाने के पश्चात् "त्रिशला रानी के पुत्र हुआ है", ऐसा ज्ञान अन्तःपुर में रहनेवाली सभी दासीजनों को हुआ। उनमें से सर्व मुख्या प्रियंवदा दासी ने शीघ्रता से जाकर सिद्धार्थ राजा को पुत्र जन्म की बधाई दी। महाराज सिद्धार्थ भी पुत्र जन्म समाचार से अत्यन्त हर्षित और प्रफुल्लित वदन रोमाञ्चपूर्ण शरीर वाले हो गये। बधाई देने वाली दासी को मुकुट के अतिरिक्त धारण किये हुये सभी आभूषण उसे दे दिये और उसको दासी कार्य से मुक्त कर दिया। तथा सर्व दासियों पर शासन करने के कार्य पर नियुक्ति कर दी।

सूत्र :—तए णं से सिद्धत्थे खत्तिए, भवणवइ, वाणवंतर जोइस वेमाणिएहिं देवेहिं तित्थयर जम्मणाभिसेय महिमाए कयाए समाणोए पच्चूसकाल समयंसि नगरगुत्तिए सद्दावेइ, नगरगुत्तिए सद्दावइत्ता एवं वयासो ॥१०१॥

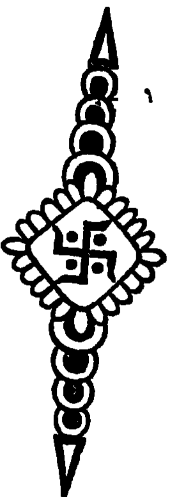
तदनन्तर अर्थात् भुवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों द्वारा तीर्थंकर भगवान का जन्माभिषेक महोत्सव-महिमा कर चुकने पर प्रातः काल सिद्धार्थ राजा ने नगररक्षक (कोतवाल) को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया :—

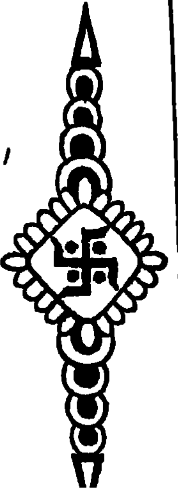
सूत्र :—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! कुंडपुरे नगरे चारक सोहणं करेह, चारग सोहणं करित्ता माणुम्माण वद्धणं करेह, माणुम्माण वद्धणं करित्ता कुंडपुरं नगरं सब्भिंतर बाहिरियं आसियसम्मज्जि ओवलित्तं संघाडक-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सित्त-सुइ-संमट्ठ-रत्थंत रावणवीहियं मंचाइमंचकलिअं, नाणाविह-रागभूसिअ-ज्झयपड़ाग मंडिअं, लाउल्लोइय महिअं, गोसीस-सरस



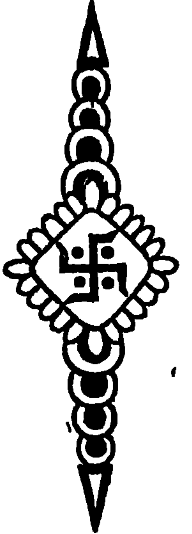
रत्तचंदण दद्दर-दिन्न-पंचगुलितलं, उवचियचंदण कलसं, चंदण घड सुकय-तोरण-पडिदुवार-देसभागं, आसत्तोसत्त-विपुल-वट्टवग्घारिय मल्लदामकलावं, पंचवण्ण, सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलिअं, कालागुरु-पवर-कुंदरुक्क-तुरुक्क-डज्झंत-धूवमघमघंत-गंधुद्धुआभिरामं, सुगंधवर गंधिअं, गंधवट्टिभूअं नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिअ-वेलंबग - कहग-पाढग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंबवीणिअ अणेग ताला यराणुचरिअं, करेह य कारवेह, करित्ता कारवेत्ता य जूअसहस्सं मुसलसहस्सं च उस्सवेह, उस्सवित्ता ममएयमाणत्तियं पच्चप्पिणेह ॥१०२॥

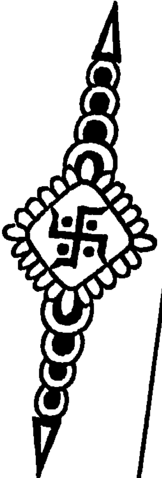
अर्थ :—हे देवानुप्रिय । नगररक्षक ! गृहमन्त्रिन् ! आज तुम शीघ्र ही कुण्डपुर नगर में चारक शोधन अर्थात् समस्त बन्दियो—कैदियों को मुक्त कर दो, फिर मानोन्मान बढाओ—घृत तेल रस धान्यादि का तोल ओर वस्त्रादि का माप बढा दो । यह कार्य करके फिर नगर की सफाई, सुगन्धित जल का छिडकाव, लीपने योग्य स्थानो को मिट्टी गोबर से लीपना, सफेदी कराना मरम्मत (रिपेरिग) आदि कराना आदि कार्य कराओ, ओर चौराहे, तिराहे, चौक, तिकोनस्थान (पार्क, स्टेच्यू स्क्वायर आदि स्थान) चारद्वार वाले मदिर सभाभवन आदि स्थान, राजमार्ग, छोटे मार्ग-सामान्यमार्ग, बाजार, छोटे स्ट्रीट, लेन आदि सर्व पथों को साफ करवा कर पानी से धुलवा कर स्वच्छ पवित्र बनवाओ । उत्सव देखने को जनता जहाँ सुखपूर्वक बैठकर उत्सव देख सके । ऐसे स्थानो पर मच बनवाओ, विविध रगो से रंगी हुई और भाँति-भाँति के चित्रो से सुशोभित ध्वज पतकाओं से नगर का शृगार करवाओ ! गोशीर्ष चन्दन मलयगिरि चन्दन, रक्त चन्दन, दर्दर चन्दन के हस्तक नगर की दीवारो पर दिलवाओ, (यह मंगलमय माने जाते हैं) नगर के गृहों के चारो कोनो पर चन्दनरस से भरे कलश स्थापित करवाओ, चन्दन के कलशोंयुक्त सुन्दर





तोरणद्वार स्थान-स्थान पर बनवाओ, स्थान-स्थान पर गोलाकार, चौकोर विशाल मण्डप बनवाओ, जिनके दरवाजों पर सुगन्धित पुष्पमालाएँ झूलती हों। सरस सौरभमय पंचवर्ण पुष्पों के पुञ्ज योग्य स्थलों पर रखवाओ, ऐसा लगे मानो नगर की पूजा की गई है। इसलिये कालागुरु उत्तम कुन्दरुक्क—तुरुष्क सिलारस, आदि से बने हुये दशांग धूपोत्क्षेप से महकता हुआ सारा नगर सुवासित मनोहर बना दो। श्रेष्ठ सुगन्धित वस्तुओ—इत्रादियुक्त एव गन्धवर्ती अगरबत्ती-सा हो, ऐसा सारा नगर लगे इस तरह का बना दो। यह सर्व कार्य स्वय करो व अन्यजनों से भी कराओ नगर के सर्व कलाकारों को अपनी अपनी-कलाओं के प्रदर्शन का राज्य की ओर से आदेश दो। सभी कलाकार नटनटी नर्त्तक नृत्याङ्गनाएँ, डोरी पर नृत्य करनेवाले, मल्ल पहलवान, मुक्केबाज, विदूषक, बहुरूपिये, भॉड, विभिन्न प्रकार की ऊँचाइयोंको उल्लंघन करनेवाले वेलम्बक, तैराक, धावक, आदि अपनी-अपनी कलाओं से लोकों का मनोरंजन करे। कथाएँ कहनेवाले काव्य कहने वाले कथा गोष्ठी करने वाले, पाढक—भाट चारणादि राजाओं की वंशावली, कीर्तिकथा गाने वाले सूक्तियाँ बोलनेवाले शान्तिपाठ मंगलपाठ करनेवाले, लासक—शास्त्रीय भरतनाट्यम् आदि नृत्य करनेवाले और अपनी कलाओं का निःशुल्क प्रदर्शन करे शुल्क राज्य से ले। आरक्षक नगररक्षक (पुलिस) जन आदि सभी प्रकार की सेनाएँ परेड करे। लंख बांसों के अग्रभाग पर कला दिखानेवाले, मंख चित्रपट दिखाकर आजीविका करनेवाले, अपना कार्य दिखावें। तूणयिल्ल तूणनामक वाद्य जिसे आजकल 'मशकवाद्य' कहते है, बजाने वाले वीणा बजाने वाले, बांसुरीवादक, आदि विभिन्न प्रकार के वाद्यकार बाजे बजावे, तालचर ताली पीट कर नाचनेवाले इत्यादि सभी कलाओं के जाननेवालों को बुलाकर स्थान-स्थान पर नियुक्त करो वे अपने कार्य करे। ऐसा तुम स्वयं करो व अपने आज्ञाकारियों से कराओ। दशदिन तक सभी प्रजा—कृषक खेती न करें, अन्य भी सभी शिल्पकार्य उद्योग धन्धे बन्द रखें और राजकुमार के जन्मोत्सव को देखे। ऐसी उद्घोषणा करवादो। मेरी आज्ञानुसार सब करके मुझे पुनः निवेदन करो।



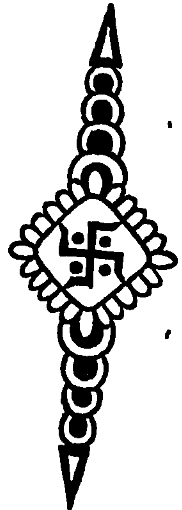


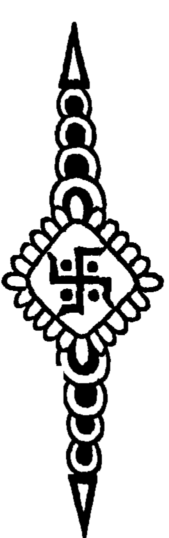
सूत्र :—तए णं से कोडुंबियपुरिसा सिद्धत्थे णं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठा तुट्ठा जाव हिअया करयल जाव पडिसुणित्ता, खिप्पामेव कुंडपुरे नगरे चारग सोहणं जाव उस्सवित्ता जेणेव सिद्धत्थे राया (खत्तिए) तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव तिकट्टु सिद्धत्थस्स खत्तियस्स रण्णो एयमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ॥१०३॥

अर्थ :—तब वे कामदार—गृहमन्त्री आदि सिद्धार्थ नरेश की उक्त आज्ञापाकर अत्यन्त हर्षित सन्तुष्ट हुये, हृदय हर्ष से भर गया, अञ्जलि मस्तक चढाकर आज्ञा शिरोधार्य की। शीघ्र ही राजाज्ञा का पालन करके बन्दी मुक्ति आदि उपर्युक्त सभी कार्य सम्पन्न कराकर पुनः राजा के पास आये और "श्रीमान् की आज्ञानुसार सब कार्य करा दिये हैं" ऐसा विनय पूर्वक निवेदन किया।

सिद्धार्थनृपति के व्यायाम स्नान शृंगार राजसभा-प्रवेश आदि का वर्णन

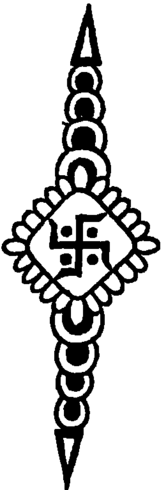
सूत्र :—तए णं से सिद्धत्थेराया जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जाव सव्वोरोहेणं सव्वपुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकार विभूसाए सव्वतुडिअसद्दनिनायेणं महयाइड्ढिए महयाजुईए महयाबलेणं महयावाहणेणं महयासमुदएणं महया वर तुडिअ जमगसमगप्पवाइएणं, संख-पणव-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरज-मुइंग-दुंदुहि निग्घोसनाइयरवेणं, उस्सुकं, उक्करं, उक्किट्ठं, अदिज्जं, अमिज्जं, अभडपवेसं, अदंडकोदंडिमं, अधरिमं, गणिआवरनाडइज्जकलियं, अणेगतालायराणुचरिअ, अणुद्धुअमुइंगं, (ग्रं-५००) अमिलायमल्लदामं पमुइय पक्कीलियसपुरजण जाणवयं दसदिवसं ठिईवडियं करेइ ॥१०४॥





व्याख्या :—तदनन्तर सिद्धार्थ नृपति जहाँ व्यायामशाला है, वहाँ आये नानाप्रकार के व्यायाम दण्ड, बैठक, कुश्ती, मुद्गरोत्तलन आदि शारीरिकश्रम किये। तैलमर्दन कराया। स्नान किया। चन्दनादि का विलेपन किया, उत्तम वस्त्राभूषण धारण किये और कुलमर्यादानुसार दश दिन का पुत्र जन्मोत्सव आरम्भ किया भाँति भाँति के वाजे बजने लगे, महान् ऋद्धि, महान् युक्तियों—आवश्यक वस्तुओं का संग्रह वितरणादि, महान् सैन्यबल, विविध प्रकार के पट्टहस्ति, पट्ट अश्व, शीविकाएँ, रथादि वाहन, बडा कोटुम्बिक समुदाय-भाई, पुत्र कलत्रादिसहित शोभायमान हुये। एक ही साथ बजते हुये जाति २ के वाद्ययन्त्रों के निनाद से राजभवन गूंज उठा। शंख, मिट्टी का पड़ह, बड़ा नक्कारा, झालर, खरमुखी, हुडुक्क, मृदङ्ग, दुन्दुभि, आदि की गभीर और मधुर ध्वनि होने लगी, पुत्र-जन्म के उपलक्ष में सिद्धार्थ राजा ने अपने राज्य में सर्व प्रकार का कर उठा लिया—भूमिकर वस्तु आयात निर्यात कर ही प्रायः उस युग में राजा-शासकगण लिया करते थे। आधुनिक युग के प्रजापीडक और जनता का शोषण करनेवाले—आयकर, गृहकर, विक्रयकर, मृत्युकर, आदि नहीं थे। पुत्रजन्म, जयप्राप्ति, यौवराज्याभिषेक आदि अवसरों पर राजालोग विशेष आज्ञा द्वारा सभी प्रकार से जनता को सुख प्राप्त कराने के कार्य करते थे। सिद्धार्थ राजा ने भी दशदिन के लिये शासन के सर्व विभागो के कार्यालय बन्द कर दिये थे और राजाज्ञा थी कि इन दिनों पुलिस किसी को गिरफ्तार न करे। व्यापारी अपनी वस्तुओं का मूल्य ग्राहक से न लेकर राजकीय कोश से लें। ऋण राज्य से चुकाया जाय। सर्व प्रजा आमोद प्रमोद करे। राज्य भोजनागार में सबको यथारुचि भोजन करने की व्यवस्था की गयी थी। सर्वजन हर्ष से प्रफुल्लित हुये, राज्य की ओर से होनेवाले विभिन्न प्रकार के नाटक-अभिनय-नृत्य, खेल-कूद, क्रीड़ाएँ आदि समारोहों में सम्मिलित होकर मनोरञ्जन कर रहे थे।

इस प्रकार का महोत्सव देखने को नगरजन, राज्य के विभिन्न जनपदों-जिलों में रहने वाले लोग, क्षत्रियकुण्ड में एकत्र हो गये थे और सब आनन्द हर्ष से पूरित प्रफुल्लवदन थे।



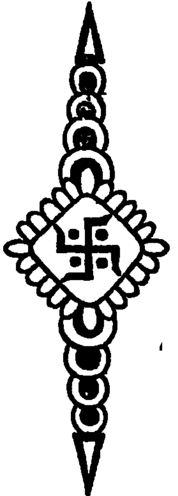
दश दिन पर्यन्त राजा ने और कौन से धार्मिक कार्य किये उसका वर्णन सूत्रकार करते हैं :—

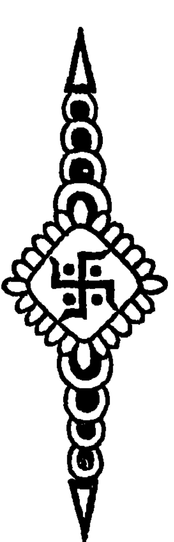
तएणं से सिद्धत्थे राया दसाहियाए ठिइवडियाए वट्टमाणीए सइए य, साहस्सिए य, सयसाहस्सिए य जाए य, दाए य, भाए अ, दलमाणे अ, दवावे माणे अ, सइए अ, साहस्सिए अ, सयसाहस्सिए अ, लंभे, पडिच्छमाणे अ, पडिच्छावेमाणे अ एवं विहरइ ॥१०५॥

व्याख्या—सिद्धार्थ राजा ने इस दशाह्निक कुलाचार के अनुसार सौ रुपये, सहस्र रुपये और लाख रुपये के व्यय से होनेवाली देव पूजाओं के लिए धन धर्मार्थ रक्षित किया ; क्योंकि सूतक मे देवपूजा नही करा सकते थे। दश दिन बाद कराने को ऐसा किया। ऐसे इतना ही धन स्वधर्मीवात्सल्य के लिये, इतना ही दानशालाओं के लिये कोश में से दिलाया। और स्वयं ने भी प्रतिदिन बधाई देने वालों को लाखों रुपये वस्तुएँ-धनादि उपहार दिया तथा लाखों रुपयों की भेट भी ग्रहण की।

दश दिन की कुलरीति में राजा ने प्रतिदिन क्या-क्या कार्य किये कराये ? उनका वर्णन—

सूत्र :—तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिईवडियं करिंति, तइए दिवसेचंदसूरदंसणिअं करिंति, छट्ठे दिवसे धम्मजागरियं करिंति, इक्कारसमे दिवसे विइक्कंते निव्वत्तिए असुइजम्मकम्मकरणे संपत्ते, बारसाहे दिवसे विउलं असणं-पाणं-खाइमं-साइमं, उवक्खडाविंति, उवक्खडावित्ता मित्त-नाइ-नियय-सयण-संबंधिपरिजणं नाए अ खत्तिए अ आमंतेइ आमंतित्ता तओपच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा, कय कोउयमंगलपायच्छित्ता, सुद्धप्पावेसाइं, मंगल्लाइं, पवराइं वत्थाइं परिहिया, अप्प महग्घाभरणालंकिय सरीरा, भोअणवेलाए





भोअणमंडवंसि सुहासण वरगया, तेणं मित्त-नाइ-नियय संबंधि परिजणेणं नायएहिं खत्तिएहिं सद्धिं तं विउलं असणपाणखाइमसाइमं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजैमाणा, एवं वा विहरइ ॥१०६॥

व्याख्या :—फिर श्रमण भगवान् महावीर देव के माता-पिता ने इन दश दिनों में किस-किस दिन कौन सी कुल परम्परा से होने वाली रीतिका पालन किया उसे क्रम से कहते हैं :—

प्रथम दिन पूर्व सूत्रों में वर्णित बन्दिमोचन, नगर शृङ्गार, क्रीड़ाएँ आदि कार्यों का आयोजन करने की आज्ञा दी। तीसरे दिन कुलगुरु-पुरोहित अरिहन्तवीतरागदेव के सेवक, ज्योतिषियो के इन्द्र-चन्द्रदेव की रजत प्रतिमा की स्थापना करते हैं। स्नान द्वारा पवित्र तथा वस्त्राभूषणों से भूषित माता पुत्र को उदित चन्द्रमा के दर्शन कराकर बोले :—

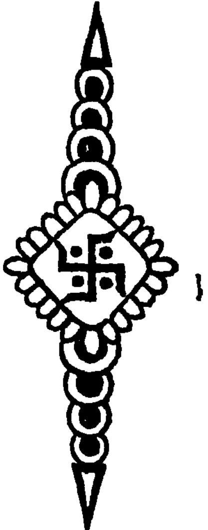
ॐ अर्हं चन्द्रोऽसि निशाकरोऽसि नक्षत्रपतिरसि, सुधाकरोऽसि ओषधिगमोऽसि अस्य कुलस्य ऋद्धि वृद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

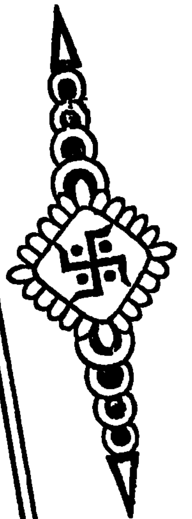
पुनः पुत्र सहित माता ने कुलगुरु को नमस्कार किया, गुरु ने निम्न पद्यात्मक आशीर्वाद दिया।

"सर्वौषधिमिश्रमरोचिराजिः सर्वापदां संहरणे प्रवोणः।
करोतु वृद्धि सकलेऽपिवंशे, युष्माकमिन्दुः सततं प्रसन्नः ॥"

इसी प्रकार सूर्यदर्शन भी कराते है। सूर्य-प्रतिमा स्वर्ण या ताम्र की बनाते है, प्रार्थना मन्त्र निम्न हैं:—

ॐ अर्हं सूर्योऽसिदिनकरोऽसि तमोपहोऽसि सहस्रकिरणोऽसि जगच्चक्षुरसि प्रसीद २ अस्यकुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु कुरु स्वाहा।



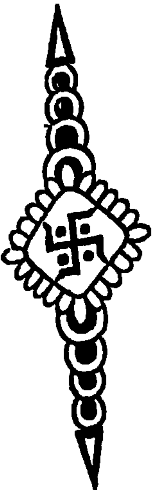


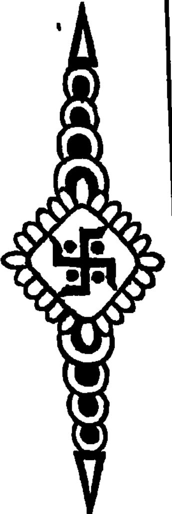
"सर्वसुरासुरवन्द्यः कारयिताऽपूर्वं सर्वकार्याणाम्। भूयात्त्रिजगच्चक्षु मंगलदस्ते सपुत्रायाः ॥"

नमस्कार करने पर गुरु पद्यमय आशीर्वाद दें।

तत्पश्चात् छठी रात्रि को धर्मजागरण किया। इग्यारहवें दिन स्नानादि द्वारा जन्म सूतक दूर करके बारहवें दिन सिद्धार्थ नरेश ने अशन मिठाई पूरी लपसी आदि, पान दुग्धादि, खादिम मेवे फ्रूट आदि, स्वादिम-ताम्बूलादि सर्व भोजन सामग्री विपुल प्रमाण में तैयार करवाई और अपने मित्र, जातिबन्धु पुत्र पौत्रादि स्वजन सम्बन्धी परिजन आदि परिवार तथा स्वगोत्रीय ज्ञातवंशी बन्धुजनों और अन्य क्षत्रियवर्ग को एव स्वधर्मी बन्धु वर्ग को भोजनार्थ निमन्त्रण भेजा। तदनन्तर स्वय ने भी स्नान, वस्त्राभूषण धारण, देवपूजा आदि कार्य किये। विघ्ननाश के लिए कौतुक मंगलकारी दूर्वा अक्षत तिलक आदि मस्तक ललाट पर धारण किये। दानादि से प्रायश्चित्त ग्रहशान्त्यर्थ कार्य किये। फिर सभा में जाने योग्य वस्त्राभूषण माल्य पुष्पगन्धादि धारण करके भोजन के समय भोजन मण्डप में उत्तम भद्रासन पर सुख से बैठ गये। आमन्त्रित जनों का यथायोग्य स्वागत सत्कार आदि करके निमन्त्रित बन्धु वर्ग के साथ भोजन सामग्री का आस्वादन करते हुये, विशेषास्वादन करते हुये सम्पूर्णास्वादन करते हुये, परस्पर आग्रह (मनुहार) करते हुये प्रसन्नचित्त से भोजन किया। भोजन सामग्री में कुछ वस्तुएँ—जिनमें थोडा खाकर अधिक छोड़ना पडे, जैसे इक्षु गन्ने आदि, ये आस्वाद्य कहलाते है। जिनका अधिक भाग खाया जा सके ऐसे आम्रादि फल वे विस्वाद्य, और जो सम्पूर्ण खाये जा सकें ऐसे मोदक आदि मिष्ठान्न, पूरी कचौडी शाक एवं विविध प्रकार नमकीन मेवे तथा ताम्बूलादि मुखवास पूर्ण स्वाद्य कहलाते है।

सूत्र :—जिमिय भुत्तुत्तरागया वि अ णं समाणा आयंता चोक्खा परम सुइभूया तं मित्त-नाइ नियगसयणसंबंधि परिजणं णायए खत्तिये य विउलेणं पुप्फ-गन्ध-वत्थ-मल्लालंकारेणं सक्का-





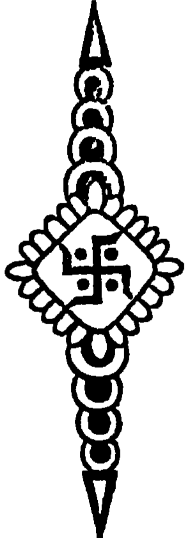
रिंति, सम्माणिंति सक्कारित्ता सम्माणित्ता, तस्सेव मित्तणायणियगसंबंधिपरिजणस्स णायाण खत्तियाण य पुरओ एवं वयासी ॥१०७॥

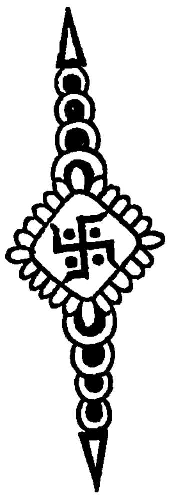
व्याख्या :--भोजनगृह में भोजन कर लेने पर तृप्त हो जाने के पश्चात् शुद्ध जल से हस्तप्रक्षाल करके सभी परम पवित्र बनकर सभामण्डप में आये। वहाँ सिद्धार्थ राजा ने आमन्त्रित मित्र, ज्ञातिजन स्वजन सम्बधिजन परिजन आदि का बहुत अधिक गन्ध-तिलक पुष्प, वस्त्र, आभूषण, पुष्पमालाओं से सत्कार सम्मान किया। सत्कार सम्मान उपहारार्पण आदि करके निमन्त्रित स्वजनादि को इस प्रकार निवेदन किया :—

सूत्र :—पुव्विं पि णं देवाणुप्पिया! अम्हं एयंसि दारगंसि गब्भं वक्कंतंसि समाणंसि इमे एयारूवे अब्भत्थिए चिंतिए जाव समुप्पज्जित्था। जप्पभिइं च णं अम्हं एस दारए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते तप्पभिइं च णं अम्हे हिरण्णेणं वड्ढामो, सुवण्णेणं धणेणं धन्नेणं रज्जेणं जाव सावइज्जेणं पोइसक्कारेणं अईव अईव अभिवड्ढामो सामंत-रायाणो व समागया य ॥१०८॥

व्याख्या :—हे देवानुप्रिय बन्धुजनों! प्रथम ही जब यह बालक अपनी माता की कूक्षि में गर्भ रूप में आया, तब हमारे मन में इस प्रकार का चिन्तन, अभ्यर्थन संकल्प उत्पन्न हुआ कि जिस दिन से यह बालक माता की कूक्षि में अवतीर्ण हुआ है उस दिन से हम चाँदी सुवर्ण धन धान्य और राज्य से यावत् सारभूत प्रधान वैभव से प्रीतिसत्कार से अत्यन्त २ बढ़ रहे हैं। अर्थात् सभी प्रकार से अभिवृद्धि हो रही है। सामत राजा लोग भी स्वतः ही वशीभूत हो गये हैं।

तं जया णं अम्हं एस दारए जाए भविस्सइ तया णं अम्हिएसदारगस्स इमं एयाणुरूवं गुण्णं



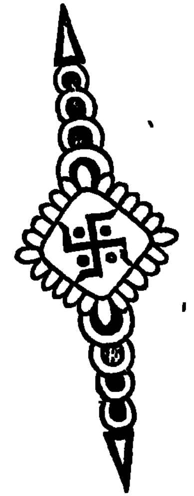


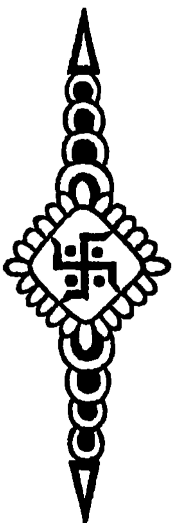
गुणनिष्फन्नं नामधिज्जं करिस्सामो वद्धमाणुत्ति । ता अज्ज अम्ह मणोरहसम्पत्तो जाया, तं होउणं अम्हंकुमारो वद्धमाणो नामेणं, तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो नामधिज्जं करेंति वद्धमाणोत्ति । १०९॥

व्याख्या :—इस कारण जब यह हमारा पुत्र जन्म लेगा, तब हम इस बालक का इसके अनुरूप गुणों से ही प्राप्त और व्युत्पन्न 'वर्द्धमान कुमार' ऐसा नाम रखेंगे। वह हमारा मनोरथ आज सम्पन्न हुआ; अतः हमारे इस कुमार का नाम 'वर्द्धमान' हो। ऐसा कहकर माता पिता ने (सिद्धार्थराजा व त्रिसलारानी ने) श्रमण भगवान् महावीर का नाम 'वर्द्धमानकुमार' प्रसिद्ध किया।

सूत्र :—समणस्स भगवओ महावीरस्स कासव गोत्तेणं तओ णं नामधेज्जा एवं आहिज्जंतिए वद्धमाणे, सह संमुइयाए समणे, अयले भय भेरवाणं, परिसहोवसग्गाणं खंतिखमे, पडिमाणं पालए, धीइमं अरइरइसहे, दविए, वोरिए, संपत्तौ, देवेहिं से नामंकयं भगवं महावीरे ॥११०॥

व्याख्या :—श्रमणभगवान् महावीर काश्यपगोत्रीय थे। उनके तीन नाम प्रसिद्ध थे, वे इस कारण माता पिता द्वारा रखा गया 'वर्द्धमान' जन्म से ही समभाव-रागद्वेषमुक्त होने से 'श्रमण' और साधनाकाल मे अकस्मात् विद्युत्पातादि से होनेवाले सर्व प्रकार के भय, तथा सिहादि स्वापदजन्तुओं का भय उसे भैरव कहते है। इन दोनों के आने पर अचल रहते थे। क्षुधापिपासादि परिषह और देवों व मनुष्यादि द्वारा किये गये अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गों के अवसर पर असमर्थता से नहीं किन्तु समर्थ होते हुये भी समता से सहन करनेवाले होने से, ऐसे ही एक रात्रि आदि की भद्रप्रमुख प्रतिमाओं को धारण करने वाले होने अथवा उन उन अभिग्रहो के पालक होने के कारण जन्म से ही तीन ज्ञान वाले बुद्धिमान, रति-अरति सुख दुःख सम-भाव से सहन करनेवाले, इष्टानिष्ट वस्तुओं के संयोग में रागद्वेष रहित, अथवा दविए द्रविक, अत्यन्त





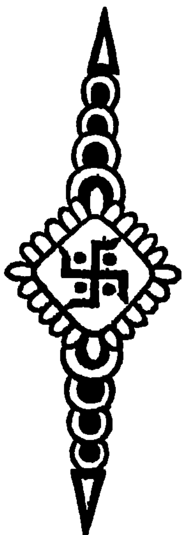
करुणाशील, महान्‌शक्तिशाली आत्मबल से सम्पन्न थे; अतः देवताओं ने आमलकी क्रीड़ा में 'श्रमण भगवान् महावीर' नाम प्रसिद्ध किया था, जिसका वर्णन आगे आवेगा।

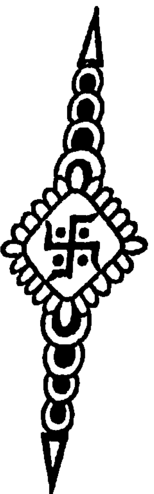
श्रमण भगवान् महावीर वर्द्धमान दशमदेवलोक के पुष्पोत्तरप्रवर पुण्डरीक विमान से च्यवकर आये थे। शरीर अनुपम कान्तियुक्त पीताभ गौर वर्ण था, कुंचित केश, कमलनयन, बिम्बोष्ठ, धवल उज्ज्वल दन्तपंक्ति, शुकनासा, प्रमाणोपेत सर्व अंगोपांग वाले, १००८ लक्षण वाले, अत्यन्त मनोहर आकृति वाले थे, निरोगदेह थी। मांस व रक्त श्वेतवर्ण थे। श्वासोच्छ्वास विकसित कमलगन्ध समान था।

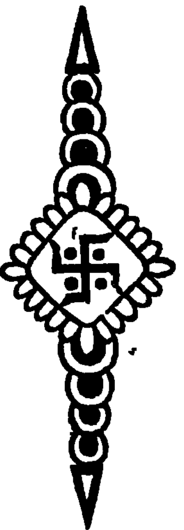
तीर्थंकर भगवान् सर्वोत्कृष्ट अलौकिक व अनुत्तर रूपवान् होते हैं। उनके रूप बल कान्ति आदि की उपमा दी जा सके, ऐसा कोई व्यक्ति जीवजन्तु या पदार्थ जगत् में है ही नहीं; अतः वे उपमातीत हैं। उनसे कुछ कम रूपवान् गणधर होते हैं। गणधरों से ईषत् हीन रूप, चतुर्दश पूर्वधरों का तथा उनसे कुछ कम पञ्चानुत्तर विमानवासी देवों का होता है। उनसे क्रमशः कम रूपवाले नवग्रैवेयक वासी, द्वादशस्वर्गवासी, भुवनपति, ज्योतिष्क, व्यन्तर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, बलदेव तथा सामान्य नृपति होते हैं।

वर्द्धमान कुमार जातिस्मरण ज्ञानवान्, अप्रतिपाति मतिज्ञान श्रुतज्ञान व अवधिज्ञान से युक्त थे। अलौकिक प्रतिभासम्पन्न थे।

चन्द्रकला के समान अभिवर्द्धित कान्तिमय शरीर वाले भगवान् माता का स्तन्यपान नहीं करते। इन्द्र संचारित पीयूषयुक्त अंगुष्ठ चूसते हुये ही शरीर पुष्ट होता रहता है। महाराज सिद्धार्थके राजभवन में स्वजनों परिजनों की आँखों के तारे, एक से दूसरे की गोद में लिये जाते हुये सैकड़ों दासदासियों से सेवित प्रभु दिन-दिन बढ़ने लगे। सर्वप्रिय भगवान् की बालसुलभ चपलता, स्खलित चाल, मन्मन बोली सबको मोहित कर लेती थी। उस अद्भुत रूपकान्ति व स्मितयुक्त बालक के जो एक वार दर्शन पा लेता, वह अपने आपको बड़ा भाग्यशाली मानता था और वार २ दर्शन करने गोद में लेने क्रीड़ा कराने को







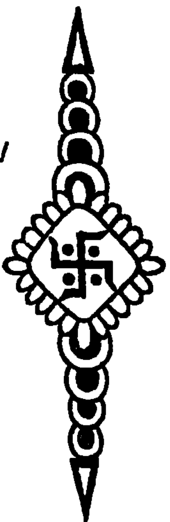
लालायित रहता था। माता-पिता, भाई-बहिन आदि स्वजन तो शिशु भगवान् की बाल लीलाओं से मुग्ध थे और स्वयं को धन्य कृतपुण्य व कृतार्थ मानते थे। भगवान् क्रमशः बढ़ते हुए भोजन करने योग्य हुये, तब अग्निपक्व भोजन करने लगे। बालक भगवान् आठ वर्ष में कुछ कम वयस् वाले थे, तब एक वार समानवयस्क बालकों के साथ आमलकी क्रीड़ा करने नगर के बाहर गये हुये थे।

आमलकी क्रीड़ा

उस प्रदेश में आमलकी नामक बाल क्रीडा विख्यात थी। उस क्रीड़ा के नियम भी थे। एक बड़े वृक्ष के पास यह क्रीडा होती थी, सर्व बालक नियत दूरी से दौड़ते हुये वृक्षारोहण करते थे। दो दो बालकों की दौड होती थी। जो पहले वृक्षारोहण करे, उस विजयी शिशु को पराजित शिशु कन्धे पर चढ़ाकर पूर्वस्थान पर लाता था।

भगवान् भी इस क्रीड़ा में रत थे। एक पिप्पली अथवा इमली का वृक्ष लक्ष्य था। बारी-बारी से सब बालक दौड़ते थे। भगवान् की भी बारी आई।

उधर प्रथम सौधर्म स्वर्ग की इन्द्रसभा में सिंहासनासीन इन्द्रमहाराज भगवान् महावीर के बल की मुक्तकण्ठ से गौरवपूर्वक प्रशंसा कर रहे थे और कह रहे थे कि सर्व देव दानवादि मिलकर भी भगवान् को डराना या हराना चाहे तो न भयभीत कर सकते हैं और न पराजित। इस उक्ति पर एक अज्ञानी देव को विश्वास न हुआ। वह बालक बनकर क्रीड़ा में सम्मिलित हुआ और क्रीड़ा करने लगा। भगवान् का सहधावक बना परन्तु महाबली भगवान् से दौड़ में हारगया। भगवान को डराने के लिए वृक्ष-शाखाओं में अपने दिव्यबल से फुंकार करते हुए सप ही सर्प बना दिये। वर्द्धमानकुमार ने शाखा पर सर्प देखा तो रस्सी के समान पकड कर दूर फेंक दिया और शाखा पर चढ़ गये। बालरूपधारी देव पराजित हो गया, कुमार वर्द्धमान को कन्धे पर चढ़ाना पडा। दौड़ मे हारकर और सर्पों से भयभीत न करा



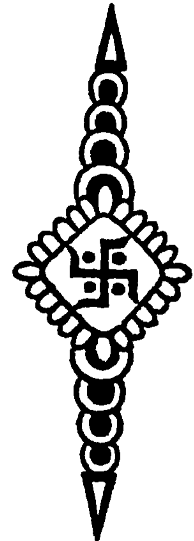
सकने पर उसने अब अपना शरीर सप्त ताड़ ऊँचा बना लिया। जिससे सारे बालक डर कर भाग गये; पर भगवान् कब डरने वाले थे ? उन्होंने मस्तक पर मुष्टि प्रहार किया जिससे वह दुष्ट देव चीखता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। लज्जा से पानी-पानी होकर भगवान् से क्षमा याचना करते हुये अपना मूलरूप प्रकट कर दिया। इतने में सौधर्मेन्द्र भी वहाँ उपस्थित हो गये और देव की ओर व्यङ्ग से दृष्टिपात किया। देव ने पश्चात्ताप पूर्वक क्षमायाचना की। भगवान के अलौकिक बल की प्रशंसा से उसे सम्यक्त्व प्राप्ति हुई। सर्व देवों ने भगवान को महावीर की उपाधि से विभूषित किया। उधर सब बालक भय से घबराते दौड़ते हुये राजभवन में गये और उक्त घटना बतलाई। जिससे माता-पिता आदि सर्वजनों को भारी चिन्ता हो गई। कई राजकर्मचारी दौड़ पड़े। भगवान तो प्रसन्नवदन गजगति से सामने आ रहे थे। सर्व उन्हें लेकर राजभवन में आ गये। माताजी ने गोंदी में बैठाकर प्रिय पुत्र को वात्सल्यभाव से सहलाते हुये सारी बात पूछी। भगवान ने कहा—माँ ! मेरे कुछ नहीं हुआ, मै तो जरा भी भयभीत नहीं हुआ था। सब भाग गये थे। वह कोई दुष्ट देव था, चला गया।

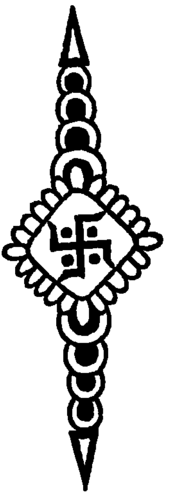
इति आमलकी क्रीडा

विद्याऽध्ययनार्थ विद्यालय गमन

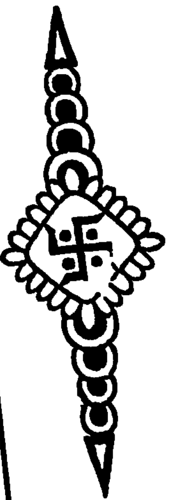
भगवान् जब आठ वर्ष के हो गये, तो माता-पिता ने मोहवश-अज्ञानवश विचार किया कि पुत्र को पढ़ाना चाहिये। पंडित से मुहूर्त्त लिया गया, उत्तम निर्दोष लग्न में स्नान, पूजा, प्रीतिभोजादि कराके बड़े महोत्सवपूर्वक गजारूढ़ कर भगवान् को विद्यालय ले गये। पण्डित महोदय के लिए वस्त्राभूषण भेंट दक्षिणा आदि व छात्रगण के लिए मिष्ठान्न आदि साथ में थे। समारोहपूर्वक गमन करते हुये विद्यालय पहुँचे। भगवान् की प्रतीक्षा में पंडित भी सजधज कर सिंहासन पर विराजमान थे।

इधर इन्द्र ने अवधिज्ञान से जाना कि भगवान् को अध्ययनार्थ विद्यालय ले जा रहे हैं। तो उन्होंने





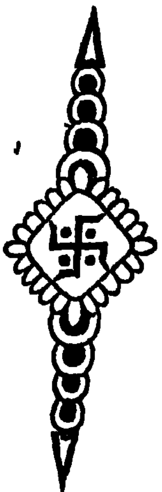
सोचा यह कैसा आश्चर्य है ? भगवान् तो अनध्ययन विद्वान् होते हैं। तीर्थंकर तीन ज्ञानयुक्त, सर्वशास्त्र-तत्त्वज्ञ अलौकिक विभूति हैं। इन्हें पण्डित क्या पढायेगा ? विदेशी ब्राह्मण का रूप धारण कर इन्द्र स्वयं विद्यालय में उपाध्याय व भगवान् के समक्ष उपस्थित हुये। दोनों को उपाध्याय व भगवान् को नमस्कार कर शब्द शास्त्र विषयक कई प्रश्न पूछे। उपाध्याय ने तो प्रश्नों का उत्तर देने में स्वयं को असमर्थ समझ मौन धारण किया, तब भगवान् ने उन सब का उत्तर दिया। उनके उत्तर सुनकर सभी-पण्डित वर्ग एवं उपस्थित छात्रगण और जनता आश्चर्यचकित हो गये। परस्पर कहने लगे-अरे ! राजकुमार ने तो अभी वर्णमाला भी नहीं सीखी ! यह सर्वविद्या विशारद विदेशी विप्र जो जो प्रश्न पूछ रहा है, उनके कैसे युक्ति-संगत और व्याकरण शास्त्रसम्मत उत्तर ये राजकुमार दे रहे हैं ! बडा भारी आश्चर्य है। वहाँ बैठे हुये पण्डितो ने भी कई जटिल प्रश्न जिनका समाधान वे स्वयं न कर सके थे और न अन्य से जान सके थे, पूछे—उनका भी यथोचित उत्तर सुनकर दंग रह गये। इन्द्र ने प्रकट होकर कहा—महानुभावों ! ये वर्द्धमान कुमार सामान्य बालक नहीं है ! तीर्थङ्कर हैं त्रैलोक्यतिलक अनन्त बुद्धिबलयुक्त हैं, सर्वज्ञ वीतराग बनने वाले हैं। इन्द्र ने दशांग सम्पूर्ण व्याकरण रचना करवाई। भगवान् सूत्र बोलते थे, इन्द्र ने सोदा-हरण वृत्ति रचना करता था। वह व्याकरण 'जैनेन्द्रव्याकरण' के नाम से आज भी उपलब्ध है। व्याकरण शास्त्र के दश अंग ये होते हैं :—संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश, अपवाद, प्रतिषेध अधिकार विभाषा और निपात। इन्द्र ने इस प्रकार दशांगयुक्त शब्द-शास्त्र की रचना भगवान् से करवाई। फिर लोक समक्ष इन्द्र ने कहा बन्धुओं ! तीन लोक में भी इनकी समानता करने वाला कोई अन्य जन नहीं है। तीर्थङ्कर और सामान्य जन में चतुर-मूर्ख, शुक्ल-कृष्ण, राजा-रंक, समुद्र-सरोवर और सूर्य-दीपक से भी महान् अन्तर होता है। श्री वर्द्धमान कुमार का गुणगान करते हुए नमस्कार करके इन्द्र स्वर्ग में चले गये और कुमार भी माता पितादि सहित राजभवन में पधार गये।



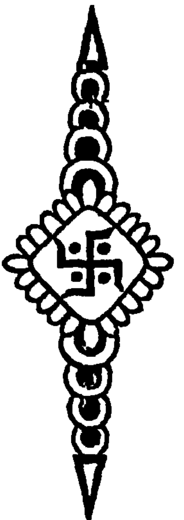
तीर्थंकर भगवान् आदर्श पुरुष होते हैं। वर्द्धमान कुमार स्वभावतः सरल विनयी गुरुजनों के आज्ञा-पालक, अत्यन्त उदार प्रकृति और करुणा त्याग समता व प्रसन्नता के मूर्त्तरूप थे। उनके प्रत्येक आचरण इतने अधिक सर्वशास्त्रसम्मत और सुसंस्कृत तथा आदर्श थे कि जगत में कोई उनका विरोधी नहीं था, वे सर्वजनवल्लभ थे। उनकी बाल क्रीड़ाएँ निरवद्य, विवेकयुक्त और सर्वप्रिय थीं, वे अन्य क्षत्रिय कुमारों के समान मृगया (शिकार) आदि परपीड़ाजनक क्रीड़ाएँ नहीं करते थे। चक्रवर्ती आदि होने पर भी तीर्थंकर को स्वयं संग्राम करना तो दूर उनकी सेनाएँ भी बिना युद्ध के ही उनके महान् पुण्य प्रताप से दिग्विजय कर लेती हैं। अद्भुत और निराला ही व्यक्तित्व होता है, तीर्थंकर भगवान् का। तदनुसार वर्द्धमान कुमार भी थे। शैशवावस्था से क्रमशः किशोरवय में आये। बल पराक्रम रूपरंग ओजस् आदि दिन दिन शारीरिक आकार प्रकार भी वृद्धिगत होने लगा और अब वे सात हाथ ऊँचे पूर्ण युवा हो गये। माता-पिता ने उनका विवाह करने की अभिलाषा व्यक्त की। उन्होंने सोचा यदि विवाह के लिये मै स्वीकृति न दूंगा, तो पिताजी विशेषतया माताजी को अत्यन्त दुःख होगा। मैं उनके दुःख का अनुभव गर्भ में ही कर चुका हूँ। यद्यपि मेरी इच्छा विवाह करने की किञ्चिद् भी नहीं है; तथापि पितृजनों का मन रखने और कुछ शेष रहे भोग्यकर्मों को भोगकर क्षय करने के लिये मुझे विवाह करना पड़ेगा। उन्होंने मौन सम्मति दे दी। उनके अनुरूप, समरवीर[1] सामन्त की रूप गुणवती कन्या 'यशोदा' से उनका पाणिग्रहण[2] संस्कार सम्पन्न हुआ। जलकमलवत् दाम्पत्य जीवन का निर्वाह करते हुये, एक कन्या के पिता बने। कन्या का नाम रूप गुण के अनुरूप 'प्रियदर्शना' रखा गया। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम सुख शान्तिपूर्वक चल रहा था कि एक दुर्घटना घटी। महाराज सिद्धार्थ और मातेश्वरी त्रिसला महारानी

१—दूसरी टीका में राजा प्रसेनजित है।

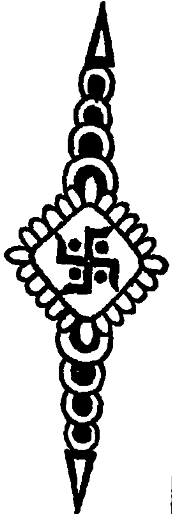
२ दिगम्बर परम्परा भगवान् को अविवाहित मानती है।

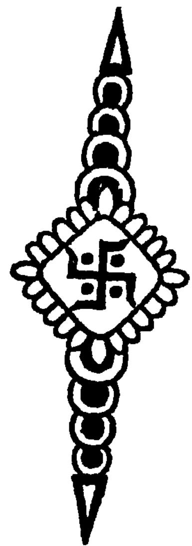


का किसी असाध्य व्याधि के उत्पन्न होने से समाधिपूर्वक शरीरान्त हो गया। वे वहाँ से चतुर्थ स्वर्ग में या अन्य[1] ग्रन्थ के उल्लेखानुसार बारहवें देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुये। बड़े भाई नन्दीवर्द्धन ने वर्द्धमान कुमार को राजा बनाना चाहा; पर वहाँ तो त्रिजगत् का साम्राज्य भी तृणवत् था। वे किसी भी प्रकार राजा बनने को सहमत नहीं हुए। तब नन्दीवर्द्धन का राज्याभिषेक किया। इधर गर्भ में की गई प्रतिज्ञापूर्ण हो जाने से वर्द्धमानकुमार ने संयम लेने की भावना को मूर्त्तरूप देने की इच्छा से भाई से अनुमति माँगी। उस समय वर्द्धमान कुमार अट्ठाईस वर्ष के थे। नन्दीवर्द्धन पितृमातृ विरह के शोक से व्याकुल तो थे ही, प्रिय भाई की इस प्रार्थना से उनका सिष्टमर्यादित शोकसागर उमड़ पड़ा, वे मुक्तकंठ से विलाप करने लगे। हा! माता-पिता तो छोड़ ही गये, तुम भी छोड़ जाना चाहते हो। मै कैसा अभागा हूँ। नहीं नहीं मै तुम्हें नहीं जाने दूंगा? अभी ऐसा वज्रपात मुझ पर न करो। तुम तो स्वभाव से ही करुणासिन्धु, परदुःखकातर, गुरुजन आज्ञापालक हो। तुम्हे अधिक क्या कहूँ? ऐसे हार्दिक स्नेहपूर्ण आग्रहवश भगवान ने भाई का आदेश शिरोधार्य कर लिया; परन्तु अब वे उदासीन भाव भोगविरक्त हो आत्मतत्व के चिन्तन मनन में लीन रहने लगे। एकान्तवास में साधुवृत्ति से जीवन व्यतीत करते थे। यों सभी प्रकार के आरम्भ समारम्भ से मुक्त निर्दोष प्राशुक आहार विहारादि करते हुये, समता भावमय त्याग पूर्ण अवस्था में रहते भगवान वर्द्धमान कुमार को एक वर्ष व्यतीत हो गया, एक शेष है। इस वैराग्यवृत्ति को देख अन्य सभी राजकुमार यह जानकर कि वर्द्धमान कुमार चक्रवर्ती सम्राट् बनने वाले है। सेवार्थ आये थे, अपने-अपने घर चले गए।



१—माता-पिता आवश्यकवृत्ति के अनुसार चतुर्थ स्वर्ग में और आचारांगानुसार १२वें स्वर्ग गये।

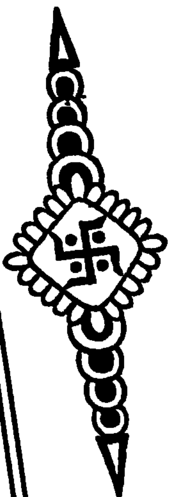




सूत्र :—समणस्स भगवओ महावीरस्स पिया कासवगुत्तेणं, तस्स णं तओ नामधिज्जा एव माहिज्जंति, तंजहा—सिद्धत्थेइ वा, सिज्जंसे इ वा जस्संसे इ वा। समणस्सणं भगवओ महावीरस्स माया वासिट्ठस्स गुत्ते णं, तीसे तओ णामधिज्जा एव महिज्जंति, तंजहा—तिसला इ वा, विदेह-दिन्ना इ वा, पीइकारिणो वा। समणस्स भगवओ महावीरस्स पित्तिज्जे सुपासे, जेट्ठे भाया नंदि-बद्धणे, भगिणो सुदंसणा, भारिया जसोया कोडिन्ना गोत्तेणं। समणस्स भगवओ महावीरस्स धुआ कासवगोत्तेणं, तीसेणं दो णामधिज्जा एव माहिज्जंति, तंजहा—अणोज्जा इ वा, पियदंसणा इ वा। समणस्स भगवओ महावीरस्स नत्तुई, कोसियगुत्तेणं तीसे णं दो णामधिज्जा एव माहिज्जंति, तंजहा—सेसवई वा जसवई वा ॥१११॥

व्याख्या :—श्रमण भगवान महावीर के पिता काश्यपगोत्रीय थे। वे तीन नामों से प्रसिद्ध थे—सिद्धार्थ, श्रेयांस और यशस्वी। श्रमण भगवान महावीर की माता वसिष्ठ गोत्रजा थी, उनके तीन नाम थे—त्रिसला, विदेहदिन्ना अथवा प्रीतिकारिणी। श्रमण भगवान् महावीर के पितृव्य (काका) का नाम सुपार्श्व था। बडे भाई नन्दीवर्द्धन थे, बहिन का नाम सुदर्शना था। पत्नी का नाम यशोदा था। वह कोडिन्य गोत्रजा थी। भगवान् की पुत्री काश्यपगोत्रजा के दो नाम थे—अनोद्या और प्रियदर्शना। कौशिकगोत्रीया दोहित्री के भी दो नाम थे—शेषवती और यशस्वती।

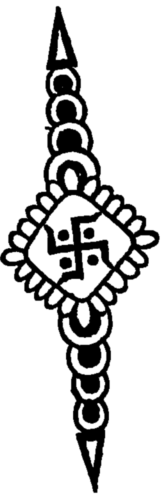
सूत्र :—समणे भगवंमहावीरे दक्खे, दक्खपइण्णे, पडिरूवे, आलीणे, भद्दये, विणीए, णाए,



णायपुत्ते, णायकुलचंदे, विदेहे, विदेहदिन्ने, विदेहजच्चे, विदेह सूमाले, तीसं वासाइं विदेहंसि कट्टु अम्मापिउहिं देव गएहिं, गुरु महत्तरएहिं अब्भणुण्णाए सम्मत्तपइण्णे ॥११२॥

व्याख्या :—श्रमण भगवान् महावीर (वर्द्धमान कुमार) स्वयं सर्व विद्याओं के पारंगत व कला-कुशल थे। उत्तम प्रतिज्ञाएँ करने वाले और उन प्रतिज्ञाओं का दृढता से पालन करने वाले थे। सुन्दर अत्यन्त रूपवान, सर्व गुण सम्पन्न, सरल भद्र उदार प्रकृति और सुविनीत थे। विश्वविख्यात ज्ञात, व ज्ञात वंशी सिद्धार्थ राजा के पुत्र थे। पर सामान्य नहीं, कुल मे चन्द्रमा के सदृश थे। विदेह अर्थात् विशिष्ट देह—समचतुरस्र संस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, सर्वाङ्ग सुन्दर थे। वैदेही त्रिसला के पुत्र होने से विदेह दिन्न और विदेह जात्य या विदेह जार्च्य कहलाते थे। विशेष सुकुमार शरीर वाले थे, पर साथ ही संयम धारण करने पर वज्र कठोर बन गये थे और भयंकर उपसर्गों मे भी अविचल रहे। इस प्रकार के उत्कृष्ट रूपगुणों से युक्त भगवान् तीस वर्ष की अवस्था तक विदेह अर्थात् देहासक्ति रहित गृहवास में रहे। माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। गर्भावस्था में की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने से दीक्षा लेने को उद्यत हुये, पर भाई नन्दोवर्द्धन ने दो वर्ष फिर रुकने का आग्रह किया तो विनयशील भगवान् ने भाई की आज्ञा का उल्लंघन करना उचित न जानकर वैराग्यमय जीवन व्यतीत करते हुये एक वर्ष बिता दिया।

एक वर्ष शेष रहने पर लोकान्तिक देव—(१) सारस्वत, (२) आदित्य (३) बलि (४) अरुण (५) गर्दतोय (६) तुषित (७) अव्याबाध (८) अरिष्ट और (९) मरुत विमानवासी एकावतारी देव होते हैं। वे पाँचवे स्वर्ग-ब्रह्म देवलोक के समीप रहते हैं। तीर्थंकर भगवान् को दीक्षा समय उद्बोधन देना उनका शाश्वत कर्त्तव्य आचार है। भगवान् महावीर का भी दीक्षा समय समीप जानकर वे उपस्थित हुये और मधुर प्रिय और मनोहर उत्तम गम्भीर वाणी से वारंवार भगवान् का अभिनन्दन प्रशंसा और स्तवना करके

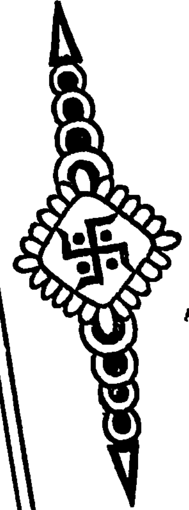


कहने लगे। यद्यपि तीर्थंकरदेव स्वयं जन्म से ही तीन ज्ञान—मति श्रुत और अप्रतिपाति अवधिज्ञान युक्त होते हैं, दीक्षा का समय आ गया ऐसा जान लेते हैं, तथापि लोकान्तिक देवों का यह शाश्वत आचार है।

सूत्र :—पुणरवि लोगंतिएहिं जीअ कप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मिय महुर सस्सीरियाहिं जाव वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदमाणाय, अभिथुव्वमाणाय एवं वयासो जय जय णंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते, जय जय खत्तिय वरवसहा ! बुज्झाहि भगवं लोगणाहा ! सयल जगज्जीवहिअं पवत्तेहि धम्मतित्थं-हिअसुह णिस्सेयसकरं सव्वलोए सव्वजीवाणं भविस्सइ त्ति कट्टु। जय जय सद्दं पउंजंति ॥११३॥

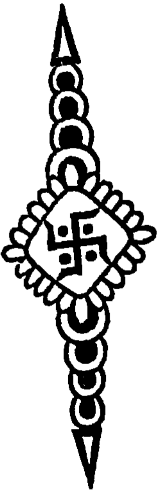
व्याख्या—भगवान् दीक्षा अवसर जानते हैं; फिर भी जीतकल्प के पालक लोकान्तिक देव इष्ट कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, हृदयस्पर्शी, उदार, कल्याण रूप, शिव रूप, धन्य रूप मंगलकारो, मृदु, मधुर, मंजुल शोभाकारी वाणी से अभिनन्दन-अभिस्तुति करते हुए बोले—

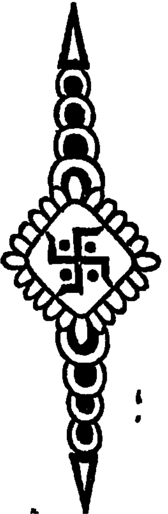
जय हो जय हो ! हे समृद्धिशालिन् ! श्रेयस्मय ! आपका कल्याण हो ! हे क्षत्रिय वरवृषभ ! भगवन्। जय हो जय हो ! हे लोकनाथ भगवन् ! जागृत हों ! समस्त विश्व के जीवों का हितकारक धर्मतीर्थ प्रवृत्त करिये ! कारण कि धर्मतीर्थ सम्पूर्ण लोक के जीवों को हितकर सुखकर और निःश्रेयस्कर होगा। ऐसा कह कर फिर जय जय शब्द करने लगे।



सूत्र :—पुव्विं च णं समणस्स भगवओ महावीरस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे आभोइए, अप्पडिवाई णाण दंसणे होत्था। तए णं समणे भगवं महावीरे तेणं अणुत्तरेणं आभोइएणं णाणदंसणेणं अप्पणो णिक्खमणकालं आभोएइ आभोइत्ता चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, चिच्चा धणं, चिच्चा रज्जं, चिच्चा रट्ठं, एवं बलं वाहणं, कोसं कोट्ठागारं चिच्चा पुरं चिच्चा अंतेउरं चिच्चा जणवयं चिच्चा विपुल धणकणग रयण-मणि-मोत्तिय संख सिलप्पवाल रत्तरयण-माइयं संत सार सावइज्जं विच्छड्डइत्ता, विगोवइत्ता दाणं दायारेहिं परिभाइत्ता दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता ॥११४॥

व्याख्या:—श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को मनुष्य सम्बन्धी गृहस्थधर्म से पूर्व भी अर्थात् गर्भावस्था से ही सर्वोत्कृष्ट अप्रतिपाती (केवलज्ञान होने से पहले रहने वाले अवधिज्ञान व अवधिदर्शन थे) अवधिज्ञान से श्रमण भगवान् महावीर ने अपना निष्क्रमण काल जाना, दीक्षा लेने का समय समीप जानकर हिरण्य-रजत सुवर्ण, चारप्रकार का धन, राज्य, राष्ट्र, चतुरंगसैन्य हस्तिअश्व शीबिकादि वाहन, कोश, कोष्ठागार-विभिन्न वस्तुओं-धान्यादि के भण्डार, नगर, अन्तःपुर, जनपद-देशवासिजन, विपुलवैभव-धन सुवर्णरजत के पात्र, मणि, रत्न, मौक्तिक, शंख, शिला-मनःशिलादि अथवा सोने की सिल्लियाँ, प्रवाल, माणिक्यादि रक्त रत्न, इत्यादि विद्यमान और सारभूत वस्तुओं का त्याग करके, गुप्त रहे हुए धनादि को अतिशय ज्ञान द्वारा प्रकट करके दान कर दिया अथवा ये धनादि अस्थिर है, निन्दनीय है, त्याज्य हैं, इनका सदुपयोग दान से होता है। यह बतलाने के लिए याचकजनो-स्वजन सम्बन्धिजनों का विभाग करके-कि इतना दान करना, इतना स्वजनो को देना' ऐसा विचार करके दीक्षा लेने को उद्यत हुये।

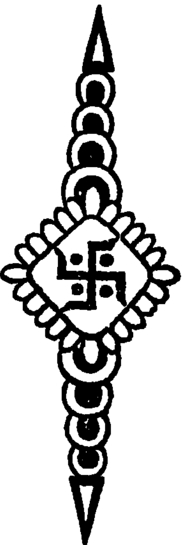


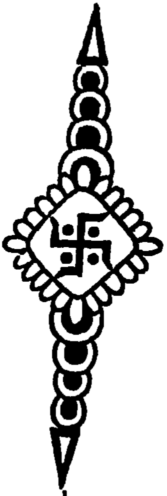


इस सूत्र द्वारा 'सांवत्सरिक दान देना' सूचित किया है। भगवान् तीर्थंकरदेव दीक्षा लेने के दिन में एक वर्ष शेष रहे तब वर्षीदान देना आरंभ करते हैं उसकी रीति यो है--भगवान् की ओर से देशविदेशादि में उद्घोषणा पूर्वक सबको विदित कर दिया जाता है कि 'जिन्हे जो वस्तु चाहिये वे भगवान् से याचना करें। भगवान् उन्हें वही वस्तु देंगे"। भगवान् सूर्योदय से भोजन वेला पर्यन्त प्रतिदिन एक क्रोड़ आठलाख सोनैयों (सुवर्णमुद्रा) का दान देते है; इनके अतिरिक्त हाथी, घोड़े वस्त्रालंकार भूमि आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ जो 'याचक मांगे' वही देते हैं। सभी वस्तुएँ इन्द्र की आज्ञा से तिर्यकजृंभकदेव आगे से ही नित्य भंडार में गुप्त रूप से लाकर रखते रहते हैं। जिससे किसी पदार्थ की कमी नहीं रहती और भगवान् मुक्त-हस्त से दान करते है। सारे देशवासियों को ऋणमुक्त करके नन्दीवर्द्धन राजा के नाम से 'नन्दीवर्द्धन संवत् का प्रवर्त्तन कराते है। इस प्रकार सांवत्सरिक दान का एक वर्ष पूर्ण होने पर श्री वर्द्धमान कुमार पुनः बडे भाई से निवेदन करते हैं—बन्धुवर ! आप द्वारा निर्दिष्ट दो वर्ष ठहरने का आदेश पूर्ण प्रायः है; अतः'अब मैं दीक्षा की अनुमति चाहता हूँ ! कृपया अब आज्ञा दीजिये ! "त्याग-वैराग्य पूर्ण दो वर्ष का समय उदासीन भाव से व्यतीत करके मेरी आज्ञा का पालन किया है; यद्यपि प्रिय बन्धु का वियोग असह्य है; परन्तु मै वचनबद्ध हूँ और ये स्वप्नानुसार तीर्थंकर बनकर धर्मचक्र का प्रवर्त्तन करने वाले हमारे कुल को विश्वविख्यात करने वाले हैं", ऐसा विचार कर 'नन्दीवर्द्धन नृपति ने विवश हो, चारित्र धारण की आज्ञा प्रदान कर दी और महोत्सव आरम्भ किया।

श्रीवर्द्धमान कुमार का महाभिनिष्क्रमण महोत्सव

इस अवसर पर श्री नन्दीवर्द्धन नरेश ने राज कर्मचारीगण को बुलाकर नगर को स्वच्छ कराने व ध्वजा पताका तोरणों आदि से सुसज्जित कराने का आदेश दिया। उन्होंने आदेशानुसार नगर को स्वर्ग सा बना दिया। दीक्षा कल्याणक का सूचक इन्द्रासन कम्पित होने से इन्द्रादि समस्त देव-देवीगण भी सेवा में उपस्थित

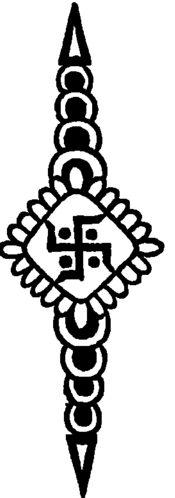


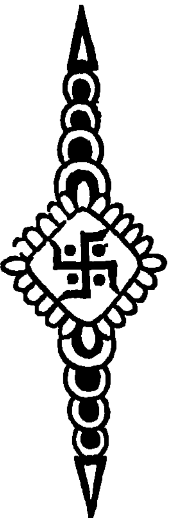


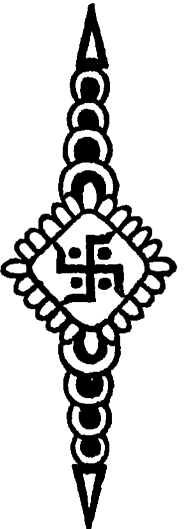
हुये। जन्माभिषेक के समान सभी कार्य—अभिषेक आदि कार्य राजा और इन्द्रादि देवों ने मिलकर अत्यन्त धूम-धाम से सम्पन्न किया। अभिषेक के पश्चात् भगवान् के शरीर को लालरंग के कोमल व सुगन्धि वासित वस्त्र से पोंछ कर गोशीर्ष चन्दन का सारे शरीर पर विलेपन किया और विविध भाँति के उत्तम वस्त्रालंकार मुकुट हारादि से विभूषित करके भगवान् को शीबिका में विराजमान किया। छत्तीस धनुष-ऊँची और पचास धनुष लम्बी शीबिका नन्दीवर्द्धन राजा ने बनवाई। उसका नाम चन्द्रप्रभा था। वैसी ही इन्द्र द्वारा निर्मापित शीबिका थी। दोनों दिव्य शक्ति से एक बना दी गई थी। उसी में भगवान् वर्द्धमान विराजमान हुये।

सूत्रः—तेणं काले णं ते णं समये णं समणे भगवं महावीरे जै से हेमंता णं पढमे मासे पढमे पक्खे मग्गसिरबहुले तस्स णं मग्गसिरबहुलस्स दसमी पक्खे (दिवसे) णं पाईणगामिणीए छाया ए पोरिसीए अभिनिविट्ठाए पमाणपत्ताए सुव्वये णं दिवसे णं विजये णं मुहुत्ते णं चंदप्पभाए सिवियाए सदेव मणुयाए सुराए परिसाए समणुमाणमग्गे संखिय-चक्किय नंगलिय मुहमंगलिय वद्धमाण पूसमाण घंटिय गणेहिं ताहिं इट्ठाहिं, कंताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मिय महुर सस्सोरियाहिं हियय पल्हायणिज्जाहिं अट्ठसइयाहिं अपुणरुत्ताहिं जाव वग्गूहिं अभिनन्दमणा अभिथुव्वमाणा एवं वयासो ॥११५॥

व्याख्या—उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर देव, हेमन्तर्तु के प्रथम मास-मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन ठीक अपराह्न समय सुव्रत नामक दिवस व विजय मुहूर्त्त में चन्द्रप्रभा नामक उत्तम शीबिका मे, रत्नजटित सुवर्ण सिहासन पर पूर्वाभिमुख हो विराजमान हुये। उस दिन भगवान् के छट्ठ (बेला)

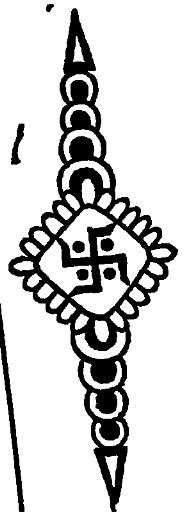






तप था, विशुद्ध लेश्या (मन के परिणाम) में वर्त्तते थे। शीबिका में प्रभु के दक्षिण ओर कुलमहत्तरा (कुल में सबसे बडी) हंस लक्षण-हंसवत् उज्ज्वल वस्त्र चगेरिका में लिए भद्रासन पर बैठी थी। बायीं ओर प्रभु की धाय दीक्षोपकरण लेकर बैठी थी। (भगवान् कोई उपकरण-रजोहरणादि नहीं रखते यहाँ कदाचिद् शोभार्थ रखे गये हों) पृष्ठ भाग में एक सुन्दर सुशील युवती श्वेतच्छत्र प्रभु के शिर पर धारण किये खडी थी। ईशान कोण में एक स्त्री जलपूर्ण स्वर्ण कलश लिए बैठी, और अग्निकोण में एक स्त्री सुवर्ण दण्डी युक्त रत्नमणि जटित व्यजन (पंखा) लेकर बैठी थी। नगर द्वार तक भगवान् को शीबिका नन्दीवर्द्धन नृपति के आदेशकारी मनुष्यों ने और फिर आगे सोधर्मेन्द्र ने आगे की दक्षिण की शीबिका बाहु और ईशानेन्द्र ने आगे की वाम बाहु अपने कन्धे पर उठाई। पीछे की दोनों बाहु क्रमशः चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने धारण की। शेष भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के दिव्य स्वरूप धारक इन्द्र, पञ्चवर्ण पुष्पों की वृष्टि करते और दुन्दुभि आदि वाद्य बजाते हुये चलने लगे। फिर क्रमशः सोधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र से शीबिका के बाहुओं को सभी इन्द्र लेते हैं और सोधर्मेन्द्र ईशानेन्द्र भगवान् के दोनों ओर चामर वींजते चलते हैं। इस प्रकार शीबिका में विराजमान भगवान् जब चल रहे थे; तब देव देवाङ्गनाओं से सुशोभित आकाश कमलों से भरे सरोवर अथवा विविध विकसित पुष्पोद्यानवत् मनोहर भासित हो रहा था। निरन्तर निनाद करते हुये वाद्य समूहो की ध्वनि सुनने से कौतुक से उत्सुक बने हुये नगर के सभी आबाल वृद्ध नर नारी अपने-अपने व्यापार धन्धे, कामकाज छोड़कर महाभिनिष्क्रमण शोभा-यात्रा (वरघोडा) देखने को दौड़े चले आ रहे थे।

सबसे आगे रत्नमय अष्ट मंगल-स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त्त, वर्द्धमान-शरावसम्पुट, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुग और दर्पण धारक चल रहे थे, उनके पीछे जलपूर्ण कलश भृंगार, व चामरधारी पुरुष; इन्द्र-ध्वज, वैडूर्य रत्नजटित दण्डयुत श्वेतछत्र पादपीठ सहित मणिरत्न जटित सिंहासन, एक सौ आठ श्रेष्ठ

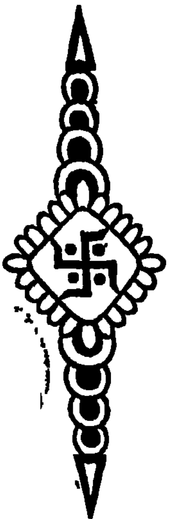


गजों की पंक्ति, इतने ही श्रृंगारित अश्व, इतने ही अत्यन्त सुन्दर रथ, फिर एक सौ आठ सुसज्जित मनोहर वेश धारक युवजन, विविध शस्त्रधारक सैन्य, भाँति-भाँति की कलाओ का प्रदर्शन करते हुये कलाकार, विरुदावलि बोलते हुये चारण भाट, उग्रकुल भोगकुल, राजन्यकुल आदि के क्षत्रीगण, आरक्षक, सामन्त, मन्त्रिगण, श्रेष्ठिजन, सार्थवाह, अन्य राजकर्मचारी, देव-देवी, दास-दासी जनपद के लोग आदि जय जय शब्द करते हुये चल रहे है। भगवान् की शीबिका के पीछे पट्टहस्ति पर बैठे हुये महाराज नन्दीवर्द्धन और उनके पीछे स्वजन परिजन आदि यथायोग्य वाहनों पर आरूढ हो चल रहे हैं।

इन सबके द्वारा इस प्रकार भगवान् का अभिनन्दन व गुणगान हो रहा है।

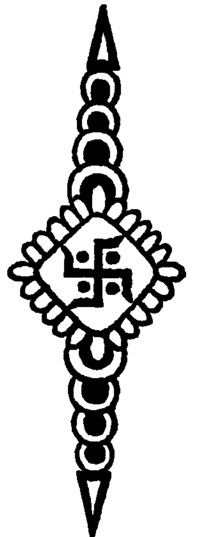
सूत्र :—जय जय नन्दा ! जय जय भद्दा ! भद्दंते, जय जय खत्तियवर वसहा ! अभग्गेहि नाण-दंसणं चरित्तेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियंच पालेहि समणधम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धि मज्झे, निहणाहि रागदोस मल्ले तवेणं, धिइधणियबद्ध कच्छे मद्दाहि अट्ठ कम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहण पडागं च वीर ! तेलुक्करंग मज्झे, पावय त्रितिमिरमणुत्तरं केवलवरणाणं, गच्छ य मुक्ख परंपथं जिणवरोवइट्ठेण मग्गेणं, अकुडलेणं हंता परिसहचमूं जय जय खत्तियवरवसहा ! बहूइं दिवसाइं, बहूइं पक्खाइं, बहूइं मासाइं, बहूइं उऊइं बहुइं अयणाइं, बहूइं संवच्छराइं, अभीए परिसहोवसग्गाणं, खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ त्ति कट्टु जय जय सद्दंपउंजंति ॥११६॥

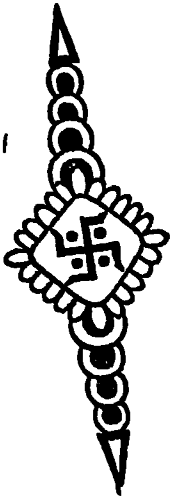
व्याख्या :—हे समृद्धिशालिन् ! आपकी जय हो जय हो ! हे कल्याणकारक ! आपकी जय हो जय हो । हे क्षत्रियवरवृषभ ! आपका कल्याण हो ! अतिचार रहित ज्ञान दर्शन और चारित्र की आराधना से



अन्य द्वारा अजित इन्द्रियों को जीतिये ! जीतकर श्रमण धर्म का पालन करिये ! हे देव ! आप उत्कृष्ट चरित्र के पालन में निर्विघ्न रहें ! सिद्धि प्राप्त करें ! बाह्य व आभ्यन्तर तप द्वारा रागद्वेष रूप महामल्लों को पराजित करें ! श्रेष्ठ धृति धारण द्वारा बद्ध कक्ष हो उत्तम शुक्ल ध्यान से अष्टकर्म शत्रुओं को मर्द्दन करें-नष्ट करें, हे वीर ! अप्रमत्त हो त्रैलोक्य रंगमण्डप में आराधन पताका प्राप्त करें ! अज्ञान तिमिर रहित अनुत्तर केवलज्ञान सप्राप्त करें ! और परिषहों की सेना को जीतकर जिनेश्वरों द्वारा उपदिष्ट विषयकषायादि की कुटीलता रहित सरल साधना मार्ग से परमपद स्वरूप मोक्षपद को प्राप्त करें ! हे क्षत्रियवर वृषभ ! आपकी जय हो जय हो ! बहुत दिवस पक्ष मास ऋतु अयन और संवत्सर-वर्षों पर्यन्त परिषह उपसर्गों से निर्भय रहें, कायरता या असमर्थ होने से नहीं किन्तु क्षमा से समस्त भय-आकस्मिक विद्युत्पातादि, भैरव-सिंहादि श्वापद जन्तु जनित, को सहन करें। आपका साधनाकाल निर्विघ्न हो ! ऐसा कहकर बारंबार भगवान् की जय बोल रहे हैं।

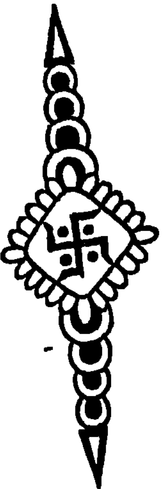
सूत्र :—तए णं समणे भगवं महावीरे नयणमाला सहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे, वयणमाला सहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे, अभिथुव्वमाणे हिअयमाला सहस्सेहिं उण्णंदिज्जमाणे उण्णंदिज्जमाणे, मणोरहमाला सहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे कंतिरूवगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे, अंगुलिमालासहस्सेहिं दाइज्जमाणे दाइज्जमाणे, दाहिणहत्थेणं बहूणं नर-नारिसहस्साणं अंजलिमाला सहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे, भवणपतिसहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे, तंती-तल-ताल-तुडियगीय वाइअ रवेणं महुरेण य, मणहरेण जय जय सद्द घोसमीसिएणं मंजुमंजुणा घोसेण य पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे, सव्विड्ढीए, सव्वजुईए सव्व-

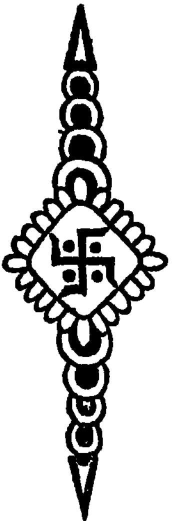




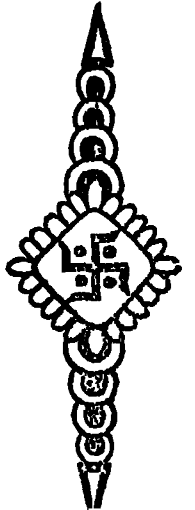
बलेणं सव्ववाहणेणं, सव्वसमुदएणं, सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्व-संगमेणं सव्वपगईहिं सव्वणाडणहि सव्वतालायरेहि सव्वोवरोहेणं सव्वपुप्फवत्थ गंध मल्लालंकार-विभूसाए सव्वतुडियसद्दसंणिणाएणं, महया इड्ढिए, महया जुईए महयाबलेणं महयावाहणेणं महया-समुदयेणं महयावरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं संख-पणव-पडहभेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-दुंदुहि-णिग्घोसणाइ रवेणं कुंडपुर नगरं मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ, णिगच्छिता जेणेव णायसंडवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ ॥ ११७ ॥ उवागच्छिता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, सीयाओ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूस मादाय एगे अबाए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥११८॥

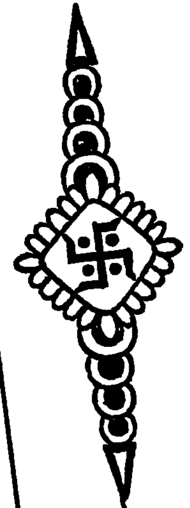
व्याख्या :—श्रमण भगवान् महावीर देव हजारों नेत्र श्रेणियों से वारंवार देखे जाते हुये, हजारो मुखों से विविध प्रकारसे पुनः पुनः प्रशासित होते हुये, हजारों हृदयों द्वारा 'आप जय प्राप्त करे चिरञ्जीवि बने' इत्यादि भावनाओं से समृद्ध, हजारो के मनोरथों से 'हम इन भगवान् के आज्ञाकारी सेवक बने अथवा इनके शिष्य बनेंगे' ऐसे विचार से देखे जाते हुये। (अनेकजन प्रभुको कांतिरूप गुण बल आदि देखकर वैसा ही बनने को इच्छा कर रहे थे।) हजारों अंगुलियो द्वारा निर्देशित, सहस्रों श्रद्धाञ्जलियों को (नमस्कारों) को स्वयं के दक्षिण हाथ से स्वीकृत करते, हजारो भवन श्रेणियों का अतिक्रमण करते हुये, और कर्ण मधुर





विविध गानों के साथ प्रजा के जय जय शब्द मिश्रित भाँति-भाँति के वाद्ययंत्रों तथा तालियों की प्रिय ध्वनि युक्त जनता द्वारा मनोहर जयोद्घोष से सर्व सावधान, छत्रचामरादि राज-चिह्न रूप सम्पूर्ण ऋद्धि व आभूषणादि की सर्व द्युतियुक्त, चतुर्विध सेना सहित, सर्व वाहनों (गज अश्व आदि) से युत सर्व समुदाय से सर्व प्रकार के उत्तम आचरण करने से सर्व विभूतिपूर्ण, सर्व विभूषा विभूषित अत्यन्त हर्षवश पूर्ण उत्कण्ठा पूर्वक, सर्व सम्बन्धिजनों से परिवृत, सर्व ग्रामीणजनों सहित, सर्व प्रजा सहित थे। सर्व प्रकार के नाटक हो रहें हैं। तालियें बजाने वाले तालियें बजा रहे हैं। सारी अन्तःपुर-वासिनी महिलाएँ साथ हैं। सर्व प्रकार सुगन्धित पुष्पों गन्ध वस्त्र माला अलंकारों से विभूषित, सर्व वाद्ययन्त्रों के निनाद तथा प्रतिध्वनि पूर्वक वर्द्धमानकुमार दीक्षा धारण करने चले जा रहे हैं। थोड़े में भी सर्व शब्द का प्रयोग होता है, अतः सूत्रकार श्री भद्रबाहु स्वामी फिर से कह रहे हैं कि महर्द्धि, महाद्युति, महाकान्ति, महासेना, महावाहन महालोक समुदाय के साथ और महान श्रेष्ठ वाद्य एक साथ बज रहे हैं। शंख प्रणव पटह भेरि झालर खरमुखी हुड्क दुन्दुभि (बड़ा नक्कारा) आदि के निर्घोष से महान् शब्द प्रतिशब्दों की ध्वनि सहित भगवान् कुण्डपुर नगर के राजपथ पर होकर चले जा रहें हैं चलते-चलते नगर के बाहर ज्ञातवनखण्ड में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे शीबिका ठहराकर उससे नीचे उतर जाते है और स्वयं ही सर्व आभूषण पुष्पमालाएँ वस्त्र आदि उतार दिये। इन सबको कुल वृद्धा स्त्री ने श्वेत स्वच्छ हंसलक्षण वस्त्र में ले लिया और भगवान् को सम्बोधित कर कहने लगी—हे वत्स। तुम ज्ञातपुत्र हो ! काश्यपगोत्रीय हो ! दिन-दिन महोदय प्राप्त ज्ञात कुल के गगन में चन्द्रमा समान सिद्धार्थ नृपति के पुत्र हो। वासिष्ठ गोत्रजा उत्तमशीलवती त्रिसला रानी की रत्न-कूक्षि से जन्म लिया है। नरेन्द्र देवेन्द्रादि द्वारा तुम्हारी कीर्ति विस्तृत की गई है। हे पुत्र ! तुम महान् श्रेष्ठ हो ! चारित्र पालन में तत्पर रहना, बड़ों का आलम्बन लेना अर्थात् तुमसे पूर्व होने वाले तीर्थंकरों अथवा महान् पूर्वजों को आदर्श मानकर आचरण करना ! कठिन असिधारा पर चलने





के समान महाव्रतों का पालन अत्यन्त दुष्कर है। उन्हीं के पूर्ण पालन की चेष्टा करना ! इसी का प्रयत्न करना, इसी में सारी शक्ति पराक्रम लगा देना, चारित्र पालन मे प्रमाद मत करना" ऐसा कह नमस्कार कर हृदय भर आने से एक ओर खिसक गई।

अब भगवान् ने पंचमुष्टि लोच किया। सौधर्मेन्द्र ने हंसोज्ज्वल वस्त्र में सारे केश ले लिये और क्षीर-सागर में प्रवाहित कर दिये। उस दिन भगवान् के चउव्विहार छट्ठ (बेला) था। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर इन्द्र द्वारा वाम कन्धे पर देवदूष्य वस्त्र रख कर मात्र एकाकी-दूसरा साथ में कोई नही है, भगवान् मुण्डित हो अगारी से अनगार बन गये। द्रव्य से केशों का लोच और भाव से राग द्वेष का त्याग कर दिया।

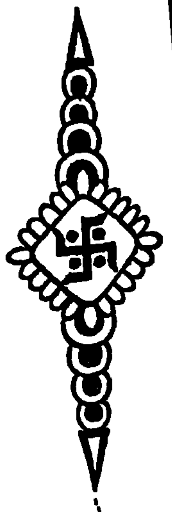
श्री तीर्थंकर भगवान् का सर्व सामायिक व्रतोच्चारण

पञ्चमुष्ठि लोच के पश्चात् जब भगवान् सामायिक दण्डक (पाठ) उच्चारण करने को उद्यत हुये, सौधर्मेन्द्र ने अपनी स्वर्ण छडी चारो ओर घुमाकर वाद्ययन्त्रों को रोक दिया व मनुष्यों का कोलाहल शांत कर दिया और छीक आदि अपशकुन न करने की उद्घोषणा की।

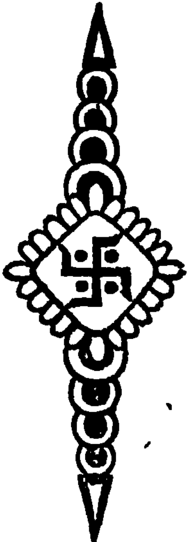
श्रमणभगवान् श्रीमहावीर ने 'णमोसिद्धाणं' कहकर निम्नांकित सामायिकदण्डक उच्चारण किया।

"करेमि सामाइयं, सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं-मणेणं वायाए कायेणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अण्णं न समणुजाणामि तस्स पडिक्कमामि निंदामि गरहामि अप्पाणं वोसिरामि"।

ऐसा कहकर चारित्र ग्रहण करते हैं 'भते' पद का उच्चारण नहीं करते; क्योंकि तीर्थंकर देव स्वयं सम्बुद्ध होते हैं, स्वयं जगद्गुरु हैं, उन्हे गुरु की आवश्यकता नहीं होती। वे जन्म से तीन ज्ञान युक्त होते है। संयम



कल्पसूत्र
१७८



धारण करते ही उन्हे चोथा मनःपर्यव ज्ञान हो जाता है भगवान् वर्द्धमान को भी तत्काल चतुर्थ मनःपर्यव ज्ञान हो गया। तदनन्तर इन्द्रादि समस्त देव देवीगण भगवान् को वन्दन नमस्कार कर दीक्षा कल्याणक का महोत्सव करने नन्दोश्वर द्वीप चले गये। अन्य भी महोत्सवोपरान्त स्व-स्व स्थानों में चले जाते हैं! नन्दोवर्द्धन राजा आदि सभी नरनारी समूह ने भी भगवान् को वन्दन नमस्कार किया।

इति पञ्चम व्याख्यान



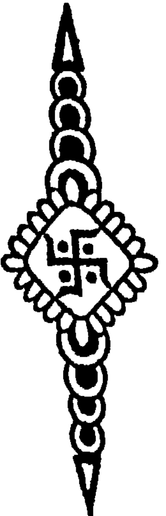
छठा व्याख्यान

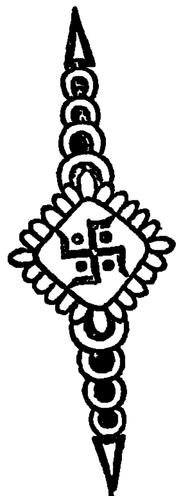
अब सर्वत्यागी संयमधारक श्रमण भगवान् महावीर देव ने 'नन्दीवर्द्धन नृपति' आदि स्वजन परिवार वर्ग से अनुमति लेकर वहाँ से विहार कर दिया। सभीजन सजलनयन, विरह-व्याकुल, विविध भाँति से विलाप करते भगवान् के साथ थोड़ी दूर गये। भगवान् ने तो पीछे फिर कर देखा तक नहीं। तब उदास मन मानो सर्वस्व लुट गया हो ऐसे रुदन व दुःख करते हुये वापिस लौटे और अपने-अपने निवास भवनो में पहुँच गये।

भगवान् के शरीर पर गोशीर्ष चन्दनादि के विलेपन एवं इन्द्रादि द्वारा गन्ध पुष्पमालादि से किये गये पूजन को सुगन्ध चार मास से अधिक रहती है। उस सुगन्ध के कारण उपसर्ग होते हैं; उन्हें आगे वर्णन कर रहे है।

प्रथम उपसर्ग और इन्द्रागमन

उस दिन विहार कर भगवान् दो घडी दिवस शेष रहते कुमारग्राम के बाहर पहुचे और एक निरवद्य छायादार वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग कर खडे रहे। उस समय एक कृषक अपने बैलों को छोड़, भगवान् को खड़ा देख बोला—"ओ योगिन्! जरा मेरे बैलों का ध्यान रखना! इधर-उधर न चले जायें! मुझे अत्यन्त



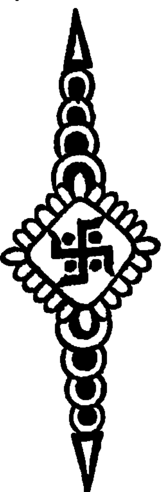


आवश्यक कार्य होने से मैं घर जा रहा हूँ, थोड़ी देर में वापिस आ जाऊँगा" कहकर कृषकचला गया। भगवान् तो स्वात्मलीन ध्यानस्थ खड़े थे। बैल चरते-चरते न जाने किधर चले गये। कृषक लौट आया और वहाँ बैलो को न देख कर बोला—महात्माजी! मेरे बैल कहाँ गये? कौन ले गया? मै तो आपको संभला कर गया था, जल्दी बताइये? प्रभु तो ध्यान-मग्न मौन थे। कुछ बोले नहीं। बार-बार पूछने लगा और क्रोधावेश में अपशब्द बोलने लगा, फिर भी उत्तर न पाकर अधिक रोषान्वित हो भगवान् को लकड़ी लेकर मारने लगा, उस समय इन्द्र ने अवधिज्ञान से उपसर्ग देखा, तो तत्क्षण वहाँ आये और कृषक को कहा—अरे! यह क्या करता है! ये तो भगवान् महावीर—नन्दीवर्द्धन राजा के भाई हैं। आज ही समस्त राज्य वैभव को त्याग कर आये है और यहाँ ध्यान-मग्न हो रहे हैं। ये तो महा योगिराज है, इन्हे क्यो सताता है? ये सर्वत्यागी भगवान् तेरे बैलों की सँभाल रखने वाले कैसे हो सकते है। क्षमा मांग कर भाग यहाँ से। नहीं तो मेरा वज्र देख! कृषक डर कर क्षमा माग चला गया। सौधर्मेन्द्र ने सविनय निवेदन किया :—

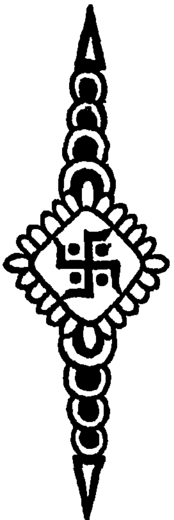
भगवन्! बारह वर्ष तक आप छद्मस्थ अवस्था में विचरेंगे, दुष्ट अनार्यजन प्रकृति से ही दुष्ट होते हैं; उपद्रव करेंगे। मेरी हार्दिक भावना है कि आप श्रीमान् की सेवा मे रहकर उपसर्ग निवारण करता रहूँ? भगवान्! आज्ञा प्रदान करे।

तब भगवान् मौन त्याग कर बोले :—हे महानुभाव! तुम्हारी भावना प्रशसनीय है; परन्तु ऐसा न कभी हुआ, न होता है, न होगा कि किसी तीर्थंकर साधक को सुरेन्द्र की सहायता से केवलज्ञान उत्पन्न हो या सिद्धि प्राप्त हुई हो; किन्तु वे स्वय के श्रेष्ठ बलवीर्य पुरुषाकार पराक्रम से ही केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और मोक्ष में जाते है"।

देवेन्द्र इन वचनों से विवश हो, उदास हो गये। फिर भी उन्होंने भगवान् की मासी के पुत्र, जो मरकर



कल्पसूत्र
१८०



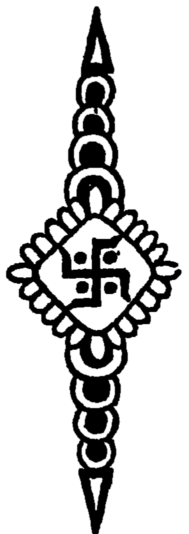
व्यन्तर बने थे; उनका नाम सिद्धार्थदेव था। उन्हे बुलाकर कहा—"आप महाप्रभु के साथ रहें और उपसर्गों का निवारण करें" ऐसा आदेश देकर इन्द्र स्वस्थान चले गये।

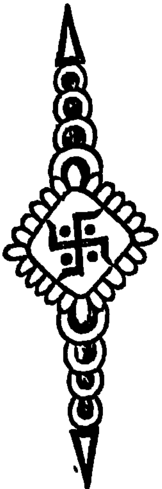
भगवान् प्रातः विहार कर 'कोल्लाग' सन्निवेश (मंडी) पहुँचे और बहुल नामक ब्राह्मण के गृह में भिक्षार्थ प्रविष्ट हुये, उस दिन घर में परमान्न (क्षीर) बनी थी। एषणीय समझ कर भगवान् ने गृहपति द्वारा प्रदत्त परमान्न से पारणा किया। देवों ने पंचदिव्य प्रकट किये (१) आकाश से वस्त्रों की वृष्टि की (२) सुगन्धित जल की वृष्टि की (३) पंचवर्ण सुरभित पुष्पों की वृष्टि की (४) गगन में दुन्दुभि निनाद किया और (५) अहोदानम् की बार-बार उद्घोषणा की। तथा विप्र के घर साढे बारह क्रोड़ सोनैयों (सुवर्ण मुद्राओं) की वृष्टि की, इसे वसुधारा वृष्टि भी कहते हैं। शास्त्रों में कहा है :—

"अद्धतेरस कोडी, उक्कोसा तत्थ होइ वसुधारा। अद्धतेरसलक्खा, जहन्निया होइ वसुधारा" ॥

अर्थात्—उत्कृष्ट वर्षा साढ़े बारह क्रोड़ सोनैयों व जघन्य हो तो साढ़े बारह लाख सोनैयों की वर्षा होती है।

वहाँ से विहार कर प्रभु 'मोराक' सन्निवेश के समीपस्थ एक तापसाश्रम में पहुँचे। वहाँ सिद्धार्थ नृपति के मित्र 'दुइज्जंत' नामक, आश्रम के कुलपति ने भगवान् को पहचान लिया और स्वागत सत्कार किया। उसने आग्रह किया कि वर्षावास यहाँ व्यतीत करने की कृपा करें। भगवान् ने निःस्पृह भाव से स्वीकार कर लिया; परन्तु अभी वर्षाकाल में तो बहुत विलम्ब है। अतः एक रात्रि निवास कर प्रातः विहार कर दिया और विचरने लगे। इस बीच कायोत्सर्गस्थ और विहार करते हुए गोशीर्ष चन्दनादि के विलेपन से सुगन्धित शरीर की सौरभ से आकर्षित भ्रमरादि कीट जन्तुगण भगवान् के शरीर पर बैठ जाते डंक मारते इससे महान् कष्ट होता था। कभी मृग आदि पशु अपना शरीर भगवान् से रगड़ते तो कभी निर्लज्ज असभ्य अनार्यजन भगवान् से सुगन्धि की याचना करते पर भगवान् मौन रहते तब ने उनका विलेपन

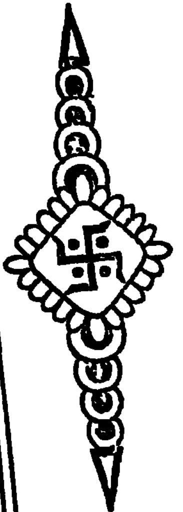




उतार लेते या अपना तन रगड़ते। दुराचारिणी कुलटा स्त्रियाँ भोग की प्रार्थना करतीं। प्रभु समभाव से
सर्व उपद्रव सहन करते थे। वर्षाकाल आने पर आश्रम में, पधार गये और कुलपति प्रदत्त एक पर्णकुटी
(झोंपडी) में निवास किया, भगवान् वहाॅ ध्यानलीन रहते थे। 'उन्हे तो स्वदेह की रक्षा का भी विचार नहीं
आता था। वन व आश्रम के पशु-गाय आदि प्रभु अधिष्ठित पर्णकुटी के तृण चरते रहते थे। अन्य तापसों
ने कुलपति से शिकायत की-आपने अच्छे आलसी को स्थान दिया। वह तो इतना असावधान रहता है कि
तृणकुटी को नष्ट करने वाले पशुओं को भी नहीं रोकता। कुलपति प्रभु के पास आकर बोले :—वर्द्ध-
मान कुमार! आप किस प्रकार के साधक तपस्वी है? तापस तो हम भी है; पर अपनी पर्णकुटी की
शरीर की, रक्षा और अपने उपकरणो का ध्यान तो हम भी रखते है। देखिये न? सारी पर्णकुटी के तृण
पशु चर गये हैं; आप तो उन्हें हटाते ही नही। आखिर रहने के स्थान की तो सुरक्षा का ध्यान रखना
चाहिये। पशु पक्षी भी अपने निवास स्थान की सुरक्षा करते हैं। अन्य आ जाय तो मार कर भगा देते हैं।
आप राजपुत्र होते हुये भी अकर्मण्य बन कर केवल ध्यानमग्न रहते हैं। जब पर्णकुटी सर्वथा नष्ट हो
गई तो कहाॅ रहेगे? इत्यादि कई उपालम्भ देने लगे। भगवान् ने विचार किया—जहाॅ अप्रीति हो वहाॅ
रहना उचित नहीं; इन लोगो को मेरा आचरण दु:खप्रद हो गया है; अतः यहाॅ से चला जाना ही ठीक है।
भगवान् ने मात्र एक पक्ष ही वहाॅ व्यतीत किया था। वे वहाँ से 'अस्थिक' ग्राम की ओर विहार कर गये
और निम्नलिखित पाॅच अभिग्रह (प्रतिज्ञा) धारण किये :—

पाँच अभिग्रह (प्रतिज्ञायें)

(१) अप्रीतिकर स्थान में नहीं ठहरना। (२) सदा कायोत्सर्ग में रहना। (३) गृहस्थ का विनयादि न करना। (४) छद्मस्थावस्था पर्यन्त मौन रहना। (५) हाथ में ही लेकर आहार करना।



सूत्र :—तए णं समणे भगवं महावीरे संवच्छर साहियंमासं जाव चोवरधारी होत्था। तेणपरं अचेलए पाणि पडिग्गहिए। समणे भगवं महावीरे साइरेगाइं दुवालस वासाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उपज्जंति, तंजहा—दिव्वा वा, माणुसा वा, तिरिक्ख-जोणिआ वा, अणुलोमा वा पडिलोमा वा ते उप्पन्ने सम्मं सहइ, खमइ, तितिक्खइ, अहियासेइ ॥११६॥

व्याख्या :—श्रमण भगवान् महावीर साधिक वर्ष देवेन्द्रार्पित-स्कन्धे स्थापित देवदूष्य वस्त्रधारी रहे। तदनन्तर वसनरहित और पाणिपात्र अर्थात हाथ में ही भोजन करने वाले थे। श्रमण भगवान् महावीर सातिरेक द्वादश वर्ष-बारह वर्ष छह मास और एक पक्ष-पनरह दिन नित्य व्युत्सृष्टिकाय-शरीरममत्व रहित, त्यक्तदेह रहे; जो भी उपसर्ग उत्पन्न होते जैसे कि—देवादिकृत, मनुष्यकृत और तैर्यग्योनीय-पशु-पक्षी सम्बन्धी अनुकूल या प्रतिकूल उन सभी को सम्यक् प्रकार से सहन करते क्षमते वीरतापूर्वक सहन करते और निश्चलचित्त से अधिसहन करते थे।

—शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग और उसे प्रतिबोध

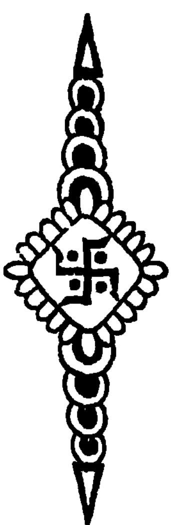
भगवान् मोराक सन्निवेश के तापसाश्रम से विहार कर 'अस्थिक'[1] ग्राम के बाहिर शूलपाणियक्ष के मंदिर में सन्ध्या समय पहुँचे। यक्ष के पुजारी और ग्राम निवासीजनों ने कहा—महाराज! यहाँ ठहरना ठीक नहीं, यक्ष बड़ा क्रूर है, उपद्रव करेगा। किन्तु भाविलाभ जान भगवान् तो वहीं कायोत्सर्ग स्थिर हो गये। शूलपाणियक्ष[2] यह देख कुपित हुआ रात्रि में उपसर्ग करने लगा—

(१) इसका नाम पहले वर्द्धमान (वर्त्तमान वर्द्वान)

(२) यक्ष-पूर्वभव में धनदेव सार्थवाह का धोरी बैल था। एक बार भरे हुये ५०० शकट लेकर धनदेव व्यापारार्थ चलते

सबसे पहले यक्ष ने भगवान् को डराने के लिए भयंकर अट्टहास किया, हाथी का रूप बनाकर, पिशाच और नाग बन कर भगवान् को दुःसह उपसर्ग किया। फिर शिर में, कानों में, नाक में, दाँतो में; आँखों में; नखों में तथा हृदय में अन्यजन असह्य-अर्थात् "अन्य को ऐसी वन्दना हो तो वह तत्काल मर जाय" ऐसी अत्यन्त दारुण महावेदना उत्पन्न की; किन्तु महासत्त्वशाली भगवान् किञ्चिन्मात्र भी ध्यान से चलायमान नहीं हुये। यह देखकर यक्ष शांत होकर विचार में पड गया। इतने मे ही वहाँ सिद्धार्थ देव

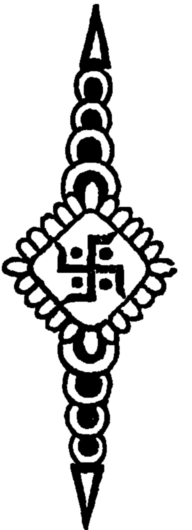
हुये एक चौडी और कीचडपूर्ण नदी को पार करने लगा—शकट कीचड में फँस गये। सेठ ने धोरी वैल को प्रत्येक शकट में जोत कर किसी प्रकार नदी पार कर ली, परन्तु अत्यधिक परिश्रम से धोरी वैल अव आगे चलने मे असमर्थ हो गया। क्योंकि उसकी अस्थि सन्धियाँ टूट चुकी थीं। जव किसी प्रकार भी वैल न उठा तो धनदेव को दुःख बहुत हुआ, पर क्या करता। उसने ग्राम के मुखिया को बुलाया और बहुत सा धन देकर कहा—मेरे इस प्रिय वृपभ की चिकित्सा करना। इसकी चारा पानी की सार संभाल रखना। घृत गुड इत्यादि खिलाना। इसे कष्ट न हो। मुखिया ने धन तो प्रसन्नता से ले लिया, किन्तु चिकित्सा कराना तो दूर चारा पानी का भी प्रवन्ध नहीं किया। वेचारा वृपभ वहीं पडा-पडा दुःख पीड़ा और भूख प्यास से कुछ दिन वाद मर गया। और शूलपाणी नामक यक्ष वना। विभंगज्ञान से अपना पूर्व भव जान लिया और क्रोधाविष्ट हो वहा आया। भयंकर 'महामारी' रोग का प्रसार कर दिया, जिससे उस वर्द्धमान ग्राम के निवासी मरने लगे। मुर्दे जलाने के लिये लकड़ी भी नहीं मिलती थी, अतः मुर्दों को लोग विना अग्नि संस्कार किये ही यों ही छोड देते थे। कितने ही लोग नगर छोड कर भाग गये थे। बहुत से लोगो की हड्डियों का ढेर लग जाने से ग्राम का नाम 'अस्थिक' ग्राम हो गया था। कुछ श्रद्धालु लोग आराधना—(धूप दीप वलि वाकुला देकर) करने लगे, तव यक्ष ने प्रकट होकर महामारी का कारण वतलाया। लोगो ने क्षमा मागी और मन्दिर वनाकर यक्ष की मूर्ति स्थापित की। पूजा करने लगे। जिससे यक्ष प्रसन्न हो गया। महामारी वन्द कर दी। जनता ने इन्द्रशर्मा नामक ब्राह्मण को पूजारी नियत कर दिया जिससे सदा यक्ष की पूजा होने लगी। एसा करने से उपद्रव तो शात हो गया, परन्तु अव भी रात्रि मे कोई रह जाय तो यक्ष उसे मार देता। यक्ष को प्रतिवोध देने को ही भगवान् वहा रात्रि मे रहे।

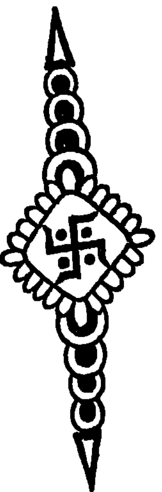


आ पहुँचा और यक्ष से कहा—ओ अभागे ! शूलपाणी ! तूने यह क्या ऊधम मचाया है ? तीन जगत् के पूज्य भगवान् को महान् कष्ट दिया ! जो सौधर्मेन्द्र को पता चल गया, तो तेरी कुशल नहीं। सुनकर यक्ष भयभीत हो गया, भगवान् से क्षमा याचना की और उत्तम गन्ध माल्य पुष्पादि से पूजा करके वाद्यवृन्द गीत नृत्य-नाटक करने लगा। वाद्यवृन्द व गायन की ध्वनि सुनकर ग्रामवासी लोकों ने सोचा—हा ! इस दुष्ट यक्ष ने उन उत्तम महात्मा को मार दिया है; इससे हर्षित हो नृत्य गायन वादन कर रहा है। रात्रि के चार प्रहर में कुछ कम समय तक महावेदना सहन की थी; अतः ब्राह्ममुहूर्त्त में क्षणमात्र प्रभु को नींद आ गई। वे कायोत्सर्ग में खड़े-खड़े ही निद्रावश हो गये और दशस्वप्न भी देखे। प्रातःकाल होते ही वहाँ ग्राम्यजन एकत्र हो गये। पुजारी इन्द्रशर्मा भी आ गया, उसके साथ एक उत्पल[1] नामक निमित्तज्ञ भी आया था। उन सबने भगवान् को स्वस्थ अक्षताङ्ग, उत्तम गन्ध पुष्पादि से पूजित वैसे ही कायोत्सर्गस्थ देखा तो आश्चर्यचकित हो गये और श्रद्धापूर्ण हो भक्ति सहित गुणगान करते हुये नमस्कार किया। निमित्तज्ञ ने अपने निमित्त से भगवान् को स्वप्न आने की बात जान ली और बोला—भगवान् ! आप तो स्वप्नों का फल अपने दिव्य ज्ञान से जानते ही हैं, तथापि मै अपनी विद्या के अनुसार उनके फल कहता हूँ :—

(१) आपने ताड़ जैसे लम्बे एक पिचाश को मार दिया इससे आप शीघ्र ही मोह का नाश करेंगे !
(२) श्वेत कोकिल को सेवा करते हुये देखा है; अतः शुक्ल-ध्यान करेंगे।
(३) विचित्र कोकिला देखी, इसके फलस्वरूप आपः द्वादशांगी को अर्थ रूप प्रकाशित करेंगे।

[१) यह पहले पार्श्वनाथ भगवान् की परम्परा का मुनि था, पतित हो गृहस्थ वन गया था और निमित्त वतलाकर आजीविका करता था।





(४) पुष्पमालायें देखने का फल उत्पल न जान सका और बोला—भगवान्! इसका फल मै नहीं जानता! कृपया आप बतलावें? तब प्रभु ने कहा—इससे दो प्रकार के धर्म—साधु व गृहस्थ धर्म की प्ररूपणा 'करू'गा।

(५) गो समूह को सेवा करते देखा इससे चतुर्विध संघ-साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका, आपकी सेवा मे उपस्थित रहेगे।

(६) देव-देवी युक्त मानसरोवर देखने से चतुर्निकाय के देव आपकी सेवा करेंगे।

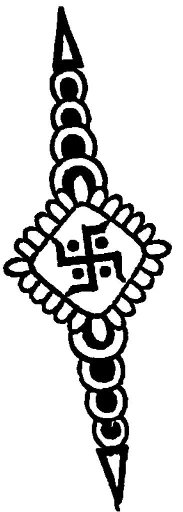
(७) समुद्र देखा है; अतः आप संसार समुद्र पार होंगे।

(८) सूर्य देखने से केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।

(९) अपनी आँतों से मनुष्य क्षेत्र परिवेष्टित देखने से महा प्रतापशाली बनेंगे।

(१०) मेरुपर्वत देखने से स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हो धर्मोपदेश देंगे।

भगवान् ध्यानस्थ आत्मलीन खड़े थे लोको ने उत्पल द्वारा कहे गये स्वप्न फल सुने, वे बड़े आश्चर्य चकित हुये। उत्पल निमित्तज्ञ तथा सभी लोग भगवान् को वन्दना नमस्कार कर चले गये। भगवान् ने वहाँ पनरह दिन कम चार मास शेष वर्षाकाल व्यतीत किया। इन ४ मास में प्रभु ने आठ पक्ष-क्षमण किये। वर्षावास पूर्ण कर विहार किया। मोराक सन्निवेश में पधारे। वहाँ वे ग्राम के बाहिर एक उद्यान मे ठहरे। मोराक सन्निवेश में 'अच्छन्दक' नाम के साधक (पाखण्डी-मत विशेष को मानने वाले) 'भिक्षुक' अधिक थे। वहा के लोग भगवान् की ओर आकर्षित होकर वहाँ दौड़-दौड़ कर जाने और दर्शनार्थ बेठने लगे। अच्छन्दकों को यह सहन नहीं हो सका, ईर्षा होने लगी। यद्यपि भगवान् तो अधिकतर ध्यानस्थ और पूर्ण मोन ही रहते थे। फिर भी सिद्धार्थ देव जो अदृश्य हो भगवान् के साथ रहता था, कभी-कभी लोगों को निमित्त आदि बता दिया करता था, लोग समझते भगवान् ही बता रहे हैं।



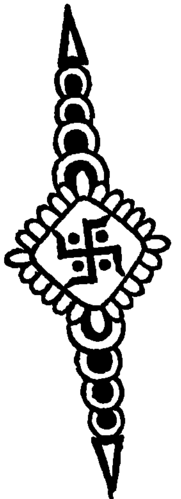
कल्पसूत्र
१८६

अच्छन्दक[1] इस परिस्थिति से घबरा उठे, एक अच्छन्दक भगवान् से एकान्त में आकर बोला—भगवान्! आपके लिये तो बहुत स्थान हैं; परन्तु हम कहां जायें? ऐसी परिस्थिति में प्रभु ने वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा और विहार कर दिया।

सोमभट्ट विप्र को अर्द्ध देवदूष्य वस्त्रदान

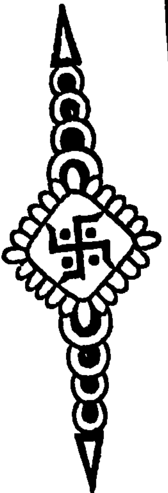
श्रमण भगवान् महावीर (वर्द्धमान कुमार) जब वर्षी दान दे रहे थे, तब एक ब्राह्मण 'सोमभट्ट' भिक्षार्थ विदेश प्रयाण कर गया था, (कहते हैं वह सिद्धार्थ नरेश का मित्र था, परन्तु भाग्यहीन होने से कुछ नहीं मिला) जैसा गया था, वेसा ही लोट आया। उसकी पत्नी ने कहा—अंपने भाग्य में दारिद्र लिखा है! नहीं तो जब वर्द्धमान कुमार सर्व को अजस्र दान दे रहे थे, मेघ के समान स्वर्णमुद्राएँ आदि अनेक वस्तुओं की वर्षा हो रही थी; उस समय आप देश छोड़ कर विदेशो में भटक रहे थे। अब तो वे गृहत्याग कर साधु बन गये हैं; फिर भी दयालु हैं कुछ दे ही देंगे। अन्य कृपणों से याचना करने पर कुछ मिलने वाला नहीं; आप तो उन्हीं से याचना करिये। पत्नी की बात सुन कर ब्राह्मण प्रसन्न हो गया और खोजता हुआ भगवान् के पास पहुँचा।

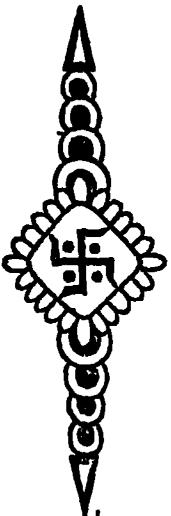
(१) अच्छन्दक निमित्तज्ञ कहलाते थे। टीका में वर्णन है कि एक अच्छन्दक ने तिनका हाथ में लेकर भगवान् से पूछा—यह टूटेगा या नहीं? प्रभु ने कहा—नहीं टूटेगा। जब तोड़ने लगा तो इन्द्र ने अवधिज्ञान से जानकर उसकी अंगुलिकाएँ स्तंभित कर दी निमित्तिया के इस वर्त्ताव से सिद्धार्थ देव भी क्रोध में आकर बोला—यह चोर है। इसने वीरघोप का कास्यपात्र चुराकर अपने वाड़े में खजूर वृक्ष के नीचे गाड़ दिया है; तथा इन्द्रशर्मा विप्र के बकरे को मारकर मांस खा गया है और हड्डियाँ घर के पास की बोरड़ी के दाहिने ओर कूड़े के ढेर पर फंक दी है। तीसरा महापाप तो इसकी पत्नी से पूछो! वह कह देगी। लोगों ने पूछा तो पति के दुराचार से तंग आई पत्नी ने उसका अनाचार कह दिया कि यह अपनी बहिन के साथ व्यभिचार करता है। यह बड़ा नीच है।



अपनी दरिद्रता बताकर कुछ देने की प्रार्थना की। तब भगवान् ने आधा देवदूष्य उसे दे दिया वह लेकर प्रसन्न होता हुआ, घर आ गया; वस्त्र ले बेचने को बाजार मे गया उस वस्त्र को देख लोग एकत्र हो गये। उनमें एक 'रफ्फूगर' भी था, उसने कहा—यह पूरा होता तो एक लाख दीनार (स्वर्णमुद्रा) इसका मूल्य मिलता ! यह आधा भाग है; दूसरा आधा भाग मिल जाय तो मै इसे बिल्कुल नया जैसा बना दूँ ! मित्र ! आधा और ले आओ ! मै इसे ठीक कर दूँगा, फिर बेचकर हम दोनों एक लाख का आधा-आधा मूल्य बाँट लेगे। यह सुनकर वह ब्राह्मण फिर भगवान् के पास जा पहुँचा। किन्तु लज्जावश याचना न कर सका और इस आशा से कि 'कन्धे से गिर जाय तो लेकर चला जाऊँगा' भगवान् के पीछे-पीछे चलने लगा, कई मास तक चलता रहा; एक दिन आँधी चली। देवदूष्य कन्धे से उड कर कँटीली झाड़ियो मे उलझ गया। भगवान् ने एक दृष्टि उधर डाली और निःस्पृह भाव से आगे चलते रहे। ब्राह्मण ने झाडियो में से आधा देवदूष्य वस्त्र ले लिया। उस को ले जाकर तुन्नवाय को दिया। उसने दोनो खण्ड जोड़कर अखण्ड वस्त्र बना दिया। सोम उसे बेचने राजा नन्दीवर्द्धन के पास ले गया। नन्दीवर्द्धन ने पूछा—यह देवदूष्य कहाँ मिला ? ब्राह्मण ने सारी बात कह सुनायी। राजा ने हर्षित हो वस्त्र शिर पर चढाया और ब्राह्मण को एकलाख दीनार दे दिये। तुन्नवाय व ब्राह्मण दोनों ने वह धन आधा-आधा ले लिया और आनन्द से रहने लगे। आधा वस्त्र तो भगवान् ने दीक्षा के थोडे दिन पश्चात् ही दे दिया था, दूसरे आधे वस्त्र को पाने के लिए वह वर्षाधिक भगवान् के पीछे-पीछे घूमता रहा तब मिला था। तब से भगवान् यावज्जीव अचलक रहे।

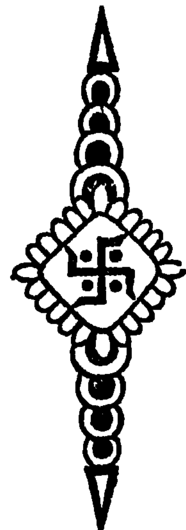
भगवान् 'मोराक' सन्निवेश से विहार कर 'वाचाला' पधारे। वाचाला नामक दो सन्निवेश थे, एक दक्षिण 'वाचाला' दूसरा 'उत्तर वाचाला'। दोनों के बीच में दो नदियाँ थी—'सुवर्ण वालुका' और 'रौप्य वालुका'। भगवान् दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला जा रहे थे; उस समय उपर्युक्त घटना हुई। देवदूष्य

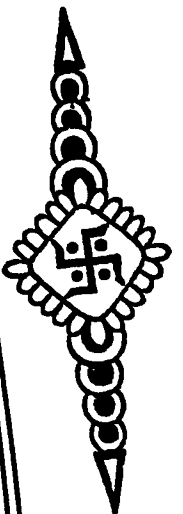




सुवर्णवालुका के किनारे उगी हुई कँटीली झाड़ियों में उलझ गया था। उत्तर वाचाला जाने के दो मार्ग थे एक कनकखल आश्रम में होकर जाता था, जो एक दृष्टिविष सर्प के कारण बन्द था। यद्यपि यह मार्ग सीधा था; पर निर्जन और भयानक था। लोग उधर से जाते नहीं थे। दूसरा चक्कर खाकर आश्रम से बाहिर-बाहिर जाता था वह लम्बा होने पर भी निरापद था। सबका आवागमन यातायात उधर से होता था। भगवान् आश्रमपद के मार्ग से जा रहे थे। कुछ ग्वालों ने देखा तो भगवान् से प्रार्थना की—देवार्य ! यह मार्ग ठीक नहीं, इधर बीच मे एक महा भयकर दृष्टिविष सर्प रहता है और पथिकों को भस्म कर देता है; आप इधर से न पधारें। बाहिर के मार्ग से जाये। भगवान् तो अपनी धुन में आगे बढते चले जा रहे थे। चलते-चलते ठीक बिल के समीप एक घने वृक्ष के नीचे पहुँचे और कायोत्सर्ग में स्थित हो गये। सर्प बिल से बाहिर निकला, बिल पर खड़े प्रभु को देखा तो क्रोध से आगबबूला होकर भगवान् की ओर प्रज्ज्वलित ज्वालामयी दृष्टि फेंकी; परन्तु प्रभु वैसे ही ध्यानस्थ थे। अपनी दृष्टिं का कोई प्रभाव न देखकर क्रोध से फन उठाकर जोर से डस लिया, फिर भी कोई परिणाम न निकलने से झुंझला उठा और पुनः जोरों से पांव को काटा। पांव में भी रक्त रुधिर न निकला बल्कि श्वेत दूध की धारा का प्रवाह देख कर स्तबध हो गया और अनिमेष दृष्टि से भगवान् को देखने लगा। भगवान् ने एक सुधावर्षी दृष्टि सर्प पर फेकी जिससे उस महाप्रचण्ड भुजंग का क्रोध विलायमान हो गया और ऊहापोह (तर्क वितर्क) करने में तल्लीन हो गया। प्रभु ने तो सस्मित वीणा विनिन्दित मधुर स्वर से कहा—बुज्झ ! बुज्झं ! चण्ड-कोसिय। पडिबुज्झ ! अमृतवर्षी इस वचन ने जादू का कार्य किया—ऐसी आकृति कहीं देखी है ! स्मृति की गहराइयों में खो गया और उसने अपने पूर्व भव[1] देख लिये। तत्काल भगवान् को तीन प्रदक्षिणा दी और

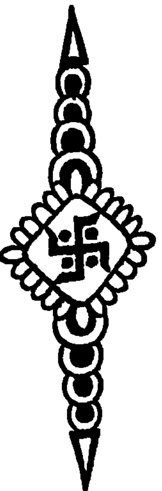
(१) पूर्व भव में ये एक तपस्वी मुनि थे, एक बार मासक्षमण के पारणे के लिए भिक्षार्थ कहीं जा रहे थे, साथ में एक लघुशिष्य था। मार्ग दर्दुर (मेढ़क) संकुल था, शिष्य ने देखा—तपस्वीवर के पांव तले एक छोटी मेढ़की आ गई है। भिक्षा लेकर स्वस्थान





वार-वार नमस्कार करने लगा 'अहो ! भगवान् ने मुझ महाअधम का उद्धार किया ! करुणावतार ने मुझे दुर्गति में जाने से बचा लिया । इत्यादि उपकार स्मरण करते हुये वैराग्यवासित अन्तःकरण वाले उस सर्प ने पूर्वकृत दुष्कृत की आलोचनापूर्वक अनशन कर दिया और अपना फन बिल में डालकर धर्मध्यान में मग्न हो गया । कुतूहलवश कई जन यह देखने कि "उन महात्मा का क्या हुआ ? वे (हमारे मना करने पर भी इधर आ गये थे)" आये । भगवान को सकुशल कायोत्सर्गस्थ देखा तो आश्चर्य चकित रह गये । डरते-डरते समीप आकर सर्प को बिल मे मुख डालकर निरीह भाव से निश्चल पड़ा देखा तो एक दूसरे का मुख देखने लगे । "महात्मा योगिराज का ही अचिन्त्य प्रभाव है, ऐसा जानकर प्रभु को नमस्कार किया और बारंबार प्रभु के गुण व प्रभाव की प्रशसा करते हुये ग्राम में गये । वहाँ सर्व को यह अद्भुत घटना सुनायी । सब लोग गन्ध पुष्प दूध घृत मधु शक्कर आदि पूजा की सामग्री लेकर आये और प्रभु तथा सर्प की पूजा करने लगे । पूजा द्रव्यो की गन्ध से आकृष्ट चींटियो ने सर्प को भी भक्षण करना आरम्भ कर दिया । सारा शरीर चलनी हो गया; फिर भी समता भाव में रमण करते हुये सर्प ने आराधना-पूर्वक शरीर त्याग कर अष्टम सहस्रार स्वर्ग में देवत्व प्राप्त किया ।

आये, गमनागमन आलोचना समय शिष्य ने स्मरण कराया, भगवन् । पांव नीचे मेंढकी आ गई थी । गुरुजी ने कहा—मेरे पाव से नहीं मरी । प्रतिक्रमण के समय फिर कहा, गुरु नहीं माने । रात्रिसंथारा करते भी याद दिलाया । गुरु कुपित हो शिष्य को मारने दौड़े, उपाश्रय स्थित स्तम्भ की शिर मे जोरो से चोट लगी । शिर फूट गया, उसकी महावेदना से शिष्य को मारने के रौद्र-भाव से मर कर नरक गये । वहाँ से निकल कर तापस बने, वहाँ भी महाक्रोधी थे । चण्डकोशिक के नाम से प्रसिद्ध थे । सब तापसो को मारते-पीटते । सब आश्रम त्याग कर अन्यत्र चले गये । नगरस्थित क्षत्रियपुत्र आश्रम मे आये, उन्हे भी पर्शु से मारने दौडते मार्ग में गिरे अपने ही पर्शु की चोट से मरकर उसी कनकखल आश्रम में दृष्टिविप सर्प बने, कोई भी मनुष्य या पशु आश्रम में आ जाय, उसे दृष्टि से भस्म कर देते थे ।



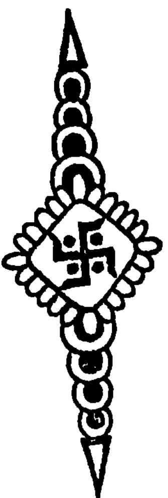
कल्पसूत्र
१६०

भगवान् वहाँ से उत्तर वाचाला पधारे। पक्षक्षमण का पारना नागसेन ने खीर से कराया। पंचदिव्य प्रकट हुये। बारह वर्ष से विदेश गया हुआ पुत्र अकस्मात् उसी दिन वापिस लौट आया।

उत्तर वाचाला से प्रभु श्वेताम्बिका पधारे। केशी गणधर प्रतिबोधित वहां के नृपति प्रदेशी भगवान् को वन्दन करने आये। वहाँ से सुरभिपुर की ओर विहार किया। पथ में प्रदेशी राजा के पास जाते हुये प्रदेशी नृप के सामन्त राजाओं ने प्रभु को वन्दन किया। आगे विहार करते हुये मार्ग में विशाल गंगा नदी आई। नदी पार करने के लिए भगवान् सिद्धदत्त नाविककी नौका में बैठ गये। उसमें एक खेमिल नामक निमित्तज्ञ भी बैठा था, नाव ज्योंही रवाना हुई दक्षिण की ओर घूक (उल्लू) कर्कश स्वर से बोला; खेमिल ने कहा—हा ! महा अपशकुन हो गया, अवश्य कोई उत्पात होगा; किन्तु इन (भगवान् की ओर संकेत करके) महात्मा के प्रभाव से कुछ हानि नहीं होगी। नौका गंगा की मध्यधारा में पहुँची कि भयकर तूफान आ गया। सब लोग इष्ट स्मरण करने लगे। यह उत्पात वसुदेव त्रिपृष्ठ के भव में मारे गये सिह के जीव 'सुदष्ट्र' नामक दुष्ट देव ने किया था। भगवान् भी एक ओर ध्यानस्थ विराजमान हैं। इस महा संकट को "संबल कम्बल"[१] नामक नागकुमार देवों ने दूर किया। नौका किनारे लगी।

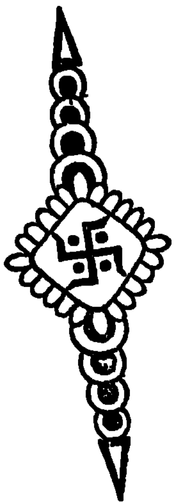
---

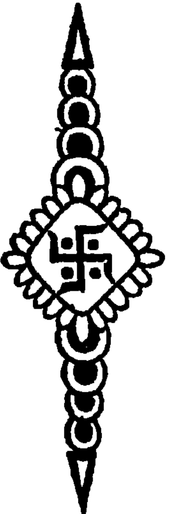
(१) मथुरा निवासी परमश्रावक जिनदास व धर्मपत्नी साधुदासी बारह व्रतधारी थे। पञ्चमव्रत में चतष्पद रखने का सर्वथा त्याग कर दिया था। वहीं एक अहीरनी उन्हें अपना दूध बेचा करती थी। उसके यहां विवाह था, उसने सेठ-सेठानी को भी भोजन का निमन्त्रण दिया। सेठ ने आने में असमर्थता प्रकट की और कहा—मेरे योग्य कार्य हो सो कहो तथा जो वस्तु चाहिये सो ले जाओ। आवश्यक सामग्री-वस्त्र; आभूपण, सजावट के योग्य सामान आदि उन्हें दिया। जिससे समारोह पूर्वक विवाह सम्पन्न हो गया। आभीर दम्पति ने सोचा मूल्य तो लेगे नहीं। दो वत्स भेट कर दं तो अच्छा हो ! वहाँ सेठ के न स्वीकार करने पर भी उनके वहाँ बाध गये। सेठ ने सोचा वापिस दंगे तो ये बेचारे बड़े होने पर हल शकट आदि मे जोड़े जायेंगे। और दुःखी होगे, अतः यहीं रखले। और प्रासुक तृण आदि से उनका प्रेम से पोपण करने लगे। वहन आदि श्रममुक्त वे बछडे



भगवान् भी नोका से उतर कर थूणाक सन्निवेश की ओर विहार कर गये। वहां पहुँच कर एक ग्राम के बाहिर वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो गये। पुष्य नामक सामुद्रिक जिधर से भगवान् पधारे थे; पीछे आ रहा था। आर्द्र मिट्टी में स्पष्ट उभरे हुये शुभलक्षण युक्त पदचिह्नों को देख कर आश्चर्य चकित हो, चिन्तामग्न हो गया। यह पदचिह्न तो चक्रवर्ती के हो सकते है; परन्तु यह तो कोई योगी है! यह अवश्य चक्रवर्ती बनेगा! चलूँ इसकी सेवा करूं! यह चक्रवर्ती बनेगा तब मेरे भी भाग्य खुल जायेंगे! पास आकर भली प्रकार गौर से निरीक्षण किया। सारे चक्रवर्ती के लक्षण है, पर ये तो योगी है, ध्यानस्थ खड़े हैं। उसे भारी खेद और दुःख हुआ। 'मैंने व्यर्थ ही सामुद्रिक शास्त्र पढा' कुछ सार नहीं! अपनी पुस्तक गंगा में प्रवाहित करने चला। उसी समय इन्द्र अवधिज्ञान से जानकर वहा आये और बोले—पुष्य। सामुद्रिक शास्त्र झूठा नही है? ये भगवान् धर्मचक्रवर्ती हैं। तीर्थंकर है। जो अपरिमित शुभलक्षण वाले होते है। तब पुष्य प्रसन्न हो प्रभु को नमस्कार कर चला गया।

सुख से समय व्यतीत करते थे। सेठ-सेठानी भी सदा श्रावककृत्य मे लीन रहते हुये स्वाध्यायादि मे अधिक समय व्यतीत करते थे। भद्रपरिणाम वाले वे बछडे स्वाध्याय सुनकर बोध को प्राप्त हो गये और सेठ-सेठानी के साथ पर्व के दिन उपवास करने लगे। इससे वे अधिक प्रिय-स्वधर्मीबन्धुवत् लगने लगे। एक बार जिनदास का कोई मित्र सेठ को बिना पूछे ही बछड़े खोल ले गया। वडे सुन्दर किन्तु कोमल उन बछडों को शकट में जोड दिया और भंडीरव बन में कोई यक्ष था, उसकी यात्रा करने शकट मे सपरिवार को बैठा कर चला। उन बछडो को गाड़ी मे जुतकर चलने का अभ्यास नहीं था फिर भी मार-मार कर उन्हें दौडाया। जिससे बेचारे बछड़े मृतवत् हो गये। मित्र उन्हे खूंटे से चुपचाप बाध कर वापिस चला गया। मुमूर्षु बछड़ो को देखकर सेठ-सेठानी को भारी दुःख हुआ। उन्होंने अश्रुजलपूर्ण नेत्रो से उन्हें अनशन कराया। आलोचनापूर्वक आराधना करायी, नमस्कार मन्त्र सुनाने लगे। वे बछडे जिनका नाम सम्बल कम्बल था मर कर नागकुमार देव बने—वे वहाँ उत्पन्न हुये ही थे और अवधिज्ञान से भरतक्षेत्र देख रहे थे। भगवान् को उपसर्ग देखा तो तत्काल आये। सुदंष्ट्रदेव को वश मे कर लिया व तूफान शान्त करके प्रभु के सम्मुख नृत्यगान आदि महोत्सव किया, सुगन्धित जल की वृष्टि करके स्वस्थान पर चले गये।

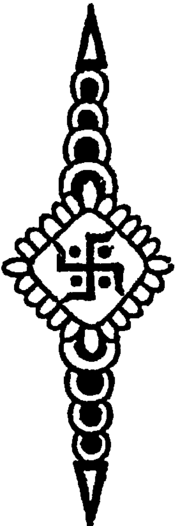


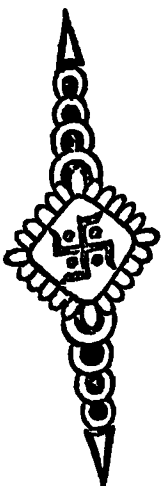


थूणाक सन्निवेश से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरते भगवान् राजगृह के बाह्य भाग नालन्दा में पधारे व वहाँ एक तन्तुवाय (जुलाहा) की शाला (कारखाना) में अवग्रह याचना कर एक कोने में वहाँ चातुर्मास विराजे। मासक्षमण तप कर ध्यानस्थ रहे। वहां मंखलीपुत्र गोशालक भी आकर भी ठहर गया; वह भी भिक्षुक था और सम्भवतः चातुर्मास व्यतीत करने आया था। भगवान् को मासक्षमण का पारना तत्रस्थ विजय सेठ ने अत्यन्त श्रद्धा भक्तिपूर्वक विविध भोज्य सामग्री से कराया। पंचदिव्य प्रकट हुये। यह अद्भुत प्रभाव देखकर गोशाला आश्चर्यचकित रह गया। विचारने लगा—"यह कोई महातपस्वी है, मैं भी इसका शिष्य बन जाऊँ!" भगवान् के पास आकर विनयपूर्वक प्रार्थना की 'मुझे शिष्य बनाइये! प्रभु तो मौन ध्यानस्थ हो गये कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे मासक्षमण का पारना आनन्द श्रावक के यहाँ 'खाजा' नामक पक्वान्न से तीसरा मासक्षमण का पारना सुनन्द श्रावक के यहाँ 'परमान्न' से हुआ।

कार्तिकपूर्णिमा के दिन गोशाला ने भिक्षार्थ जाते हुये प्रभु से पूछा—मुझे भिक्षा में क्या मिलेगा? भगवान् मौन थे। सिद्धार्थ देव ने कहा—बासी भात खट्टी छाछ और खोटा रुपैया मिलेगा। कई धनाढ्य घरों में जाने पर भी कुछ नहीं मिला उसे अन्त में एक लुहार के यहाँ उपर्युक्त भोजन मिला और दक्षिणा में मिला रुपया खोटा निकला। इस घटना ने गोशाला को नियतवादी बना दिया। 'होनहार होकर रहता है' ऐसा उसे दृढ़ विश्वास हो गया।

भगवान् नालन्दा से मार्गशीर्ष प्रतिपदा को विहार कर कोल्लाग सन्निवेश पधारे। चतुर्थ मासक्षमण का पारणा बहुल ब्राह्मण के यहां खीर से हुआ। भगवान् प्रातःकाल विहार कर गये थे। गोशाला पारने के लिए नगर में गया था; वापिस लौटा तो भगवान् को न देख कर फिर नगर में खोजने को घूमता रहा। न पाकर खोजता हुआ कोल्लाग सन्निवेश गया। प्रभु उसे मार्ग में मिल गये। भगवान् से प्रार्थना की—मुझे



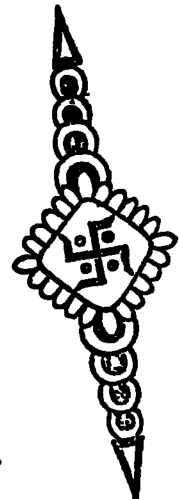


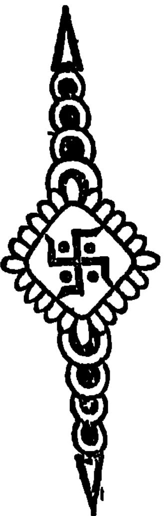
शिष्य बना लीजिये ? भगवान् तो मौन थे। "मौनं सम्मति लक्षणम्" मानकर उसने स्वयं को प्रभु का शिष्य घोषित कर दिया और प्रभु के साथ रहने लगा। छह चौमासे अर्थात् छह वर्ष तक शिष्य रूप में रहा।

कोल्लाग सन्निवेश से भगवान् ने सुवर्णखल की ओर विहार किया। गोशाला साथ में था। मार्ग में ग्वाले एक मृत्पात्र में खीर पका रहे थे। गोशाला ने प्रभु से कहा—"भगवन्! जरा ठहरिये! खीर खाकर आगे चलेंगे"। सिद्धार्थ देव ने कहा—"खीर पकने से पूर्व ही मृत्पात्र फूट जायेगा सारी खीर चुल्हे में गिर जायेगी"। भगवान् आगे प्रस्थान कर गये; पर गोशाला खीर खाने के लालच से वहीं ठहर गया। चावल फूलने से मृत्पात्र फूट गया। यद्यपि ग्वालों ने मृत्पात्र फूटने का सुनकर यथेष्ट सावधानी बरती थी; तथापि सिद्धार्थदेव की बात सच निकली और गोशाले का भवितव्यतावाद इससे अधिक दृढ़ बन गया। भगवान् 'ब्राह्मण गांव' पहुँचे, गोशाला भी वहाँ आ गया। यहाँ 'नन्द' व उपनन्द' नामक दो भाई थे। दोनों गणमान्य व्यक्ति थे। गांव के आधे-आधे भाग दोनों के नाम से प्रसिद्ध थे। एक भाग नन्दपाडा दूसरा उपनन्दपाडा के नाम से विख्यात था। भगवान् नन्दपाटक में नन्द के घर भिक्षार्थ पधारे। वहाँ दधिमिश्रित भात (करब) मिला। गोशाला उपनन्द के घर गया था, वहाँ बासी भात देने लगे तो नहीं लिया। बोला—बासी भात देते तुम्हें लज्जा नहीं आती। उपनन्द कुपित हो गया और दासी से कहा—महीं लेता तो इसके शिर पर डाल दे! दासी ने वैसा ही किया। इससे गोशाला ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि-यदि मेरे गुरु के तप तेज का प्रभाव हो तो तेरा घर भस्म हो जाय! समीपस्थ व्यन्तर देवों ने भगवान् के तपतेज को अव्यर्थ प्रमाणित करने के लिए उपनन्द के घर को जलाकर भस्म कर दिया।

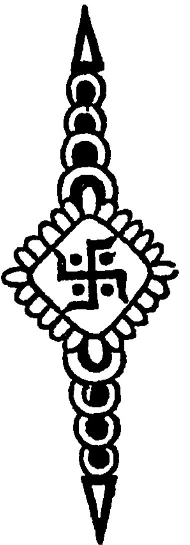
तृतीय चातुर्मास

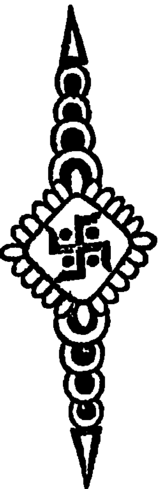
ब्राह्मणगांव से विहार करते भगवान् चम्पापुरी पधारे। तीसरा वर्षावास वहीं व्यतीत किया। उत्कु-टिकादि विभिन्न आसनो से भगवान् ने वहाँ कायोत्सर्ग किये। अन्तिम द्विमासी तप का पारना चम्पा





से बाहिर किया। वहाँ से प्रभु कालाय सन्निवेश पधारे और एक खंडहर में कायोत्सर्गस्थ हो गये। गोशाला भी द्वार के पास छुप कर बैठ गया। रात्रि को ग्रामाधीश का लंपट पुत्र सिंह एक विद्युन्मति नामक दासी के साथ व्यभिचार करने की इच्छा से वहाँ आया। 'यहाँ कोई है तो नहीं' जानने के लिए एक दो आवाज लगायी। जब कोई उत्तर न मिला तो दासी को लेकर अन्दर चला गया वासनापूर्ति के पश्चात् ज्यों ही दोनों द्वार से निकलने लगे गोशाला ने दासी का हाथ पकड़ लिया वह चिल्लाने लगी। सिंह ने देखा और गोशाले की खूब मरम्मत की और दासी को लेकर चला गया। प्रातः कायोत्सर्ग पारकर भगवान् ने वहां से विहार कर दिया और पत्रकालय में पहुंच कर एक शून्यगृह में ध्यानस्थ हो गये। वहाँ भी रात्रि में पूर्ववत् ग्रामणीपुत्र स्कंद दन्तिला दासी को लेकर आया और वापिस लोटती हुई दासी से छेड़छाड़ करने के कारण गोशाला स्कन्द द्वारा पीटा गया। प्रातः वहाँ से प्रभु ने कुमाराक सन्निवेश की ओर विहार किया; वहां 'चम्पक रमणीय' उद्यान में श्रमण भगवान् कायोत्सर्ग स्थित रहे। मध्याह्न होने पर गोशाला ने भगवान् से भिक्षार्थ चलने की प्रार्थना की, प्रभु के उपवास था; ध्यानमग्न भगवान् के न चलने पर वह अकेला हो गांव में गया। यहां पार्श्वनाथ सन्तानीय रंग-विरंगे वस्त्रधारक साधुओं को देखकर पूछा—आप लोग कौन हैं ? उत्तर मिला-निर्ग्रन्थ ! गोशाला ने कहा—आप कैसे निर्ग्रन्थ हैं ? विचित्र वस्त्र-पात्रादि रखते हुये भी स्वयं को निर्ग्रन्थ कहते हैं ! सच्चे निर्ग्रन्थ तो मेरे धर्माचार्य हैं जो कुछ भी नहीं रखते, आप लोग तो ढोंगी हैं। पार्श्वापत्य साधुओं ने कहा—जैसा तू है वैसा ही तेरा धर्माचार्य होगा ! सुनकर गोशाला क्रुद्ध हो गया और अपशब्द बोलते हुये शाप दिया कि—मेरे धर्माचार्य के तपः प्रभाव से तुम्हारा उपाश्रय जल जाय ! साधुजन उपेक्षा करते हुए बोले—तेरे कहने से हमारी कुछ भी हानि नहीं होगी। बहुत समय वाद-विवाद होता रहा, उपाश्रय नहीं जला। गोशाला लोट आया और प्रभु से बोला—आजकल आपके तप में वह प्रभाव नहीं रहा, उन साधुओं का स्थान जला नहीं। प्रभु तो मोन थे पर सिद्धार्थदेव ने



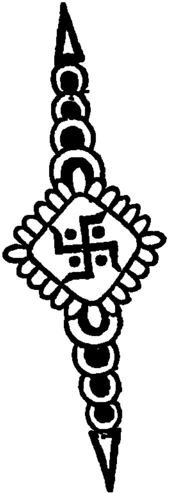


कहा—वे भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के निर्ग्रन्थ हैं, वैसे ही वस्त्र पहनते हैं। गोशाला चुप हो गया।

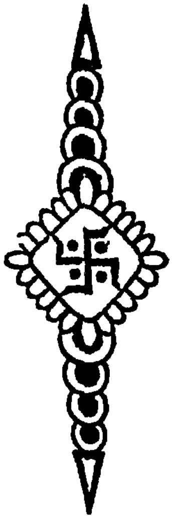
वहाँ से विहार कर भगवान् 'चोराक सन्निवेश' पधारे। वहां चोरभय अधिक होने से आरक्षक (पुलिस) सर्तक सावधान रहते। आरक्षकों ने अपरिचित जन देख परिचय पूछा, भगवान् मौन थे, बोले नहीं। गुप्तचर समझ कर पुलिस वालों ने पकड़ लिया और मारपीट कर परिचय जानने का प्रयत्न किया; परन्तु प्रभु और गोशाला दोनों ही मौन रहे। कोई उत्तर नहीं दिया; काठ में बन्द कर दिये गये। यह घटना वहाँ रहने वाली, उत्पल निमित्तज्ञ की बहिनों—सोमा व जयन्ती नामक परिव्राजिकाओं ने सुनी (वे भी पहले साध्वियाँ थी, शिथिलाचारी हो गई थी और वहीं रहती थीं) वे वहां आयी और प्रभु का परिचय देकर उन्हे बन्धन-मुक्त कराया। वहाँ से प्रभु पृष्ठचम्पा पधारे।

चतुर्थ वर्षावास

भगवान् पृष्ठचम्पा में चातुर्मास विराजमान रहे। चारमास निराहार रह कर विविध आसनों—वीरासन, लगडासन आदि द्वारा ध्यान करते थे। चातुर्मास पूर्ण करके विहार कर नगर से बाहर पारणा किया। वहाँ से कयगला की ओर विहार किया। माघ मास में वहाँ पहुँचे। कयंगला में दरिद्रथेरा, नामक पाषण्डी (अन्य दर्शनी साधु) रहते थे। वे सपत्नीक परिग्रह युक्त व सारम्भी होते हुये भी स्वयं को साधु कहते थे। भगवान् उद्यानस्थित एक देवालय के कोने में ध्यानस्थ हो गये। देवस्थान में उस दिन उत्सव था नृत्य गायन वादन की धूम थी। माघ का महिना था। बाहिर घनघोर वर्षा हो रही थी। रात्रि जागरण में लोग नृत्य गायनमग्न थे। गोशाला को कोलाहल से और घोर शीत के कारण नींद नहीं आ रही थी। थकित होने से झल्ला उठा और उन लोगों के धर्म की निन्दा करने लगा। धर्म की निन्दा से क्रुद्ध लोगों ने गोशाला को मन्दिर से बाहिर निकाल दिया। वह ठंड से काँपते हुये रोने लगा देवार्य का शिष्य जान लोगो को दया आयी, उन्होंने पुनः अन्दर बुला लिया, परन्तु फिर वैसे ही निन्दा करनी



कल्पसूत्र
१६६



आरम्भ कर दी। युवक लोग मारने को उद्यत हुये, वृद्धों ने समझाकर रोका। प्रभु श्रावस्ती के वाह्य प्रदेश में ध्यानस्थित हो गये। भिक्षाकाल होने पर गोशाला ने भिक्षार्थ चलने का कहा। भगवान् ने उपवास का संकेत किया। गोशाला ने पूछा—मुझे भिक्षा में क्या मिलेगा? सिद्धार्थदेव बोला—मानवमांस! गोशाला विश्वास न करके भिक्षार्थ गया।

उस नगर में पितृदत्त नामक गृहस्थ की पत्नी श्रीभद्रा मृतवत्सा रोगग्रस्त थी। शिवदत्त निमित्तज्ञ के कहने से जीवितवत्सा होने के लिये मृतवत्स के मांसयुक्त क्षीर बनाकर किसी तपस्वी को देने के लिये वह द्वार पर प्रतीक्षा करने को खडी थी। गोशाला भिक्षार्थ भ्रमण करता वहाँ पहुँचा। भद्रा ने सादर निमन्त्रण देकर उसे मांसयुक्त क्षीर दी, वह प्रसन्नता से क्षीर भक्षण कर वापिस आया। क्षीर खाने की वात प्रभु से कही। सिद्धार्थदेव ने यथार्थ कहा तो उसने वमन किया; मांस देख कर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया वहाँ जाकर उसने सारा मुहल्ला ही जला दिया। प्रातः भगवान् ने विहार कर दिया। गोशाला भी साथ ही था श्रावस्ती से चलकर हाल्लदुय ग्राम से बाहिर वृक्ष के नीचे प्रभु ध्यानमग्न हो गये। वहाँ एक सार्थ ठहरा हुआ था। रात्रि में शीत निवारणार्थ लोगों ने अग्नि जलायी थी। सार्थ तो प्रातः प्रस्थान कर गया, किन्तु अग्नि पवन का संयोग पाकर विस्तृत हो गई और ध्यानस्थ प्रभु के निकट तक आ गयी। गोशाला चलने के लिये प्रभु से आग्रह करने लगा, प्रभु कायोत्सर्ग में ही मग्न रहे, गोशाला आगे चल दिया। आग प्रभु के पास आ पहुँची भगवान् के पाव झुलस गये मध्याह्न में कायोत्सर्ग समाप्त होने पर विहार कर प्रभु नंगला ग्राम पहुँचे। बाह्यस्थित वासुदेव (कृष्ण) मन्दिर में ध्यानमग्न रहे, वहाँ कुछ लडके क्रीडा कर रहे थे, गोशाला ने उन्हें डराया धमकाया; लड़को ने गांव में रोते-रोते सारा हाल कहा। गाँव के तरुण क्रोध भरे हुये आये और गोशाला की लात घूंसो से खूब खबर ली। नंगला से भगवान् आवर्त्त पधारे वहाँ ब्रह्मदेव (श्री रामचन्द्र) के मन्दिर में कायोत्सर्गस्थ हो गये। आवर्त्त से विहार कर प्रभु चोराय सन्निवेश में एकान्त

कल्पसूत्र
१६७

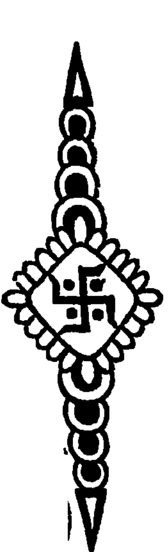
स्थान में ध्यानस्थ हो गये। गोशाला भिक्षार्थ जाता हुआ गुप्तचर समझ कर पकड़ लिया गया और खूब पीटा गया फिर किसी प्रकार मुक्त कर दिया गया। वहां से विहार कर भगवान् कलंबुका सन्निवेश आये। निकट ही पार्वत्य प्रदेश था। वहाँ के अधिपति मेघ और कालहस्ति नामक दो भाई थे। कालहस्ति चोरों का पीछा करता हुआ वहाँ आया उसने प्रभु से परिचय पूछा; प्रभु तो मौन थे। गोशाला भी कुतुहलवश कुछ नहीं बोला। कालहस्ति ने प्रभु को मारा पीटा और पकड़ कर मेघ के पास भिजवा दिया। मेघ ने श्रमण भगवान् महावीर को गृहस्थ थे, तब एक बार देखा था, वह पहचान गया और मुक्त करके भाई की अज्ञानता के लिये क्षमायाचना की।

भगवान् ने विचार किया परिचित प्रदेश में विचरने से शीघ्र कर्मक्षय नहीं होंगे; अतः अपरिचित प्रदेश में विचरना चाहिए। भगवान् राढदेश की ओर चले। राढदेश तब अनार्य माना जाता था। आधुनिक वर्दमान, हुगली, मिदनापुर आदि इसी केअन्तर्गत हैं।

राढदेश में प्रभु को ठहरने का स्थान भी बड़ी कठिनाई से मिलता था, जो मिलता वह भी अत्यन्त कष्टकर होता था। वहाँ के अनार्य लोग प्रभु को मारने दौड़ते, लाठियों से पीटते दांतों से काट लेते। कुत्तो को पीछे लगाते; इत्यादि कई प्रकार के कष्ट देते थे। पारने में बड़ी कठिनाई से कभी रूखा-सूखा आहार मिल जाता था। सो भी उन लोगों में कोई एक व्यक्ति जो कुछ सुसंस्कारी होता था उसके यहाँ मिलता था। ऐसे ही प्रत्येक गांव में एकाध जन ऐसा निकल आता था; जो भगवान् को दुष्टजनों व खूंखार कुत्तों से बचा लेता था और आहार भी देता था। अधिकांश ग्रामवासी स्वभाव से ही क्रूर व अभक्ष्य-भक्षी कुसंस्कारी थे। प्रभु सर्व उपसर्गों—कष्टों को समभाव से सहन करते थे।

भगवान् राढदेश से लौट रहे थे, सीमा स्थित पूर्णकलश ग्राम से निकल कर आर्यदेश की सीमा की ओर प्रवेश करते हुए प्रभु को सामने आते हुये दो चोरों ने देखा अपशकुन मान कर पीटने को दौड़े। उस

कल्पसूत्र
१९८



समय इन्द्र ने अवधिज्ञान से यह जान लिया और तत्काल उपस्थित होकर प्रभु की रक्षा की; चोरों को दंड दिया।

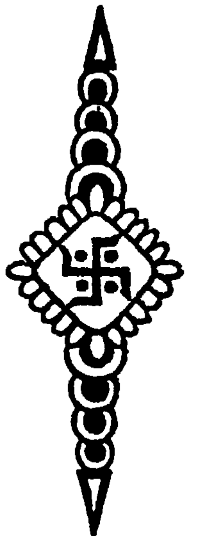
पाँचवां चौमासा

आर्य देश में प्रवेश कर प्रभु भद्दिया पधारे। वहीं चातुर्मासिक तप और विविध आसनों से कायोत्सर्ग स्थित रह कर प्रभु ने चार मास वर्षाकाल के व्यतीत किये! मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपत् को ग्राम से बाहिर आकर तप का पारणा किया और कदलीसमागम की ओर विहार कर गये।

प्रभु कदलीसमागम से जम्बूसण्ड होते हुये, तम्बाय सन्निवेश पधारे। ग्राम से बाहिर ध्यानस्थ थे। वहाँ पार्श्वनाथ सन्तानीय नन्दिषेण नामक बहुश्रुत मुनि थे, वे गच्छ का भार अन्य योग्य साधु को सौंप-कर जिनकल्पाचार पालन करते थे। रात्रि में चौराहे पर ध्यानस्थ खड़े थे। वहाँ आरक्षक (कोतवाल) पुत्र ने उन्हे देखा और चोर समझ कर भाले से मार डाला। मुनि शुभ भावना से समतापूर्वक उपसर्ग सहन करते अवधिज्ञान पाकर स्वर्गवासी हो गये। गोशाला को यह ज्ञात हुआ तो वह उपाश्रय में जाकर मुनियों की भर्त्सना करने लगा और नन्दिषेण मुनि के स्वर्गवास की सूचना देकर लौट आया।

वहां से विहार कर प्रभु कूपिय सन्निवेश पधारे। लोगों ने गुप्तचर समझ कर पकड़ लिया और प्रभु को खूब मारा पीटा। प्रश्नों का उत्तर न देने के कारण कैद कर लिये गये। वहाँ पार्श्वनाथ परम्परा की दो साध्वियाँ—विजया तथा प्रगल्भा को यह वृत्त ज्ञात हुआ तो 'पुलिस स्टेशन जहाँ प्रभु कारागार में थे' वहाँ आयो और भगवान् को वन्दन कर आरक्षक को उनका वास्तविक परिचय दिया। जिससे आरक्षक ने प्रभु को मुक्त कर दिया और पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना की।

कूपिय सन्निवेश से प्रभु वैशाली की ओर जाने लगे। गोशाला बोला—मै आपके साथ नहीं रहूँगा। आप मेरी रक्षा नहीं करते! आप के साथ रहने से मुझे भी कष्ट सहने पड़ते हैं। प्रभु तो मौन निस्पृह

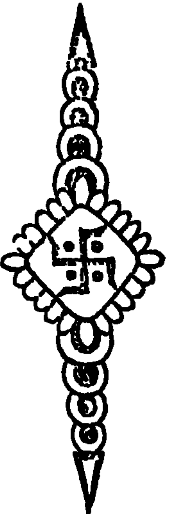


थे। गोशाला ने प्रभु का साथ छोड़ दिया। भगवान् वैशाली की ओर विहार कर गये गोशाला राजगृह की ओर चल गया।

प्रभु वैशाली में एक लोहार के कारखाने में ठहरे। लोहार छःमास से रोगग्रस्त था, उसने प्रातः भगवान् को अपने कारखाने मे ध्यानस्थ खड़े देखा; 'यह अमङ्गल है' ऐसे विचार से क्रुद्ध हो, हथौड़ा लेकर मारने दौडा। इस समय इन्द्र अवधिज्ञान से प्रभु की चर्या जान देख रहा था; तत्काल वहाँ आकर उपसर्ग निवारण किया। वैशाली से विहार कर प्रभु ग्रामक सन्निवेश पधारे। ग्राम के बाहर विभेलक यक्ष के मन्दिर में कायोत्सर्गस्थ रहें; यक्ष सम्यक्त्वी था। उसने भक्ति से स्तुति की। वहाँ से विहार कर शालि-शीर्ष के बाहिर उद्यान में कायोत्सर्ग में स्थित थे। वहाँ कटपूतना नामक एक व्यन्तरी आई। कुपित हो सन्यासिनी रूप धारण किया। जटाओं में शीतल जल भर कर प्रभु पर झाडने लगी, कन्धे पर चढ़कर जटाओं से तीव्र पवन चलाया, पानी की तीखी धारा। तीव्र अन्धड (तूफान) और माघ मास का घोरशीत! वस्त्रहीन भगवान् ने इस घोर उपसर्ग को धैर्यपूर्वक सहन कर आत्मस्थित रहते हुये लोका-वधि ज्ञान पाया। प्रभु के धैर्य के सामने कटपूतना पराजित हो गई, अपनी माया समेट कर पुजा स्तुति की ओर चली गयी। प्रभु ने त्रिपृष्ठ के भव में इसका अपमान किया था, उसी कारण इसने उपसर्ग किया। देवताओ ने उपसर्ग शान्त होने से पभु-भक्ति की। गोशाला को अलग रहने के कारण भारी कष्ट उठाने पड़े, भोजन भी दुर्लभ हो गया, छः मास पृथक विचर कर खोजता हुआ वह यहाँ आ गया और साथ रहने लगा था।

छठा चातुर्मास

वहाँ से शेष काल में विचरते हुए प्रभु भद्दिया पधारे। यहां भी चातुर्मासिक तप व भांति-भांति के योगासनों से कायोत्सर्ग स्थित रहकर वर्षावास व्यतीत किया। भद्दिया से बाहिर पारणा कर मगध की



ओर विहार कर गये। शीत व ग्रीष्मर्तु में मगधदेश के विविध भागों में गोशाला के साथ विचरते रहे और आलंभिया चातुर्मास करने पधारे।

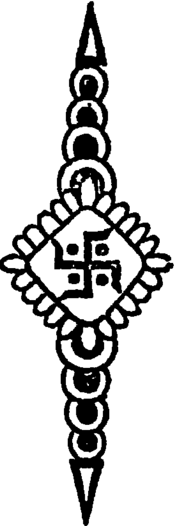
सातवाँ वर्षावास

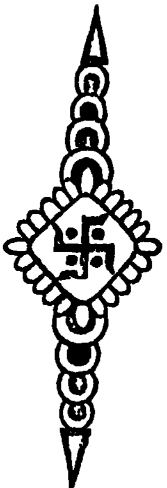
सातवाँ चातुर्मास आलंभिया में चौमासी तप व कायोत्सर्ग पूर्वक किया। नगर के बाहिर पारना कर कुण्डाक सन्निवेश, मद्दनसन्निवेश होते हुये लोहार्गल पधारे। गुप्तचर समझकर दोनों को पुलिस ने पकड लिया और राज्यसभा में ले गये। उत्पल निमित्तज्ञ वहीं था, उसने पहचान लिया और राजा से कहकर मुक्त कराया। राजा ने क्षमा माँगी।

वहाँ से चलकर पुरिमताल (प्रयाग) पहुँचे। नगर के बाहिर शकटमुख उद्यान में ध्यानस्थ हो गये। उस नगर में वग्गुरि श्रेष्ठी रहता था उसकी पत्नी नि.सतान थी। एक दिन सेठ वायु-सेवनार्थ उक्त उद्यान में गया था, वहाँ जीर्ण मन्दिर में भगवान मल्लिनाथ का मनोहर बिम्ब विराजमान था। सन्तान हुई तो 'जीर्णोद्धार कराऊगा' ऐसी प्रतिज्ञा की थी। पुण्योदय से पुत्र प्राप्ति हुई; जीर्णोद्धार कराया और दम्पति प्रतिदिन त्रिकाल पूजा करने लगे; वे नित्यनियमानुसार पूजा करने आये; प्रभु कायोत्सर्ग थे, उधर से हो जा रहे थे। उस समय सोधर्मेन्द्र भगवान को वन्दन करने आया था। सेठ को देखकर बोला—साक्षात् तीर्थंकर को छोडकर आगे पूजा करने जाना शास्त्र निषिद्ध है; ये चोबीसवें तीर्थंकर भगवान हैं। पहले इनकी पूजा करिये! तब दम्पती ने प्रथम श्रमण भगवान् महावीरकी पूजा स्तुति की फिर मन्दिर में गये। पुरिमताल से विहार कर भगवान् राजगृह पधारे।

आठवाँ चातुर्मास

आठवाँ चातुर्मास राजगृह में चौमासी तप व विविध साधनाओं पूर्वक पूर्ण किया। चौमासी तप का पारना नगर से बाहिर करके विचार किया कि "अभी बहुत कर्म शेष है! अनार्य भूमि में विचरना चाहिये



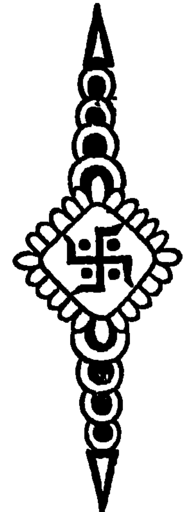


जिससे उपसर्ग हों और उन्हें समताभाव से सहन करते हुये अधिक कर्मों का क्षय कर सकूं।" अतः राढदेश की ओर विहार किया। राढ देश में विचरने लगे, वहाँ स्थान नहीं मिलता था वृक्ष के नीचे या किसी खंडहर में ध्यानस्थ रहते थे। जिधर से निकलते, लोग हँसी करते, चारों ओर से घेर लेते, अपशब्द बोलते, पत्थर ढेले आदि फेंक कर मारते, धूल फेंकते, दाँतों से काटते, कुत्ते लगाते, ऐसे अनेक प्रकार से भगवान् को महान् कष्ट देते पर प्रभु मौन अचल अडिग रहकर समभाव से सहन करते थे। इन उपसर्गों को सहन कर भगवान् के मुख पर अलौकिक तेज व मन मे अत्यन्त प्रसन्नता होती थी; क्योंकि अशुभ कर्म नष्ट हो रहे थे। शेषकाल व चातुर्मास राढदेश में ही विचरकर छः मास व्यतीत किये। वर्षाकाल में नियतवास के लिये स्थान नहीं मिल सका, कभी वृक्ष के नीचे व कभी खण्डहरों में रहे और वर्षाकाल समाप्त हुआ।

नवम चातुर्मास

यह राढदेश में अनियत स्थानों में हुआ जो ऊपर कह चुके हैं। वहां से आर्य देश में जा रहे थे। गोशालक साथ ही था; सिद्धार्थपुर से कूर्मग्राम के मार्ग में सात पुष्प वाला तिल का पौधा देखकर गोशाला ने पूछा—भगवन्! क्या यह तिल का पौधा फलेगा? सिद्धार्थ ने कहा—हाँ! अवश्य फलेगा, ये सात पुष्प जीव एक ही फली में तिल रूप होंगे। गोशाला ने असत्य करने को तिल का पौधा उखाड डाला पर भवितव्यतावश तत्काल वर्षा हुई और उखाड़ा गया पौधा गाय के पाँव से मिट्टी में दबकर पुनः बढ़ने लगा। भगवान् व गोशाला कूर्मग्राम पहुँचे।

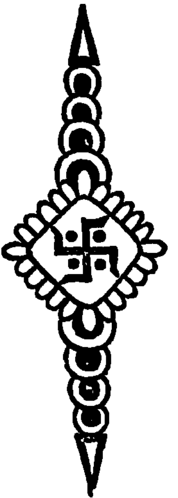
वहाँ गोशाला ने एक युवा तापस को मध्याह्न में सूर्याभिमुख हो घोर तप करते देखा। उसकी जटा में जूँएँ थीं, वे नीचे गिरतीं तो तापस उन्हें उठाकर पुनः पुनः जटा में रख लेता था। गोशाला ने प्रभु से पूछा—यह जूँओं का घर कौन है? प्रभु तो मौन थे। गोशाला तापस के पास जाकर उसकी हँसी करते हुए बार-बार उसे जूँओ का घर कहने लगा और अपशब्दों से तिरस्कार करने लगा। इससे तापस क्रुद्ध हो



गया, उसके नेत्रों से ज्वाला निकलने लगी, गोशाला झुलसने लगा, भयभीत हो प्रभु की शरण आया और उस ज्वाला से बचाने की प्रार्थना की। भगवान ने दयार्द्र हो, शीतल लेश्या का प्रयोग कर उसकी रक्षा की। तापस[1] ने कहा—"मुझे ज्ञात नहीं था, आपका शिष्य है! क्षमा चाहता हूँ" ऐसा कहकर तापस अन्यत्र चला गया।

प्रभु से गोशाला ने इस ज्वाला की उत्पत्ति के विषय में पूछा। भगवान् तो मौन थे, सिद्धार्थ देव ने तेजोलेश्या प्राप्त करने की विधि निम्न प्रकार से बतलायी—छह मास तक निरन्तर बेले का तप और पारने

(१) इसका नाम वैश्यायन था तापस बनने का कारण—राजगृह व चम्पापुरी के बीच गुर्वरग्राम मे कोशाम्बी नामक गृहपति था, वह अहीर था उसको पत्नी बन्धुमती वन्ध्या थी। एक बार शत्रु सेना ने उस गाव के समीपस्थ खेटक गाव को लूटा और कई स्त्रियों को पकड़ ले गये। उन्हीं मे से एक ग्रामवासी वीर युद्ध में वीरगति प्राप्त हुआ था, उसकी पत्नी अत्यन्त रूपवती थी, वह उस समय सप्रसूता थी, नवजात शिशु साथ में था। दुष्टों ने बालक को उससे छीन कर एक वृक्ष के नीचे फेंक दिया और उस तरुणी रूपवती को जिसका नाम वेसिका था, पकड़ ले गये और चम्पा में जाकर एक वेश्या को बेच दिया। वह वहाँ वेश्यावृत्ति से आजीविका करने लगी। उधर बालक को कोशाम्बी ने देखा तो प्रसन्नता से उठा लिया और अपनी पत्नी को दे दिया। वह पुत्रवत् उसका लालन-पालन करने लगी, क्रमशः वह युवा हो गया। एकबार घृतपात्रों से शकट भर के उन्हें चम्पानगरी में बेचने गया यथेष्ट लाभ होने से प्रसन्न हो अन्य मित्रों की प्रेरणावश उसी वेसिका के यहाँ जा पहुचा उसका सुन्दर रूप और हाव भाव से मुग्ध हो गया और नित्य वहा जाकर वेश्यागमन करने लगा। एक दिन सजधज कर जा रहा था, मार्ग मे पड़ी हुई विष्ठा से पाव भर गया, वहा बैठे एक बछड़े के शरीर से पाव पोंछा। पास ही बैठी हुई गाय से बछड़े ने यह दुश्चेष्टा कही तो गाय ने कहा—यह कामान्ध है, अपनी माता के साथ ही अनाचरण कर रहा है। वह पशु भाषा विज्ञ था, यह सुनकर उसे भारी चिन्ता हुई। वेश्या से वृत्तान्त पूछा तो उसने सच-सच कह सुनाया। वह खेदपूर्वक घर आया, माता-पिता से पूछ कर जाना कि वह वास्तव मे उसका पालित पुत्र है, औरस नहीं। वह वैराग्य से तापस बन गया और माता के वेश्या बन जाने तथा अग्नि तापनेसे 'अग्नि वैश्यायन' नाम से प्रसिद्ध था।



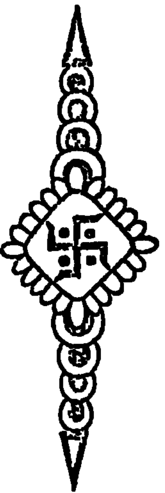
में उड़द के मुट्ठी भर बाकुले खाकर तीन चुल्लू भर गर्म पानी पीने तथा सूर्य के सम्मुख आतापना लेने से यह शक्ति 'तेजोलेश्या' लब्धि प्राप्त होती है।

कुछ दिन बाद प्रभु पुनः सिद्धार्थपुर की ओर पधार रहे थे; मार्ग में वही तिल के पौधे वाला स्थान आया। गोशाला ने पूछा वह पौधा तो है नहीं तिल भी नहीं होंगे! सिद्धार्थ देव ने असली पौधा दिखाया और फली में सात तिल भी कहे। गोशाला ने फली तोड़कर सात तिल देखे तो उसका नियतिवाद पर दृढ़ विश्वास हो गया और यह भी निश्चित मत बन गया कि सभी जीव उसी योनि में पुनः पुनः उत्पन्न होते है।

गोशाला अब भगवान् से पृथक् विचरने लगा। श्रावस्ती में एक आजीवकमत वाली हालाहला नामक कुँभारी की शाला में रहकर तेजोलेश्या सिद्ध कर ली और अष्टाङ्ग निमित्तज्ञ भी बन गया। तेजोलेश्या की परीक्षा भी एक पनिहारी को जला कर ली थी। वह आचार्य बन गया और स्वयं को आजीवक मत का तीर्थंकर प्रसिद्ध कर विचरने लगा।

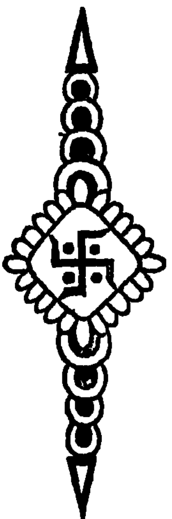
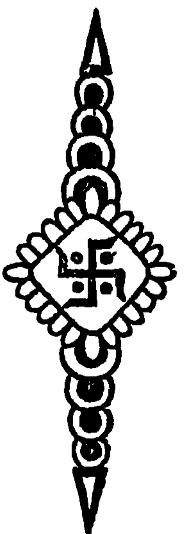
दशवाँ वर्षावास

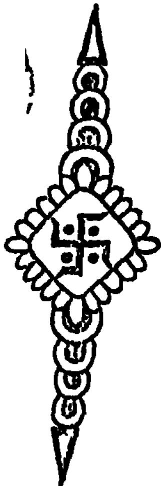
भगवान् भी विचरते हुये श्रावस्ती पधारे और नाना प्रकार के तप करते हुये वर्षावास रहकर वहाँ से विहार कर सानुलट्ठिय सन्निवेश में प्रभु ने भद्र महाभद्र और सर्वतोभद्र प्रतिमाएँ (ये तप व कायोत्सर्ग रूप होती है—भद्र दो अहोरात्र की, महाभद्र चार अहोरात्र की; सर्वतोभद्र दश अहोरात्र की होती है) धारण कर सोलह दिन उपवास किये जो निरन्तर थे। आनन्द गृहपति की बहुला दासी के हाथ से फेंकने योग्य बचा-खुचा ठढा आहार लेकर पारना किया। वहाँ से चलकर प्रभु ने पेढालग्राम के उद्यान स्थित पोला-सदेव के चैत्य में अट्ठम तप किया। एक रात्रि की प्रतिमा धारण कर ध्यानस्थ थे। अनिमेष दृष्टि एक शुष्क वस्तु पर लगा रखी थी। यह सब इन्द्र ने अवधिज्ञान से जानकर सभा में कहा—"श्रमण भगवान् की समानता करने वाला इस जगत् में कोई योगीध्यानी और धीर वीर नहीं है। मनुष्य तो क्या देव भी



उन्हें चलायमान नहीं कर सकते। यह प्रशंसा संगम नामक एक इन्द्र का सामानिक देव नहीं सहन कर सका। वह बोला—मनुष्य की शक्ति ही कितनी है? मैं अभी जाकर महावीर को चलायमान करूंगा! ऐसी प्रतिज्ञा कर वह जहाँ प्रभु ध्यानस्थ थे वहाँ आया और एक रात में निम्नांकित २० भयंकर उपसर्ग किये :—

(१) धूल की भयंकर वृष्टि की, जिससे प्रभु के अंग-प्रत्यंग धूल से भर गये। (२) वज्रमुखी चींटियों से भगवान् के शरीर को सच्छिद्र बनाकर वेदना उत्पन्न की। (३) वज्रमुख दंशकों (डाँसों) से कटवाया। (४) घृतवल्ली नामक चींटियों से चुंटवाया। (५) बिच्छुओं से डंक दिलवाये। (६) सॉपों से डसवाया। (७) नकुलों से विदीर्ण करवाया। (८) चूहों से कुतरवाया। (९) हाथी हथिनी बनकर आकाश में उछाला। (१०) गजों द्वारा दांतों व पावों से रौंदवाया। (११) पिशाच के रूप बना कर डराने का प्रयत्न किया। (१२) व्याघ्र बनकर आक्रमण किया। (१३) माता बनकर कहा—पुत्र! तुम दुःख क्यों भोगते हो, मेरे साथ आओ! मै तुम्हे सुखी बनाऊँ। (१४) कानों के पास तीक्ष्ण चोंच वाले पक्षियों के पींजरे लटका कर पक्षियों से चोटें करवायो। (१५) चाण्डाल बनकर अत्यन्त अश्लील गालियां बोली। (१६) दोनों पांवों के बीच में अग्नि जलाकर क्षीर पकाने लगा (१७) भयंकर आंधी-तूफान चलाया। (१८) कलकलिका-प्रलयकाल की वायु द्वारा भगवान् के शरीर को बार-बार उड़ा-उडा कर पटका और चक्रवात (बवंडर) द्वारा प्रभु के शरीर को चक्रवत् जोर से घुमाया। (१९) सहस्र भार प्रमाण लोहा का गोला भगवान् के शिर पर पटका जिससे प्रभु कटी (कमर) पर्यन्त भूमि में धँस गये। (२०) रात्रि होने पर भी प्रभात कर दिया और कहने लगा—"आर्य! प्रातः हो गया! विहार करिये!" भगवान् ने ज्ञान से जाना, अभी रात्रि शेष है यह तो देव माया है। पुनः ऋद्धिमान् तेजस्वी देव बनकर वरदान मांगने को कहा। परन्तु प्रभु ध्यान से चलायमान नही हुये।

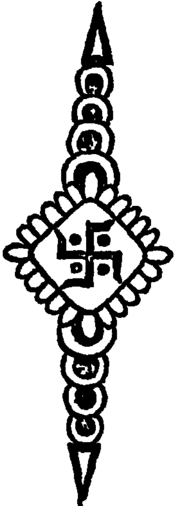



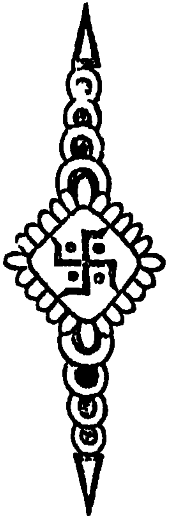


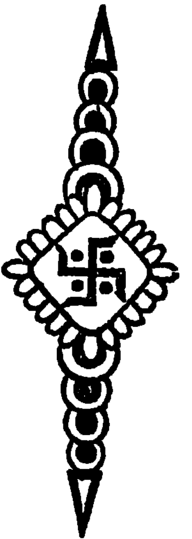
इस प्रकार एक ही रात में २० घोर उपसर्ग करके भी वह प्रभु को विचलित न कर सका और अपनी प्रतिज्ञा की धुन में साथ रहकर विभिन्न प्रकार से—आहार अशुद्ध कर देना, चोर का कलंक दिलवा कर कष्ट देना, कुशिष्य रूप में आगे जाकर गांव नगर में चोरी करने के लिये सुविधाएँ देखना, लोगों के पूछने पर कहना—मेरे गुरु रात्रि में चोरी करने आवेंगे; अतः पता लगा रहा हूँ, लोग दोनों को पकड़ने पर वह गायब हो जाता ओर प्रभु को ताडना करते। भगवान् ने प्रतिज्ञा कर ली कि—जब तक उपसर्ग शांत नहीं होंगे, तब तक आहार ग्रहण नहीं करूंगा।" इस प्रकार छः मास पर्यन्त सगम घोर उपसर्ग करता रहा। इन्द्र ने यह जानकर नहीं रोका कि—यह कहेगा—"मै तो चलायमान कर देता पर आप बीच में आ गये!" अतः सौधर्मेन्द्र यह सब देखते हुये भी विवश दुःखी निरुत्साह उदास और भोग नृत्य गायन से विरक्त से रहने लगे। सभी देव-देवांगनाएँ इसी पकार दुःखी रहकर समय बिता रहे थे। छहमास के बाद संगम अपनी असफलता पर खिन्न हो क्षमा मांगकर स्वर्ग जाने लगा; उसके दुःखद भावी को जानते हुये प्रभु ने उसे दयार्द्र नेत्रो से देखा—बेचारे के भावी दुःखों का निमित्त मै बना! अज्ञानवश जीव स्वयं को दुःखी करता है, हा! धिक् जीवस्य मोहग्रस्तता! स्वर्ग गया तो इन्द्र ने संगम को स्वर्ग से निष्कासित कर दिया; वह देवाङ्गनाओं को लेकर मेरु चूला पर चला गया। भगवान् व्रजग्राम गये गोपाल के घर छःमासी तप का पारना क्षीर से किया। इस तरह दशवर्ष पर्यन्त प्रभु को बहुत उपसर्ग हुये। भगवान् ने उन्हे समतापूर्वक सहन किया। इन्द्रादि देवगण आये महिमा की, सुखपृच्छा कर लोट गये।

इग्यारहवाँ चातुर्मास

व्रजग्राम से विहार कर श्रावस्ती आदि स्थानों में भ्रमण करते हुये प्रभु वैशाली पधारे। नगर के बाहिर समरोद्यान स्थित बलदेव के मन्दिर में चातुर्मासिक तपपूर्वक कायोत्सर्ग में थे वहाँ जीर्णश्रेष्ठी प्रभु के मासक्षमण जान निमन्त्रण देने आता पारने के दिन भारी तैयारी करता। चार महीने ऐसे ही तैयारी







करता रहा और निमन्त्रण देकर प्रतीक्षा करते उत्तम भावनाओ में लीन रहने लगा। चोमासी तपका पारना करने आहार के लिए घूमते हुये भगवान् अभिनव श्रेष्ठी के द्वार पर पधारे ! सेठ ने भिक्षुक जान दासी को कुछ देने का संकेत किया। दासी उड़द के बाकुले लिये खड़ी थी, वही प्रभु को दे दिये, प्रभु ने पारणा किया पंचदिव्य प्रकट हुये। दुन्दुभि सुनकर जीर्ण श्रेष्ठी भावनाओं से पतित हो गया और बारहवें स्वर्ग का आयुष्य बांध लिया। यदि एक घड़ी और दुन्दुभि न सुनता तो केवलज्ञान हो जाता।

इस प्रकार वैशाली में चातुर्मास व्यतीत कर प्रभु ने सुसुमार नगर की ओर विहार किया। वहां पहुँचे वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में खड़े थे। वहीं चमरेन्द्र का उत्पात हुआ।

वहाँ से विहार करते कौशाम्बी पधारे ओर पौष कृष्ण प्रतिपदा को भिक्षा लेने विषयक निम्नांकित तेरह स्थितियुक्त घोर अभिग्रह धारण किया :—

(१) राजकुमारी हो। (२) दासत्व कर रही हो। (३) मुण्डित शिर हो। (४) पांवों में बेड़ी हो। (५) कारागार में बन्दिनी हो। (६) अट्ठम तप वाली हो। (७) उड़द के बाकुले हों। (८) सूप के कोने में रखे हों। (९) भिक्षा काल बीत चुका हो। (१०) देने की इच्छा हो। (११) सुपात्र की प्रतीक्षा कर रही हो। (१२) एक पाव देहली के अन्दर व एक बाहिर हो। (१३) अश्रुधारा बह रही हो।

इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञा करके प्रभु प्रतिदिन भिक्षार्थ कौशाम्बी में भ्रमण करते थे; राजा की आज्ञा से प्रजा विभिन्न भांति की आहार सामग्री युक्त प्रतिदिन प्रतीक्षा करती रहती थी। भगवान् कुछ भी न लेते। बिना पारना किये ही लौट कर ध्यानस्थ हो जाते। ऐसा करते ५ मास २५ दिन बीत गये, पारना नहीं हुआ।

छब्बीसवें दिन मध्याह्नोपरान्त भ्रमण करते हुये प्रभु धनावह सेठ के घर पधारे। वहाँ चन्दना भिक्षा देने लगी, पर अभिग्रह में जरा सी मात्र एक बात की कमी थी, चन्दना हर्ष विभोर थी ! नेत्रों में अश्रु नहीं

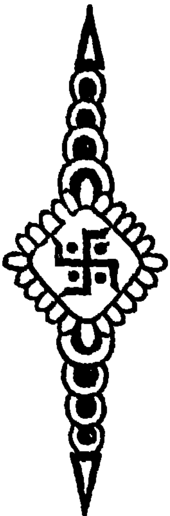
थे, प्रभु वापिस जाने लगे। चन्दना दुःख से रो पडी। प्रभु ने सन्मुख हो भिक्षा में दिये गये बाकुलों से पारना किया। देवताओ ने पंचदिव्य प्रकट किये। साढे बारह क्रोड सोनैयों की वृष्टि की।

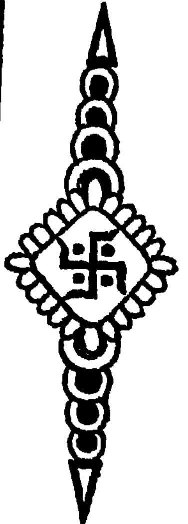
चन्दना चम्पापुरी के दधिवाहन राजा व धारिणी रानी की पुत्री थीं कौशाम्बीपति शतानिक के सेना-पति ने चम्पा पर आक्रमण किया। निश्चिन्त व असावधान दधिवाहन नृप अचानक आक्रमण का सामना न कर सका ओर गुप्त मार्ग से भाग निकला। शत्रु-सेना नगर में आ गई नगर लूट कर लौटने लगी। सेनापति राजभवन से धारिणी रानी व कुमारी कन्या चन्दनबाला को बलात् पकड़ रथ में डाल ले चला। अरण्य में पहुँच पिपासु सेनाधिपति पानी लेने गया। पीछे से धारिणी ने शील रक्षार्थ आत्म-हत्या कर ली। सेनापति चन्दना को ले कौशाम्बी आया। उसकी पत्नी ने 'भविष्य में यह मेरी सौत बन सकती है' विचार कर पति को कहा—इसे बाजार में बेच दो। पति ने एक वेश्या को बेचा; किन्तु चन्दना ने उसके साथ जाना स्वीकार नहीं किया। पास खड़े धनावह सेठ ने उसे खरीद लिया और घर ले जा कर पत्नी को दासी रूप में दिया। सेठानी का नाम मूला था। धनावह सेठ पुत्रीवत् चन्दना को वात्सल्य भाव से देखता था। चन्दना ने अपने शील स्वभाव व विनय व्यवहार से सभी को प्रसन्न कर दिया। सेठ सेठानी पुत्रीवत मानते थे। चन्दना दिन-दिन बडी हो रही थी, उधर मूला का मन उसके अद्भुत रूप को देख शंकित हो उठा "कहीं सेठ इसके साथ विवाह न कर ले" वह अधीर हो गई ओर चन्दना को विद्रूप करने का अवसर देखने लगी।

एक दिन आवश्यक कार्यवश सेठ के अन्य ग्राम चले जाने पर पीछे से उसने चन्दना का शिरमुण्डा, पांवो में बेड़ी डाल, उसे एक कमरे में बन्दकर ताला लगा दिया और दास-दासियो को डाँट दिया कि सेठ से न कहे! स्वयं पितृगृह जा बैठी।

कार्य सम्पन्न कर सेठ घर आये। चन्दना को न देख पूछताछ की; पर सेठानो के डर से किसी ने

कल्पसूत्र
२०८



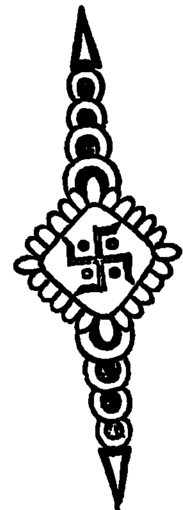


नहीं कहा कि कमरे में बन्द है। सेठ व्याकुल हो उठा, चिन्ता करने लगा। अन्त में तीसरे दिन सेठ के धमकाने पर एक वृद्धा दासी ने संकेत से बता दिया। सेठ समझ गये और ताला तोड़ कर कमरा खोल कर चन्दना की दशा देखी तो हृदय द्रवित हो गया। आँखों में अश्रुधारा बहने लगी। चन्दना को तीन दिन की भूखी जान कुछ भोजन सामग्री पाने को रसोईघर में गया; वहाँ और तो कुछ मिला नहीं! एक सूप में उबले हुये थोड़े से शेष बचे उड़द के बाकुले पड़े थे, सेठ सूप ही उठा लाया और चन्दना को खाने के लिये कहकर स्वयं बेडी कटवाने लुहार को लाने चल पड़ा।

चन्दना सूप हाथ में ले, किसी सुपात्र· को दान कर फिर पारना करने की इच्छा से खड़ी थी। प्रभु उसी समय पधारे, उन्हें देख हर्षातिरेक से प्रफुल्लित हो उठी और लेने की प्रार्थना की। प्रभु ने आंखों में आंसू न देखे तो बिना लिये ही जाने लगे। चन्दना निराश हो, दुःख से कातर बन रो उठी। प्रभु लौट पड़े। बाकुले लेकर पारना किया। चन्दनबाला की बेड़ियाँ टूट गईं। मुण्डित शिर पर केश कलाप लहराने लगा। दुन्दुभि के गम्भार निनाद से 'प्रभु के पारना हो गया' जानकर नृपति रानी आदि एवं समस्त प्रजा वहाँ आ गयीं। सेठ धनावह भी शीघ्रता से आ गये थे। सभी आश्चर्यान्वित हो यह अद्भुत चमत्कार देख रहे थे। पंचदिव्य व सोनेयो की वर्षा से चकित खड़े थे। महारानी मृगावती ने चन्दना को पहचान लिया। वह राजा से बोली—यह तो चम्पा के अधीश दधिवाहन की राजकुमारो, मेरी भानजी चन्दनबाला है! वह त्वरित् समीप आई और चन्दना को हाथ पकड़ हृदय से लगाया। वसुधारा का सर्व द्रव्य सुरक्षित कर दिया गया और जब प्रभु को केवलज्ञान हुआ, चन्दना की दीक्षा प्रसंग पर व्यय किया गया था। चन्दना अब मौसी के पास सुख से रहने लगी।

बारहवाँ वर्षावास

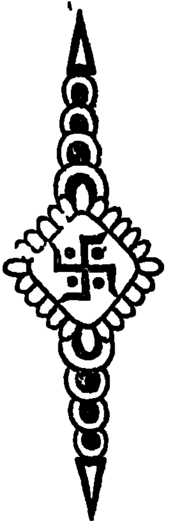
प्रभु कोशाम्बी से विहार कर क्रमशः चम्पानगरी पधारे, स्वातिदत्त विप्र की यज्ञशाला में चातुर्मासिक



तप पूर्वक वर्षावास वहीं व्यतीत किया। स्वातिदत्त ब्राह्मण ने देखा कि रात्रि में यक्ष आकर इन तपस्वी की
पूजा करते है, (पूर्णभद्र व मणिभद्र यक्ष प्रभु की पूजा करते थे) अत्यन्त प्रभावित हुआ और यथाशक्ति भक्ति
की। वहाँ से जंभिय ग्राम होते हुये प्रभु छम्माणी के पास वन में पधारे; एक वृक्ष के नीचे कायोत्सर्गस्थ
थे। एक ग्वाले ने देखा तो पूर्वभव[1] वैर वश होकर भगवान् के कानो में कांस्य-शलाकाएँ ठोक दी।
(चूर्णि में कास नामक घास की शलाकाओ का उल्लेख है) और किसी को दिखाई न पड़े ऐसी अदृश्य
बना दी। छम्माणी से विहार करते-करते मध्यमा पावा पधारे। भिक्षार्थ भ्रमण करते सिद्धार्थ वणिक् के
घर गये। वहाँ सेठ के पास बैठे खरक नामक वैद्य ने सेठ के साथ वन्दना करते हुए शलाकाएँ होने की
बात अपने विज्ञान से जान ली व सिद्धार्थ को भी कही। दोनों ने मिलकर बड़ी युक्ति पूर्वक—प्रभु को जब
वे ग्राम के बाहिर कायोत्सर्ग में स्थित थे। एक तेल की द्रोणी [कोठी] में खडाकर बडी शाखाओं को झुका
एक मजबूत डोरीसे दो सडासियाँ बाँध दी और उनसे शलाकाएँ पकड शाखाओं को एक साथ छोड़
दिया जिससे शलाकाएँ निकल पड़ी। उस समय अत्यन्त शारीरिक वेदना होने से प्रभु के मुख से इतने
जोर की चीख निकली कि सारा वन काँप उठा तथा समीपस्थ पर्वत से एक झरना फूट पडा जो आज
भी नदी रूप में प्रवाहित है। [यह पापापुरी कल्प में उल्लेख है] वैद्य ने संरोहणी ओषधि से कर्णों के व्रणों
(घावों) का उपचार किया। ग्वाला मर के सप्तम नरक में और सिद्धार्थ तथा खरक वैद्य आयु पूर्ण कर
शुभगति बँधने से स्वर्ग में गये।

अब उपसर्गों का उत्कृष्ट मध्यमता और जघन्यत्व इस प्रकार है:—शलाकाएँ निकालना उत्कृष्ट
उपसर्ग था; क्योंकि इससे प्रभु को घोर दारुण वेदना हुई थी। सगम द्वारा सहस्र भार का गोला मस्तक

1 यह शय्यापालक का जीव था। वहाँ त्रिपृष्ठ के भव में प्रभु ने इसके कानों में शीशा ढलवाया था। वही वैरभाव जाग उठा।

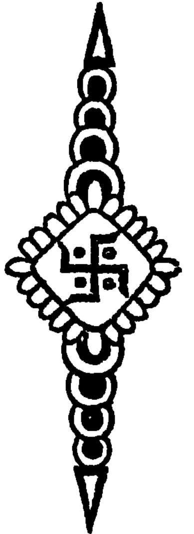


पर डालना मध्यम उपसर्ग था। और कटपूतना द्वारा किया गया शीतोपसर्ग जघन्य उपसर्ग माना गया है।

इस प्रकार बारह वर्ष से अधिक समय तक विविध तप व भाँति-भाँति के आसनों द्वारा ध्यानस्थ रहे। चातुर्मास काल (वर्षावास) के अतिरिक्त उग्र विहार करते हुए विचरे। इस बीच घोर परिषह व भीषण उपसर्ग सहन किये; जिनका वर्णन संक्षेप में किया गया।

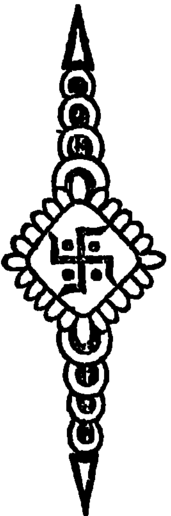
इन बारह वर्षों में भगवान् किस प्रकार के बाह्याभ्यन्तर आचरण युक्त थे, इसका सूत्रकार भद्रबाहु स्वामी यों वर्णन करते हैं :—

सूत्र :—तए णं समणे भगवं महावीरे अणगारे जाए, इरिया समिए, भासासमिए, एसणा समिए आयाण भंडमत्त निक्खेवणा समिए, उच्चार—पासवण खेल जल्ल संघाणपारिट्ठावणिया समिए (मणसमिए वयसमिए कायसमिए) मणगुत्ते, वयगुत्ते, कायगुत्ते, गुत्ते, गुत्तिंदिए, गुत्तबंभयारी, अकोहे, अमाणे अमाए, अलोहे, संते, पसंते, उवसंते परिनिव्वुडे, अणासवे अममे, अकिंचणे, छिन्नग्गंथे, निरुवलेवे, कंसपाइ इव मुक्कतोए, संखे इव निरंजणे, जीवे इव अप्पडिहयगई, गगण इव निरालंबणे, वाऊ इव अपडिबद्धे, सारयसलिलं व सुद्धहियए, पुक्खरपत्तं व निरुवलेवे, कुम्मे इव गुत्तिंदिए, खग्गिविसाणं व एगजाए, विहगे इव विप्पमुक्के, भारंडपक्खी इव अप्पमत्ते, कुंजरे इव सोंडीरे, वसहे इव जायथामे, सीहे इव दुद्धरिसे, मंदरे इव निक्कंपे, सागरे इव गंभीरे, चंदे इव सोमलेसे, सूरे इव दित्ततेए, जच्चकणगं व जायरूवे, वसुंधरा इव सव्वफास विसहे, सुहुयहुयासणे इव तेयसा जलंते ॥११६॥ इम्मेसि पयाणं दुन्नि संगहाणि गाहाओ :—



"कंसे संखे जीवे, गगणे वाऊ अ सरयसलिले अ।
पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे अ भारंडे ॥१॥
कुंजर वसहे सीहे, नगराया चेव सायर मखोहे।
चंदे सूरे कणगे, वसुंधरा चेव सुहूयवहे ॥२॥

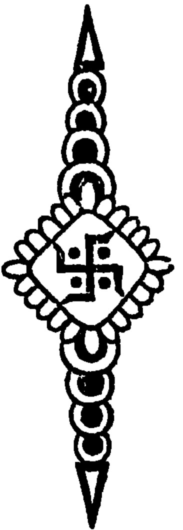
अर्थ :—श्रमण भगवान् महावीर जब से अगारी से अनगारी बने तब से निर्दोष गमनागमन रूप इरियासमिति युक्त, दोषरहित भाषण वाली भाषासमिति सहित, शुद्ध आहार ग्रहण रूप एषणासमिति से युक्त थे। (वस्त्र पात्रादि न होने और मलादि का अभाव होने से तीर्थंकरों के अन्तिम दो समितियाँ नहीं होती, यहाँ मात्र पाठ रक्षार्थ ऐसा कह दिया है।) मन, वचन, काया, की शुभप्रवृत्ति समिति युक्त थे। अशुभ प्रवृत्ति से रोकने रूप तीनगुप्तियों से गुप्त थे। गुप्तेन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों को विषयो से रोकने वाले, गुप्तब्रह्मचारी—नववाड़युक्त ब्रह्मचर्य धारक थे। क्रोध मान माया लोभ का अभाव था, शान्त-प्रशान्त और उपशान्त थे, सर्वथा सन्ताप रहित, आश्रव रहित निर्ममत्वयुक्त, अकिंचन—सभी प्रकार के परिग्रह रहित, छिन्न ग्रन्थ—रागद्वेष रूप अन्तर्ग्रन्थ व धनादि बाह्य-ग्रंथ को नष्ट करने वाले, और सर्वथा स्नेहादि से अलिप्त रहने से निरुपलेप थे। कांस्यपात्र के समान मुक्त नीर थे, अर्थात् कांस्यपात्र में जल नहीं लगता वैसे भगवान् के रागादि जल नहीं लगता था, शखवत् निरंजन, आत्मा के समान अप्रतिहत गति, आकाशवत् निरालम्ब, वायुवत् अप्रतिबद्ध विहारी, शरत् ऋतु के जल समान शुद्ध हृदय वालें, कमलपत्रवत् निरूपलेप, कूर्म-कछुए के जैसे गुप्तेन्द्रिय, खड्गी-गेंडे के शृंगवत् एकाकी, पक्षियो के समान मुक्त—विहारी, भारण्ड पक्षीवत् अप्रमत्त, कुंजर-हाथी के समान शौण्डीर-दान-वर्षी जात्यवृषभ के समान भार निर्वाहक, सिंह के समान दुर्धर्ष, मन्दर-मेरुगिरिवत् निष्कम्प, समुद्र के

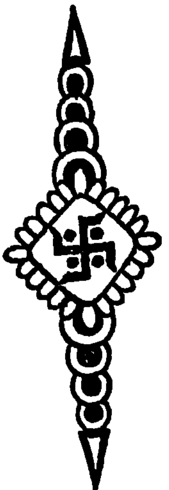


समान गंभीर, चन्द्रवत्सौम्य कांति, सूर्यवत्दीप्ततेज वाले, जात्य असली सुवर्ण के समान रूपवान्, पृथ्वी के समान सभी प्रकार के स्पर्शों-कष्टों को सहन करने वाले, और सुहुत-घृतादि से सिंचन की गई अग्नि के समान तेज से जाज्वल्यमान थे। "कांस्यपात्र, शंख, जीव' आकाश, वायु, शरदर्तुका जल, कमलपत्र, कूर्म, पक्षी, गेंडा, भारण्डपक्षी, हाथी, वृषभ, सिंह, मेरुगिरि, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, सुवर्ण, पृथ्वी, और अग्नि की उपमायें" सूत्रकार ने प्रभु की श्रेष्ठता बतलाने को दी है। वास्तव में तो प्रभु निरुपमेय होते हैं।

सूत्र :—नत्थि णं तस्स भगवंतस्स कत्थइ पडिबंधे, से अ पडिबंधे चउव्विहे पन्नते, तंजहा—दव्वओ, खित्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं सचित्ताचित्त मोसेसु दव्वेसु। खित्तओ णं गामे वा, नगरे वा, अरण्णेवा, खित्तेवा, खलेवा, घरे वा, अंगणे वा, नहे वा कालओ णं समए वा आवलियाए वा, आणपाणुए वा, थोवे वा, खणे वा, लवे वा, मुहुत्ते वा, अहोरत्ते वा, पक्खे वा, मासे वा, उउए वा, अयणे वा, संवच्छरे वा, अन्नयरे वा, दीहकालसंजोए। भावओ णं कोहे वा, माणेवा मायाए वा, लोभे वा, भए वा, हासे वा पिज्जे वा, दोसे वा, कलहे वा, अब्भक्खाणे वा, पेसुन्ने वा, परपरिवाए वा, अरइरईए वा, मायामोसे वा, मिच्छादंसणसल्ले वा (ग्रं० ६००) तस्सणं भगवंतस्स नो एवं भवइ ॥१२०॥

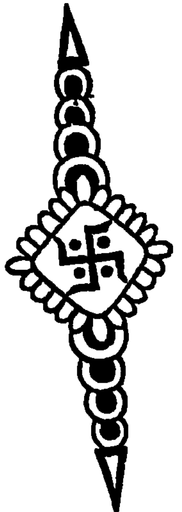
अर्थ :—उन श्रमण भगवान् को किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध ममत्व कहीं भी नहीं था। प्रतिबन्ध चार प्रकार का होता है :—द्रव्य से क्षेत्र से काल से और भाव से। द्रव्य से—स्त्री आदि सचित का, धन आदि अचित्त का, आभूषणादि युक्त मनुष्यों का मिश्र वस्तुओं का ऐसे तीन भेद हैं। क्षेत्र से—ग्राम नगर अरण्य वनोपवनादि, क्षेत्र—धान्योत्पत्ति योग्य भूमि; खल—जहां तृणादि दूर करके धान्यादि निकाले जाते हों,





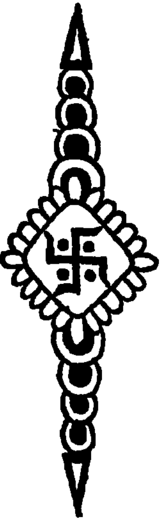
गृह—रहने का स्थान, आँगन—गृह के अन्दर व सामने की खुली भूमि, नभ—आकाश में। काल सम्बन्धी प्रतिबन्ध—समय, आवलिका, श्वासोच्छ्वास स्तोक—सात श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल, घटिका का छठा भाग—क्षण, सात स्तोक प्रमाण लव, सतहत्तर लव या दो घटिका (४८ मिनिट) का मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु अयन संवत्सर-एक वर्ष, अन्यतर—युग पूर्वांग, पूर्व पल्योपम सागरोपम आदि दीर्घकाल का, भाव से—क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान—मिथ्या दोषारोपण, पैशुन्य चुगली, परपरिवाद—निन्दा, अरतिरति, मायामृषावाद और मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) शल्य। इनकी उत्पत्ति के निमित्त मिलने, प्रसंग उपस्थित होने पर किञ्चिद् भी इनकी प्रवृत्ति नहीं थी। वे भगवान् ममत्व रहित थे।

मूल :—से णं भगवं वासावासवज्जं अट्ठ गिम्ह-हेमंतिए मासे गामे एगराइए नगरे पंचराइए वासीचंदण समाणकप्पे, समतिणमणि लेट्ठु कंचणे; समदुक्खसुहे; इहलोग-परलोग अपडिबद्धे, जीवियमरणे अ निरवकंखे, संसार पारगामी, कम्मसत्तुनिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिए एवं च णं विहरइ ॥१२१॥



अर्थ :—वे भगवान् वर्षा ऋतु के चार मास के अतिरिक्त उष्ण व शीतकाल के आठ मासों में ग्राम में एक रात्रि, नगर में पांच रात्रि, रहते थे। वासीचन्दन समान कल्प अर्थात चन्दन काष्ट जैसे वासि-वसूला करोत आदि जो चन्दन को काटते हैं उन्हें भी सुगन्धित बना देता है; वैसे ही भगवान् भी उपसर्ग करने वाले-कष्ट देने वाले को गुणी बना देते थे। तृण-मणि मिट्टी के ढेले और सुवर्ण के प्रति समान बुद्धि रखते थे। सुख-दुःख उनके लिए समान थे, ऐहिलौकिक-पारलौकिक प्रतिबन्ध (इच्छा) रहित थे। जीवन

कल्पसूत्र
२१४



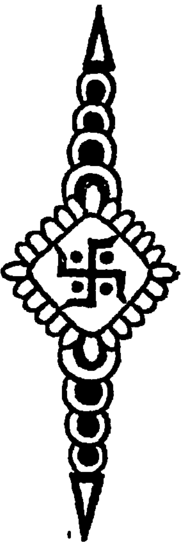
मरण से निरवकांक्ष-इच्छारहित थे। संसार पारगामी थे। कर्म शत्रुओं को नष्ट करने के लिए ही कटिबद्ध हो गये थे, और इस प्रकार से विचरते थे।

मूल :—तस्स णं भगवंतस्स अणुत्तरेणं नाणेणं, अणुत्तरेणं दंसणेणं अणुत्तरेणं चरित्तेणं अणुत्तरेणं आलइणं अणुत्तरेणं विहारेणं, अणुत्तरेणं वीरिएणं, अणुत्तरेणं अज्जवेणं अणुत्तरेणं मद्दवेणं अणुत्तरेणं लाघवेणं, अणुत्तराए खंतोए, अणुत्तराए मुत्तोए, अणुत्तराए गुत्तोए, अणुत्तराए तुट्ठोए, अणुत्तरेणं सच्चसंजमतव सुचरिअ सोवचिअ लफनिव्वाण मग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स दुवालस संवच्छराइं बिइक्कंताइं ॥१२२॥

अर्थ—उन भगवान् के सर्वोत्कृष्ट मति आदि मनःपर्यव पर्यन्त ज्ञान थे, सर्वोत्कृष्ट दर्शन—परमावधि दर्शन अथवा क्षायिक सम्यग् दर्शन था, सर्वोत्कृष्ट यथाख्यात चारित्र था, सर्वोत्तम स्थान-पशु पंडग स्त्री आदि से रहित स्थान मे ठहरते थे। अनुत्तर-उग्र विहार करते थे, सर्वाधिक शक्तिशाली थे, अनुत्तर आर्ज्जव-सरलता थी, सर्वोत्कृष्ट मार्दव-नम्रता थी, संयम पालन में सर्वोत्कृष्ट लाघव (चातुर्य्य-कुशलता) था, अथवा तीन गारव रहित थे। सर्वोत्कृष्ट क्षमा, अनुत्तर मुक्ति-निर्लोभता, उत्कृष्टतम गुप्तियों का पालन, महान् संतुष्टि, और सर्वप्रधान सत्य सयम तप का उत्तम आचरण, इनसे पुष्ट मोक्ष फल वाले निर्वाण मार्ग से आत्मा को भावित करते हुये प्रभु श्रमण भगवान् महावीर के बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

इतने दीर्घ छद्मस्थ-साधनाकाल में भगवान् को मात्र अन्तमूहूर्त्त ही निद्रा प्रमाद हुआ था, शेष समय अप्रमत्त रहे थे। इन द्वादश वर्षों में निम्नलिखित तप किये थे :—

१ छमासी, १, पाच दिन कम छः मासी, ε चौमासी तप, २ तीन मासी, २ ढाई मासी, ६ द्विमासिक तप, २ डेढ़ मासिक तप, १२ मासक्षमण ७२ पक्षक्षमण, भद्र आदि तीन प्रतिमाएं अनुक्रम से दो, चार व

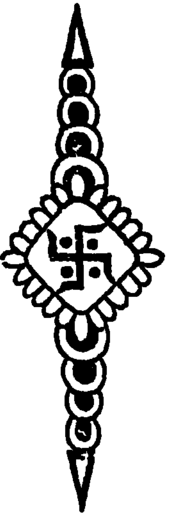


दस दिन की धारण की थी। ये सभी चौविहार त्याग रूप होती हैं। १२ अट्ठम पूर्वक एक रात्रि की १२ प्रतिमाएं धारण की थीं। २२८ छठ—बेले किये। इन सर्व तपस्याओं में पारणे के दिन ३४६ थे। पूरा छद्मस्थ काल १२ वर्ष ६ मास और १५ दिन का था।

अब भगवान् को किस दिन, किस समय और कहाँ, केवलज्ञान केवल दर्शन उत्पन्न हुये उसे सूत्रकार कहते हैं—

सूत्र :—तेरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से गिम्हाणं, दुच्चे मासे चउत्थे पक्खे, वइसाह सुद्धे तस्सणं वइसाह सुद्धस्स दसमोपक्खेणं, पाईण गामिणोए छायाए पोरिसोए अभिनिविट्ठाए पमाणपत्ताए, सुव्वएणं दिवसेणं, विजयेणं मुहुत्तेणं, जंभियगामस्स नगरस्स बहिया उज्जुवालियाए नईए तीरे वेयावत्तस्स चेइअस्स अदूरसामंते सामागस्स गाहावइस्स कट्ठकरणंसि साल पायवस्स अहे गोदोहियाए उक्कडुय निसिज्जाए आयावणाए आयावेमाणस्स छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं हत्थुत्तराहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, परिपुण्णे, केवलवर नाणदंसणे समुप्पन्ने ॥१२३॥

अर्थ :—इस प्रकार प्रभु के साधनाकाल का तेरहवाँ वर्ष चल रहा था। ग्रीष्म ऋतु का द्वितीय मास चतुर्थ पक्ष-वैशाख शुक्ला दशमी के दिन छाया जब पूर्व दिग्गामिनी थी पिछला प्रहर पूर्ण हो रहा था, सुव्रत नामक दिन था, विजय मुहूर्त्त था, जृंभिक ग्राम नगर के बाह्य प्रदेश में ऋजुवालुका नदी के तीर पर, व्यावृत्त नामक यक्ष मन्दिर के समीप, श्यामाक नामक गाथापति (गृहपति) के काष्ठकरण में (क्षेत्र विशेष में) शालवृक्ष के नीचे भगवान् गोदोहिकासन युक्त उकडु बैठे आतापना ले रहे थे।

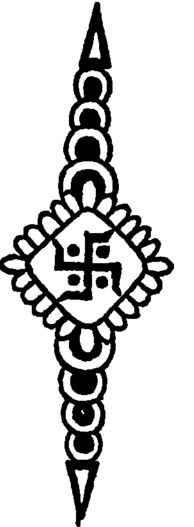


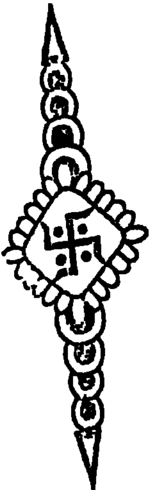
अपानक (चौविहार) छठ (बेला) था, हस्तोत्तरा-उत्तराफाल्गुनि नक्षत्र में चन्द्रमा आ गया था। प्रभु शुल्क ध्यान में लीन थे, 'पृथक्त्व वितर्क सविचार' और 'एकत्व वितर्क अविचार' नामक शुल्क ध्यान के अंगों का चिन्तन करते हुये प्रभु को अनन्त वस्तुओं का ज्ञान कराने वाला सर्वोत्कृष्ट निर्व्याघात, निरावरण कृत्स्न-सम्पूर्ण, परिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान केवल दर्शन समुत्पन्न हुआ।

केवलज्ञान की विशेषता का वर्णन :—

ते णं कालेणं ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे अरहा जाए, जिणे, केवली, सव्वन्नू, सव्वदरिसी, सदेव मणुआसुरस्स लोगस्स परिआयं जाणइ, पासइ, सव्वलोए सव्वजीवाणं आगइं, गइं, ठिइं चवणं, उववायं, तक्कं, मणोमाणसिअं, भुत्तं, कडं, पडिसेवियं, आवीकम्मं, रहोकम्मं, अरहा, अरहस्सभागी, तं तं कालं मणवयकाय जोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्व-जीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१२४॥

अर्थ :—केवलज्ञान की उत्पत्ति होने पर श्रमण भगवान् महावीर अर्हत् हो गये, अर्थात् इन्द्रादिकृत पूजा योग्य बन गये, वे राग-द्वेष रूप शत्रुओ को जीतने से जिन, केवलज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो गये। जिससे वैमानिकादि उर्द्ध दिशागत देव, मध्य लोकस्थित मनुष्यादि एवं अधोलोक वासी असुरादि युक्त समस्त लोक के सर्व द्रव्यों की उत्पादव्यय ध्रौव्य रूप पर्यायों-अवस्थाओं को जानने देखने लगे। इतना ही नहीं किन्तु लोकगत सर्व जीवों की आगति-भावान्तर से आना, गति भवान्तर में जाना, स्थिति-एक शरीर व एक काय में रहना, च्यवन-देवगति से मनुष्यादि में आना, उपपात-देव या नारकी रूप में उत्पन्न होना, उन सर्व जीवों के तर्क-वितर्क, संकल्प विकल्प, रूप मन व मनोगत भावो को, भुक्त आहारादि को कृत किये गये कार्यों को, प्रतिसेवित-इन्द्रियों द्वारा सेवन किये गये विषयादि को, प्रकट या गुप्त रूप से किये गये सभी





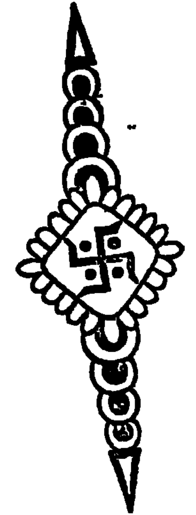
मानसिक वाचिक व कायिक कार्यों को जानने देखने लगे। अर्हत्-अरहः उनसे कुछ गुप्त नहीं रहा, न वे
अब अरहस्स भागी एकान्त में एकाकी रहे क्योंकि जघन्य से एक क्रोड देव सदा सेवा में रहने लगे। त्रिकाल
मे होने वाले मन वचन काया के परिणामों में वर्त्तते सभी जीवों को सभी भावों को जानने देखने लगे।

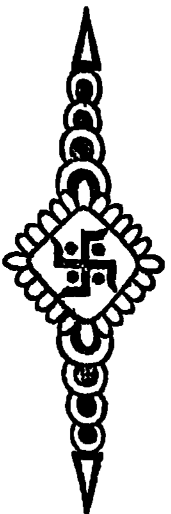
वहा तत्काल इन्द्रादि समस्त चतुर्निकाय के देव-देवीगण उपस्थित हुये, और समवसरण की रचना
की। विरति ग्रहणादि लाभ का अभाव जानते हुये भी प्रभु ने क्षण भर धर्मोपदेश दिया क्योंकि कल्प-
आचार का पालन अनिवार्य होता है सर्वज्ञ को भी करना पड़ता है। "प्रथमदेशना निष्फल हुई" यह
'आश्चर्यक माना गया है।

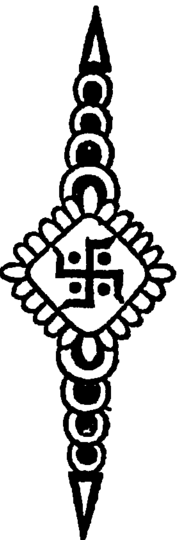
लाभ न होने से भगवान् वहाँ से विहार कर रातोरात चलकर प्राप्तः मध्यमा पापानगरी के बाह्य प्रदेश
महावन में पधारें; देवों ने समवसरण निर्माण किया। प्रभु पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश कर अशोक वृक्ष को
तीन प्रदक्षिणा दे 'नमोतित्थस्स' इस वाक्य से तीर्थ नमस्कार कर पूर्वाभि-मुख हो सिंहासन पर विराज
गये। तीन दिशाओं मे देवों ने प्रभु के प्रतिबिम्ब स्थापित किये। पर्षद् योग्य स्थान में बैठी थी। चतुर्मुख
भगवान् चार प्रकार—दान शील तप भावना रूप धर्म का उपदेश दे रहे थे।

अपापापुरी के निवासी सोमिल ब्राह्मण ने महायज्ञ करने के लिए अनेक देशों के वेदज्ञ विद्वान् उपा-
ध्यायो को आमन्त्रित किया था, यज्ञवाटक-शाला में कई दिनों से यज्ञ हो रहा है। समागत विद्वद् विप्र
गण स्ववासों से यज्ञ में जाने को सज्जित हो रहे हैं, प्रातःकाल का पवित्र और मनोहर समय है; अचा-
नक देव दुन्दुभि की गम्भीर ध्वनि सुन कर हर्षित हो आकाश की ओर दृष्टिपात किया तो देखा देव-
देवीगण विमानो मे बैठे आ रहे है। अत्यन्त हर्ष से रोमाञ्चित होकर परस्पर कहने लगे—अहो! यज्ञ का
प्रभाव तो देखिये आज तो साक्षात् देव देवनाङ्गनाएँ यज्ञ में अपना स्थान व भाग लेने आ रहे हैं।

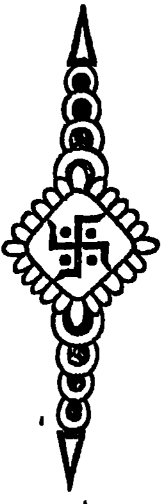
देखते-देखते देव यज्ञशाला का उल्लंघन कर आगे निकल गये, तो हर्ष का स्थान खेद ने ले लिया।





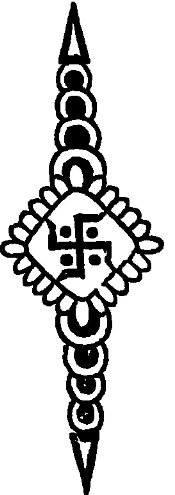


एक दूसरे का मुंह देखने लगे। उधर देवता सर्वज्ञ भगवान् की जय बोलते एक दूसरे के आगे निकलने का प्रयत्न करते शीघ्र पहुँच कर प्रथम दर्शन हम करें ऐसी भावना से दौड़े जा रहे थे। सर्वज्ञ का नाम सुन कर चकित हो गये ! उन में से एक इन्द्रभूति नामक पण्डित को तो ईर्षा होने लगी विचारने लगे :— सर्वज्ञ तो मै हूँ; यह नवीन सर्वज्ञ कोन है ? मनुष्य तो प्राय: मूढ होते हैं, परन्तु देवता भी आज तो मूढ बन गये दिखते है, अतः मुझ सर्वज्ञ को नमस्कार न कर आगे दोडे जा रहे हैं ! अथवा यह कोई ऐन्द्रजालिक दिखता है ! जिसने सर्व मानव देव दानवादि को मूढ बना दिया है ! परन्तु मै अभी उस अभिमानी का अभिमान दूर करूंगा ! ऐसा विचार कर सर्व छात्रवृन्द को जो ५०० थे, साथ चलने का आदेश दे जल्दी से चल पडे। शिष्य समुदाय स्वगुरु की विभिन्न उपाधियां—सरस्वती कण्ठाभरण ! वादिवृन्द-वाद खण्डन ! पण्डित शिरोमणि !—लगाकर जय बोलते साथ चल रहे थे। ज्योंही समवसरण के समीप पहुँचे। मेघ गम्भोर भगवद्वाणी सुनकर आश्चर्य चकित हो विचारने लगे—यह कैसी शब्द ध्वनि है ! समुद्र गर्जन है ! या गगा के प्रवाह का निनाद है ! अथवा वेद ध्वनि है ! चलते हुये समवशरण के प्रथम सोपान पर पांव रखते ही भगवान् के अद्भुत सोम्य तेजःपूर्ण मुखमण्डल के दर्शन हुये। समवसरणादि समृद्धि देखकर चिन्ता करने लगे :—वादी तो बहुत देखे है, किन्तु ऐसा कभी नहीं देखा ! यह कौन है ? ब्रह्मा विष्णु या शिव तो है नहीं ! क्योंकि वैसे रूप रंग आकार प्रकार और शस्त्रादि इसके नहीं है। यह तो कोई देवाधिदेव है ! प्रभु वितराग का सर्वोत्कृष्ट रूप शान्त सुधावर्षी मुखाकृति आदि देखकर सोचा—यह अवश्य सर्वज्ञ होगा ! तभी तो इन्द्रादि देव-देवी गण विनीत भाव से बद्धाञ्जलि हो, इनकी वाणी एकाग्र मन से सुन रहे हैं। मै इनके साथ वाद करने आ गया ! यह मेरी भारी भूल हुई। इनसे जीतना असम्भव है इतने वर्षों का अर्जित यश नष्ट हो जायेगा ! अब यदि यहाँ तक आकर वापिस लोट जाऊंगा तो विश्व में मेरी निन्दा होगी। खैर जो भीहो एकबार चलूँ तो सही ! कदाचित् यह मेरे मन की



चिरशंका—'आत्मा है या नहीं ?' दूर कर दें तो मैं इन्हें सर्वज्ञ मान लूंगा। इस विचार से साहस कर सोपान श्रेणी आरोहण करते प्रभु के समीप पहुँचे त्योंही प्रभु ने—सुधा मधुर वचनों से सम्बोधित किया—देवानुप्रिय ! इन्द्रभूति ! तुम्हारे मन में आत्मा विषयक संदेह है ? 'आत्मा है या नहीं ? ऐसी शंका है ? किन्तु तुम्हारे वेद वाक्यों से ही आत्मा सिद्ध है ! तुम्हे वेद में यह पढ़ कर कि "विज्ञानघन एव एतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय पुन तान्येवानु विनश्यति, न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति" आत्मा नहीं है' ऐसा विश्वास भी निश्चित रूप से नहीं हो रहा और 'है' यह भी निश्चय नहीं कर पा रहे ? क्योकि वेद में यह भी तो है—"सर्वैरयमात्मा ज्ञानमयः, ब्रह्मज्ञानमयः, मनोमयः, वाङ्मयः, कायमयः, चक्षुर्मयः, श्रोत्रमयः, आकाशमयः, वायुमयः, तेजोमयः, अम्मय', पृथ्वीमयः, हर्षमयः, धर्ममयः, अधर्ममयः, ददमयः,' । इति । पुनः जिसका जैसा आचरण हो उसका वैसा ही कहा जाता है ! सदाचारी को साधु, पाप करने वाले को पापी पुण्यकार्य से पुण्य, पापकार्य से पाप होता है ।' ऐसा भी वेद में विधान है। तुमने वेदाध्ययन किया है ; परन्तु वेद पदो का अर्थ समझ नहीं पा रहे ? यह आत्मा शरीरव्यापी होते हुये भी शरीर से पृथक् चेतना स्वरूप है। अहं प्रत्ययसिद्ध है। सुख-दुःख का अनुभव जीव को ही होता है। इत्यादि सुनकर इन्द्रभूति की शंका जाती रही। आत्मज्ञान होने से सम्यग् दर्शन हो गया। हृदय में प्रकाश की किरणें चमकने लगी। वे आनन्दातिरेक से गद्-गद् हो, प्रभु के चरणों में श्रद्धावनत हो गये। वैराग्यवासित हो प्रव्रज्या देने की प्रार्थना की। इन्द्र महाराज वासक्षेप का थाल लेकर उपस्थित हुये प्रभु ने ५०० छात्रों सहित इन्द्रभुति को दोक्षा दी। 'करेमिभंत्ते' का उच्चारण करवाया।

इन्द्रभुति गौतमगोत्रीय वैदिक विप्र थे, गुर्वर ग्राम निवासी पं० वसुभूति व पृथ्वी माता के पुत्र थे। प्रकाण्ड पण्डित के नाम से प्रसिद्ध थे। इन्द्रभूति के प्रव्रज्या लेने का संवाद क्षण में ही सर्वत्र फैल गया। अग्निभूति (इन्द्रभूति के लघुभ्राता) ने सुना तो क्रोध से कांपने लगे। बोले—यह कोई ऐन्द्रजालिक है !

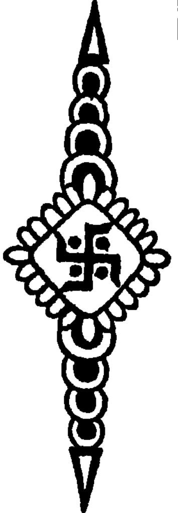


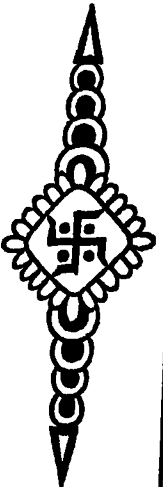
भाई को छल से पराजित कर शिष्य बना लिया है ! मै अभी उसको इस कार्य का फल चखाता हूँ। चलो ! बड़े भाई को वापिस लेकर आऊँगा ! देखूंगा वह कैसा ढोंगी है ! यदि मेरे प्रश्न का उत्तर देकर मेरी शंका दूर कर देगा तो मै भी शिष्य बन जाऊँगा। ऐसा कह कर वे भी ५०० विद्यार्थी गण को साथ ले रवाना हो गये। समवसरण में प्रभु के पास पहुँचे। श्रमण भगवान् ने गोत्र सहित नामोच्चारण कर सम्बोधित किया और तुम्हें 'कर्म है या नहीं' ऐसी शका है। महानुभाव ! कर्म से ही सुख-दुःखादि की प्राप्ति होती है। क्रिया के अनुसार शुभाशुभ कर्म का बन्ध होता है। भोगरूप में प्रत्यक्ष फल दिखाई पड़ता है फिर शका कैसी ? अग्निभूति यह सुनकर चकित हो गये। श्रद्धा से चरणों में झुक गये, शिष्यत्व स्वीकार कर लिया।

इसी प्रकार ५०० छात्रो के परिवार युक्त वायुभूति पण्डित भी आये। उन्हे शंका थी-जीव और शरीर एक ही है या पृथक् ? वे भी शंका दूर हो जाने से दीक्षित हो गये। चौथे पं० व्यक्त भी ५०० शिष्यों सहित आये। उन्हें पंचभूत विषयक सन्देह था।

पांचवें सुधर्म पं० को यह सदेह था कि जैसा इस भव में मनुष्यादि है वह परभव में भी वही बनता है या अन्य देव, नारक, तिर्यंचादि में जाता है ? इनके साथ भी ५०० छात्र थे। छठे व्यक्त पण्डित भी ३५० शिष्य परिवार सहित आये थे। उन्हें 'जीव के बन्ध मोक्ष' सम्बन्धी संदेह था। सातवें मौर्यपुत्र उपाध्याय भी ३५० छात्रयुक्त थे। उन्हे 'देव हैं या नहीं' शका थी। आठवें अकम्पित ४०० छात्रगण सहित थे। इन्हे नरक विषयक सन्देह था। नववे अचलभ्राता पं० के ४०० शिष्य थे। उन्हें पुण्य पाप में शका थी। दसवे मेतार्य भी ४०० विद्यार्थियों के अध्यापक थे। उन्हे परलोक में ही सन्देह था। इग्यारहवें प्रभास के ४०० शिष्य थे। उन्हे मोक्ष विषयक शंका थी। ये सभी क्रमशः भगवान् महावीर के पास आये और शंकाएँ दूर हो जाने से शिष्य परिवार सहित दीक्षित हुए।

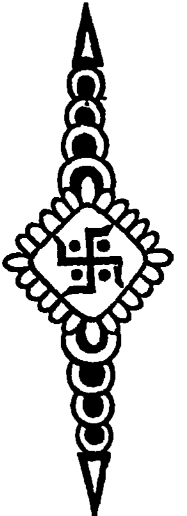
इन्द्रभूति आदि सभी प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्द्रभूति ने प्रश्न किया—कि तत्त्वम् ? प्रभु ने कहा—'उप्पन्ने-





लोक तो परिमित-चतुर्दश रज्ज्वात्मक है, यदि उत्पत्ति
इवा'। यह उत्तर सुनकर गोतम ने विचार किया--लोक तो परिमित-चतुर्दश रज्ज्वात्मक है, यदि उत्पत्ति
ही होती रहे तो, क्षणमात्र में ही भर जायेगा। पुनः प्रश्न किया—भन्ते! किं तत्त्वम् ?प्रभु बोले—'विगमेइवा'।
सुनकर गोतम पुनः चिन्तन करने लगे—अहो! उत्पत्त्यनन्तर विगम-नाश भी होता रहता है; किन्तु फिर
अविनाशी क्या स्थिति है! बद्धांजलि हो पुनः प्रश्न किया—भन्ते! उत्पत्ति और विनाश की लीला चलती
रहती है तब स्थिर व अविनाशी पदार्थ क्या जगत् में नहीं हैं? प्रभु की वाणी मुखरित हुई—'किंचिअ
धुएइ वा' इन्द्रभूति विचार लीन हो गये, पर तत्व हृदयङ्गम नहीं हो सका। प्रभु ने कहा—गोतम! पर्यायों
का उत्पत्ति विनाश होता है मूल द्रव्य ध्रुव-निश्चल व अविनाशी रहते हैं। जगत् में छ द्रव्य है—धर्मास्ति-
काय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। इन सभी के पर्याय,
उत्पत्ति व विनाशशील हैं, द्रव्य ध्रुव है। इन्हीं का आवर्त्तन प्रत्यावर्त्तन व्यवहार होते रहने से लोक की
जगत् सज्ञा सार्थक है। त्रिपदी को भगवान् ने निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया—एक राजा था, उसके
एक पुत्र और एक पुत्री थी। एकबार पुत्री ने कहा—पिताजी मुझे सोने का घडा बनवा दीजिये? राजा ने
बनवा दिया। राजकुमार को ईर्षा हुई, वह बोला—पिताजी, बहिन को सुवर्ण घट बनवा दिया, उस घट
को तुडवा कर मुझे स्वर्ण-मुकुट बनवा दीजिये! राजा ने वैसा ही किया। पुत्री को दुःख हुआ, पुत्र के
हर्ष की सीमा नहींथी;किन्तु राजा को न विषाद था न हर्ष क्योकि सुवर्ण तो विद्यमान था ही, मात्र आकृति
पलट दी गई थी। प्रभु बोले—गोतम! यही वास्तविक स्थिति है। पुद्गल का उत्पत्ति विनाश दिखायी
पडता है वस्तुए-शरीरादि बनते बिगड़ते हैं; जीव तो ध्रुव है, कर्मानुसार विभिन्न शरीर धारण करते हुये भी
जीव का नाश नहीं होता। ऐसे ही सभी द्रव्य ध्रुव हैं। मूल द्रव्य का नाश नहीं होता। पर्यायों के परिवर्त्तन
की सज्ञा उत्पत्ति और विनाश है।

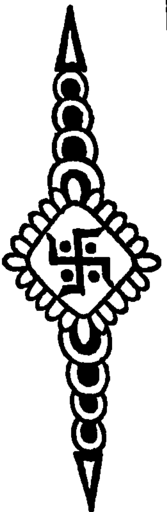
इस त्रिपदी से गोतम आदि ११ नवदीक्षित मुनियों ने प्रत्येक ने द्वादशांगी की रचना की। गणधरो



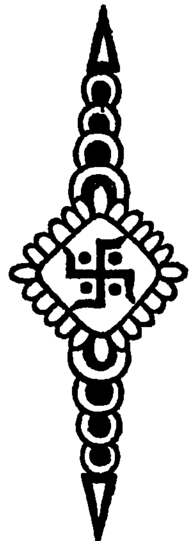
कल्पसूत्र
२२२

की स्थापना हुई। द्वादशांगी रचने वाले गणधर लब्धि—शक्ति विशेष से सम्पन्न होते हैं।

चन्दनबाला भी प्रभु वाणी सुनकर प्रतिबुद्ध हो प्रव्रजित हुई। उसी के साथ कई प्रतिबुद्ध नर-नारी दीक्षित हुये। जो पंच महाव्रत धारण में असमर्थ थे, उन्होने द्वादशव्रत रूप गृहस्थ योग्य सागार धर्म धारण किया। इस प्रकार चतुर्विध संघ की स्थापना हुई। यह सब द्वितीय समवसरण में हुआ, प्रथम समवसरण में संघ को स्थापना नहीं हुई थी, अतः यह आश्चर्यक कहलाया; क्योंकि प्रभु देशना अव्यर्थ होती है।



अब श्रमण भगवान् महावीर पृथ्वी तल को अपने चरण न्यास से पवित्र करते हुये विचरने लगे। तत्कालीन यज्ञहिसा, जातिवाद, स्त्री पारतन्त्र्य, बालतप, मद्यमांसभक्षण, परस्त्रीगमन, पापर्द्धि (शिकार) मनुष्य-विक्रय, अन्याय, अनाचार, व्यभिचार आदि के फल दारुण दुःखप्रद बतलाये। क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद, विनयवाद, नास्तिकवाद, क्षणिकवाद, नियतिवाद, अनिश्चिततावाद, ईश्वरकर्तृत्ववाद अद्वैत-वाद आदि विभिन्न प्रकार के दार्शनिक वादों को निरर्थक सिद्ध करते हुये जनता को आत्मवाद लोक-वाद कर्मवाद और क्रियावाद का सही रूप समझा कर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मुक्ति का मार्ग सिद्ध किया, इनकी आराधना से ही जीव दुःखों का अन्त कर सिद्ध बुद्ध और सदाकाल के लिए मुक्त बन सकता है।



स्थावर व त्रस जोवों की हिंसा, असत्य, चौरी, अब्रह्मसेवन, परिग्रह, क्रोध मान माया लोभ राग-द्वेष कलह आदि १८ पापों का आचरण करते हुये अज्ञानी जीव दुःख के भागी बनते है। अज्ञान मिथ्यात्व विषय कषायादि ही जीव को दुर्गति में ले जाते हैं। ससार में सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। सभी सुख की अभिलाषा रखते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। अतः प्राणिमात्र की हिंसा करना, उन्हे किसी भी प्रकार से शारीरिक या मानसिक कष्ट देने का विचार मात्र भी आत्मा के दुर्गतिपतन का कारण है।

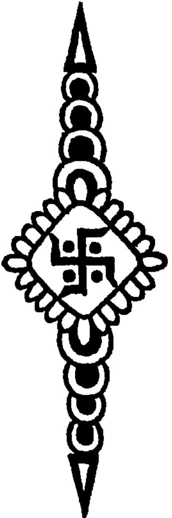
शरीरादि सभी पदार्थ नाशवान् है, अतः अविनाशी आत्मा कैसे सुखी बने व रहे इसका चिन्तन करें। अहिंसा संयम और तप ही वास्तविक धर्म है। इन्हीं के आचरण से आत्मा कर्म मुक्त बन सदा के लिये सुखी-अमर बनता है। जन्म मरण के चक्र से छूटने का यही उपाय है।

प्रभु के इस उपदेश से कई राजागण रानियां राजकुमार राजकन्याएँ श्रेष्ठिसमूह सेठानियाँ श्रेष्ठिकुमार कुमारियाँ प्रतिबुद्ध हो श्रमण-श्रमणी श्रावक-श्राविका बने। हजारों साधु-साध्वियाँ प्रभु का सन्देश लेकर ससार के विभिन्न स्थानों में विचरण कर लोगों को प्रतिबोध देने लगे। भगवान् के संघ में चारों वर्णों के व्यक्ति नर-नारी दीक्षित होते थे। प्रभु ने वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं कर्म से मानी थी। प्रभु के साधु-साध्वी ज्ञानी संयमी व घोर तपस्वी थे।

इस प्रकार ३० वर्ष तक सर्वज्ञ बनकर निरन्तर उपदेश देते हुए प्रभु भारतवर्ष में विचरे। कहाँ-कहाँ चातुर्मास किये ? इसका विवरण यों है :—

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समए णं समणे भगवं महावीरे अट्ठीय-गामं नोसाए पढमं अंतरावासं वासावासं उवागए, चंचंपं च पिट्ठचंयं च नोसाए तओ अंतरावासे वासावासं उवागए, वेसालिं नगरिं वाणियगामं च नोसा ए दुवालस अंतरावासे वासावासं उवागए, राय-गिहं नगरं नालंदं च बाहिरियं नोसाए चउद्दस अंतरावासे वासावासं उवागए, छ मिहिलाए, दो भद्दियाए, एगं आलंभिआए, एगं सावत्थीए पणि अ भूमोए एगं, पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुग सभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए ॥१२५॥

अर्थ :—उस काल उस समय में अर्थात् अवसर्पिणी के चौथे आरे के थोड़ा शेष रहने पर श्रमण भगवान्

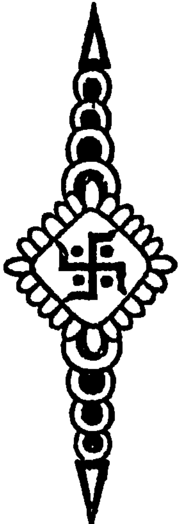


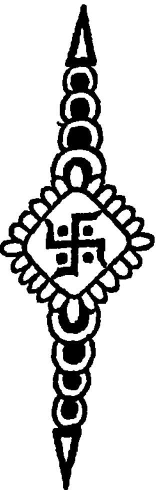
महावीर प्रभुने अस्थिक ग्राम के समीप वेगवती नदी के किनारे शूलपाणि यक्ष के मन्दिर में प्रथम चातुर्मास किया। चम्पा व पृष्ठचम्पा नगरी में तीन चातुर्मास, वैशाली नगरी के पास वाणिज्य ग्राम में बारह चातुर्मास, राजगृह के नालन्दा में चौदह वर्षावास रहे। मिथिला में छह चातुर्मास, भद्रिका में दो, आलम्भिका में एक, श्रावस्ती नगरी में एक, वज्रभूमि में एक, अन्तिम चातुर्मास मध्यमा पावापुरी में हस्तिपाल राजा की जीर्ण रज्जुक (शुल्क) शाला में किया।

सूत्र :—तत्थ णं जे से पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्सरण्णो रज्जुग सभाए अपच्छिमं अंतरावासं वासावासं उवागए ॥१२६॥

अर्थ :—वहाँ जहाँ मध्यमा पावा में हस्तिपाल राजा की रज्जुक (शुल्क) सभा में अन्तिम वर्षावास विराज रहे थे।

सूत्र :—तस्स णं अंतरावासस्स अणंतरं वासावासस्स जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तिअबहुले तस्स णं कत्तिय बहुलस्स पन्नरसो पक्खेणं जा सा चरमारयणी, तं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए, विइक्कंते समुज्जाए छिन्न जाइजरामरण बंधणे, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, अंतगडे, परिनिव्वुडे, सव्वदुक्खपहीणे। चंदे नामं से दुच्चे संवच्छरे, पीइवद्धणे मासे, नंदीवद्धणे पक्खे, अग्गिवेसे नामं से दिवसे उवसमित्ति पवुच्चइ, देवाणंदा नामं सा रयणी निरतित्ति पवुच्चइ, अच्चे लवे, पाणे मुहुत्ते, थोवे सिद्धे, नागे करणे, सव्वट्ठसिद्धे मुहुत्ते, साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागए णं कालगए विइक्कंते जाव सव्वदुक्खपहीणे ॥१२७॥



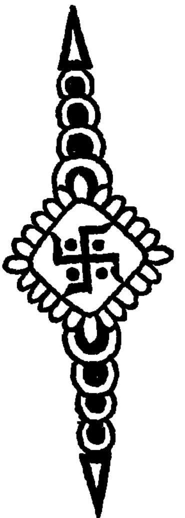


अर्थ :—उस वर्षावास में ,चतुर्थ मास, सप्तम पक्ष अर्थात् कार्त्तिक वदि अमावस्या पक्ष की व भगवान् को जीवन की भी चरम-अन्तिम रात्रि थी। उस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर वर्द्धमान कालधर्म को प्राप्त हुये। उनकी भवस्थिति और कायस्थिति समाप्त हो गयी अर्थात् संसार को उल्लंघन कर दिया। उन्होंने जन्म जरामरण के बन्धन को छिन्न कर दिया-काट दिया; सिद्ध बुद्ध मुक्त, अन्तकृत्-समस्त दुःखों का अन्त करने वाले, परिनिवृत्त-अर्थात् समस्त कर्म सन्ताप से रहित, शारीरिक व मानसिक दुःखों से रहित हो गये। तब दूसरा चन्द्र संवत्सर था। प्रीतिवर्द्धन मास, नन्दीवर्द्धन पक्ष और अग्निवेश्या नामक दिन था, जिसका अपर नाम उपशम भी कहा जाता है। देवानन्दा नामक रात्रि थी उसका द्वितीय नाम 'निरति' भी है। अर्च्यलव, मुहूर्त्त प्राण, सिद्धस्तोक, नागकरण, दिन रात के तीस मुहूर्त्तों में से उनतीसवाँ सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त्त था। चन्द्रमा का योग स्वातिनक्षत्र में आ गया था। उस समय भगवान् कालगत हुये। अर्थात् शरीर त्याग कर मुक्त हो गये उनके सर्व दुःख प्रणष्ट प्रक्षीण हो गये।

सूत्र :—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावोरे कालगए, जाव सव्व दुक्खपहोणे सा णं रयणो बहूहिं देवेहिं देवोहिं य ओवयमाणेहिं य उप्पयमाणेहिं य उज्जोविया आवि हुत्था ॥१२८॥

अर्थ :—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ वे यावत् सर्व दुःख प्रहीण हुये, वह रात्रि बहुत से देव-देवियों के स्वर्ग से आने और अग्निसंस्कार के लिए चन्दन काष्ठादि सामग्री लाने को पुनः आकाश में उडने के कारण अमावस्या होने पर उद्योतित हो रही थी अर्थात् प्रकाश युक्त थी।

सूत्र :—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावोरे कालगए जाव सव्वदुक्ख पहीणे सा णं



रयणी बहूहिं देवेहिं य देवीहिं य ओवयमाणेहिं उप्पयमाणेहिं य उप्पिंजलगभूआ कहकहगभूआ आवि हुत्था ॥१२९॥

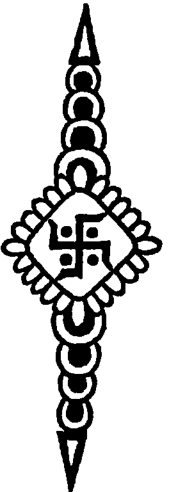
अर्थ :—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर कालगत हुये यावत् सर्व दुःख प्रहीण हुये, वह रात्रि बहुत से देव-देवियों के स्वर्ग से उतरने और पुनः जाने के कारण उत्पिंजलक भूता-देव-देवियों के प्रकाशमय शरीर से पिंजरवत् और कोलाहल पूर्ण बन गई थी।

सूत्र :—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्वदुक्खपहीणे तं रयणिं च णं जिट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स अणगारस्स अंतेवासिस्स नायए पिज्जबंधणे वुच्छिन्ने, अणंते अणुत्तरे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने ॥१३०॥

अर्थ :—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ वे यावत् सर्व दुःख प्रक्षीण हुये; उसी रात्रि को भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य व अन्तेवासी गोतम गोत्रीय इन्द्रभूति अणगार का ज्ञातपुत्र-वर्द्धमान के साथ जो प्रेमबन्धन था, वह टूट गया और उन्हे अनन्त-अनन्त पदार्थ ग्राहक, सर्वोत्कृष्ट श्रेष्ठतम केवलज्ञान व केवल दर्शन समुत्पन्न हो गये। वे सर्वज्ञ बन गये।

गौतम स्वामी को कैवल्य प्राप्ति

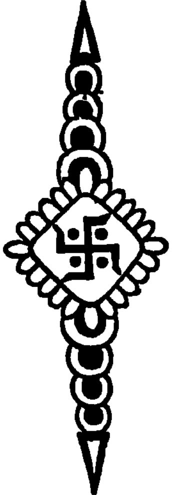
इन्द्रभूति गोतम वज्रर्षभनाराच संघयण वाले, समचतुरस्र सस्थान युक्त थे। जब से दीक्षित हुये तब से छट्ठ तप धारक महातपस्वी और द्वादशाङ्गी निर्माता थे महातप के प्रभाव से उन्हे आमर्षौंध आदि अनेक लब्धियाँ थी, वे चार ज्ञान सम्पन्न थे, तेजोलेश्या लब्धि के संक्षेपक श्रुतकेवली थे। अत्यन्त प्रभावशाली थे, अमोघ धर्मोपदेशक थे। जिन-जिन को दीक्षा देते वे केवलज्ञानी बन जाते थे, किन्तु उन्हें स्वयं को

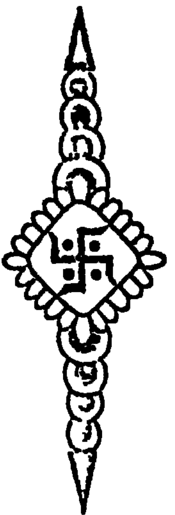


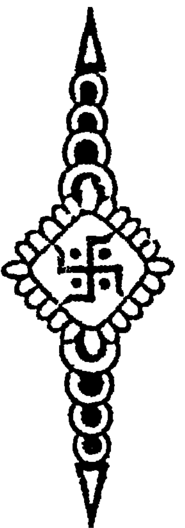
केवलज्ञान नहीं होता था; क्योंकि भगवान् महावीर के साथ उनका अनन्य स्नेह था। ऐसी स्थिति में वे विचारमग्न हो जाते "मुझे केवलज्ञान क्यों नहीं हो रहा ?" एक दिन पूछा—भन्ते ! मुझे केवलज्ञान क्यों नही हो रहा ? भगवान् ने कहा—मेरे साथ स्नेह है, वही बाधक बन रहा है, इसे त्याग दो तो हो जाय ! गोतम बोले—स्नेह अखण्ड रहे, मुझे केवलज्ञान नही चाहिये। एक बार भगवान् से सुना-"जो अपनी लब्धिशक्ति से अष्टापद तीर्थ की यात्रा करे, वह चरम शरीरी अर्थात् मोक्ष गामी होता है" भगवान् से आज्ञा ले अष्टापद तीर्थ की यात्रार्थ गये। अष्टापद के आठ सोपान हैं। एक-एक सोपान एक-एक योजन ऊँचा है। साधारण व्यक्ति के लिये वह स्थान अगम्य है। वहां प्रथम सोपान पर कौण्डिन्य नामक तपस्वी अपने ५०० शिष्यों सहित तप कर रहे थे। वे सभी एकान्तर उपवास करते व पारणे में केवल फल खाते थे। दूसरे सोपान पर दिन्न तापस ५०० शिष्यों सहित छट्ठ तप व पारणे में मात्र स्वयंपतित सूखे पत्र फलादि लेते थे। तृतीय सोपानवर्त्ती तेले के तप युक्त और पारणे में केवल सूखी शेवाल, वह भी बिल्ली के पाव नोचे आवे जितनी लेते तथा तीन चुल्लू पानी पीकर ही आचार्य शैवाल अपने ५०० शिष्यों सहित घोर तपस्या कर रहे थे। सभी विभिन्न योगासनो से आतापना लेते, शीत सहन करते, ध्यान साधना रत रहते थे।

भगवान् गोतम गणधर उनके देखते-देखते अपनी लब्धि से व सूर्य किरणों का अवलम्बन ले ऊपर चढ़ गये। ऊपर भरत चक्रवर्ती के बनाये सिंहनिषद्या प्रासाद मे विराजमान स्व-स्व लाञ्छन वर्ण व शरीरोच्छ्राय प्रमाण युक्त श्री ऋषभादि चौवीस तीर्थकरों के बिम्बो को यथाविधि नमस्कार चैत्यवन्दन स्तवनादि किया और उस दिन उपवास पूर्वक प्रासाद से बाहर अशोक वृक्ष के नीचे रहे शिलापट्ट को प्रमार्ज्जन कर वहीं रहे, रात्रि में भावि वज्रस्वामी के जीव तिर्यग्जृम्भक देव को प्रतिबोध दिया।

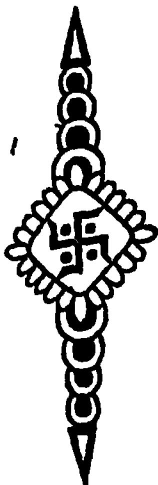
प्रातःकाल देवदर्शन कर नीचे उतरे, सोपान स्थित तापसगण ने उन्हे चढते-उतरते देखा तो वे





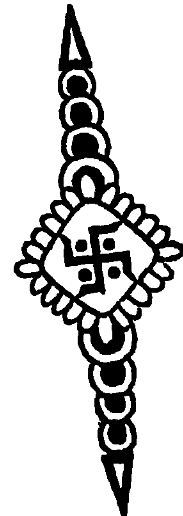


अत्यन्त प्रभावित हुये, विचारने लगे—अहो ! हम कई वर्षों से कठोर तप कर रहे हैं; शरीर तपःकृश हो गया है; तब भी ऐसी शक्ति उत्पन्न नहीं हुई कि ऊपर तक चढ़ सकें ! ये महानुभाव शरीर से हृष्ट-पुष्ट होते हुये भी हमारे देखते-देखते चढ गये और वापिस भी उतर आये। हम इनके शिष्य बनें तो उत्तम हो ! वे सब स-सम्भ्रम उठ खडे हुये और वन्दन किया तथा शिष्य बनाने की सविनय प्रार्थना की। श्री गोतम गणधर ने प्रार्थना स्वीकृत कर उन्हे दीक्षित किया। 'किस वस्तु से पारणा करावे ?' ऐसा पूछा तो वे सब बोले परमान्न (क्षीर) से। गोतम प्रभु एक पात्र में समीपस्थ ग्राम से क्षीर ले आये और अपनी अक्षीण महानसी लब्धि के प्रभाव से एक पात्र स्थित क्षीर से ही १५०३ तापस शिष्यों को पारणा करा दिया। तापस यह सब देख-२ कर अपने गुरुदेव के प्रति अत्यन्त श्रद्धाशील हो आत्म-निमग्न हो गये। तृतीय सोपान के ५०१ को तो क्षीर से पारणा करते-२ केवलज्ञान हो गया। मानो क्षीर के मिष गोतम ने केवलज्ञान प्रदान कर दिया हो। इतने बडे शिष्य समुदाय सहित गोतमस्वामी महावीर के पास चले। समवसरण की अद्भुत रचना देखकर द्वितीय सोपान वाले ५०१ तपस्वियों को केवलज्ञान हो गया और प्रथम सोपान के ५०१ को भगवान् की वाणी सुनते सोपानों की श्रेणी चढते क्षपक श्रेणी भी चढ़ने लगे जिससे वे भी सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये और सभी १५०३ सर्वज्ञ केवलियों की सभा की ओर जाने लगे, गोतमस्वामी ने देखा तो बोले—महानुभावो ! उधर कहाँ चले ? पहले प्रभु को वन्दन तो करो ? तब भगवान् ने कहा—गोतम ! केवलज्ञानियों की आशातना न करो ! ये सब सर्वज्ञ हैं ! सुनकर गोतम बोले--भगवन् ! ये सब नवदीक्षित केवली हो गये ! मुझे केवलज्ञान क्यों नहीं हो रहा ? प्रभु ने कहा—तुम हम अन्त में समान बन जायेंगे, खेद न करो ! मेरे साथ स्नेह छोड़ दो वो तुम्हे भी केवलज्ञान हो जाय ! गोतम ने कहा—मुझे केवलज्ञान नहीं चाहिये, आपके प्रति अखण्ड भक्ति स्नेह बना रहे, यही अभीष्ट है। ऐसे गुरुभक्त थे गोतम। प्रतिबोध देने में तो इतने कुशल थे कि छः वर्ष के बालक अतिमुक्त राजकुमार भी थोडी देर के



वर्षाकालीन छोटे
संसर्ग व सामान्य बातों से प्रतिबुद्ध हो, दीक्षित हो गया और स्थण्डिल भूमि स्थित एक लगा—
से नाले में बाल चापल्यवश हो छोटी काचली तिराने लगा, मुनिजन निवृत्त होकर आये तो कहने
देखिये। मेरी नाव तिर रही है! और जब भगवान् के पास आकर मुनियों ने शिकायत की तो ईर्यापथिकी
आलोचना करते अतिमुक्त कुमार को केवलज्ञान हो गया।

भगवती सूत्र में गोतम स्वामी के हजारों प्रश्नों का उत्तर भगवान् महावीर ने दिया है। अपने निर्वाण
का समय समीप जान भगवान् ने गोतम को देवशर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने निकटस्थ ग्राम में
भेज दिया था; उसी निशा में भगवान् का निर्वाण हो गया। आकाश में देवतागण विलाप करते जा रहे
थे; प्रभु के निर्वाण का शब्द सुने तो उन पर मानों वज्रपात हो गया। वे बालक के समान रोने लगे और
विलाप करते हुये कहने लगे :—हे प्रभो! आपने क्या किया? अन्तिम समय में मुझे दूर भेज दिया, क्या
मै मुक्ति जाने से रोकता था! बालक के समान आपके साथ चलने का आग्रह करता था, या आपसे
केवलज्ञान माँगता था सो आपने दूर किया! हा! अब मेरे प्रश्नों का उत्तर कौन देगा? बार-बार
गोतम! गोतम! कह कर मेरे संशय दूर करेगा! हा! हा!! यह क्या हो गया! भरतभूमि का सूर्य अस्त
हो गया! पुनः अरे! वे तो वीतराग थे! मैं भी कितना मूर्ख हूँ! इतना श्रुतज्ञानी और चार ज्ञानवाला
होकर भी मोहग्रस्त हो गया! इस संसार में सभी के लिए मृत्यु अनिवार्य है! एक दिन आयुपूर्ण होने
पर जीव को शरीर का परित्याग अवश्य करना पड़ता है। भले वह सामान्य प्राणी हो अथवा महाविभूति
तीर्थंकर! मुझे भी एक रोज त्यागना होगा! हे आत्मन्! जाग्रत हो? स्व में तन्मय बन जा!
आत्मा के अतिरिक्त सब पर जड़ हैं! अशाश्वत और अनित्य हैं! और गोतम भगवान् क्षपकश्रेणी
पर आरूढ़ हो गये। उन्हें अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में केवलज्ञान हो गया। देव दुन्दुभि का निनाद होने लगा।

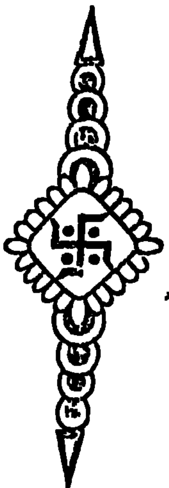


प्रातःकाल हो चुका था। इन्द्रादि देव देवी समूह उपस्थित हो गये, केवलज्ञान का महोत्सव मनाया। गोतम पावापुरी पधारे।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र में लिखी विधि के अनुसार भगवान् महावीर के दिव्य शरीर को देवेन्द्रादि ने स्नान करा कर गोशोर्ष चन्दनादि से विलेपन किया। वस्त्रालंकारादि से सुशोभित कर एक मनोहर शोविका में विराजमान किया। देवेन्द्रों ने शोविका अपने कन्धों पर उठायी, अग्नि-संस्कार के लिए ले चले। एक स्थान पर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से चिता बना कर त्रैलोक्य पूज्य भगवान् के शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया। भगवान् की दाढ़ें आदि अस्थियाँ व राख अपने-२ अधिकार के अनुसार इन्द्रादि देवगण ने लेली वे अपने-अपने विमान स्थित रत्न पेटियों में रखने और पूजा करने ले गये।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के तत्काल पश्चात् शीघ्र गोतम स्वामी को केवलज्ञान हो जाने से खेद और हर्ष साथ ही हो गया। श्री वीर प्रभु के निर्वाण समय देवता मेरुपर्वत से रत्नदीपक लेकर आये थे; क्योंकि अमावस्या की तमिस्रा थी। रत्नालोक होने से लोक में दीपावली[1] पर्व प्रसिद्ध हो गया। सर्व देवों व मानवों ने गोतम स्वामी को वन्दना की। द्वितीया के दिन सुदर्शना ने अपने भ्राता श्री नन्दीवर्द्धन नृपति को अपने घर बुला कर शोक दूर करने के लिये भोजन कराया था। शोक दूर करवाया था; अतः वह दिन भाई दूज के नाम से प्रवर्त्तित हो गया। ऐसी किंवदन्ती है।

सूत्र :—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्व दुक्खपहीणे तं रयणिं च णं नव मल्लई, नव लिच्छइ, कासो कोसलगा अट्ठारस्स वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोयं पोसहोववासं पट्ठविंसु, गए से भावुज्जोए दव्वुज्जोअं करिस्सामो ॥१३१॥



अर्थ—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर देव का निर्वाण हुआ, उस रात्रि को काशी व कोशल देश के नवमल्ल राजाओं ने (आठ पहरी) प्रौषधोपवास किया था। ये गणराज्यों के अधिपति थे। (ये गणराज्य इतिहास प्रसिद्ध है) "भगवान् के निर्वाण से भावोद्योत तो नहीं रहा, अब इस दिन द्रव्योद्योत करेंगे" ऐसा निर्णय किया (सम्भवतः प्रातः पौषध पारकर ऐसा निर्णय किया होगा; क्योंकि पौषध में तो ऐसा विचार भी करने का निषेध है)

सूत्र :—जं रयणिं च णं समणे जाव सव्व दुक्खपहीणे, तं रयणिं च णं खुद्दाए भासरासी नाम महग्गहे दोवाससहस्सठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते ॥१३२॥

अर्थ :—जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ यावत् सर्वदुःख प्रक्षीण होगये; उस रात्रि को क्षुद्र-नीच, अठ्यासी ग्रहों में से तीसवाँ भस्मराशि नामक महाग्रह जो दो हजार वर्ष पर्यन्त एक ही राशि में रहता है, भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र में संक्रमित हुआ। अर्थात् आया।

सूत्र :—जप्पभिइं च णं से खुद्दाए भासरासो महग्गहे दोवाससहस्सठिई समणस्स भगवओ महावीरस्स जम्मनक्खत्तं संकंते, तप्पभिइं च णं समणाणं निग्गंथाणं निग्गंथीणं य नो उदिए पूआ सक्कारे पवत्तई ॥१३३॥ जया णं से खुद्दाए जाव जम्मनक्खत्ताओ विइक्कंते भविस्सइ, तया णं समणाणं निग्गंथाणं य उदिए उदिए पूआ सक्कारे भविस्सइ ॥१३४॥

अर्थ :—जब तक श्रमण भगवान् महावीर के जन्म नक्षत्र पर दो हजार वर्ष की स्थितिवाला भस्मराशि महाग्रह रहेगा तब तक श्रमण निग्रन्थों व निग्रन्थिनियों का उदय व पूजा सत्कार नहीं होगा।

१—लौकिक पर्व दीपावली को हिन्दू धर्मवाले श्रीरामराज्याभिषेक से सम्बन्धित मानते है। 'तत्त्वं तु केवली गम्यम्'।

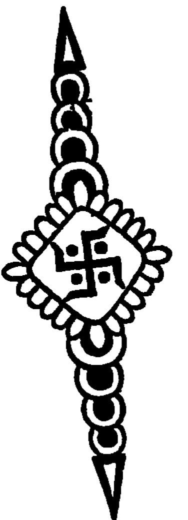
जब वह क्षुद्र महाग्रह जन्म नक्षत्र पर से हट जायगा तब श्रमण साधु-साध्वियो का अत्यन्त उदय व पूजा सत्कार होगा।

निर्वाण से पूर्व इन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की थी कि 'भन्ते! दो घडी और आयु बढ़ालें तो श्रीमत् की दृष्टि पड़ने से यह दुष्टग्रह निस्तेज शान्त हो जाय। तब भगवान् ने कहा "इन्द्र! नेयभूयं, नेयं भव्वं, नेयं भविस्सइ" अनन्त वीर्य शक्तिवाले तीर्थंकर भी कोई आयु बढाने में न भूतकाल में समर्थ थे, न वर्त्तमान में हैं, न भविष्य में होंगे। इस विषयक एक दोहा भी प्रसिद्ध है :—

"घड़ी न लब्भइ अग्गली, इ दह अग्गइ वीर।
इमजाणो जिउ धम्मकरि, जांलगि वहइ सरीर ॥१॥"

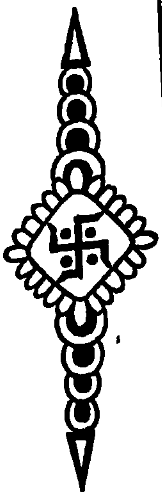
सूत्र :—जं रयणिं च णं समणे भगवं महावीरे कालगए जाव सव्व दुक्खपहीणे, तं रयणिं च णं कुंथू अणुद्धरी नामं समुप्पन्ना, जा ठिआ अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य नो चक्खुफासं हव्व मागच्छइ, जा अठिआ चलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य चक्खुफासं हव्व मागच्छइ ॥१३५॥ ज पासित्ता बहुहिं निग्गंथेहिं निग्गंथीहिं य भत्ताइं पच्चक्खायाइं, से किमाहु? भंते! अज्जप्पभिइ संजमे दुराराहे भविस्सइ ॥१३६॥

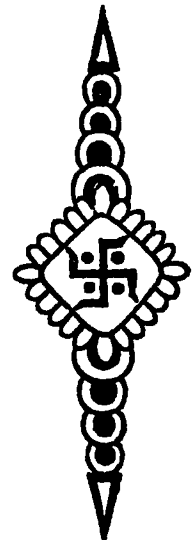
अथ :—जिस रात्रि श्रमण भगवान् महावीर मोक्ष पधारे यावत् सर्वदुःखरहित हुये, उस रात 'अनुद्धरी' नामक कुन्थु (तीन इन्द्रिय वाले सूक्ष्म शरीरी जीव) समुत्पन्न हो गये। वे जब तक स्थित व अचल रहे, तब तक छद्मस्थ साधु-साध्वियो को दिखाई नहीं पडते। जब अस्थित हो चल रहे हो तभी दिखायी पड़ सकते है। यह देख कर बहुत से साधु-साध्वियों ने भक्त पानादि का प्रत्याख्यान कर लिया, अर्थात् अनशन-सथारा कर लिया, क्योकि भगवान् ने भविष्य मे सयम दुराराध्य बताया था।



अब भगवान् महावीर के चतुर्विध संघ स्थित विशिष्ट और भगवान् के शिष्य-शिष्या समुदाय का वर्णन करते है।

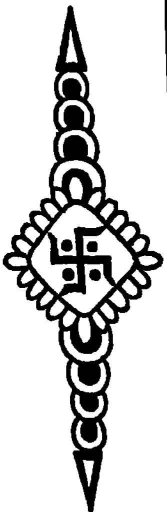
सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स इंदभूइपामुक्खाओ चउद्दस समण साहस्सिओ उक्कोसिआ समणसंपया हुत्था ॥१३७॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स अज्जचंदणापामुक्खाओ छत्तीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था ॥१३८॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स संख-सयगपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सी अउणट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था ॥१३९॥ समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसारेवईपामुक्खाणं समणोवासिआणं तिन्नि सयसाहस्सीओ अट्ठारससहस्सा उक्कोसिआ समणोवासियाणं संपया हुत्था ॥१४०॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तिन्निसया चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर सन्निवाइणं जिणोविव अवितहं वागरमाणाणं उक्कोसिया चउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था ॥१४१॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेरस सया ओहिनाणीणं अइसेसपत्ताणं उक्कोसिया ओहिनाणिणं संपया हुत्था ॥१४२॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तसया केवलनाणीणं संभिन्न वरनाण दंसण धराणं उक्कोसिया केवलवरनाणि संपया हुत्था ॥१४३॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्तसया वेउव्वियाणं अ देवाणं देवड्ढिपत्ताणं उक्कोसिया वेउव्विय संपया हुत्था ॥१४४॥ समणस्स णं





भगवओ महावीरस्स पंचसया विउलमईणं अड्ढाइज्जैसु दोवेसु दोसुअ समुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं (जीवाणं) मणोगए भावे जाणमाणाणं उक्कोसिया विउलमईणं संपया हुत्था ॥१४५॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारिसया वाईणं सदेवमणु-आसुराए परिसाए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाई संपया हुत्था ॥१४६॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त अंतेवासि सयाइं सिद्धाइं जाव सव्वदुक्खपहोणाइं, चउद्दस अज्जि-यासयाइं सिद्धाइं ॥१४७॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोवाइयाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसि भद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयाणं संपया हुत्था ॥१४८॥ समणस्स णं भगवओ महावीरस्स दुविहा अंतगडभूमी हुत्था, तंजहा—जुगंतगडभूमी य, परि-यायंतगडभूमीय, जाव तच्चाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगडभूमी, चउवासपरियाए अंतमकासी ॥१४९॥

अर्थ :—उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के श्री इन्द्रभूति गोतम आदि १४००० श्रमण (साधु), आर्या-चन्दनबाला प्रमुख छत्तीस हजार साध्वियाँ, शंख, शतक आदि १५९००० एक लाख उनसठ हजार श्रमणोपासक (श्रावक), सुलसा रेवती प्रमुख ३१८००० तीन लाख अठारह हजार श्रमणोपा-सिकाएँ (श्राविकाएँ) थीं। तीन सौ चतुर्दशपूर्वधर मुनि थे, जो केवलज्ञानी न होते हुये भी सर्वज्ञ तुल्य थे और सर्वाक्षर सन्निपाती-अक्षरों के सयोग से बने सभी शब्दों को व उनके अर्थों को जानने वाले थे। आमर्षौषधि आदि लब्धियों से सम्पन्न तेरह सौ अवधिज्ञानी मुनिराज थे। सम्पूर्ण और श्रेष्ठ केवलज्ञान



केवल दर्शन के धारक सात सौ मुनि सर्वज्ञ थे। (१४०० साध्वियाँ भी केवली थीं) दिव्य व दिव्य ऋद्धि सम्प·न ऐसे सात सौ वैक्रियलब्धि सम्पन्न साधु थे। जो देव के समान रचना करने रूपादि परिवर्त्तन करने मे समर्थ थे।

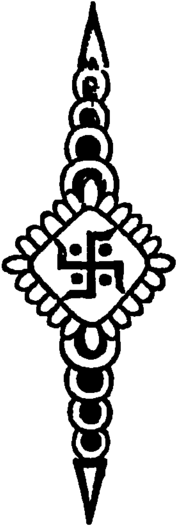
अढाई द्वाप दो समुद्र—(लवण कालोदधि) मे रहने वाले सन्नि पचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोगत भावों को जानने वाले विपुलमति मनःपर्यवज्ञानी पॉच सौ मुनिवर थे।

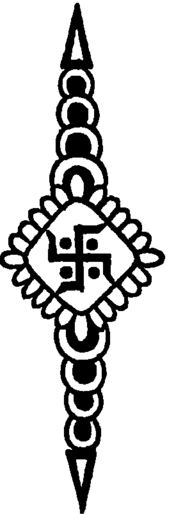
देव मनुष्य और असुरो की सभा में वाद-विवाद मे किसी भी वादी से पराजित न हो सके ऐसे चार सौ वादी मुनि थे। सात सौ साधु और चौदह सौ साध्वियॉ सिद्ध हुये यावत् सर्वदुःख रहित बने अर्थात् मुक्ति गये। भगवान् के श्रमणसघ मे से आठ सौ साधु अणुत्तर विमानवासी बने। उनकी देव सम्बन्धी गति व स्थिति शीघ्र वीतरागता की कारण होने व वहॉ—अणुत्तर विमान में भी तत्त्वचिन्तन में लीन रहने से कल्याणकारिणी मानी गयी है। दो प्रकार की अन्तकृत् भूमि थी—युगान्तकृत् भूमि पर्यायान्तकृत् भूमि। भगवान् से लेकर तीन पाट पर्यन्त—अर्थात् भगवान् के पट्टधर गोतमस्वामी, सुधर्मागणधर और उनके पट्टधर श्री जम्बू स्वामी। इन तीन तक मुक्ति गये फिर कोई मुक्त नहीं हुआ, इसे युगान्तकृत् भूमि कहते है। दूसरी पर्यायान्तकृत् भूमि, वह है जो तीर्थंकर भगवान् को केवलज्ञान होने के पश्चात् जो मुक्त होते है। भगवान् महावीर के सर्वज्ञ होने के चार वर्ष पीछे मुक्ति माग आरम्भ हुआ।

— उपसहार —

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समए णं समणे भगवं महावोरे तोसं वासाइं अगारवास मज्झे वसित्ता, साइरेगाइं दुवालसवासाइं छउमत्थ परियागं पाउणित्ता, देसूणाइं तोसंवासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, बायालोसंवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता-बावत्तरिवासाइं सव्वाउयं पाल-

इत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमोसे ओसप्पिणोए दुसमसुसमाए-समाए बहुविइक्कंताए तिहिं वासेहिं अद्धनवमेहि य मासेहिं सेसेहिं पावाए मज्झिमाए हत्थिवालस्स रण्णो रज्जुयसभाए एगे अबीए छट्ठेणं भत्तेणं अपाणए णं साइणा नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पच्चूसकाल समयंसि संपलिअंकनिसण्णे पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफल विवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफल विवागाइं छत्तीसं च अपुट्ठ वागरणाइं वागरित्ता, पहाणं नाम अज्झयणं विभावेमाणे विभावेमाणे कालगए विइक्कंते समुज्जाए, छिन्नजाइजरामरण बंधणे, सिद्धे, बुद्धे, मुत्ते, अंतगडे, परिनिव्वुडे सव्वदुक्खपहोणे ॥१५०॥





अर्थ :—उस काल-अवसर्पिणी-उस समय-चौथे आरे में श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष गृहवास में रहकर, सातिरेक—छः मास पन्द्रह दिन अधिक बारह वर्ष तक छद्मस्थ-अवस्था में और देशोन तीस वर्ष केवली अवस्था में विचर कर, यों सर्वायु बहत्तर वर्ष का पूर्ण पालन कर—पूर्ण करके; वेदनीय, आयु, नाम, व गोत्र, इन चार भवोपग्रही कर्मों के क्षीण होने पर, इस अवसर्पिणी के चौथे आरे के बहुत व्यतीत हो जाने पर-तीन वर्ष साढे आठ मास मात्र शेष रहने पर मध्यमा पावानगरी में हस्तिपाल राजा की जीर्ण शुल्क (कस्टम) शाला में, अकेले-अन्य कोई नहीं, चोविहार छट्ठ तप था, स्वाति नक्षत्र में चन्द्रमा चल रहा था, प्रत्यूष-उषःकाल में-चारघटिका रात्रि शेष रहने पर पर्यङ्कासन से बैठे हुये थे, पचपन अध्ययन पुण्यफल विपाक के, पचपन अध्ययन पाप फल विपाक के और बिना पूछे छत्तीस अध्ययन उत्तराध्ययन सूत्र के कह चुके थे, मरुदेवो विषयक 'प्रधान' नामक अन्तिम अध्ययन का अर्थ विभावन करते अर्थात् कहते-कहते काल प्राप्त हुये, संसार से बाहर निकल गये और सिद्धिगति रूप उर्द्ध स्थान में चले गये। उन्होंने जन्म

जरा मरण के बन्धन छिन्न कर दिये, उनके सभी अर्थ-कार्य सिद्ध हो गये, तत्त्व के अर्थ को प्राप्त कर लिया, कर्मों से मुक्त हो गये, सर्व प्रकार के दुःख सन्ताप का अन्त कर दिया, परिनिवृत्त हो गये और शारीरिक व मानसिक सर्व दुःखो से रहित हो गये। अर्थात् मुक्ति में पधार गये—निर्वाण हो गया।

सूत्र :—समणस्स भगवओ महावोरस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स नववाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्सय वाससयस्स अयं असोइमे संवच्छरे काले गच्छइ, वायणंतरे पुण अयं तेणउए संवच्छरे काले गच्छइ, इति दीसइ ॥१५१॥

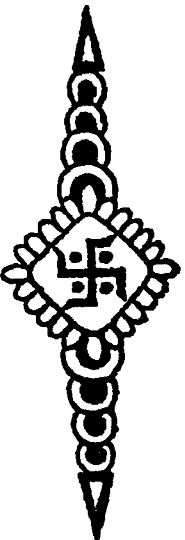
अर्थ :—श्रमण भगवान् महावीर प्रभु को सिद्धबुद्ध मुक्त यावत् सर्वदुःख प्रक्षीण हुये अर्थात् मुक्ति पधारे। यह दशवीं शताब्दी चल रहो है, नव सौ अस्सोवाँ वर्ष चल रहा है। वाचनान्तर में पुनः "नव सौ तिरानवाँ वर्ष चल रहा है।" ऐसा पाठ दृष्टिगोचर होता है। तत्व केवली गम्य है।

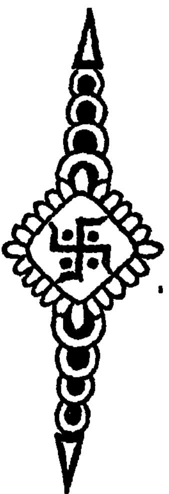
वीर निर्वाण के नव सौ अस्सीवें वर्ष में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की प्रेरणा से वल्लभी नगरी में वाचना हुई थी। आगम लिखे गये थे। वाचनान्तर में नव सौ तिरानवाँ वर्ष भी लिखा मिलता है। हो सकता है कि प्रथम पक्ष वाचना सम्बन्धी हो, दूसरा पक्ष 'ध्रुवसेन राजा की सभा में पुत्र शोक निवारणार्थ कल्पसूत्र सुनाया गया' इस सम्बन्धी हो। तत्त्व तो बहुश्रुत जानें। हाँ, अनुसन्धान कर्त्ताओं ने यही प्रमाणित किया है।

॥ इति षष्ट व्याख्यान ॥



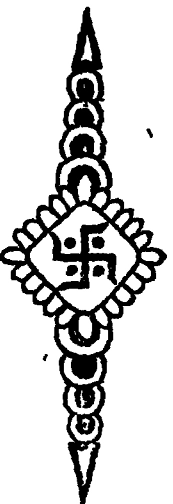
भगवान महावीर का जन्म कल्याणक महोत्सव







भगवान महावीर का समवशरण



सप्तम व्याख्यान

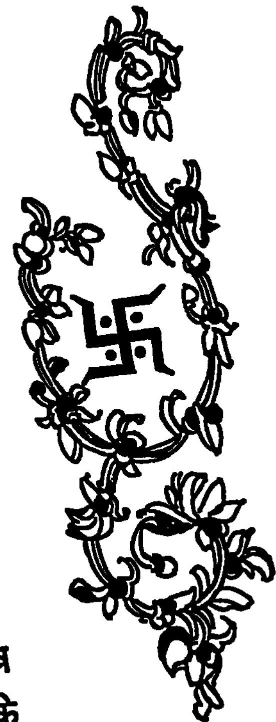
श्री पार्श्वनाथ चरित्र

अर्हत् भगवान् श्री महावीरदेव के शासन में पर्यूषणापर्व के आने पर कल्पसूत्र का वाचन होता है। उसमें तीन अधिकार हैं, १ जिनचरित्र २ स्थविरावलि ३ साधु सामाचारी। जिनचरित्राधिकार प्रस्तुत है, ६ वाँचनाओं में भगवान् महावीर का चरित्र षट् कल्याणक मय कहा गया। अब सातवीं वाचना में पश्चानुपूर्वी क्रम से भगवान् पार्श्वनाथ का चरित्र कहते हैं।

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं, पासे अरहा पुरिसादाणीए पंचविसाहे हुत्था, तंजहा—१ विसाहाहिं चुए चइत्ता गब्भं वक्कंते, २ विसाहाहिं जाए, ३ विसाहाहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारिअं पव्वइए ४ विसाहाहिं अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुन्ने केवलवरनाण दंसणे समुपन्ने ५ विसाहाहिं परिनिव्वुए ॥१५३॥

अर्थ :—उस काल उससमय में पुरुषादानीय[1] अर्हत् भगवान् श्री पार्श्वनाथ के पाँच कल्याणक विशाखा नक्षत्र में हुये। वे यों हैं :—विशाखा नक्षत्र में देवलोक से च्युत हुए, च्यव कर वामाराणी की कूक्षी में गर्भरूप से उत्पन्न हुये। विशाखा में जन्मे। विशाखा में मुण्डित हो अगारी से अनगार बने प्रव्रजित हुये। विशाखा में अनन्त अनुत्तर निर्व्याघात कृत्स्न प्रतिपूर्ण श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ। विशाखा में परिनिर्वाण—मोक्ष हुआ। यों संक्षेप से पंच कल्याणक कहे। अब विस्तार से वर्णन करते हैं :—

[1] स्वमत परमत सर्वत्र ग्राह्यवाक् होने और नाम अधिक प्रसिद्ध होने से पुरुषों मे प्रधान माने जाते थे। तीर्थ-अतिशयस्थान भी सर्वाधिक है।



सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्त बहुले, तस्स णं चित्त बहुलस्स चउत्थी पक्खेणं पाणयाओ कप्पाओ वीसं सागरोवमट्ठियाओ अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे वाणारसीए नयरीए आससेणस्स रण्णोवामाए देवीए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं आहारवक्कंतीए (ग्रं० ७००) भववक्कंतीए सरीरवक्कंतीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए वक्कंते ॥१५४॥

अर्थ :—उस काल उससमय पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वनाथ का जीव, ग्रीष्म के प्रथम मास प्रथम पक्ष—अर्थात् चैत्र कृष्ण चतुर्थी को प्राणत नामक दशम देवलोक से वहाँ की बीस सागरोपम की स्थिति पूर्ण कर देव सम्बन्धी आहार, भव और शरीर व्युत्कान्त (क्षय) हो जाने पर इसी जम्बूद्वीपवर्त्ती भरतक्षेत्रान्तर्गत बाराणसी नगरी के राजा अश्वसेन की पटरानी वामारानी की कूक्षि में अर्द्धरात्रि के समय जब चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र में था, गर्भ रूप से उत्पन्न हुये।

भगवान् श्री पार्श्वनाथ के पूर्वभव

अब प्राणतदेवलोक में पार्श्वनाथ के जीव किस भव से आये थे यह प्रश्न होने पर पूर्व के भव कहते हैं—इसी जम्बूद्वीप में पोतनपुर नगर था। वहाँ अरविन्द नृपति राज्य करते थे। उनके विश्वभूति नामक राज्य पुरोहित था उसकी अनुद्धरी धर्मपत्नी थी और कमठ व मरुभूति, दो पुत्र थे। पुरोहित के पञ्चत्व प्राप्त हो जाने पर राजा ने कमठ को पुरोहित का पद दिया। कमठ स्वभाव से ही कठोर प्रकृति क्रूर, लम्पट और दुष्ट था। इसके विपरीत मरुभूति की प्रकृति सरल थी, वह धर्मज्ञ सदाचारी दयालु संयमी और शिष्ट था। पर बड़ा होने से कमठ ही पद का



कमठ का पञ्चाग्नि तप : भगवान पार्श्वनाथ द्वारा सर्प-बोध



भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण



भ० नेमिनाथ द्वारा शंखवादन व श्रीकृष्ण द्वारा उनकी वल परीक्षा



भगवान नेमिनाथ को श्रीकृष्ण द्वारा विवाह के लिए मनाना



भगवान नेमिनाथ की वरयात्रा : पशु आक्रन्दन



भगवान ऋषभदेव द्वारा पात्र निर्माण कला शिक्षण



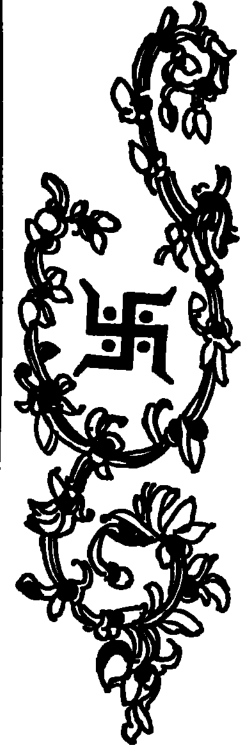
भगवान ऋषभदेव का श्रेयासकुमार द्वारा वरसी तप पारणा



माता मरुदेवी का हाथी पर कैवल्य व निर्वाण



अधिकारी था ; अतः उसे ही पद मिला। कमठ पत्नी वरुणा सामान्य रूपवती थी, किन्तु मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा अत्यन्त रूपवती थी। कमठ ने जब से देखा उसका मन वसुन्धरा को पाने के लिये व्याकुल रहता था। एकवार वसुन्धरा प्रसंगवश अकेली थी, कमठ आया और प्रार्थना करने लगा, वसुन्धरा लज्जावश मौन रही। इस तरह अवसर पाकर कई वार कमठ ने उससे प्रार्थना की तो वह भी दुर्भाग्यवश कमठ की ओर आकृष्ट हो गयी। दोनों का दुराचार गुप्तरूप से चलने लगा। परन्तु पापका घड़ा फूटता ही है। वरुणा ने उनका यह अनाचार जान लिया। उसने अपने पति को इस अनाचार से विरत करने का बहुत प्रयत्न किया, समझाया। उभय लोक विरुद्ध कह कर राज्यभय दिखाकर इस अकार्य को छोड़ देने का आग्रह किया ; परन्तु कमठ ने उसकी एक न सुनी। अन्त में उससे अपने ही घर में यह अनाचरण सहन नहीं हो सका। उसने मरुभूति से कह दिया ; किन्तु सरल स्वभावी मरुभूति को विश्वास नहीं हुआ। वह आँखों से देखे बिना मानने को तैयार नहीं था। उसने एक दिन तीन दिन के लिए ग्राम जाने का मिष किया और घर से बाहर चला गया। दोनों कमठ-वसुन्धरा निश्चिन्त हो गये। यथारुचि भोगादि क्रीड़ा निर्भय होकर करने में लीन थे। वेशपरिवर्त्तन कर मरुभूति ने भी कपट संन्यासी के रूप में स्थान की याचना कर गृह में स्थित हो, उन दोनों का यह दुराचार देखा। दूसरा उपाय न देखकर राजा को सारी बात कही। राजा ने रुष्ट हो कमठ को देश निर्वासन का दण्ड दिया, और विडम्बना पूर्वक नगर में भ्रमण करा कर देश से निकलवा दिया। मरुभूति को पुरोहित का पद देकर सम्मानित किया। कमठ लोक-लज्जावश दुःखगर्भित वैराग्य से तापस बन गया। पृथ्वी पर भ्रमण करता एकवार पोतनपुर के पास एक पर्वत पर आ पहुँचा और आतापना (अग्नि सूर्य आदि) से लेने लगा। लोगों ने सुना तो दर्शनार्थ आये और प्रशंसा करने लगे। मरुभूति ने भी सुना तो वह विचारने लगा—मेरे विरोध के कारण भाई को गृहत्याग करना पड़ा, अब तो तपस्वी बन गया है!

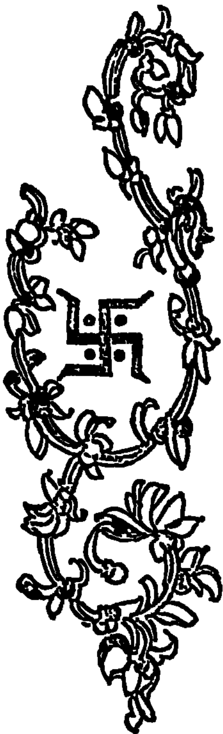


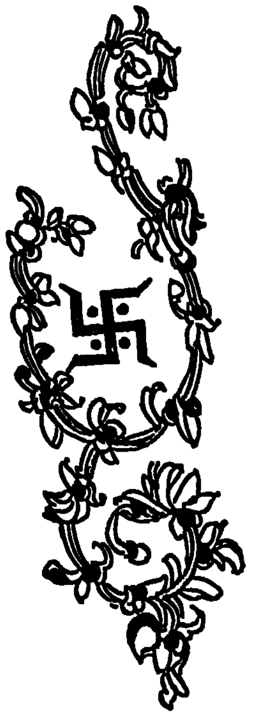
चलूँ अपराध की क्षमा माँग लूँ, नमस्कार भी कर आऊँगा, पर एकान्त में रात्रि के समय चलना उचित है। तदनुसार मरुभूति रात्रि में जब कमठ अकेला था, जा पहुँचा। चरणों में गिरकर परिचय देते हुये अपने अपराध की क्षमा माँग रहा था कि क्रोधान्ध कमठ ने उसके शिर पर बड़ा पत्थर लेकर जोर से प्रहार किया, जिससे मरुभूति का शिर फट गया। वह तत्काल मरणशरण हो गया। कमठ भी भयभीत हो वहाँ से रातोरात प्रस्थान कर गया और अपने दुष्टकर्म वश थोड़े दिन बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी। दूसरा भव :—मरुभूति वेदनार्त्त हो, आर्त्तध्यान से मरकर विन्ध्याचल समीपवर्ती अरण्य में 'सुजातोरु' नामक हाथी बना। कमठ भी मरकर उसी वन में कुक्कुट सर्प बना। कुक्कुट सर्प के पंख होते हैं, वह पक्षियों के समान उड़ सकता है। उधर प्रातः जनता तपस्वी के दर्शनार्थ आयी, यह दुर्घटना देख तपस्वी की निन्दा करती हुयी नगर में लौट गयी। बात अरविन्दनृप के कानों तक भी शीघ्र जा पहुँची। राजा को इस घटना से वैराग्य आ गया। उन्होने संसार को असार जान किन्हीं सद्गुरु से प्रव्रज्या धारण करली। इग्यारह अंग पढकर उग्रतपस्या पूर्वक एकाकी विहार करने लगे। एकदा सागरचन्द्र सार्थवाह के साथ सम्मेत-शिखर तीर्थ की यात्रार्थ प्रस्थान किया। सार्थ चलता हुआ विन्ध्याटवी में पहुंचा, एक सरोवर के पास ही सुविधा देखकर ठहर गया। अरविन्दराजर्षि सरोवर के तट पर एकान्त में कायोत्सर्ग कर ध्यानलीन हो गये, सार्थ के लोग भी अपने-अपने कार्यों में निमग्न थे। इस समय मरुभूति का जीव सुजातोरु हाथी भी हथिनियों के परिवार सह सरोवर में जलपान व क्रीड़ा करने आया। लोकों का कोलाहल सुनके और सार्थ के हाथी अश्व ऊँट बैल आदि को देख क्रुद्ध हो उपद्रव करने लगा। सर्व भयभीत हो, प्राणरक्षार्थ दशों दिशाओं में पलायन कर गये परन्तु अरविन्द राजर्षि पूर्ववत् ध्यान मग्न खड़े थे : हाथी ने ज्यों ही देखा मारने दौड़ा, जब निकट आया तो महान् संयमतप के प्रभाव से स्तम्भित हो गया और अनिमेष दृष्टि से राजर्षि को देखता हुआ ऊहापोह



करने लगा जातिस्मरण ज्ञान हो गया। ज्ञान हो जाने से हाथी ने राजर्षि अरविन्द को पहचान लिया। सूण्ड पसार कर चरण स्पर्श किये, बार-बार भक्ति पूर्वक नमस्कार कर हर्ष प्रकट करने को मधुर-मधुर चिंघाड़ने लगा। राजर्षि ने भी अपने ज्ञानबल से मरुभूति का जीव जान कर धर्मादि का स्वरूप समझाकर प्रतिबोध दिया, जिससे हाथी ने सम्यक्त्व प्राप्त किया और द्वादशव्रत भी धारण किये। बहुत से अन्य जीव भी प्रतिबुद्ध हुये और यथायोग्य व्रतादि ग्रहण किये। मदोन्मत्त हाथी के विनय भक्ति आचरण से बहुत लोक प्रभावित हो गये थे। तपसंयम का साक्षात् चमत्कार किसे प्रभावित नहीं करता। अब मरुभूति का जीव गजराज एकदा उष्णकाल में वनमें दावानल लगजाने से प्राणरक्षार्थ एक तड़ाग में गया और कीचड़ में फँस जाने से निकलने में असमर्थ रहा। कमठ का जीव कुक्कुट सर्प भी दावानल से भयत्रस्त वहीं आ पहुँचा, गज को देखते ही पूर्वभव का वैर जाग्रत हो गया, उड़कर हाथी के मस्तक पर डस लिया। विष व्याप्त हो जाने से वेदना को समभाव से भोगते हुये गज ने अनशन पूर्वक शरीर त्याग दिया और धर्मपालन व धर्मध्यान के प्रभाव से सहस्रार नामक अष्टमस्वर्ग में देवरूप से उत्पन्न हुआ। कुक्कुट सर्प रौद्रध्यान से दावानल में जलकर पाँचवीं नरक में नैरयिक बना। यह तीसरा भव हुआ।

अब मरुभूति के जीव अष्टम देवलोक से च्युत होकर चौथे भव में इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह की सुकच्छविजय के वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी की तिलकवती नगरी में विद्युद्गति नरेश की कनकवती नामक रानी की कूक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुये। किरणवेग नाम दिया गया, युवावस्था में राज्याभिषेक हुआ सुरूपवती राजकन्याओं के साथ विवाह कर दाम्पत्य सुख भोगने लगे। एक वार राजप्रासाद के गवाक्ष में बैठे सन्ध्याराग देखने से उन्हें वैराग्य हो गया। राज्यादि का परित्याग कर सद्गुरु से प्रव्रज्या धारण की। बहुश्रुत बन एकाकी विचरते हुये एकदा हिमशैल पर्वत परं कायोत्सर्ग में स्थित थे। कमठ का जीव पाँचवीं नरक से निकलकर इसी गिरि पर सर्प





वना था। उसने कायोत्सर्ग करके खड़े मुनि को देखा, देखते ही वैरभाव जग पड़ा ; वह मुनि के शरीर से लिपट गया और जोर से डस लिया। मुनि शुभ भाव से अनशन पूर्वक आराधनायुक्त शरीर त्याग कर बारहवें स्वर्ग 'अच्युत' में देवरूप से उत्पन्न हुये। सर्प मरकर फिर पाँचवे नरक में गया। 'पाँचवाँ भव हुआ। मरुभूति के जीव अच्युत स्वर्ग सेच्यवकर इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में गन्धलावती विजयकी शुभंकरा नगरी में वज्रवीर्य नृपति की लक्ष्मीवती रानी की रत्नकुक्षि में पुत्ररूप से अवतीर्ण हुये। यथासमय जन्मे, पुत्र का नाम वज्रनाभ दिया गया। अनुक्रम से तरुणावस्था में विवाह व राज्य प्राप्त भी हुए, सुखपूर्वक निवास कर रहे थे। एकदा उस नगरी के उद्यान में श्री क्षेमंकर तीर्थंकर भगवान् पधारे। वज्रनाभ राजा वन्दना करने गये, नमस्कार करके योग्य स्थान में बैठ देशना श्रवण करने लगे। भगवान् के उपदेश से संसार को अनित्य जान दीक्षा लेली। सर्व आचार-विचार में निष्णात बन चारण-लब्धि के प्रभाव से तीर्थों की यात्रा करते हुये विचरने लगे। वज्रनाभ राजर्षि एकदा सुकच्छविजय के मध्यवर्ती ज्वलन-शिखगिरि पर कायोत्सर्ग स्थित थे। तब कमठ का जीव भी नरक से निकल बहुत भवभ्रमण के पश्चात् उसी पर्वत पर भिल्ल रूप से जन्म लेकर युवा बन चुका था। वह आखेट के लिये पर्वत पर भ्रमण करता हुआ उस स्थान पर आ गया। मुनि को देखते ही वैरभाव के कारण एक बाण फेंका। मुनि समभाव से बाण वेदना सहन करते प्राणत्याग कर सातवें भव में मध्यम ग्रैवेयक स्वर्ग में देव बने। भिल्ल भी मरकर सातवें नरक में गया। मरुभूति के जीव स्वर्ग से च्यव कर आठवें भवमें इसी जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह क्षेत्र के शुभंकर विजय के पुराणपुर के राजा कुशलबाहु की महारानी सुदर्शना के गर्भ में चक्रवर्ती रूप में उत्पन्न हुये, माता ने चतुर्दश स्वप्न देखे। समय पर पुत्र जन्म हुआ। पिता ने सुवर्णबाहु नाम दिया। युवा होने पर पिता ने राज्य दे दिया। चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। षट् खण्ड साधे। वृद्धावस्था में राज्यादि का त्याग कर मुनि



बन गये। विंशतिस्थानक की आराधना की। तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति बाँधी। संयम तप का आचरण करते हुये विचरने लगे। एकदा अटवी में कायोत्सर्ग में खड़े थे। उधर कमठ का जीव भी सप्तम नरक से निकल कर उसी अटवी में सिंह बना था। उसने सुवर्णबाहु राजर्षि को ज्योंही देखा, पूर्वभव वैर वशात् आक्रमण कर मार डाला। मुनिराज आराधना पूर्वक मरकर दशम स्वर्ग 'प्राणत' में देवरूप से उत्पन्न हुये वहाँ विंशति सागरोपम का आयु था। कमठ का जीव सिंह मरकर नरक में गया। यह नवम भव हुआ।

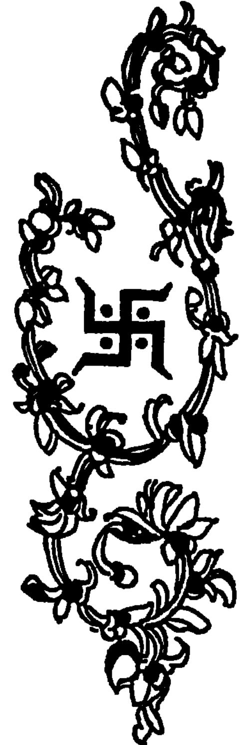
अब मरुभूति के जीवने प्राणत देवलोक से च्यवकर वामारानी की कूक्षि में तीर्थंकर रूप से अवतार लिया। और कमठ का जीव तो नरक से निकल कर्म हलके हो जाने से एक दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न हुआ, जन्मते ही माता-पिता मर गये। किसी तरह दयालु लोगों ने उसका पालन पोषण किया। वह तापस बनकर पञ्चाग्नि तप का साधन करते हुये भ्रमण करता रहता था।

श्री पार्श्वनाथ भगवान् का जन्म कल्याणक सूत्रकार भगवान् भद्रबाहु कहते हैं :

सूत्र :—पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तिन्नाणोवगए आवि हुत्था तंजहा—चइस्सामि त्ति जाणइ, चयमाणे न जाणइ, चूएमि त्ति जाणइ, तेणं चेव अभिलावेणं सुविणदंसण-विहाणेणं सव्वं दविण संहरणाइयं जाव-निअगं गिहं अणुपविट्ठा, जाव सुहं सुहेणं तं गब्भं परिवहइ ॥१५५॥

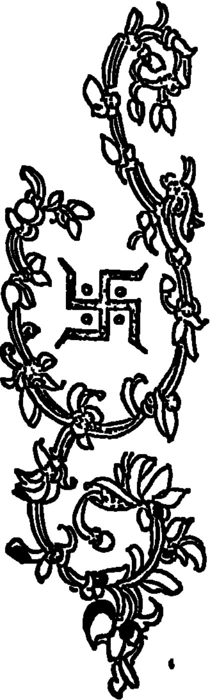
अर्थ :—श्री पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वनाथ तीन ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, और अवधिज्ञान युक्त थे। 'मैं देवलोक से च्यवूंगा' यह जानते थे; किन्तु अत्यन्त सूक्ष्मकाल एक या दो समय होने से च्यवते समय नहीं जान पाते कि मैं च्यव रहा हूं। जब च्यवकर माता के गर्भाशय में उत्पन्न हो जाते हैं, तब जानते हैं कि मैं स्वर्ग से च्यव कर गर्भरूप में उत्पन्न हुआ हूँ।'

यहाँ सारा अधिकार महावीर जन्म के समान है। चतुर्दश महास्वप्न दर्शन, पतिदेव के आगे



कथन, स्वप्नपाठक आगमन, स्वप्नफल प्रश्न, फलकथन इन्द्रादेश से तिर्यग्‌जृम्भक देवों द्वारा धनाहरण वर्षण इत्यादि समझ लेना चाहिये। गर्भ संक्रमण व गर्भ अस्फुरणादि नहीं हुये। शेष महोत्सवादि पूर्ववत् हैं।





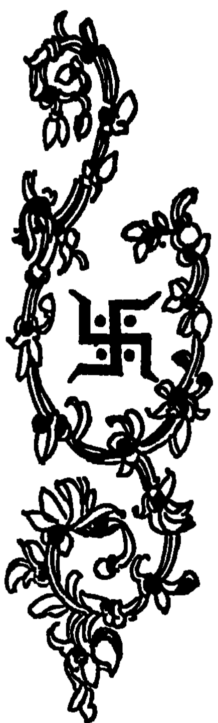
श्री पार्श्वनाथ जन्म समयादि वर्णन

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए जे से हेमंताणं दुच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस बहुले, तस्स णं पोस बहुलस्स दसमी पक्खे णं नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदिआणं विइक्कंताणं पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया ॥१५६॥

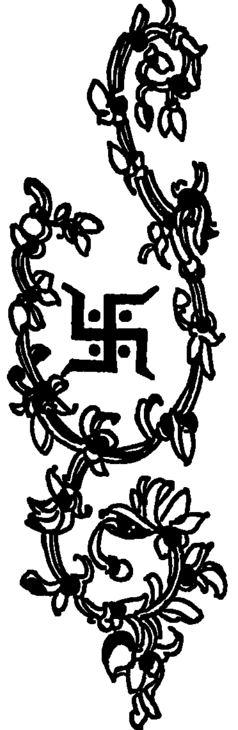
अर्थ :—उसकाल उससमय में अर्थात् इसी अवसर्पिणी कालके दुषम सुषम नामक चौथे आरे में हेमन्तर्तु—शीतकाल के द्वितीय मास पौष कृष्ण दशमी को गर्भ सवा नवमास पूर्ण हो जाने पर अर्द्धरात्रि के समय विशाखा नक्षत्र में चन्द्र उपागत था तब आरोग्य शरीर वाली वामाराणी ने आरोग्यवान् पुत्र को जन्म दिया। उस समय त्रैलोक्य में प्रकाश हो गया। देवदेवियों के आगमन से अंधेरी रात्रि भी उजियाली हो गयी।

सूत्र :—जं रयणिं च णं पासे जाए, तं रयणिं च णं बहूहिं देवेहिं देवीहिं य जाव उप्पिंजलग भूया कहकहगभूआ यावि हुत्था ॥१५७॥ सेसं तहेव नवरं जम्मणं पासाभिलावेणं भाणिअव्वं, जाव तं होउ णं कुमारे पासे नामेणं ॥१५८॥

अर्थ :—जिसरात्रि में भगवान् अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ का जन्म हुआ, वह रात्रि बहुत



से देवदेवियों के गमनागमन से उत्पिञ्जरक भूत और कथकथक-कोलाहल पूर्ण बन गयी थी ॥ शेष सर्व ५६ दिक्कुमारिका आगमन, चौसठ इन्द्रों द्वारा मेरुगिरि पर अभिषेक, जन्म महोत्सवकरण, स्वर्णरत्नादि की वृष्टि, एवं प्रातःकाल अश्वसेन नृप द्वारा पुत्र जन्म की बधाई देने वाली को अभीष्टदान, बन्दिमोक्ष, मानोन्मान वर्द्धन, नगरश्रृंगार, दशदिवस पर्यन्त कुलाचार पालन इत्यादि सिद्धार्थ राजा के समान जानने चाहिये। यह विशेष है कि बारहवें दिन स्वजनादि को भोजन कराकर राजा ने पुत्र का नाम 'पार्श्वकुमार' दिया। इस नाम का कारण निम्न था— एकदा अँधेरी रात्रि में वामारानी ने देखा कि एक भयंकर सर्प शय्या के समीप आ रहा है, राजा का हाथ पर्यंक से नीचे लटक रहा था उसने ऊँचा उठा लिया, राजा जग गये और हाथ ऊँचा लेने का कारण पूछा—रानी ने यथार्थ बात कह दी। नृपति ने सोचा—"ऐसी घोर अँधेरी रात में रानी को सर्प दिख गया, यह गर्भ का ही प्रभाव है।" अतः बालक जन्म लेगा, तब उसका नाम पार्श्वकुमार रखेंगे। क्योंकि पार्श्व में जाता साँप रानी ने देख लिया था। देवेन्द्र ने पार्श्वकुमार के अंगुष्ठ में सुधा संचरण किया; क्योंकि तीर्थंकर माता का स्तनपान नहीं करते, भोजन करने योग्य अवस्था आने पर अग्निपक्व भोजन करते हैं, तबतक मात्र अंगुष्ठभृत सुधा पान करके ही रहते हैं। देवबालकों के साथ क्रीड़ा करते हैं। श्रीपार्श्वकुमार कल्पवृक्ष के अंकुर या चन्द्रकलावत् नित्य बढ़ रहे थे। अनुक्रम से तरुण हुए। नवहस्त ऊँचा शरीर, नीलकमल के समान देह कान्ति, सर्वांग सुन्दर अंगसौष्ठव, अद्भुत बल-रूप, सब कुछ अलौकिक था। महाराज अश्वसेन ने कुशस्थल नरेश प्रसेनजित की राजकन्या प्रभावती के साथ पार्श्वकुमार का विवाह वीस वर्ष की वय में कर दिया। एकबार पार्श्वकुमार राजभवन के गवाक्ष में बैठे नगर शोभा देख रहे थे। बहुत लोगों को भोजन सामग्री मिष्टान्न-फल आदि लेकर नगर के बाहिर जाते देखा। परिजनों से पूछने पर जाना कि कोई पञ्चाग्नि तप करने वाला महातपस्वी आया है, उसी के दर्शनार्थ जनता





दौड़ी जा रही है। पार्श्वकुमार ने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह तो कमठ का जीव है। आजन्म दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ जन्म लिया था। बाल्यावस्था में ही माँ-बाप मर गये ; दयालुजनों ने पालन-पोषण किया। क्षुधादि दुःखों से पीड़ित यह तापसी दीक्षा लेकर विचर रहा है। यह अज्ञानी, निर्दय और क्रोधादि कषायाभिभूत है। जनता को ठगने के लिये यहाँ आया है। 'क्यों किसी का छल प्रकट करें' ऐसा विचार कर पार्श्वकुमार मौन हो गये। एकदिन वामारानी का मन भी लोकों-दासियों आदि के कहने से उस तापस का दर्शन करने के लिये उत्साहित हो गया। उसने हाथी पर आरूढ़ होकर जाने के विचार से गज सज्ज करवाया, पुत्र से कहा—तुम भी चलो! पार्श्वकुमार भी माता के आग्रह और दयालाभ का विचार कर माताजी के साथ गजारूढ़ हो चले। तापस ने सुना कि 'राजमहिषी वामारानी पुत्र सहित मेरे दर्शनार्थ आ रही है' तो उसने अपने चारों ओर प्रज्ज्वलित अग्नि में बड़े-बड़े काष्ठ और अधिक डलवाये और सूर्य के सम्मुख आतापना लेते हुए ध्यानमग्न होने का आडम्बर करके सावधान होकर बैठ गया। माता के साथ भगवान पधारे थे। साथ में परिजनवर्ग तो था ही नगरजन भी उमड़े आ रहे थे। भगवान् ने ज्ञान से काष्ठ में जलते सर्प सहित अनेक स्थावर त्रसजीवों की हिंसा देखी तो वे चुप न रह सके और बोले—तपस्विन्! आपका यह कैसा तप है? इसे अज्ञान तप कहते हैं। इसमें साक्षात् जीव हिंसा हो रही है। अज्ञानीजन कष्ट तो अत्यधिक सहन कर लेते हैं, परन्तु उसका फल थोड़ा-सा मिलता है। धर्म का मूल दया है। जहाँ दया नहीं हो, वहाँ धर्म कैसे हो सकता है? तापस राजकुमार की इन बातों को सुनकर बोला—राजकुमार! आप गज अश्व शस्त्रादि की परीक्षा में निपुण हो सकते हैं। धर्म का रहस्य क्या जानें? हम इस प्रकार के तप से इन्द्रिय दमन करते हैं। शास्त्र की यही आज्ञा है। इसी प्रकार विषयों से निवृत्ति होती है। इस तप में

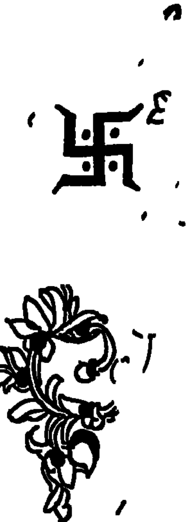


जीवहिंसा कहाँ है ? हो तो बतलाइये ? नहीं तो व्यर्थ ही हम तपस्वियों की निन्दा न करिये। जाइये ! अश्ववाहिका (अश्व-क्रीड़ा) करिये।

पार्श्वकुमार ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि यह बड़ा लक्कड़ निकाल कर जल्दी से सावधानीपूर्वक कुल्हाड़े से चीर दो। आज्ञा होते ही सेवकों ने उस अधजले काष्ठखण्ड को चीर डाला। उसमें सर्प-सर्पिणी युग्म अर्द्धदग्ध स्थिति में तड़फ रहे थे। भगवान ने शीघ्रता से उन्हें नवकार मन्त्र सुनाया और अनशन कराया। प्रभु के दर्शन नमस्कार मन्त्र श्रवण और अनशनपूर्वक शरीर त्याग कर वे दोनों नागकुमार देवों में उत्पन्न हुये। नाग धरणेन्द्र बना और नागिन पद्मावती देवी बनी।

वहाँ उपस्थित जनता ने पार्श्वकुमार का यह विशेष ज्ञान देखकर उनकी स्तुति-प्रशंसा की और तापस की निन्दा करने लगे—अरे ! इस अज्ञानी को धिक्कार हो। यहाँ तो प्रत्यक्ष ही जीवों की महाहिंसा हो रही थी। ऐसे दयाहीन अज्ञानियों के तप-जप सब व्यर्थ हैं। अज्ञानपूर्वक किया गया ऐसा तप तो महापाप का बन्ध कराता है। इस प्रकार राजकुमार की प्रशंसा और अपनी निन्दा होते देख; तापस अपना डेरा-डण्डा उठा खिसियाना हो वहाँ से रवाना हो गया। श्रीपार्श्वकुमार के साथ कई भवों से वैरभाव चल रहा था। अब तो वह और अधिक बढ़ गया। प्रभु पर प्रद्वेष व मत्सरभाव रखते हुए वह तापस अज्ञान तप करता हुआ कितने ही समय तक पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा अन्त में मर कर बालतप के प्रभाव से असुरकुमारों में 'मेघमाली' नामक देव बना। प्रभु माँ के साथ वापिस राजभवन पधार गये।

भगवान् पार्श्वकुमार एकबार वसन्तर्तु में वनविहार कर सन्ध्या समय आवास भवन में वापिस लौट आये। भवन की एक भित्ति पर भगवान् नेमिनाथ का चरित्र चित्रित था—राजिमती का पाणिग्रहण करने यादवों से घिरे गजारूढ़ भगवान् नेमिकुमार उग्रसेन के भवन की ओर प्रयाण



कर रहे हैं। मार्ग में भवन के समीप पशुओं को बाड़े में से मुक्त कर रथ लौटा लेना, राजुल का विलाप, नेमिनाथ की दीक्षा, भग्नपरिणाम रथनेमि को राजुल द्वारा प्रतिबोध इत्यादि। पार्श्वकुमार की दृष्टि अनायास ही चित्र पर केन्द्रित हो गयी। वे विचारमग्न हो गये, वैराग्य तरंगों से मन तरंगित हो उठा। सर्वत्याग की भावनाएँ जाग्रत हो गयीं। लोकान्तिकदेव भी आकर प्रभु को दीक्षार्थ उत्साहित करने लगे। पार्श्वनाथ भगवान् ने ज्ञान से अभिनिष्क्रमण का समय जान सांवत्सरिक दान देना आरम्भ कर दिया। यह सब सूत्रकार कह रहे हैं—

सूत्र :—पासे णं अरहा पुरिसादाणीए दक्खे दक्खपइन्ने पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए तीसं वासाइं अगारवास मज्झे वसित्ता पुणरवि लोगंतिएहिं जिअकप्पेहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव एवं वयासी ॥१५९॥ जय जय नंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते जय जय खत्तियवरवसहा !! बुज्झाहि लोगंनाहा ! णं जावं जय जय सद्दं पउंज्जंति ॥१६०॥ पुव्विं पि णं पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स माणुस्सगाओ गिहत्थधम्माओ अणुत्तरे णं आभोए णाणदंसणे हुत्था ॥१६१॥

अर्थ :—अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वकुमार दक्ष-चतुर विशिष्ट प्रज्ञायुक्त, प्रतिरूप सर्वगुणगण-सम्पन्न संसार से अलिप्त, प्रकृतिभद्र और विनीत थे। तीस वर्ष तक गृहवास में रह चुके थे। ज्ञान से दीक्षाकाल जान लिया था। फिर भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये लोकान्तिकदेव उपस्थित हुए। विनयपूर्वक मधुर इष्ट वचनों से भगवान् को सम्बोधित कर बोले :—

जय हो ! जय हो ! हे समृद्धिशालिन् ! श्रेयसमय ! आपका कल्याण हो ! हे क्षत्रियवर-वृषभ ! भगवन् ! जय हो ! जय हो ! हे लोकनाथ ! भगवन् ! जाग्रत हों ! समस्त जीवों का हित-कारक धर्मतीर्थ प्रवृत्त करिये !

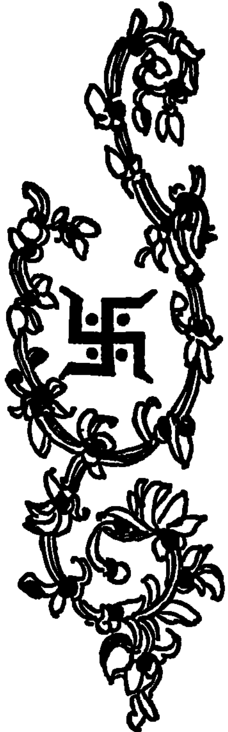


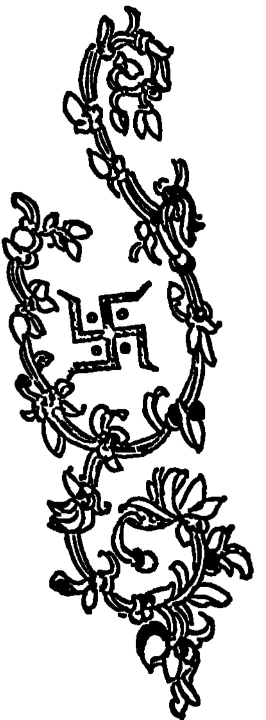


पार्श्वकुमार पहले से विरक्त तो थे ही, दीक्षावसर भी जान रहे थे। अब दीक्षा लेने को उद्यत हो गये और वार्षिक दान दिया।

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणं अणुत्तरेणं अहोइएणं नाणदंसणेणं अप्पणोनिक्खमणकालं आभोएइ २ चिच्चा हिरण्णं तं चेव सव्वं जाव दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता। जे से हेमंताणं दुच्चे मासे तच्चे पक्खे पोस बहुले तस्स णं पोस बहुलस्स इक्कारसी दिवसे णं पुव्वण्हकाल समयंसि विसाला ए सिबियाए सदेवमणुआसुराए परिसाए, तं चेव सव्वं, वाणारसीं नगरिं मज्झं मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणेव आसमपए उज्जाणे जेणेव असोगवर-पायवे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवर पायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकार ओमुअइ, ओमुइत्ता सयमेव पंच मुट्ठियं लोअं करेइ, करित्ता अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय तिहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥१६२॥

अर्थ :—उसकाल उससमय में अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ स्वकोय उत्कृष्ट अवधि-ज्ञानदर्शन से अपना दीक्षावसर जान देख रहे थे। हिरण्य सुवर्ण आदि समस्त वैभव का परित्याग तथा सुख सम्पत्ति का त्याग कर, यथोचित सर्व का भाग देकर, हेमन्तर्तु के द्वितीय मास पौषकृष्ण इग्यारस को पूर्वाह्न काल में विशाला शीबिका में विराजमान हो देव और मनुष्यों से परिवेष्टित, वाराणसी नगरी के राजमार्गों से चलते हुये नगरी के बाह्य प्रदेश स्थित आश्रमपद उद्यान में पधारे। श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे पालकी रखवा कर उतरे, स्वयं ही सर्व-पुष्पमालाएं आमरण अलंकार वस्त्रादि शरीर से उतार दिये और पंचमुष्टि केशलुंचन किया। उसदिन



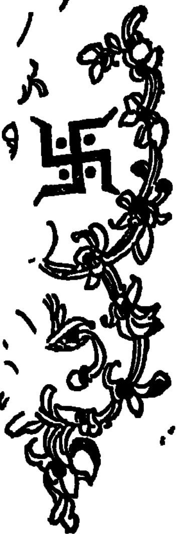


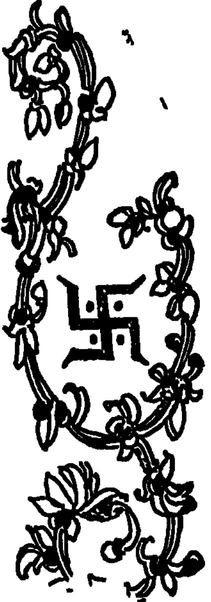
चौविहार अष्टम (तेला) था। विशाखानक्षत्र में चन्द्रमा का योग था, देवेन्द्रप्रदत्त एक देवदूष्य स्कन्ध पर रखकर, तीन सौ अन्य वैराग्यरंग रंजित पुरुषों सहित उन्हें देवों ने उपकरण दिये। प्रभु मुण्डित हो, अगारी से अनगार बन गये। प्रव्रज्या अंगीकार करली।

सूत्र :—पासे णं अरहा पुरिसादाणीए तेसीइं राइंदियाइं निच्चं वोसिट्ठकाए चियत्तदेहे जे केइ उवसग्गा उप्पज्जंति तंजहा—से दिव्वा वा माणुस्सा वा तिरिक्खजोणिआ वा अणुलोमा पडिलोमा वा, ते उप्पन्ने सम्मं सहइ, तितिक्खइ अहियासेइ ॥ १६३ ॥

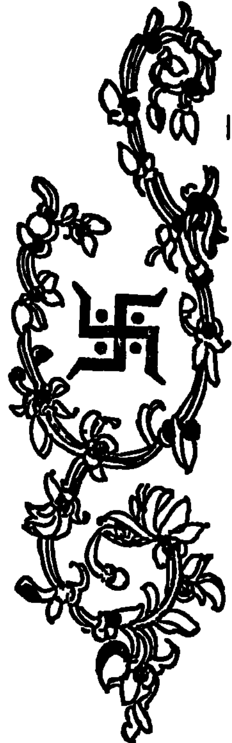
अर्थ :—अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ भगवान् तेयासी दिन तक सदा व्युत्सृष्ट काय शरीर शुश्रूषा की चिन्ता से रहित त्यक्तदेह बनकर तप साधन करने लगे। इस बीच जो भी उपसर्ग देव मनुष्य और पशु-पक्षी आदि द्वारा अनुकूल अथवा प्रतिकूल होते थे, भगवान् उन्हें सम्यक्-समताभाव से सहन करते, शक्तिशाली महाबलवान होने पर भी प्रतिरोध करने या प्रतिशोध लेने का किञ्चिद् भी विचार न करके क्षमा करते थे और मन में धैर्य रखकर अपनी निरवद्यचर्या और धर्मध्यान में लीन रहते थे। भगवान् के अष्टम तप का पारणा कोपटसन्निवेश में धन्यश्रेष्ठी के घर परमान्न से हुआ। देवताओं ने पंचदिव्य किये, साढ़े बारह क्रोड़ सोनैयों की तथा वसुधारा की वृष्टि की।

छद्मस्थ दशा में विचरते थे, तब कलिकुण्ड पार्श्वनाथ, कुर्कुटेश्वर पार्श्वनाथ व जीवित स्वामी आदि अनेक तीर्थों की स्थापना हुयी। इसी प्रकार एकदा श्रीपार्श्वनाथ भगवान् विहार करते हुए शिवनगरी के पास तापसाश्रम में पधारे। सूर्यास्त हो जाने से समीपस्थ ही एक जीर्ण कुआँ और वटवृक्ष था, वहीं कायोत्सर्ग करके ध्यानमग्न हो गये। उस समय कमठ का जीव मेघमालिदेव प्रभु को ध्यानस्थ देख क्रोधित हो गया और उपद्रव करने लगा। पहले वेताल के





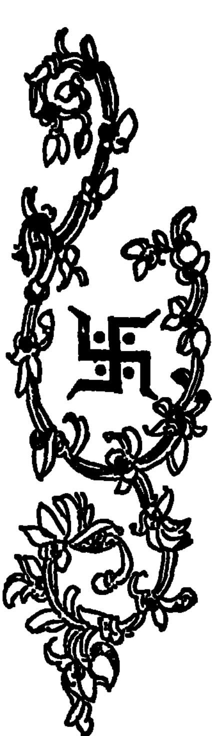
कई रूप बनाकर अट्टहास कर प्रभु को भयभीत करने का प्रयत्न किया फिर सिंह बनकर घोर गर्जन करते हुए उपसर्ग किया, बिच्छू बनकर डंक दिया, सर्प रूप बनकर डसा, इस प्रकार बहुत से उपद्रव किये ; पर भगवान् निश्चल ध्यानलीन खड़े रहे, किञ्चिद् भी क्षुब्ध नहीं हुये ; तब विशेष क्रुद्ध हो उसने घनघोर प्रलयकाल की सी मेघघटाओं से आकाश को भर दिया। ब्रह्माण्ड का ही स्फोट हो जाय, ऐसा गर्जारव होने लगा। भयंकर उल्कापात पूर्वक मूसलधार वर्षा करने लगा, कल्पान्तकाल का सा झञ्झावात चल रहा था। एक क्षण में ही भगवान् के जानु तक जल आ गया। थोड़ी देर में बढ़ते-बढ़ते जल कटि हृदय कण्ठ और नासिका तक जा पहुँचा, तब भी भगवान् अविचल नासाग्रन्यस्त दृष्टि पूर्ववत् ध्यानमग्न खड़े रहे। तत्क्षण धरणीन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ, उसने अवधिज्ञान से पूर्वभव के महोपकारी गुरु पर उपसर्ग देख शीघ्र पद्मावती सहित आ गया और प्रभु को अपने स्कन्ध पर उठा सहस्रफणा छत्र शिर पर करके रक्षा करने लगा। पद्मावती देवी भी जया विजया अपराजितादि अपनी सहेलियों सहित अन्तरिक्ष में नृत्य करने लगीं। यों तीन दिन व्यतीत हो गये ; धरणीन्द्र ने विचार किया—"यह तो स्वाभाविक वर्षा नहीं है, कुछ उत्पात सा लगता है।" जब अवधि लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि यह तो कमठ के जीव मेघमालिकृत उपद्रव है, उसी ने पूर्वभव के वैरानुभाव से प्रभु को कष्ट देने के लिये ऐसा किया है। धरणीन्द्र ने मेघमाली को सम्बोधित कर कहा — अरे ! दुष्ट ! यह क्या तूफान कर रहा है ? यह 'अजाकृपाणी' न्याय से तेरे लिये ही अनिष्टकर है ! ये तो वीतराग हैं ! करुणा-भण्डार हैं ! परन्तु मैं इन भगवान् का सेवक हूँ, अब तेरी दुष्टता सहन नहीं करूंगा। अरे ! अधम ! भगवान् ने तो तेरे हित के लिये ही सम्यग् दयामय धर्म का स्वरूप बतलाया था, तेरे पञ्चाग्नितप को महाहिंसारूप सिद्ध करके तुझे सही साधना करने का उपदेश दिया था। पर तुझे तो वह उपदेश क्रोध का ही कारण बना। सच है लवण समुद्र



में पड़ने पर वर्षा का मधुर जल भी खारा बन जाता है। तेरे लिये भी भगवान के पीयूषमय वचन विषप्राय बन गये। धरणेन्द्र की ऐसी कुपित मुद्रा देख और अन्त में अमृतवाणी सुनकर भयभीत मेघमाली ने अपनी मेघमाया समेट ली और प्रभु की शरण लेकर हार्दिक क्षमायाचना करने लगा। उसका अज्ञान नष्ट हो गया, पश्चात्ताप करने और प्रभु के प्रभाव से उसे सम्यग् दर्शन की प्राप्ति हुयी, मंत्रगर्भित स्तोत्र से स्तुति की, बार-बार अपने अपराधों की क्षमा माँगी। धरणीन्द्र भी पद्मावती सहित प्रभु की द्रव्यभाव-भक्ति कर मेघमाली देव को साथ लेकर स्व-स्थान चला गया। तब से लोकों ने शिवनगरी का नाम अहिच्छत्रा रख दिया। वह 'अहिच्छत्रा' तीर्थरूप में प्रसिद्ध हुयी यह तीर्थ उत्तर प्रदेश के रामनगर स्टेशन आँवला के निकट है।

सूत्र :—तएणं से पासे भगवं अणगारे जाए इरियासमिए, भासासमिएजाव अप्पाणं भावेमाणस्स तेसीइं राइंदियाइं, विइक्कंताइं चउरासीइमे, राइंदिए अंतरा वट्टमाणे जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले, तस्सणं चित्त बहुलस्स चउत्थीपक्खे णं पुव्वण्हकाल-समयंसि धायइपायवस्स अहे छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं झाणंतरिआए वट्टमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे जाव केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने, जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥१६४॥

अर्थ :—जब से वे अर्हत् पार्श्वनाथ भगवान अनगार हुये ईर्यासमिति भाषासमिति आदि से युक्त थे, आत्मा को शुभभावनाओं से भावित करते हुए तियासी दिन व्यतीत हो चुके थे, चौरासीवाँ दिन वर्त्तमान था, ग्रीष्म का प्रथम मास व पक्ष था चैत्र कृष्ण चतुर्थी थी, उस दिन पूर्वाण्ह समय में धातकीवृक्ष के नीचे छट्ठभक्त (बेला) चौविहार था। विशाखा नक्षत्र में चन्द्रमा



का योग था, भगवान् शुक्लध्यान कर रहे थे तब पार्श्वनाथ भगवान् को अनन्त अर्थ का ग्राहक व दर्शक अनुत्तर-सर्वोत्कृष्ट श्रेष्ठ केवलज्ञान व केवलदर्शन समुत्पन्न हुआ। भगवान् षट्द्रव्यों के भावों का परिणमन जानने देखने लगे। उस समय चतुर्णिकाय के अर्थात् भुवनपति व्यन्तर ज्योतिष्क और वैमानिक देवों का आगमन हुआ, देवों ने तीन वप्रवाला समवसरण तथा अशोक-वृक्षादि आठ महाप्रातिहार्य की शोभा की अर्थात् निर्माण किये। चौसठ देवेन्द्र भी उपस्थित हुये। बारह प्रकार की परिषद् के सम्मुख स्वर्ण-सिंहासन स्थित भगवान् ने चतुर्विध दान शील तप भावना रूप धर्म का निरूपण किया। देशना सुनकर बहुत से जीव प्रतिबोध को प्राप्त हुये। चतुर्विध संघ की स्थापना हुयी।

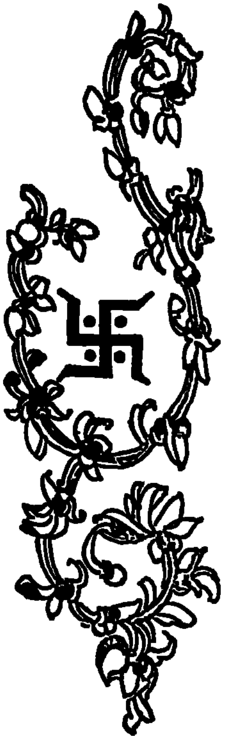
अब भगवान् के कितने गणधर थे। यह कहते हैं :—

सूत्र :—पासस्स णं अरहो पुरिसादाणीयस्स अट्ठगणा, अट्ठगणहरा हुत्था तंजहा—सुभेय अज्जघोसेय, वसिट्ठे बंभयारिय। सोमे सिरिहरे चेव, वीरभद्दे जसे विय ॥१॥१६५॥

अर्थ :—अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ भगवान के आठ गण-साधुओं के समूह थे, आठ गणधर थे, वे इस प्रकार—१ शुभ, २ आर्यघोष, ३ वशिष्ठ, ४ ब्रह्मचारी, ५ सोम, ६ श्रीधर, ७ वीरभद्र और ८ यशोभद्र नामक थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् द्वादशांगी की रचना की थी। इन्हीं की निश्रा में आठ गण थे।

चतुर्विध संघादि वर्णक सूत्र :—

सूत्र :—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अज्जदिण्ण पामुक्खाओ सोलस समण साहस्सीओ उक्कोसया समण संपया हुत्था ॥१६६॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पुप्फचूला पामुक्खाओ अट्ठतीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था ॥१६७॥



पासस्स सुव्वयपामुक्खाणं समणोवासगाणं एगा सयसाहस्सीओ चउसट्ठिं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था ॥१६८॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स सुनंदापामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्निसयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था ॥१६९॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धुट्ठसया चउद्दस पुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं सव्वक्खर-जाव चोउद्दसपुव्वीणं संपया हुत्था ॥१७०॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स चउद्दससया ओहिनाणीणं, दससया केवलनाणीणं, इक्कारससया वेउव्वियाणं, छस्सया रिउमइणं, दससमणसयासिद्धा, वीसं अज्जियासयासिद्धा, अद्धट्ठमसया विउलमइणं, छस्सया वाईणं, बारससया अणुत्तरोववाइयाणं संपया हुत्था ॥१७१॥

अर्थ :—अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ भगवान् के आर्य दिन्न प्रमुख सोलह हजार उत्कृष्ट श्रमण सम्पद् थी, आर्यापुष्पचूला आदि अडतीस सहस्र उत्कृष्ट श्रमणियाँ थीं। सुव्रत आदि एकलाख चौसठ हजार उत्कृष्ट श्रमणोपासक (श्रावक) थे। सुनन्दा प्रमुख तीनलाख सताइस हजार उत्कृष्ट श्रमणोपासिकाएँ (श्राविकाएँ) थीं। साढ़े तीन सौ जिन न होकर भी जिनसदृश सर्वाक्षरलब्धिसम्पन्न चतुर्दश पूर्वधर साधु थे। चवदह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवलज्ञानी, इग्यारह सौ वैक्रयिक लब्धि सम्पन्न, छः सौ ऋजुमती मनःपर्ययज्ञानी, साढ़े सात सौ विपुलमती मनःपर्ययज्ञानी, छः सौ वादी मुनि थे। एक हजार मुनि और दो हजार साध्वियाँ सिद्ध हुये। बारह सौ मुनि अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुये।

सूत्र :—पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स दुविहा अंतगडभूमि हुत्था तंजहा—

जुगंतगड़भूमी, परियायंतगडभूमीय, जावचउत्थाओ पुरिसजुगाओ, जुगंतगडभूमी, तिवास परिआए अंतमकासी ॥१७२॥

अर्थ :—अर्हत् पुरुषादानीय पार्श्वनाथ भगवान के दो प्रकार की अन्तकृत भूमि थी। (१) युगान्तकृत् (२) पर्यायान्तकृत्। श्रीपार्श्वनाथ भगवान् के चार पट्टधर मुक्ति में गये। यह युगान्तकृद्भूमि। भगवान् को केवलज्ञान होने के तीन वर्ष पश्चात् मुक्ति मार्ग प्रारम्भ हुआ। अर्थात् मुक्ति में जाने लगे। यह पर्यायान्तकृद्भूमि है।

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए, तीसं वासाइं अगारवास-मज्झे वसित्ता तेसीइं राइंदिआइं छउमत्थ परिआयं पाउणित्ता, देसूणाइं सत्तरिवासाइं केवलि-परिआयं पाउणित्ता, पडिपुन्नाइं सत्तरिंवासाइं सामण्णपरिआयं पाउणित्ता, एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता, खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसमसुसमाए समाए बहुविइक्कंताए जे से वासाणं पढमेमासे दुच्चेपक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स अट्ठमोपक्खेणं उप्पिं संमेअसेलसिहरंसि अप्पचउत्तीसइमे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं विसाहाहिं नक्खत्तणं जोगमुवागएणं पुव्वण्हकाल समयंसि वग्घारिय पाणी कालगएविइक्कंते जाव सव्वदुक्खपहीणे ॥१७३॥

अर्थ :—उसकाल उससमय में अर्हत् पुरुषादानीय भगवान् पार्श्वनाथ तीस वर्ष गृहवासी तियाँसी दिन छद्मस्थ, देशोन ७० वर्ष केवलिदशा में व्यतीत किये, यों पूर्ण सत्तर वर्ष तक श्रामण्य पर्याय में रहकर, प्रतिपूर्ण एक सौ वर्ष का सर्वायु भोगकर ; वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्मों का क्षय हो जाने पर इसी अवसर्प्पिणी के दुःषमसुषम नामक चतुर्थ आरे के बहुत वर्ष व्यतीत हो जाने पर वर्षाकाल के प्रथम मास श्रावण मास के द्वितीय पक्ष—शुक्लपक्ष की अष्टमी

के दिन श्री सम्मेतशिखर शैल के ऊपर अपने साथ के तेतीस मुनिवरयुत चौतीसवें स्वयं मासिक-भक्त वह भी अपानक अर्थात् चौविहार त्यागपूर्वक मासक्षमण तपयुक्त, वग्घारियपाणी-कायोत्सर्ग में लम्बहस्त हो रहे हुये थे। उस समय भगवान् पार्श्वनाथ कालगत हुये अर्थात् मुक्ति में पधारे यावत् सर्वदुःख प्रक्षीण हो गये।

सूत्र :—पासस्स णं अरहओ जीव सव्वदुक्खपहीणस्स दुवालस वाससयाइं विइक्कंताइं, तेरसमस्स वाससयस्स अयं तीसइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥१७४॥

अर्थ :—भगवान् अर्हत् पार्श्वनाथ के निर्वाण का यह बारह सौ तीसवाँ वर्ष चल रहा है। क्योंकि पार्श्वनाथ प्रभु के निर्वाण से ढाइ सौ (२५०) वर्ष पश्चात् श्रीवर्द्धमान महावीर का निर्वाण हुआ था और वीरनिर्वाण के नौ सौ अस्सीवें (९८०) वर्ष में शास्त्र लिपिबद्ध किये गये।

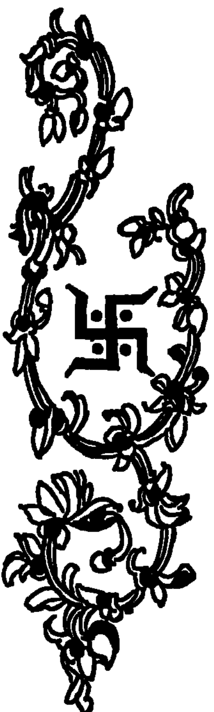
इस प्रकार श्री पार्श्वनाथ भगवान् के पंचकल्याणक का वर्णन समाप्त हुआ। अब पश्चानुपूर्वी से श्री अरिष्टनेमि भगवान् के पंचकल्याणक का स्वरूप कहते हैं।

—श्री अरिष्टनेमि चरित्र—

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समए णं अरहओ अरिट्ठनेमिस्स पंच चित्ते हुत्था, तंजहा—चित्ताहिंचुएचयित्ता गब्भंवक्कंते, चित्ताहिं जाए, चित्ताहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए चित्ताहिं अणंते जाव केवलवरनाण दंसणे समुप्पन्ने, चित्ताहिं परिनिव्वुए ॥ १७५ ॥

अर्थ :—उसकाल उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान् के पंचकल्याणक चित्रा नक्षत्र में हुये। चित्रा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत होकर माता की कूक्षि में गर्भ रूप में उत्पन्न हुए, चित्रा ऋक्ष में जन्म हुआ, चित्रा में गृहवास छोड़कर अनगार प्रव्रजित हुये, चित्रा में केवलज्ञान केवल-दर्शन समुत्पन्न हुए, और चित्रा नक्षत्र में ही परिनिर्वाण हुआ।

इस प्रकार संक्षेप से पंचकल्याणक कहकर अब विस्तार से सूत्रकार कहते हैं।



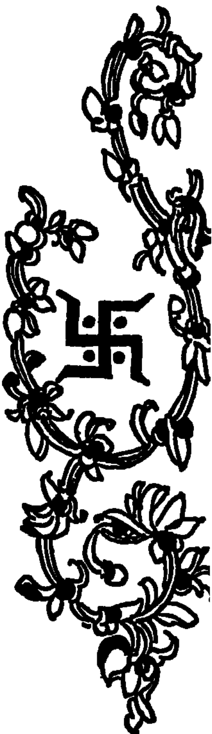
—गर्भावतरण—

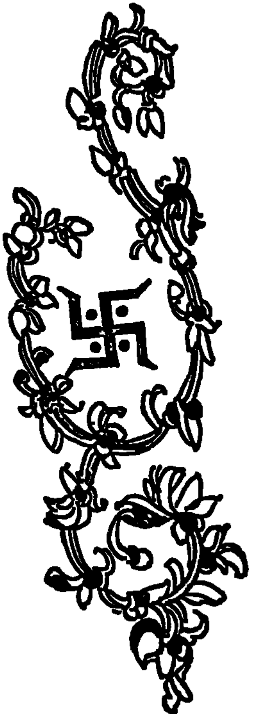
सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समए णं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे कत्तिअबहुले, तस्स णं कत्तियबहुलस्स बारसी पक्खेणं अपराजियाओ महाविमाणाओ बत्तीस सागरोवम ट्ठिइआओ अणंतरं चयं चयित्ता इहेव जंबूद्दीवे दीवे भारहे वासे सोरियपुरे नयरे समुद्दविजयस्स रण्णो भारियाए सिवादेवीए पुव्वरत्तावरत्त कालसमयंसि चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं ? गब्भत्ताए वक्कंते, सव्वं तहेव सुमिणदंसण दविणसंहरणाइअं इत्थ भाणियव्वं ॥ १७६ ॥

उसकाल उससमय में अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान् वर्षाकाल के चतुर्थ मास सप्तम पक्ष —कार्त्तिक कृष्णा द्वादशी को अपराजित महाविमान से बत्तीस सागरोपम का देवायु भोगकर वहाँ से च्यवकर इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्रान्तर्गत सौरीयपुर नगर के समुद्रविजय नृपति की शिवादेवी महाराज्ञी की कूक्षि में अर्द्धरात्रि के समय चित्रा नक्षत्र में चन्द्रमा का योग होने पर गर्भरूप से समुत्पन्न हुये। स्वप्न दर्शन, स्वप्नलक्षण पाठकों का स्वप्नफल कथन, देवों द्वारा धन धान्यरत्नादि वर्षण इत्यादि सर्ववृत्तान्त महावीर चरित्रवत् समझना चाहिये।

—श्री अरिष्टनेमि जन्म—

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढ़मे पक्खे दुच्चे पक्खे सावणसुद्धे तस्स णं सावणसुद्धस्स पंचमी पक्खे णं नवण्हं मासाणं जाव चित्ता नक्खत्तेणं जोग मुवागएणं जाव आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया। जम्मणं समुद्दविजयाभिलाबेणं नेयव्वं जाव तं होउ णं कुमारे अरिट्ठनेमी नामेणं ॥१७७॥





अर्थ :—उस काल उस समय में चौथे आरे में अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान् वर्षा ऋतु के प्रथम मास श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन गर्भ के साढेनव मास पूर्ण हो जाने पर जिस समय चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा चल रहा था, आरोग्यवती शिवादेवी की कूक्षि से आरोग्यवान् पुत्र रूप में जन्म लिया। जन्म-महोत्सव का सारा वर्णन भगवान् महावीर के समान जानना चाहिये, किन्तु इतना विशेष है कि समुद्रविजयनरेश ने जन्मोत्सव के समय पुत्र का नाम 'अरिष्टनेमिकुमार' रखा, क्योंकि जब माता ने स्वप्न देखे थे तो सर्व के पश्चात् एक अरिष्टरत्न का चक्र भी स्वप्न में देखा था, अतः अरिष्टनेमि नाम दिया। भगवान् के जन्म से सर्व अरिष्ट (अमंगल) नाश होने लगे, सर्वप्रकार से कुशल-मंगल हुआ। शैशव में भगवान् को इन्द्राणी क्रीड़ा कराती, इन्द्रने अंगुष्ट में सुधा संचरण किया, क्षुधा लगती तो अंगूठा चूस लेते थे। भगवान् अरिष्टनेमि का शरीर श्यामवर्ण था। वे सर्वाङ्गसुन्दर, एक हजार आठ लक्षणयुक्त, महातेजस्वी थे। बाल्यावस्था में देव, बालक बन उनके साथ क्रीड़ा करते थे। अरिष्टनेमिकुमार बड़े सुशील, चतुर, विवेकी और महाप्रज्ञावान् थे। माता-पिता आदि पूज्यजन उन्हें देख-देख कर अत्यन्त हर्षित होते थे। वे अभी कुमारावस्था में थे कि यादवों को परिस्थितिवश सौरियपुर छोड़ कर दक्षिण पश्चिम की ओर प्रस्थान[1] करना पड़ा और द्वारिका नगरी का निर्माण हुआ। वहीं प्रव्रज्या धारण की।



१ मथुरा नगरी में हरिवंश कुल के क्षत्रियों का राज्य था। उनमें एक यदु नामक नृप हुआ। उसी के नाम से यदुवंश चला। यदु का पुत्र सुर था, उसके दो पुत्र शौरि और सुवीर थे। राजा ने शौरि को राजा और सुवीर को युवराज बना प्रव्रज्या ले ली, किन्तु शौरि ने सुवीर को मथुरा का राज्य देकर स्वयं कुशावर्त्त देश में शौरिपुर नगर बसाकर राज्य किया। शौरि का पुत्र अन्धकवृष्णि और सुवीर का भोजगवृष्णि था। अन्धकवृष्णि के दस पुत्र थे—समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमित, सागर,

कल्पसूत्र
२६२

हिमवान्, अचल, धरण, पूरण, अभिचन्द्र और वसुदेव। इन्हें दशार्ह भी कहते थे। भोजगवृष्णि के एक पुत्र था—उग्रसेन। समुद्रविजय शौरिपुर में और उग्रसेन मथुरा में राज्य करते थे। उग्रसेन की राणी धारिणी गर्भवती हुई, दुष्टगर्भ होने से धारिणी को पति के हृदय का मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ, जिसकी पूर्ति न होने से वह उदास और खिन्न रहने लगी। अत्याग्रह से पूछने पर राजा को मन की बात कही, तब मन्त्री ने बुद्धि चातुर्य्य से वह दोहद पूर्ण किया। रानी ने दुष्टगर्भ को नष्ट करने के अनेक उपाय किये किन्तु नष्ट नहीं हुआ। पूर्णमास होने पर एक पुत्र का जन्म हुआ। रानी ने कांस्य पेटी में परिचय-पत्र युक्त मुद्रिका सहित जन्मजात बालक को रखकर यमुना में प्रवाहित कर दिया। पेटी वहती हुई शौरिपुर आयी। उसे स्नानार्थ आये सुभद्र वणिक ने देखा। पेटी नदी में से निकाल कर खोली, उसमें से बालक को निकाल, परिचय पत्र युक्त मुद्रिका स्वयं छुपाली और अपनी वन्ध्या पत्नी को पुत्र सौंपकर जनता में प्रकट किया कि गूढगर्भ था, यथाविधि पुत्र जन्मोत्सव किया व पुत्र का नाम कंस दिया। क्रमशः कंस बड़ा हुआ, प्रचण्ड स्वभाव होने और वलवान् होने से अन्य बालकों को क्रीड़ा में मार-पीट देता था। लोग तंग आ गये थे। सुभद्र को उपालंभ देते रहते थे। सुभद्र ने सोचा—यह राजवंशी है। मेरे गृह योग्य नहीं। मुद्रिका सहित बालक को समुद्रविजय राजा के लघुभ्राता वसुदेव के पास ले गया और सौंप दिया। कंस वसुदेव के सेवक रूप में रहने लगा, सुयोग्य होने से कंस पर वसुदेव अत्यन्त कृपा रखते थे। कंस ने युद्धविद्या भी सीख ली और एक दुर्धर्ष योद्धा के रूप में विख्यात् हो गया।

उस समय राजगृह में प्रतिवासुदेव जरासन्ध राज्य करते थे। त्रिखण्ड के सभी नृपति उनका शासन शिरोधार्य्य कर उनके सेवक वने हुए थे। एकदा उसने समुद्रविजयादि को आदेश भेजा कि वैताढ्य पर्वत के समीप सिंह पल्लीपति जो कि राज्यद्रोही है, को जो जीवित पकड़ कर ले आवेगा उसे अपनी कन्या जीवयशा और एक प्रार्थित देश का राज्य देगा। समुद्रविजय ने आदेश मान्य कर लिया। सेना सज्ज होने लगी। वसुदेव ने सुना तो राजा से कहा—"भाई साहब यहीं रहें, उस दुष्ट को तो मैं ही पकड़ लाऊँगा। आपको पधारने की आवश्यकता नहीं" और कंस को साथ ले सेना सहित प्रयाण कर दिया। युद्धभूमि में कंस ने सिंह को जीवित ही बांधकर वसुदेव को समर्पित कर दिया।

उधर समुद्रविजय ने सुना कि वसुदेव ने सिंह को जीवित बांध लिया है। उन्होंने नैमित्तिकों को बुलाकर पूछा—"वसुदेव व जीवयशा का सम्बन्ध कैसा रहेगा ?" ज्योतिषियों ने विचार कर कहा—"राजन्। यह कन्या उभयकुल (पितृ व श्वसुरकुल) नाशिनी है, सोच समझ कर सम्बन्ध करना चाहिये।" नृपति को भारी चिन्ता हो गयी। वसुदेव विजय प्राप्त कर हर्षपूर्वक

लौटे, बड़े भाई के चरणों में नमस्कार किया, राजा को चिन्तित देख कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि जीवयशा चिन्ता का कारण बन गयी है। वसुदेव ने सत्य बात प्रकट कर दी और सुभद्र प्रदत्त परिचय-पत्र व नामांकित मुद्रिका भी दी। तब राजा की चिन्ता दूर हो गयी। वे कंस सहित सिंह को ले प्रतिवासुदेव के पास गये और "जीवयशा का विवाह कंस के साथ होगा, इसी ने सिंह को बांधा है" निवेदन कर परिचय भी दिया।

जरासन्ध नृप ने सानन्द विवाह किया और प्रार्थित राज्य 'मथुरा' भी दी। क्योंकि कंस को अब अपनी वास्तविकता ज्ञात हो गयी थी, अतः पिता से प्रतिशोध लेने के लिये मथुरा का राज्य ही मागा था।

कंस मथुरा में आया, उग्रसेन को कारागार में बन्द कर स्वयं राज्य करने लगा। यह देख उग्रसेन के लघुपुत्र अतिमुक्त को संसार से वैराग्य हो गया, वे साधु बन गये।

वसुदेव अत्यन्त रूपवान्, कामदेव के साक्षात् अवतार थे। एक कम ७२००० राजकन्याओं के साथ उनका विवाह हो चुका था। कंस के परम मित्र और उपकारी होने से कंस उनका आदर करता था। वे देवक राजा की कन्या देवकी के साथ विवाह करने मथुरा आये हुए थे। विवाह महोत्सव हो रहा था। जीवयशा प्रतिवासुदेव की कन्या होने से अतिशय गर्विणी थी। इस महोत्सव में मदिरापान करके देवकी को कन्धे पर चढ़ा कर आंगन में नृत्य कर रही थी। इसी समय अतिमुक्त मुनि भिक्षार्थ आंगन में उपस्थित हुये। जीवयशा मद्य के नशे में भान भूल कर उनकी ओर दौडी तथा लिपट कर बोली—"देवर जी! अच्छे समय आये! एक राजकन्या के साथ आपका भी विवाह करूँगी।" मुनि ने स्वयं को बलपूर्वक मुक्त कर कहा—"तुम्हें साधु असाधु का भी भान नहीं है। मूढ़े! क्या नाचती हो। जिस देवकी को कन्धे पर चढ़ा कर नाच रही हो, उसकी सातवीं सन्तान तुम्हारे पिता व पति दोनों की घातक होगी।" कहकर अतिमुक्त मुनि तो चले गये किन्तु जीवयशा का मद ऐसी अनिष्ट बात सुनकर उतर गया, वह भयभीत हो गयी। 'अमोघं ऋषिभाषितम्' की उक्ति उसे स्मरण हो आयी। उसने एकान्त में पति को सारी घटना कह सुनायी। वह भी अविश्वास न कर सका और सशंकित हो उठा। उसने सोचा कोई इस रहस्य को न जाने इससे पूर्व ही कुछ उपाय कर लेना चाहिये। कंस शीघ्र वसुदेव के पास जा पहुँचा और उनका यशोगान करने लगा। रूप, बल, उदारता आदि का वर्णन करते हुए स्वयं पर अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। वसुदेव सरल हृदय थे, कंस की इस कृत्रिम



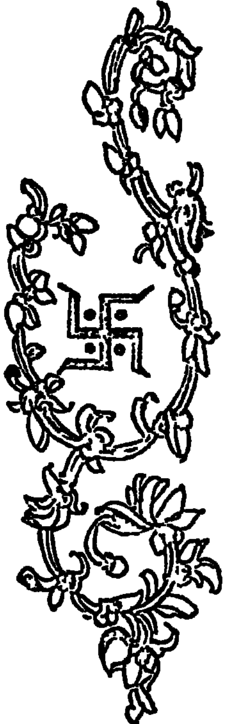
भक्ति से प्रभावित हो गये, बोले—"मित्र ! आज मैं अत्यन्त तुष्ट हुआ, तुम्हारी इच्छा हो सो ही मांगो, अवश्य दूँगा।" कंस ने वचन लेकर देवकी के भावी सात सन्तान जन्मते ही देने का वर मांगा। वसुदेव ने विचार किया—"मैं और कंस अभिन्न मित्र हैं।" इसके यहाँ रहें तो क्या हानि है ? उन्होंने वर प्रदान कर दिया। देवकी के साथ विवाह हो जाने पर उसे भी कहा तो देवकी को अतिमुक्त मुनि का कथन स्मरण हो आया। उसने पति से कहा तो वसुदेव को भी पश्चात्ताप हुआ। परन्तु अब क्या हो सकता था ? वचन दे चुके थे। कंस ने वसुदेव को देवकी सहित मथुरा में ही रहने का आग्रह किया। वे वहीं रहने लगे, देवकी गर्भवती हुई।

उधर भद्दिलपुर में नाग श्रेष्ठी की पत्नी सुलसा मृतवत्सा थी। उसने हरिणैगमेषी देव का आराधन किया, तीसरे दिन देव उपस्थित हुये, बोले—"कहो ! क्यों स्मरण किया है ?" सुलसा ने मृतवत्सा दोष निवारणार्थ प्रार्थना की। देव ने कहा—"यह तो कर्मज दोष है, इसे दूर करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। फिर भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने को तुम्हें देवकी के पुत्र लाकर दूँगा और तुम्हारे मृतपुत्र वहाँ पहुँचा दूँगा।" ऐसा कह कर देव अन्तर्धान हो गये। सुलसा प्रसन्न हो गई।

देव प्रभाव से देवकी और सुलसा के साथ ही गर्भाधान होने लगा, साथ ही प्रसव भी। देवमाया से सन्तानों का परावर्त्तन हो जाता था। कंस जन्मते बालक को मंगा लेता और मृत बालकों को शंकावश स्वयं मार कर निश्चिंत हो जाता था।

इस प्रकार देवकी के छः पुत्रों का लालन पालन शिक्षादीक्षादि सभी नागश्रेष्ठी के यहाँ हुआ। उनके नाम क्रमशः अनीकयशा, अनन्तसेन, विजितसेन, निहतारि, देवयशा और शत्रुसेन थे।

सातवें गर्भ में पुत्र सप्तमहास्वप्न सूचित पञ्चम स्वर्ग से च्युत हो उत्पन्न हुआ था। देवकी ने रुदन करते हुये वसुदेव से कहा—आर्यपुत्र ! इस महास्वप्न सूचित बालक की रक्षा के लिये उपाय कीजिये ? इसके लिये तो आपको अपनी वरदान वाली बात भुला देनी होगी ? दोनों ने निर्णय किया कि बालक को जन्मते ही स्वयं वसुदेव लेकर गोकुल में नन्दगोप की पत्नी, देवकी की बाल्य सखी यशोदा को दे आवेंगे और उसकी सन्तान कंस को सौंप दी जायगी। देवकी ने यशोदा को बुलाकर इस संकट से उद्धार करने की बात कही, जिसे अभिन्न हृदया सखी यशोदा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। सौभाग्यवश उसके भी उसी दिन गर्भाधान हुआ था। उधर सातवाँ बालक कृष्ण वासुदेव बनने वाला होने से वासुदेव के सेवक देव भी रक्षा के लिये सावधान हो गये थे और गुप्त रूप से सेवक का रूप धर उपस्थित रहते थे।





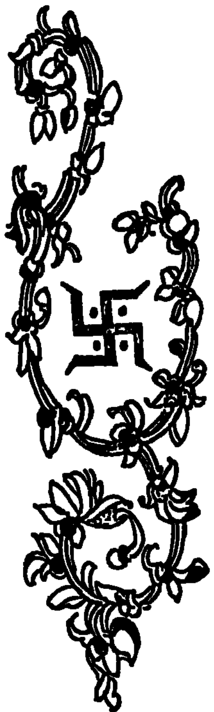
समय पर देवकी के पुत्ररत्न प्रसव हुआ। देवों ने अपनी माया से उससमय सारी मथुरा नगरी को व द्वारपालों को निद्राधीन कर दिया। सारे द्वार स्वयं खुलगये। वसुदेव बालक को एक टोकरी में रख मथुरा के नगर द्वार पर पहुँचे। भूतपूर्व महाराज उग्रसेन वहीं एक कठघरे मे बन्द थे, उन बेचारों को नींद कहाँ? वे जागृत थे। वसुदेव ने कहा—राजन्। यह बालक आपको बन्धन मुक्त करेगा। कहकर बालक को दिखाया, उग्रसेन प्रसन्न हो बोले—जल्दी ले जाइये!!

वासुदेव के अंगरक्षकदेव साथ होने से वसुदेव को कोई कठिनाई नहीं हुई। यमुना नदी में ज्यों ही प्रवेश किया और बालक के पांव से जलस्पर्श होते ही जल हट गया, मार्ग साफ था, सानन्द गोकुल में नन्दगोप के गृह जा पहुँचे। यशोदा ने उसी रात्रि की पुत्री प्रसव की थी। भावी वासुदेव को यशोदा को दे, पुत्री लेली और निर्विघ्न मथुरा आकर देवकी की पुत्री सौंप दी।

अब कंस के द्वारपाल आदि जाग्रत हो गये। पुत्री होने की सूचना मिली, उसे ही लेकर कंस के पास गये। कंस ने कन्या देखकर सोचा—यह मुझे क्या मारेगी। क्यों स्त्री-हत्या का पाप शिर पर लूँ? उसने कन्या की नासिका छेद कर वापिस लौटा दिया[1]।

१ हरिवंशपुराण में (जो वैष्णव मान्य है) उल्लेख है कि कन्या को शिलापर पछाड दिया वह विजली बनकर आकाश में अन्तर्धान हो गयी, कंस निश्चिंत हो गया।

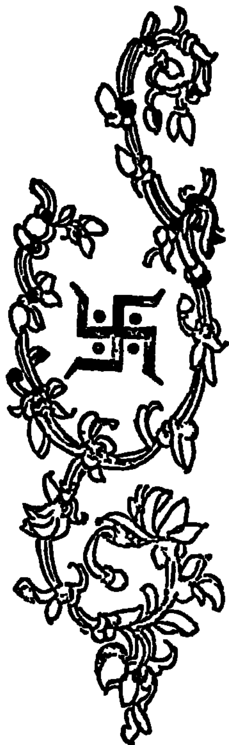
वासुदेव का लालन पालन यशोदा करने लगी। वे श्यामवर्ण सर्वाङ्ग सुन्दर तेजस्वी बालक थे। उनका नाम कृष्ण दिया गया। वे अपनी बालक्रीडाओं से नन्द, यशोदा को आनन्दित करते थे। देवकी भी पर्वमिष से गोकुल आकर कृष्ण को देख जाती थी। वसुदेव समझाते रहते—ऐसा करना उचित नहीं! कहीं कंस को पता चल गया तो अनर्थ हो जायगा! तुम वार-वार मत जाओ!! कृष्ण सात वर्ष के हो गये, वसुदेव ने अपने पुत्र रोहिणी से उत्पन्न, वलभद्र को, कंस से गुप्त रखकर गोकुल में कृष्ण की रक्षा व कलाभ्यास कराने को भेज दिया, वलभद्र को समझा दिया था कि 'कृष्ण उसका भाई है' यह वात गुप्त रखना, तुम भी ग्वाले के वेश में ही रहना जिससे किसी को ज्ञात न हो कि ये वसुदेव के पुत्र है। दोनों साथ-साथ खाते पीते क्रीडा करते, गायें चराते थे। वलभद्र गुप्तरूप से कृष्ण की रक्षा में सावधान रहते थे। समय पर क्षत्रियोचित शस्त्रकला व अन्य



व्यावहारिक कलाओं का भी अभ्यास कराते थे। दोनों में अनुपम अलौकिक प्रेम था। कृष्ण को बांसुरी बजाने का अत्यधिक शौक था। साथ ही वे नृत्य के भी शौकीन थे, गोपवालों साथ बांसुरी वजाना, रास रचाना, नृत्य करना, गौऐं चराना उन्हे अच्छा लगता था। चपलता वाल स्वभावगत विशेषता है। कृष्ण में चपलता अधिक थी, वे गोपियों से नवनीत मांगते, दधि की याचना करते, गोपियां दे देती, वे उन्हें बांसुरी सुनाते ; न देने वालियों के पात्र भंग कर देते। वलात् छीन लेते और स्वयं खा लेते, गोप वालकों को बांट देते। इसकी शिकायत लोग नन्द यशोदा से करते तो वे अधिक उत्पात करते। पर प्रसन्न भी कर देते थे। इस प्रकार कृष्ण सोलह वर्ष के हो गये।

उधर कंसने एक दिन छिन्ननासिका उस वालिका को देखा तो उदास हो गया, मुनिवचन स्मरण में आ गया। उसने निमित्तज्ञों को बुलाकर पूछा—मेरा शत्रु जीवित है या मर गया ? निमित्तज्ञों ने निमित्त देखकर कहा—राजन् ! आपका शत्रु जीवित है, कहीं वडा हो रहा है ! "वही कालिय नाग को नाथ कर वश में करेगा। केशी अश्व का दमन, खर व मेष का मरण, चम्पोत्तर पद्मोत्तर गजराजों का हनन, अरिष्ट सांड की मृत्यु और चाणूर व मौष्टिक मल्लों का अक्षवाट (अखाड़े) में मरण उसी के द्वारा होगा। सत्यभामा के स्वयम्वर में शाङ्ग धनुष पर ज्यारोहण (डोरीचढाना) भी उसी के हाथ से होगा।" ऐसे निमित्तज्ञों के वचन से कंस सशंकित हो उठा। उसने शत्रु को देखलेने का विचार किया। सत्यभामा के स्वयंवर की सूचना सारे भरतखण्ड के नरेशों को भेज कर, स्वयंवर मण्डप निर्माण कराया। जो शाङ्ग धनुष पर ज्यारोहण करेगा, उसे मेरी वहिन सत्यभामा वरण करेगी" ऐसी उद्घोषणा की गयी।

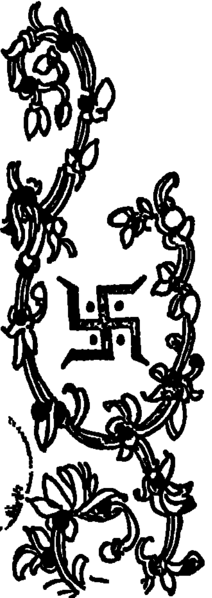
देश के नृपतिगण राजकुमार व कई धनुर्विद्याविद् आ रहे हैं। वसुदेव के पुत्र अनाहष्टि कुमार भी धनुर्विद्या निपुण थे, वे भी चलते हुये सन्ध्यासमय गोकुल में आ पहुँचे। वलदेव ने उन्हे पहिचान लिया और यथोचित सत्कार किया। अनाहष्टि ने कहा—भाई। कोई मार्गदर्शक भेजो। हमें मथुरा का मार्ग वतादे ? वलभद्र ने कृष्ण को भेज दिया। अनाहष्टि को मथुरा का पथ दिखा, कृष्ण जाने लगे ; रथ थोड़ी दूर पर दो वृक्षों के वीच फँस गया था। कृष्ण से नहीं रहा गया वे तत्काल वहाँ गये एक-एक लात प्रहार से दोनों वृक्षों को गिराकर रथ निकाल दिया। अनाहष्टि दंग रह गये, "ऐसा व्यक्ति साथ रहे तो अच्छा हो' कृष्ण को रथ में वैठा लिया और मथुरा लेगये।



अधीर बन गये, उन्होंने तत्काल दोनों—राम कृष्ण को पकड़ लाने का आदेश दिया व जीवयशा को सान्त्वना दी। सोम नामक सामन्त को पकड़ने के लिये भेज दिया।

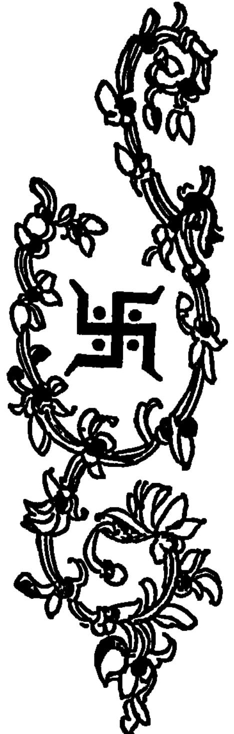
उधर यादवों ने कृष्ण के साथ सत्यभामा का विवाह किया। कृष्णादि को लेकर सौरीपुर आगये। जरासन्ध का दूत आदेश लेकर आ पहुँचा। राम कृष्ण को समर्पण कर देने का कहा। समुद्रविजयादि ने कहा—सोम। इस प्रकार के बलवान् गुणवान् रूपशाली बालकों को मारने के लिये भेज कर हम वृद्ध कितने समय तक जीवित रहेंगे? जो भावी है सो होगा। रामकृष्ण भी बोले—तुम्हें पिता से पुत्र माँगते लज्जा भी नहीं आ रही है। अभी तो मैंने छः भाइयो में से एक का ही प्रतिशोध लिया है! अभी पाँच का शेष है। यदि अपना भला चाहते हो तो भाग जाओ! नहीं तो इसका फल दिखा दूंगा!। सोम भयभीत हो, शीघ्र चला गया।

यादव शंकित हो गये। उन्होंने देश छोड़ने में ही श्रेय समझा। कोष्टुक निमित्तज्ञ को बुलाकर प्रश्न किया—हम किस दिशा में जायें? कहाँ जाने से निर्भय और समृद्ध बन सकेंगे?। पण्डित ने कहा—आपके कुल में कृष्ण, राम व नेमिकुमार महापुरुप भाग्यशाली है। कृष्ण को नेतृत्व देकर, दक्षिण पश्चिम कोण की ओर प्रयाण करें। जहाँ सत्यभामा के प्रसव हो, वही नगर बसाकर रह जायें। इससे आप सबकी सर्वप्रकार से वृद्धि होगी। यहाँ न रहना ही अच्छा है। समुद्रविजयादि तथा उग्रसेनादि सभी यादवगण सपरिवार शुभ मुहूर्त्त में वहाँ से प्रयाण कर गये। उधर सोम ने जरासन्ध को सारा वृत्तान्त कहा। जरासन्ध ने तत्काल युद्धार्थ प्रयाण भेरी बजवादी। यह देख कालकुमार सहदेव आदि ने प्रार्थना की—पिताजी। आप यहीं रहे। उन यादवों के लिये तो हमहीं बहुत है। कालकुमार ने प्रण किया कि यादव यदि आकाश में गये हैं तो मैं निश्रेणी लगा कर उन्हें मार दूंगा, पाताल में जायेंगे तो पाताल में, अग्नि में होंगे तो वहाँ, जल में होंगे तो अगस्त्य बनकर समुद्रशोषण कर उन्हे समाप्त करके ही रहूँगा। और पांच सौ भ्रातृगण तथा बहुत-सी सेना लेकर कालकुमार रवाना हो गया। यादव परिवार धीरे-धीरे जा रहा था। ये शीघ्रता से गये थे। दोनों में मात्र एक प्रयाण का ही अन्तर था। यादव समूह में कई महापुरुप थे—तीर्थंकर अरिष्टनेमिकुमार, वासुदेव श्री कृष्ण, बलदेव श्री बलभद्र और भी तद्भव सिद्ध चरम शरीरी अनेक व्यक्ति थे। उनके पुण्य से आकृष्ट कुलदेवी आयी। उसने रात्रि में दोनों शिविरों के मध्य एक पर्वत बना स्थान-स्थान पर चिताएँ प्रज्ज्वलित की और स्वयं वृद्धा बन करुण क्रन्दन करने लगी। कालकुमार रुदन सुन वहाँ आया, वृद्धा से रोने का कारण पूछा, वृद्धा ने कहा—मैं यादवों



की कुलदेवी हूँ। सभी यादव कालकुमार के भय से चिता में प्रवेश कर मर गये। एक भी तो नहीं बचा जो मेरी पूजा करता। मैं भी चिता में प्रवेश करती हूँ' ऐसा कह कर वह वृद्धा चिता में कूद पड़ी। प्रतिज्ञा वशात् कालकुमार भी चिता में कूद गया उसके पीछे कई लोग आ गये थे, कालकुमार का साहस देख वे भी अग्नि में कूद पड़े। सहदेव आदि ने भी भाई का अनुसरण किया। जो थोड़े से शेष रहे वे जान गये कि यह तो कोई देवमाया थी, भयत्रस्त वापिस लौट गये। यादवगण प्रमुदित मन से प्रयाण करते दक्षिण समुद्र के तट तक जा पहुँचे। सत्यभामा ने पुत्र युगल प्रसव किया। उनके नाम क्रमशः भानुकुमार, भ्रमरकुमार रखे गये। ज्योतिषी के वचनानुसार श्री कृष्ण ने लवण समुद्राधिप सुस्थित देव का अष्टम तप से आराधन किया। सुस्थितदेव प्रकट हो बोला—क्यों आराधन किया है ? श्री कृष्ण ने स्थान की याचना की। सुस्थित ने इन्द्र की आज्ञा से देने का कहा—इन्द्र से पूछा। इन्द्र ने धनद को भेज कर वहाँ सुन्दर द्वारिकानगरी बना कर अर्पण की। कृष्ण का राज्याभिषेक कर सब सानन्द निवास कर रहे थे। ५० वर्ष में अठारह कुल कोटि से बढ़कर यादव छप्पन कुलकोटि प्रमाण हो गये। उधर व्यापारियों के गमनागमन से जरासन्ध को ज्ञात हो गया कि 'यादव लोग द्वारिका में राज्य कर रहे हैं।' वह सेना सज्जकर युद्ध के लिये रवाना हो गया। इस समय नारद ऋषि द्वारिका में आये, 'जरासन्ध आ रहा है' कह कर चले गये। कृष्णादि यादव भी अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर सम्मुख आ गये और पंचासर तक पहुँचे। जरासन्ध भी एक योजन के अन्तर से स्थित था। दोनों में भयंकर युद्ध होने लगा। लाखों मनुष्य हाथी घोड़े आदि मारे गये। जरासन्ध ने देखा कृष्ण अजेय है। अतः उसने जरा विद्या का प्रयोग किया ; जिससे कृष्ण की सेना रुधिर वमन करती हुयी भूमि पर गिरकर बेसुध हो गयी। कृष्ण ने अरिष्टनेमि कुमार के कहने पर पद्मावती का आराधन किया। धरणीन्द्र पद्मावती ने प्रकट हो उन्हें भावि तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का बिम्ब दिया और कहा—इन प्रभु के स्नात्रजल से सेना स्वस्थ हो जायगी। कृष्ण ने प्रसन्न हो शंखनाद किया और वही प्रतिमा स्थापित कर स्नात्र पूजा की। स्नात्र जल सेना पर सिंचन किया, सेना सचेत हो गयी। वह स्थान शंखेश्वर तीर्थ रूप से प्रसिद्ध है और चमत्कार पूर्ण है।

इन्द्रने अपना रथ मातलि सारथी युक्त अर्पण किया। श्री अरिष्टनेमि कुमार उस रथ में बैठ गये। शंखनाद किया, जिससे जरासन्ध की सेना स्तब्ध हो गयी। जरासन्ध ने अन्य उपाय न देख कृष्ण के ऊपर अपना सुदर्शन चक्र फैका। चक्र कृष्ण को तीन प्रदक्षिणा दे उनके हाथ पर स्थिर हो गया। उसी चक्र से कृष्ण ने जरासन्ध पर वार किया। जरासन्ध मरण शरण हो गया। देवों ने कृष्ण पर पुष्पवृष्टि कर 'नवम वासुदेव' के नाम की उद्घोषणा की। तब सर्व अन्य राजागण, जरासन्ध की

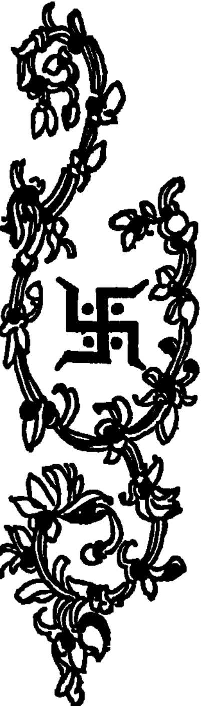


सेना आदि ने कृष्ण का आश्रय लिया। श्री कृष्ण सानन्द द्वारिका लौट आये। अर्द्ध भरत में उनका शासन चल रहा था। वे सुख से राज्य करने लगे।

आबाल ब्रह्मचारी श्री अरिष्टनेमि कुमार पूर्ण युवा हुये तो शिवादेवी मा ने उनसे कई बार विवाह करने का आग्रह किया। वे बोले—मां! मेरे योग्य कन्या देखूँगा तब करूंगा। मा को ऐसा कह कर हर्षित कर देते थे। पर कन्या दिखलाने पर अपनी अरुचि प्रकट कर देते।

एक बार वे क्रीड़ा करते कृष्ण की आयुधशाला में जा पहुँचे और पञ्चजन्य शंख उठा बजाने लगे। उस नाद से गजराज निर्मद हो गये। सुदर्शन चक्र को घुमाकर रख दिया। कृष्ण की गदा भी निमिष मात्र में घुमा कर रख दी। शार्ङ्ग धनुष पर प्रत्यञ्चा चढा कर टंकार किया; जिससे पृथ्वी ऐसे थरथराने लगी मानो भूकम्प हो गया हो। विश्व बधिर सा हो गया, नगरी कम्पित हो उठी। समुद्र का पानी उछलने लगा। गिरिवरों के शिखर टूट-टूट कर गिरने लगे। साराश की सारा ब्रह्माण्ड भयाक्रान्त हो गया। श्री कृष्ण वासुदेव का चित्त चिन्तित हो गया; वे विचारने लगे—क्या कोई नया वासुदेव प्रकट हुआ है। थोड़ी देर में पता चला कि यह सब अरिष्टनेमि की क्रीड़ा थी। कृष्ण को चिन्तित देख बलभद्र बोले—भाई! चिन्ता मत करो! नेमिकुमार राज्य नहीं लेगा? अरे। जो वीतराग विवाह भी नहीं कर रहा, वह भला राज्य का क्या करेगा? इतने में अरिष्टनेमि वहाँ आये भाई श्री कृष्ण आदि को नमस्कार किया, यथायोग्य स्थान पर बैठ गये। कृष्ण ने पूछा—बन्धु! शंख आप ने बजाया था? नेमि बोले—हाँ। क्रीड़ा करते मित्रों के साथ उधर चला गया था, मित्रों ने कहा तो बजा दिया था। वहाँ सभी शास्त्रों को उठाकर परीक्षा की थी। धनुष्टंकार भी मैंने ही किया था। कृष्ण ने कहा—आओ। आज भुजाबल की परीक्षा करें? और अपनी भुजा फैला दी। नेमिकुमार ने पलभर में भुजा को कमलनालवत् झुका दिया। अब नेमिकुमार ने अपनी भुजा लम्बी की, कृष्ण ने सारा बल लगा कर झुकाना चाहा पर असफल रहे। बलराम को संकेत किया, वे भी आ गये, दोनों वानरवत् झूलने लगे! पर झुका न सके। अन्त में निराश हो भुजा छोड़ स्व-स्व आसनों पर जा बैठे। नेमिकुमार तो नमस्कार कर स्वावास चले गये। कृष्ण उदास मन, चिन्तामग्न हो गये। विचारने लगे—इसका बल कम करना चाहिये! क्या पता कब मुझे सिंहासन से उतार स्वयं राजा बन जाय? इसी सोच में थे कि देववाणी हुयी—'ये तो तीर्थंकर बनने वाले हैं। थोड़े वर्ष बाद संयम धारण कर लेंगे।" पर कृष्ण को विश्वास नहीं हुआ, उन्होंने नेमिकुमार को विवाह के लिए तैयार होने का उपाय खोज निकाला।

कल्पसूत्र
२७२



रुक्मिणी आदि स्वपटरानियों से अभिसन्धि कर नेमिकुमार को साथ ले क्रीड़ा करने सहस्राम्रवन में गये। वसन्त का मोहक समय था, मन्द मलयानिल चल रहा था, वनराजि प्रफुल्लित थी कोकिल मयूर आदि पक्षी मधुरकलरव ध्वनि कर रहे थे। वहाँ एक जलाशय में जलक्रीड़ा मग्न रानियों ने नेमिकुमार को चारों ओर से घेर लिया, कोई गुलाल मलने लगी, किसी ने रंगीन सुगन्धित जल से पिचकारी भर कर फेंकी, कोई इत्र मलने लगी, किसी ने पुष्पों के कन्दुक फेंके तो कोई उन्हें पकड़ कर नृत्य करने लगी। सबने कहा—देवरजी! आज तो हम विवाह की स्वीकृति लेकर ही छोड़ेंगी! विवाह से इतने क्यों डरते हो? भला! एक देवरानी हमारे साथ क्रीड़ा करने वाली होती तो हम आपको परेशान न करती। अब झट से हाँ करदो! तो छोड देंगी, नहीं तो हम छोड़ने वाली नहीं हैं! नेमिकुमार को इन बातों से उनकी इन चेष्टाओं से, अज्ञानदशा का विलसित होने से ईषत् हँसी आ गयी, वे मुस्कराने लगे इससे रानियों ने समझा अब विवाह की बात से प्रसन्न हो गये हैं। छोड़ दो, छोड़ दो, विवाह कर लेंगे। और हाँ! हाँ! मान गये! मान गये! विवाह कर लेंगे। कृष्ण भी सुनकर हर्षित हो गये। द्वारिका में आकर समुद्रविजय शिवादेवी को भी यह शुभ संवाद सुनाया।

अब नेमिकुमार के योग्य कन्या की खोज होने लगी। महाराज उग्रसेन की कन्या राजिमती अत्यन्त रूपवती, साक्षात् रति का अवतार थी। कृष्ण ने नेमिकुमार के लिये उग्रसेन से उस कन्या की याचना की, उग्रसेन ने सहर्ष स्वीकार कर ली।

उस समय वर्षाकाल था, वर्षाकाल में लग्न नहीं होते फिर भी कृष्ण के अत्याग्रह से क्रोष्टक ज्योतिषी ने श्रावण शुक्ला षष्ठी को निर्दोष कह कर लग्न का समय निश्चित कर दिया। दोनों ओर विवाह की धाम-धूम आरम्भ हो गयी।

लग्न के दिन नेमिकुमार को वरसज्जा से सज्जित कर कृष्ण ने अपने पट्टहस्तियों के रथ में बैठाया। सब यादव वरयात्रा में चल रहे थे। विभिन्न वाद्ययन्त्र बज रहे थे। वासुदेव का समस्त वैभव मुखर हो रहा था।

वरयात्रा उग्रसेन नृप के प्रासाद के समीप तक आ गयी। सामने ही गगनचुम्बि शिखरों व ध्वजापताकाओं से मण्डित प्रासाद के गवाक्ष में राजिमती सखियों सहित खड़ी हुयी थी। राजिमती ने अलौकिक रूपवान् नेमिकुमार को देखा वह विचारने लगी—यह इन्द्र हैं या चन्द्र! कामदेव हैं या नागकुमार हैं? अहो! अद्भुत रूप है! मेरे मूर्तिमान् पुण्य से ये कौन है? सखियों ने कहा—यही तो अरिष्टनेमिकुमार हैं। आपके साथ विवाह करने आ रहे हैं। सुनकर राजिमती के रोमरोम पुलकित हो गये। लज्जा की लाली मुख पर छा गयी। किन्तु एक क्षण में ही उसकी दक्षिणनेत्र की पलक स्फुरण करने लगी, उसका हृदय



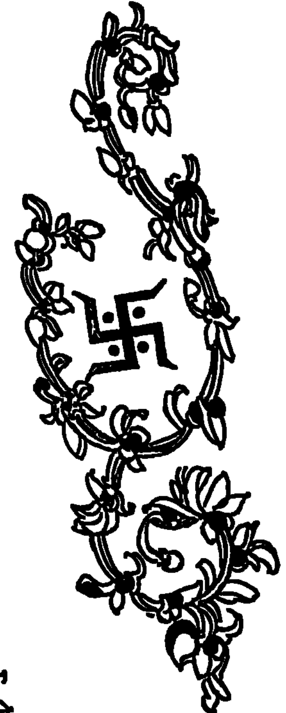


इस अपशकुन से प्रकम्पित हो उठा। उसका वदनविच्छाय—कान्तिहीन हो गया वह मूर्च्छित सी होने लगी। सखियों के प्रेरणादायक वचनों से आश्वस्त हो, पुनः सामने देखने लगी।

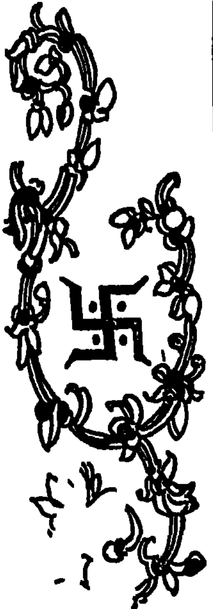
देखा तो नेमिकुमार का रथ मुड़ गया है। समुद्रविजय बलदेव कृष्ण आदि रथ के आगे आकर पुनः उग्रसेन के भवन की ओर मोड़ने का आग्रह कर रहे है। वह यह दृश्य देखते ही मूर्च्छित हो गयी। सखियाँ उन्हे उठा ले गयीं और सचेत करने के उपचार करने लगीं।

कारण यह था कि नेमिकुमार ने एक बाड़े में बन्द पशुओं को देखकर सारथी से कारण पूछा, उत्तर मिला कि इन सर्व के आमिष से भोजन बनेगा। भगवान् का मन दयार्द्र हो उठा, उन्होंने तत्काल आदेश दिया—इन्हे छोड दो! आदेश का त्वरित पालन हुआ। पशुपक्षी आदि मुक्त कर दिये गये। नेमिकुमार का मन अशान्त हो गया, वे बोले मुझे विवाह नही करना। सारथी! रथ वापिस मोड़ लो? सारथी ने आज्ञा पालन किया—रथ मोड़ कर लौटने लगे तो सभी—समुद्रविजय, कृष्ण आदि यादव घबरा उठे, नीचे उतर कर रथ का मार्ग रोक लिया, बोले—यह क्या कर रहे हो? शिवादेवी आदि भी उपस्थित हो गयीं बोली वत्स! ऐसा करना उचित नहीं। नेमिकुमार ने नम्रता से कहा—पूज्यवरों! मुझे विवाह नहीं करना! मेरे भोग्यकर्म क्षीण हो चुके हैं। आप कदाग्रह न करें। अन्य दृढनेमि आदि कई कुमार हैं, वे आपका मनोरथ पूर्ण कर सकेंगे। मैं तो संयम लेकर मुक्ति स्त्री के साथ ही विवाह करूँगा! इस विषय में अब आप अधिक हठ करके मुझे अविनीत कहलाने का प्रसंग उपस्थित न करें। ऐसा कह, रथ चलाने की सारथी को आज्ञा दी। सब निराश हो, किंकर्त्तव्य विमूढ से खड़े रह गये। नेमिकुमार का रथ चला गया। दोनों ओर भारी कोलाहल होने लगा। अन्त में उदास मुख सभी अपने-अपने घर लौट गये।

उधर उग्रसेन नरेश के भवन में राजिमती को उपचारों से होश आया तो वह विलाप करने लगी। क्षण में मूर्च्छित होती, क्षण में सचेत हो पुनः रोने लगती। माता, पिता, सखियाँ, सब परिजन समझाने लगे—तुम अधीर क्यों हो रही हो! एक से एक बढ़कर यादवकुमार रूपगुणवान हैं, किसी के साथ परिणय कर देंगे? राजिमती को ये शब्द तीक्ष्ण बाणवत् लगे, वह कानों पर हाथ धर कर बोली—शान्तं पापम्! ऐसा नहीं हो सकता! कुलीन कन्या जिसको एकवार वरण कर लेती है, उसी के साथ विवाह करती है; अन्य पुरुष का विचार करना भी महापाप है! अतः भविष्य में ऐसी बात मुख से न निकालें!! उसके ऐसे दृढ वचन सुन मौन हो गये। राजिमती ने निश्चय कर लिया, जब समय आयेगा, दीक्षा लेकर उन्हीं की शिष्या बनूँगी।



कल्पसूत्र
२७४



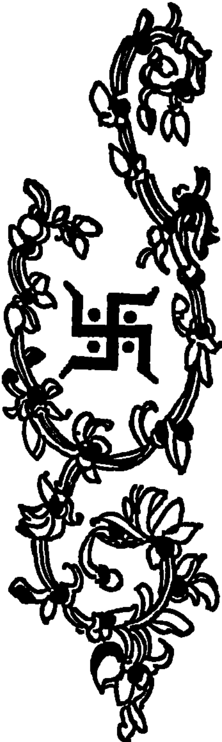
एक वार रथनेमिकुमार राजिमती से विवाह करने की इच्छा से वहाँ आया तो राजुल ने उसके सामने भी नहीं देखा और स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दिया—यह असम्भव है ! सूर्य पश्चिम में उदय हो सकता है ! मेरु भी कदाचित् चलायमान हो सकता है, समुद्र मर्यादा त्याग सकता है, अग्नि शीतल हो सकती है ! परन्तु शीलवती पतिव्रता स्त्रियाँ कभी स्वप्न में भी परपुरुष का विचार तक नहीं कर सकती ! ! रथनेमि निराश हो चला गया ।

उधर अरिष्टनेमिकुमार को समुद्रविजयादि दशार्ह, वलभद्र कृष्ण प्रमुख, शिवादेवी आदि वार-वार स्नेहपूर्वक समझाने लगे—ऋषभादि तीर्थङ्कर ही थे, उन्होंने भी तो विवाहादि सभी लौकिक कार्य किये थे ! तुम्हीं नये तीर्थङ्कर हो क्या ? क्या विवाह करने वाले मुक्ति में नहीं जाते ? हमारा आग्रह मानकर हमारी आज्ञा से ही विवाह कर लो ! फिर समय पर दीक्षा भी ले लेना ? । अरिष्टनेमि कुमार ने विनय पूर्वक कहा—पूज्यवरों ! मेरा निश्चय दृढ है ? आप कृपया शान्त रहे । धर्मकार्य में विघ्न न करें । मेरे भोगावलि कर्म क्षीण हो गये हैं ।

तब श्री अरिष्टनेमिकुमार तीन सौ वर्ष के थे । दीक्षा समीप जान लौकान्तिक देवता उपस्थित हुये, जय जय नन्दा ! जय जय भद्दा ! शब्दों से दीक्षावसर निवेदन किया । इन्द्रादि ने यादवों से भी कहा—ये बालब्रह्मचारी ही दीक्षित होकर धर्मतीर्थ का प्रवर्त्तन करेंगे ! इनका अभिनिष्क्रमण महोत्सव करिये ? धनद की आज्ञा से तिर्यग्जृम्भक देव स्वर्णरत्नादि के भण्डार भरने लगे । भगवान् ने एक वर्षपर्यन्त 'सांवत्सरिक दान' दिया ।

दीक्षा अवसर का सूत्रकार वर्णन करते हैं :—

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जे से वासाणं पढमे मासे दुच्चे पक्खे सावण सुद्धे, तस्सणं सावण सुद्धस्स छट्ठी पक्खेणं पुवण्हकाल समयंसि उत्तरकुराए सीयाए सदेव मणुआसुराए परिसाए अणुगम्ममाणमग्गे जाव वारवइए नयरीए मज्झं मज्झेणं निग्गच्छई,





निगच्छित्ता जेणेव रेवयए उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे सीयं ठावेइ, ठावित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता छट्ठे णं भत्तेणं अपाणएणं चित्ता नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं एगं देवदूसमादाय एगेणं पुरिससहस्सेणं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥१७८॥

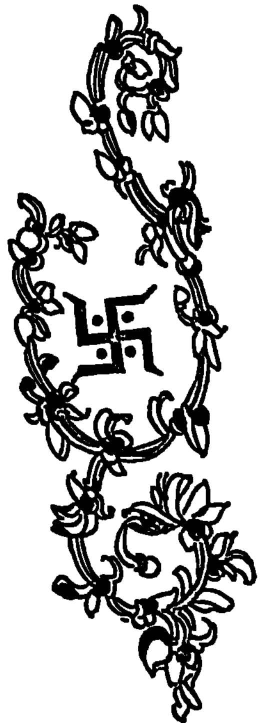
अर्थ :—उस काल उससमय में अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान्, वर्षाकाल के प्रथममास द्वितीय पक्ष अर्थात् श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन पूर्वाह्नकाल में (एक प्रहर दिन चढ़े) उत्तरकुरा शीविका में विराजमान, देव मनुष्य और असुरों के अनुगम्यमान मार्ग—अर्थात् देवादि पीछे चल रहे थे। द्वारिका नगरी के मध्य मध्य राजपथ पर चलते हुये रैवतक उद्यान में आये, वहाँ श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे शीविका रखवा कर उतर गये, स्वयं सर्व माल्य अलंकार वस्त्रादि को उतार पंचमुष्टि लोच किया। उसदिन भगवान के अपानक छट्ठभक्त (बेला) था। चित्रानक्षत्र में चन्द्रमा का योग आने पर मात्र देवेन्द्रदत्त देवदूष्य लेकर अन्य एक हजार दीक्षार्थी जनों सहित अगारी से अनगारी हो प्रव्रजित हुये। अर्थात् सदा के लिये पूर्णरूप से गृहवास त्यागकर चले गये। उन्हें मनःपर्यय ज्ञान हो गया।

सूत्र :—अरहाणं अरिट्ठनेमि चउपन्नं राइंदियाइं निच्चं वोसट्ठकाए चियत्तदेहे, तंचेव सव्वं जाव पणापन्नगस्स राइंदियस्स अंतरा वट्टमाणस्स जे से वासाणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे आसोय बहुले, तस्सणं आसोय बहुलस्स पन्नरसी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भाए उज्जितसेल सिहरे वडसपायवस्स अहे छट्ठे णं भत्तेणं अपाणएणं चित्ताहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं झाणंतरियाए



वद्धमाणस्स जाव अणंते अणुत्तरे जाव सव्वलोए सव्वजीवाणं भावे जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥ १७६ ॥

अर्थ :—अर्हत् अरिष्टनेमि भगवान् दीक्षा लेकर चौपन दिन तक सदा शरीर शुश्रुषा त्याग कर त्यक्तदेह आत्म साधना—कर्मनष्ट करने वाले संयम तप का आचरण करते थे। अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग-उपद्रव सहन करते थे। इस प्रकार साधना करते हुये पचपनवाँ दिन वर्त्तमान था। तब वर्षार्तु के तृतीयमास पञ्चम पक्ष की अमावस्या—अर्थात् आश्विन् कृष्ण अमावस्या के दिन पिछले प्रहर में उज्जयन्त-गिरनार शैल के शिखर पर वेतसवृक्ष के नीचे अपानक षष्ठ (कहीं अष्टम) युक्त शुक्ल ध्यान में लीन थे, चन्द्रमा चित्रानक्षत्र में चल रहा था। आत्मप्रदेशों से घातिकर्मों का निर्जरण हो रहा था, क्षणमात्र में ही सर्वथा क्षय हो जाने पर अनन्तार्थ ज्ञायक दर्शक श्रेष्ठ केवलज्ञान केवलदर्शन समुत्पन्न हो गये। भगवान् लोक के समस्त भावों को जानने देखने लगे। चतुर्णिकाय के इन्द्रादि समस्त देव देवीगण सेवा में उपस्थित हुये। देवदुन्दुभि निनाद होने लगा। देवों ने समवसरण रचना की। सहस्राम्रवन का रक्षक बधाई देने द्वारिका में वासुदेव श्रीकृष्ण की सेवा में गया। बधाई दी, वासुदेव ने साढ़े बारह क्रोड़ रजतमुद्राएँ वनपालक को प्रदान की। वासुदेव सहित यादवगण व अन्य सभी नागरिकजन वन्दनार्थ तथा देशनाश्रवणार्थ आये। देशना सुनकर वरदत्त नृप ने दोहजार राजाओं के साथ दीक्षा ली। गणधरादि चतुर्विध संघ का निर्माण हुआ। राजिमती भी आयी थी। श्रीकृष्ण ने भगवान् से राजिमती के अनन्य अखण्डस्नेह का कारण पूछा—भगवन् ! आपके साथ राजिमती का ऐसा अपूर्व स्नेह क्यों है ?। भगवान् ने कहा—मेरा व इसका सम्बन्ध आठ भवों से चला आ रहा है, प्रथम भव में मैं धन, और यह धनवती थी ; हम दम्पती थे। सम्यक्त्व प्राप्ति हुयी थी। दूसरे भव में सौधर्म स्वर्ग में हम देव देवी थे। तीसरे में मैं चित्रगति विद्याधर और यह

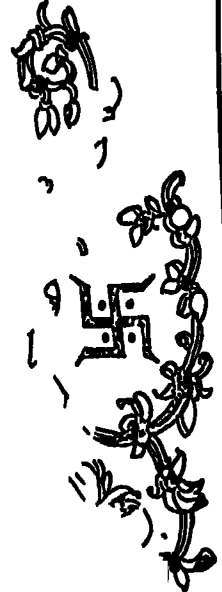


रत्नवती तामक मेरी धर्मपत्नी थी। चौथे भव में हम माहेन्द्र देवलोक में मित्रदेव थे। पाँचवें में मैं अपराजित राजा और यह प्रियमती नामक मेरी रानी थी। छठे भव में हम इग्यारहवें स्वर्ग में देव बने थे। सातवें में शंखनृपति और यह यशोमती नामक मेरी राज्ञी थी। उसी भवमें मैंने वीशस्थानक की आराधना की। वहाँ से हम दोनों आठवें भव में अपराजित विमान में देव रूप थे। मैं नवम भव में अरिष्टनेमि, यह राजिमती हुयी है। इस प्रकार हमारा सम्बन्ध रहा है। सुनकर राजिमती को जातिस्मरण होगया। प्रभु वहाँ से विहार कर पृथ्वीतल पर जनकल्याणार्थ विचरने लगे। पुनः रैवताचल पर समवसरण हुआ और राजकुमारी राजिमती ने अनेक राजकन्याओं के साथ संयम धारण किया। भगवान् के लघुभ्राता रथनेमि आदि मी दीक्षित हुये।

एकदा राजिमती भगवान् के दर्शनार्थ अन्य साध्वियों के साथ गिरनार गिरि पर चढ़ रहीं थी। घनघोर घटाएँ घिरी हुईं थीं, मेघ का गर्जन और तडित् का तर्जन हो रहा था। क्षण में ही मेघ जलधाराएँ वर्षण करने लगा। साध्वियों को जिधर सुरक्षित स्थान दिखलायी पड़ा उधर जाकर खड़ी होगयीं, इस हड़बड़ाहट में राजिमती मी एक गुफा में जा पहुँची। वर्षा में भींगे हुये वस्त्र उतार कर चट्टानों पर फैला दिये और स्वयं अंग संकुचित कर एक कोने में बैठ गयी। उसे ज्ञात नहीं था, कि इसी गुफा में रथनेमि मुनिध्यान रूप खड़े हैं। गुफा में अन्धकार था हो, कालीघटाओं ने उसमें अधिक वृद्धि करदी थी। सहसा विद्युत् की चमक मे मुनि ने नग्न राजिमती को देख लिया, रति को मो लज्जित करने वाला रूप सौन्दर्य्य, नग्न शरीर, एकान्त स्थान, युवावस्था, वर्षाकाल इत्यादि के कामवर्द्धक संयोग ने मुनि को विचलित कर दिया। उनका तरुणमन आन्दोलित हो उठा। पुरुषत्व का प्रबल वेग उन्हें उत्तेजित करने लगा। कुछ देर उन्होंने बलात् मन को रोक कर आत्म-लीन रहने का प्रयास किया, अपनी संयम साधना की बात ध्यान में लाकर स्थिर रहने का सोचा ; पर सब व्यर्थ।। वे स्थान छोड़ राजिमती के समीप



कल्पसूत्र
२७८



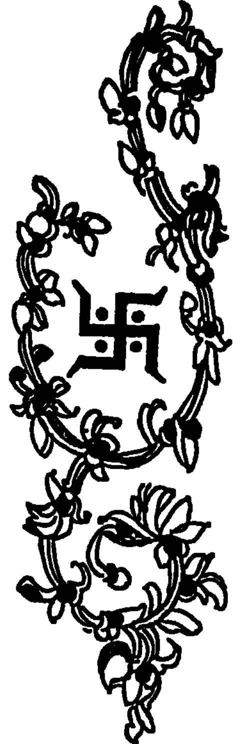
आ गये ; बोले—प्रिये ? राजिमती ! अहा ! कैसा अद्भुत सौन्दर्य है तुम्हारा ! इस भोग योग्य शरीर को तपसंयम से क्यों कृश बना रही हो ! आओ ! बड़ा सुन्दर अवसर है ! अपनी इच्छाएँ पूर्ण करें, चलो ! विवाह कर दाम्पत्य सुख भोगें ? फिर वृद्धावस्था में साथ ही संयम लेकर तप करेंगे !

राजिमती एक वार तो भयभीत हो गयी, पर तत्काल ही अपने हाथों से गुह्यांग ढकते हुये शीघ्रता से चट्टान पर से वस्त्र उठाकर स्वयं को ढक लिया और धैर्य व साहस पूर्वक उत्तर दिया—महानुभाव ! आप भी संयमी हैं, मैं भी साध्वी हूँ। वमन की हुयी वस्तु का भोग करना हम आप जैसे कुलीनों का कार्य नहीं ! भला अगन्धन कुल का सर्प क्या वमितविष को पुनः लेता है ? वह अग्नि में जल जाना स्वीकृत कर लेता है पर ऐसा नहीं करता ! ऐसे देखकर ही अस्थिर होते रहे तो हवा से हिलाये हड़[1] के समान हिलते ही रहोगे ! जगत् में एक से एक बढ़कर रूपवती नारियाँ हैं। अतः मन को चञ्चल न कर कर्त्तव्य पर ध्यान दीजिये। अहा ! कितने आश्चर्य की बात है ! एक मां के दो पुत्र ! पर कितना अन्तर ! एक ने तोरण द्वार तक आकर भी नारी को स्वीकार नहीं किया। दूसरा कितना इन्द्रियों व कामनाओं का दास। अहो ! मोहदशा को धिक्कार हो।

राजिमती के इन वोधदायक वचनों ने मदोन्मत गज के लिये अंकुश का सा कार्य किया। रथनेमि पश्चात्ताप करने लगे, कुचेष्टा के लिये क्षमायाचना की। अपनी उपकारिणी मानकर निर्मल हृदय से उस महासती को नमस्कार किया।

वर्षा वन्द हो चुकी। रथनेमि ने भगवान् के पास जाकर प्रायश्चित किया। राजिमती आदि साध्वियाँ भी वन्दन कर लौट आयीं। ऐसी राजिमती महासती थीं।

१ जल में उगनेवाली जड़रहित वनस्पति विशेप।



कुमारी राजिमती चार सौ वर्ष कुमारी अवस्था में रहीं, एक वर्ष छद्मस्थ पर्याय और पाँच सौ वर्ष केवली रूप में विचर कर नवसौ एक वर्ष का सर्वायुष्क पूर्ण कर भगवान् अरिष्टनेमि के निर्वाण से चौपन दिन पूर्व ही मुक्तिगामिनी बन गयीं। धन्य हो उन महासती को। अब भगवान् के चतुर्विध संघ का वर्णन करते हैं।

सूत्र :—अरहओ णं अरिट्ठ नेमिस्स अट्ठारस गणा अट्ठारस गणहरा होत्था ॥ १८० ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स वरदत्त पामुक्खाओ अट्ठारस समण साहस्सीओ उक्कोसिया समण संपया हुत्था ॥ १८१ ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अज्ज जक्खिणी पामुक्खाओ चालीसं अज्जिया साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था ॥१८२॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स नंद पामुक्खाणं समणो वासगाणं एगासय साहस्सीओ अणउत्तरिंच सहस्सा उक्कोसिया समणोवासगाणं संपया हुत्था ॥ १८३ ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स महासुव्वया पामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्निमय साहस्सीओ छत्तीसं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था। अरहओणं अरिट्ठनेमिस्स चत्तारिसया चउदसपुव्वोणं अजिणाणं जिनसंकासाणं सव्वक्खर जाव हुत्था ॥ १८४ ॥ पन्नरस सया ओहोनाणीणं पन्नरससया केवलनाणीणं पन्नरससया वेउव्वियाणं विउलमईणं अट्ठसया वाईणं सोलस सया अणुत्तरोववाइयाणं पन्नरस समणसया सिद्धा तीसं अज्जियासयाइं सिद्धाइं ॥१८५॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स दुविहा अंतगड भूमो हुत्था, तंजहा—जुगंतगडभूमी परियायंतगड भूमी य जाव अट्ठमाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगड भूमी, दुवास परिआए अंतमकासी ॥ १८६ ॥

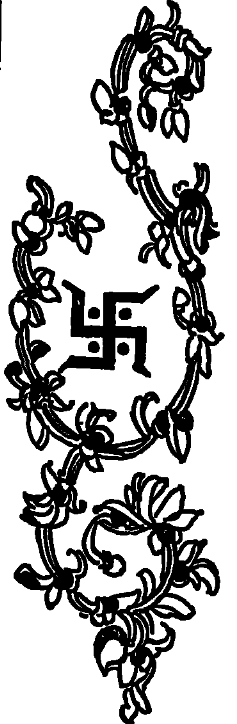


अर्थ :—अर्हन् अरिष्टनेमि भगवान् के अठारह गण व अठारह गणधर थे। वरदत्त आदि अठारह हजार उत्कृष्ट मुनिराज थे। आर्या यक्षिणी आदि चालीस हजार उत्कृष्ट श्रमणी सम्पत् थीं। नन्द प्रमुख एक लाख उनसठ हजार श्रमणोपासक और तीन लाख छत्तीस हजार महासुव्रता आदि उत्कृष्ट श्राविकाएँ थीं। चार सौ अजिन किन्तु जिनसदृश चतुर्दश पूर्वधर साधु थे। पनरह सौ अवधिज्ञानी, पनरह सौ केवलज्ञानी, पनरह सौ वैक्रियलब्धि सम्पन्न साधु थे। एक हजार विपुलमती मनःपर्यव ज्ञानी श्रमण थे। आठ सौ वादी थे, सौलह सौ मुनि अनुत्तरोपपातिक अर्थात् अनुत्तर विमानवासी हुये थे। पनरह सौ मुक्त हुये। तीन हजार साध्वियाँ मोक्ष में गयीं।

भगवान् अरिष्टनेमि अर्हन्त के दो अन्तकृत् भूमि थी—युगान्तकृत् भूमि, पर्यायान्तकृत् भूमि, भगवान् के आठ पट्टधर मुक्त हुये। केवलज्ञान के दो वर्ष पश्चात् मुक्ति जाना आरम्भ हुआ।

—निर्वाण कल्याणक—

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी तिन्निवास सयाइं कुमार वास मज्झे वसित्ता चउपन्न राइंदियाइं छउमत्थ परिआयं पाउणित्ता देसूणाइं सत्तवास सयाइं केवलि-परिआयं पाउणित्ता परिपुण्णाइं सत्तवास सयाइं सामण्ण परिआयं पाउणित्ता एगवास सहस्सं सव्वाउअं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउयनामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए दुसम सुसमाए समाए बहुविइक्कंताए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे अट्ठमे पक्खे आसाढ सुद्धे तस्स णं आसाढ सुद्धस्स



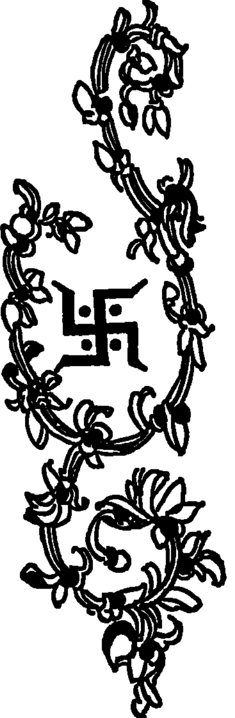


सट्ठिमासिएणं भत्तेणं अट्ठमी पक्खेणं उप्पिं उज्जित सेलसिहरंसि पंचहिं छत्तोसेहिं अणगार सएहिं सट्ठिमासिएणं भत्तेणं अपाणएणं चित्ता नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं पुव्वरत्तावरत्तकाल समयंसि ने सज्जिए कालगए (ग्रं० ८००) जाव सव्व दुक्खपहीणे ॥ १८७ ॥ अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स कालगयस्स जाव सव्वदुक्खपहीणस्स चोरासीइं वाससहस्साइं विइक्कंताइं, पंचासी इमस्स वाससहस्सस्स नववाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स वास सयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १८८ ॥

अर्थ :—उस काल उस समय में अर्हन् अरिष्टनेमि भगवान् तीन सौ वर्ष कुमार अवस्था में रहे, चौपन दिन छद्मस्थावस्था में चरित्र पालन किया, सात सौ वर्ष में कुछ कम समय तक केवली रूप में रहे, यों पूर्ण एक हजार वर्ष का उनका आयुष्क था। वेदनीय आयु नाम और गोत्र कर्म के क्षीण हो जाने पर, अवसर्पिणी काल के दुष्षम सुषमा आरे के बहुत व्यतीत हो जाने पर उष्णकाल के चतुर्थ आषाढ मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन गिरनार शैल शिखर पर पाँच सौ छत्तीस मुनिजनों के साथ अपानक (चौविहार त्याग) मासक्षमण तपयुक्त चित्रा नक्षत्र का चन्द्रमा था, उस समय अर्द्ध रात्रि के समय बैठे हुये निर्वाण पधारे यावत् सर्व दुःखों से मुक्त हो गये ॥

भगवान् नेमिनाथ के निर्वाण के चौराशी हजार नव सौ अस्सी वर्ष व्यतीत होने पर कल्पसूत्र लिपिवद्ध किया गया।

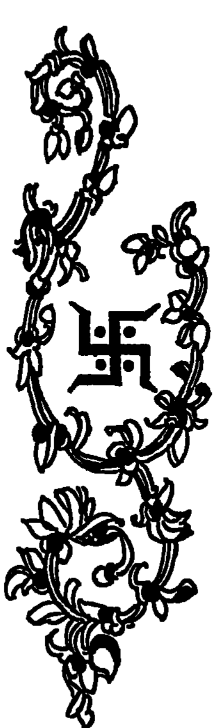
इस प्रकार पार्श्वनाथ भगवान् और नेमिनाथ भगवान् का संक्षिप्त चरित्र कहा गया। अब तीर्थंकरों का अन्तर काल कहेंगे।



—अन्तरकाल सूचक सूत्र—

सूत्र :—नमिस्स णं अरहओ कालगयस्स जाव सव्वदुक्खप्पहोणस्स पंचवास सय सहस्साइं चउरासीइं च वास सहस्साइं नव य वास सयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १८९ ॥ २१ ॥ मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ कालगयस्स इक्कारस वाससय सहस्साइं चउरासीइं च वास सहस्साइं नव वास सयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वाससयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १९० ॥ मल्लिस्सणं अरहओ जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स पन्नट्ठिं वास सयसहस्साइं चउरासीइं च वास सहस्साइं नववाससयाइं विइक्कंताइं दसमस्स य वास सयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥ १९१ ॥ अरस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगे वास कोडिसहस्से विइक्कंते, सेसं जहा मल्लिस्स। तं च एयं पंचसट्ठिं लक्खा चउरासीइं सहस्सा विइक्कंता तम्मि समये महावीरो निव्वुओ, तओ परं नव वाससया विइक्कंता दसमस्स य वास सयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छई, एवं अग्गओ, सेयंसो ताव दट्ठव्वं ॥ १९२ ॥ कुंथुस्स णं अरहओ जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स एगे चउभाग पलिओवमे विइक्कंते, पंचसट्ठिं वाससय सहस्सा सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९३ ॥ संतिस्सणं अरहओ जाव सव्व दुक्खप्पहोणस्स एगे चउभागूणे पलिओवमे विइक्कंते, पन्नट्ठिंच, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९४ ॥ धम्मस्स णं अरहओ जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स तिन्नि सागरोवमाइं

मल्लिस्स ॥ १९५ ॥ अणंतस्स णं अरहओ जाव सव्व
विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९६ ॥ विमलस्स
दुक्खप्पहीणस्स सत्त सागरोवमाइं विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९६ ॥ विमलस्स
णं अरहओ जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स सोलस सागरोवमाइं विइक्कंताइं, पन्नट्ठिं च सेसं जहा
मल्लिस्स ॥ १९७ ॥ वासुपुज्जस्स णं अरहओ जाव सव्व दुक्खप्पहीणस्स छायालीसं सागरोवमाइं
विइक्कंताइं पन्नट्ठिं च सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९८ ॥ सिज्जंसस्स णं अरहओ जाव सव्व दुक्ख
प्पहीणस्स एगेसागरोवमसए पन्नट्ठिंच, सेसं जहा मल्लिस्स ॥ १९९ ॥ सीअलस्स णं अरहओ जाव
सव्व दुक्खप्पहीणस्स एगा सागरोवम कोडी तिवासद्धनवमासाहिअ बायालीस वास सहस्सेहिं
ऊणिआ विइक्कंता एअम्मि समए वीरोनिव्वुओ, तओ वि य णं परं नव वाससयाइं विइक्कंताइं
दसमस्स य वाससयस्स अयं असोइमे संवच्छरे काले गच्छई ॥ २०० ॥ सुविहिस्सणं अरहओ
पुप्फदंतस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स दससागरोवम कोडीओ विइक्कंताओ सेसं जहा सीअलस्स,
तं च इमं तिवास अद्धनवमासाहिअ बायालीस वास सहस्सेहिं उणिआ विइक्कंता इच्चाइ ॥२०१॥
चंदप्पहस्स णं अरहओ जाव सव्वदुकूख पहोणस्स एगं सागरोवमकोडिसयं विइक्कंतं सेसं जहा
सीअलस्स, तं च इमं तिवास अद्धनवमासाहिअ बायालीस सहस्सेहिं ऊणिआ इच्चाइ ॥ २०२ ॥
सुपासस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे सागरोवम कोडिसहस्से विइक्कंते सेसं जहा सीअलस्स,
तं च इमं तिवास अद्धनवमासाहिअ बायालीस सहस्सेहिं उणिआ इच्चाइ ॥२०३॥ पउमप्पहस्स णं
अरहओ जाव प्पहीणस्स दस सागरोवम कोडिसहस्सा विइक्कंता, तिवास अद्धनवमासाहिअ



बायालीस सहस्सेहिं इच्चाइयं, सेसं जहा सीअलस्स ॥ २०४ ॥ सुमइस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स एगे सारोवमकोडिसयसहस्से विइक्कंते सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहिय बायालीसवास सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ २०५ ॥ अभिणंदणस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स दस सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कता, सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीसवास सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ २०६ ॥ संभवस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स वीसं सागरोवम कोडिसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहिय बायालीस वास सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ २०७ ॥ अजियस्स णं अरहओ जाव प्पहीणस्स पन्नासं सागरोवमकोडिसयसहस्सा विइक्कंता, सेसं जहा सीअलस्स, तिवासअद्धनवमासाहियबायालीस सहस्सेहिं इच्चाइयं ॥ २०८ ॥

—श्री तीर्थंकर भगवन्तों का अन्तरकाल—

१ श्री पार्श्वनाथ के निर्वाण और महावीर प्रभु के निर्वाण में ढाई सौ वर्षों का अन्तर है।

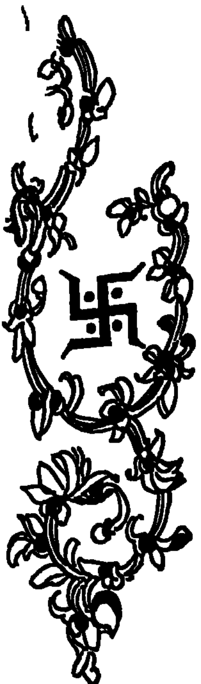
२ श्री अरिष्टनेमि प्रभु और महावीर भगवान् के निर्वाण में चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

३ श्री नमिनाथ व महावीर के निर्वाण में पाँच लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

४ श्री मुनिसुव्रत भगवान् और महावीर के निर्वाण में ग्यारह लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

५ श्री मल्लिनाथ प्रभु व महावीर के निर्वाण में पैंसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।





६ श्री अरनाथ व महावीर के निर्वाण में एक हजार क्रोड़ पैंसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

७ श्री कुन्थुनाथ और महावीर निर्वाण के मध्य एक पल्योपम का चतुर्थ भाग पैंसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

८ श्री शान्तिनाथ व महावीर के निर्वाण के मध्य पौण पल्योपम पैसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

९ श्री धर्मनाथ व महावीर के निर्वाण में तीन सागरोपम पैंसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

१० श्री अनन्तनाथ और महावीर के निर्वाण में सात सागरोपम पैसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

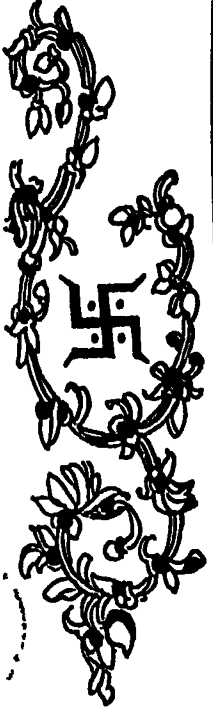
११ श्री विमलनाथ और महावीर के निर्वाण में सोलह सागरोपम पैंसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

१२ श्री वासुपूज्य भगवान् और महावीर के निर्वाण में छियालीस सागरोपम पैसठ लाख चौराशी हजार वर्ष का अन्तर है।

१३ श्री श्रेयांस व महावीर के निर्वाण के बीच एक सौ सागरोपम पैसठ लाख चौरासी हजार वर्ष का अन्तर है।

१४ श्री शीतलजिन व महावीर के निर्वाण के बीच एक क्रोड़ सागरोपम में बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास कम का अन्तर है।





१५ श्री सुविधि जिनेन्द्र व महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ महीने न्यून दश कोटि सागरोपम का अन्तर है।

१६ श्री चन्द्रप्रभजिन व महावीर के निर्वाण के बीच बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास एक सौ क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

१७ श्री सुपार्श्व जिनपति व महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास कम एक हजार क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

१८ श्री पद्मप्रभ भगवान् व महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास कम दश हजार क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

१९ श्री सुमतिजिन व महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास कम एक लाख क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

२० श्री अभिनन्दनप्रभु व महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास कम दश लाख क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

२१ श्री सम्भवजिन और महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास न्यून बीस लाख क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

२२ श्री अजितनाथ व महावीर के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास कम पचास लाख क्रोड़ सागरोपम का अन्तर है।

२३ श्री ऋषभदेव भगवान् और महावीर प्रभु के निर्वाण के मध्य बयालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास न्यून एक कोटा कोटी सागरोपम का अन्तर है।

इस प्रकार सभी तीर्थंकरों का अन्तरकाल कहा गया है।



—श्री ऋषभदेव चरित्र—

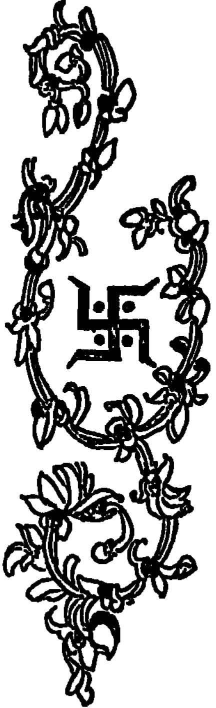
सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए चउ उत्तरासाढे अभीइ पंचमे हुत्था, तंजहा—उत्तरासाढाहिं चुए, चइत्ता गब्भं वक्कंते जाव अभीइणा परि निव्वु ॥२०९॥

अर्थ :—उस काल उस समय में अर्हन् ऋषभदेव कौशलिक के चार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्र में और एक अभिजित् नक्षत्र में हुआ। वह इस प्रकार उतराषाढा नक्षत्र में स्वर्ग से च्युत हो गर्भ में आये, उत्तराषाढा में जन्म, दोक्षा और केवल ज्ञान हुआ। निर्वाण अभिजित् नक्षत्र में हुआ था। अब विस्तार से कहते हैं।

सूत्र :—तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे आसाढबहुले त्तस्स णं आसाढबहुलस्स चउत्थोपक्खेणं सव्वट्ठसिद्धाओ महाविमाणाओ तेत्तीसं सागरोवमट्ठिइआओ अणंतरं चयं च इत्ता इहेव जंबूदीवे दीवे भारहे वासे इक्खागभूमीए नाभिकुलगरस्स मरुदेवोए भारियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि आहार वक्कंतीए जाव गब्भत्ताए वक्कंते ॥ २१० ॥

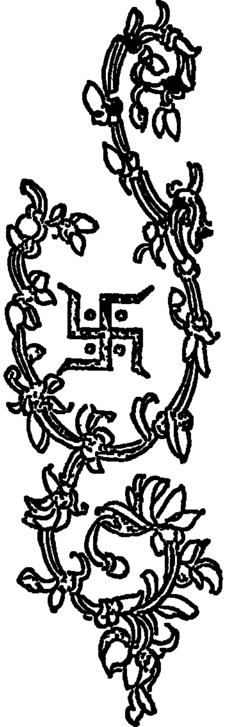
अर्थ :—उस काल उस समय—अर्थात् अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अन्त में अर्हन् कौशलिक ऋषभ देव ग्रीष्मऋतु के चतुर्थमास आसाढ कृष्णा चतुर्थी के दिन अर्द्ध रात्रि के समय सर्वार्थ सिद्ध महाविमान में तेतीस सागरोपम की आयुस्थिति भोग कर, च्युत हो, जम्बूद्वीपान्तर्गत भरतक्षेत्र की इक्ष्वाकुभूमि में नाभिकुलकर की भार्या मरुदेवी की कूक्षि में दिव्य आहारादि का त्याग कर गर्भ रूप में उत्पन्न हुये।

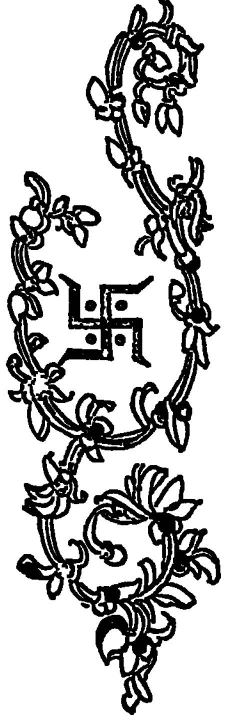




भगवान् सर्वार्थसिद्ध से च्युत हो अवतरे ऐसा सूत्रकार ने कहा परन्तु इससे पूर्व कहाँ थे, क्या साधना तप संयम आदि किये ? कहाँ, कब सम्यक्त्व प्राप्ति हुई ऐसी जिज्ञासा होना स्वाभाविक है अतः पूर्व भवों का वर्णन आवश्यक समझ संक्षेप में कहते हैं :—

इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह क्षेत्र में सुप्रतिष्ठित नगर में प्रियंकर नृप शासन करते थे। उसी नगर में महाधनी धन सार्थवाह निवास करते थे। उसने एकदा वसन्तपुर जाने का विचार कर पुर में उद्घोषणा करवायी—जो कोई वसन्तपुर जाना चाहे, वह हमारे साथ में चले। हम उनको सर्व सुविधाएँ देंगे, सुरक्षा करेंगे। सुनकर भारी सार्थ साथ चलने को प्रस्तुत हो गया। तत्र विराजित श्री धर्मघोषसूरि को भी अपने पाँच सौ शिष्यों सहित यात्रार्थ जाने की इच्छा हुयी। धन सार्थपति से पूछकर साथ हो गये। विशाल यात्री समूह होने से सार्थ की गति मन्द रही, नियत समय पर नहीं पहुँच सके। मार्ग में वर्षाऋतु ने रुकने को बाध्य कर दिया, मार्गविरुद्ध हो गये थे। विवश हो एक गिरिराज की उपत्यका में सार्थ को रुक जाना पड़ा। सूरीश्वर आदि भी गिरिगुफाओं में स्वाध्याय ध्यानलीन निवास करने लगे। वर्षा बन्द नहीं हो रही थी, अधिक दिन रहने से यात्रियों का पाथेय समाप्त हो गया। वे वन के कन्दमूल फलादि भक्षण कर उदरपूर्त्ति करने लगे। मुनि समूह की तपोवृद्धि होने लगी। धन सार्थपति एक दिन उषा काल में जागृत हो चिन्तामग्न थे। साथ के बन्दिजन (चारण) सुस्वर सूक्तियाँ बोल रहे थे—अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटम्, कूर्मो बिभर्त्ति धरणिं निजपृष्ठभागे। अम्भोनिधिर्वहति दुस्सह वाडवाग्निं, अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥" यह सुनकर धन को याद आया—हा ! वे पूज्य धर्मघोष सूरि महाराज भी पाँच सौ शिष्यों सहित सार्थ के साथ पधारे थे। मैंने कभी उनकी



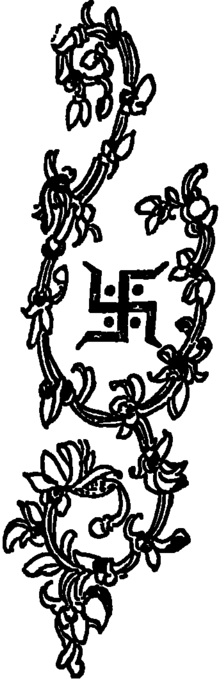


सुधि ही न ली। कितनी भारी भूल हो गयी। सार्थ के लोग तो फलादि ही खाकर रह रहे हैं, मुनिजनों को भिक्षा कैसे मिलती होगी! श्रेष्ठी धन प्रातः काल नित्य कर्म से निवृत्त हो, आचार्य भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ, वन्दना सुखपृच्छा की। विनयपूर्वक अपराध की क्षमा याचना कर आहार पानी का लाभ देने की प्रार्थना की। सूरीश्वर ने 'वर्त्तमानयोग' कह साधुओं को जाने का आदेश दिया।

समय पर मुनिवर गोचरी पधारे। भाग्य संयोग से भोजन सामग्री अनेषणीय थी, मात्र घृत एषणीय था। सेठ ने भावपूर्वक घृत का दान दिया, उत्कट भावना से पात्र दान देते हुये धन सार्थवाह को सम्यग् दर्शन सम्यक्त्व प्राप्त हुआ। समय पर सार्थ प्रयाण कर वसन्तपुर पहुँचा, सर्व लोक यथेप्सित स्थानों में चले गये। श्री धर्मघोषसूरि भी धर्मलाभ दे, परिवार सहित यात्रार्थ विहार कर गये। भद्र सरल परिणामी धन के मनुष्यायुः का बन्ध पूर्ण ही हो गया था ; अतः वह मरकर उत्तर कुरुक्षेत्र में युगलिया हुआ। वहाँ से मृत्यु प्राप्त हो सौधर्म स्वर्ग में देवत्व प्राप्त किया। तृतीय भव हुआ। चतुर्थ भव में प्रभु का जीव महाविदेह क्षेत्र में महाबल नृपति थे। भोगादि में आसक्त रहते थे, मन्त्री ने एक दिन नाटक देखते नरेश को प्रतिबोध देने के लिये एक संसार की असारता दर्शक गाथा बोली—

"सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंवना।
सव्वे आभरण भारा, सव्वे कामा दुहावहा॥"

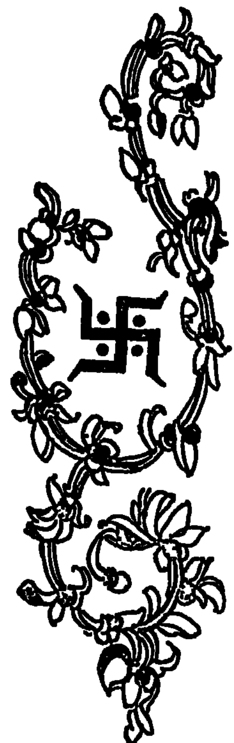
राजा ने कहा—यह बिना प्रसंग की बात क्यों कह रहे हो? नम्रता से मन्त्री बोला—देव! केवली भगवान् से सुना है कि—श्रीमान् का आयु मात्र एक मास ही शेष है! अतः सावधान



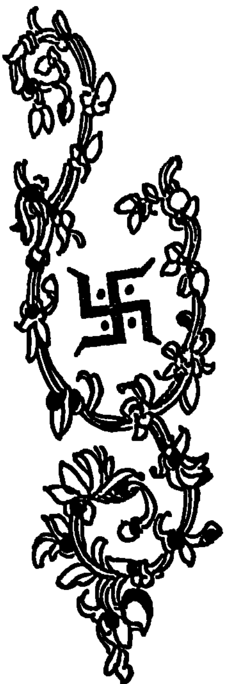


करने को यह अप्रासंगिक कह कर धृष्टता की है, देव, क्षमा प्रदान करें। महाबल राजा चिन्तातुर हो बोले—हा ! अब क्या किया जा सकता है ? एक मास में क्या कर सकूँगा ? मन्त्री ने कहा—महाराज ! एक मास में तो प्रचुर धर्मोपार्जन किया जा सकता है। एक दिन भी सम्यक् रूप से धारण किया चारित्र मोक्षफल दाता होता है। नरेश ने पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ले ली। अनशन कर ईशान स्वर्ग के स्वयंप्रभ विमान में इन्द्र सामानिक देव बने। ललिताङ्ग नाम था, स्वयंप्रभा देवाङ्गना देव को अत्यन्त वल्लभा थी। वह कुछ समय में आयुष्य पूर्ण हो जाने से च्युत हो गयी। देव विरह व्याकुल रहने लगा। सुबुद्धि मन्त्री भी वहीं देव बने थे। उन्होंने ललिताङ्ग को दुःखी देख कहा—मित्र ! धैर्य रखिये ! स्वयंप्रभा मिले, ऐसा प्रयत्न करूँगा।

इन्हीं दिनों नन्दग्राम में एक नागिल नामक दरिद्र रहता था। उसकी नागश्री पत्नी लगातार छह पुत्रियों को पूर्व ही जन्म दे चुकी थी। देवयोग से सातवीं बार भी पुत्री हुयी। क्रुद्ध और दुःखी नागिल ने उसका नाम भी नहीं रखा। वह निर्नामिका के नाम से प्रसिद्ध थी। बड़ी होकर काठ की भारी बेच दुःख से उदरपूर्त्ति करती थी। एकदा नगर में आते उसे युगन्धर केवली मिले। वन्दना कर दुर्भाग्य का कारण पूछा। भगवान् ने कहा—धर्म ही सुखों का मूल है ! धर्म बिना जीव दुःखी बनते हैं। उसने श्रावक धर्म स्वीकार किया। साधर्मीजनों की सहायता से वह धर्माराधन करने लगी और 'धर्मिणी' नाम से प्रसिद्ध हो गयी। उसने तप से शरीर को क्षीण कृश वना लिया था। उस समय जब ललितांगदेव स्वयंप्रभा के विरह में व्याकुल था धर्मिणी ने अनशन कर रखा था। सुबुद्धि के जीव ने ललितांग का रूप दिखा निदान कराया। वह मरकर स्वयंप्रभा देवी बनी। ललितांग सुख से देव भव पूर्ण कर छठे भव में महाविदेह क्षेत्रान्तर्गत



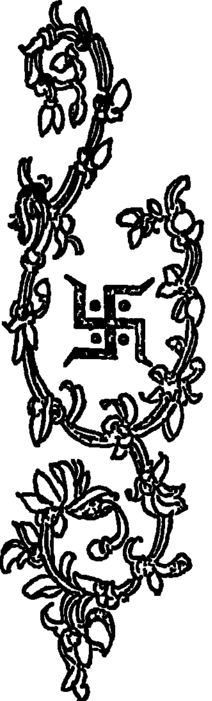
सप्तम वाचना



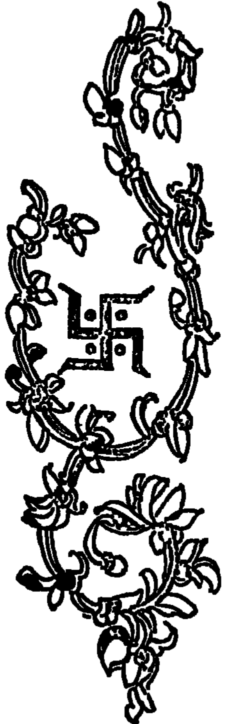
सुवर्णजंघ राजा की लक्ष्मीवती रानी का पुत्र हुआ। वज्रजंघ नाम था। धर्मिणी का जीव स्वयंप्रभा भी च्युत हो वज्रसेन चक्रवर्त्ती की कन्या श्रीमती हुयी। एकदा तीर्थंकरों की सभा में देव देवांगनाओं को देख, उसे जाति स्मरण ज्ञान हो गया। उसे ललितांग का ध्यान आया। प्रतिज्ञा कर ली कि अन्य के साथ विवाह नहीं करना। केवली भगवान् से जानकर वज्रजंघ के साथ विवाह किया (चरित्र में कुछ दूसरी बात है, आदिनाथ चरित्र पढ़ें)। एकदा वज्रजंघ सन्ध्या स्वरूप देख विरक्त हो गये। 'कल दीक्षा लेंगे' ऐसी भावना से श्रीमती के साथ धर्म चर्चा करते रात्रि व्यतीत कर रहे थे। राज्य लोभी पुत्र ने विष धूम्र का प्रयोग कर दोनों को समाप्त कर दिया। वहाँ से शुभ ध्यान पूर्वक देह त्याग युगलिक बने। आयु पूर्ण कर सौधर्म स्वर्ग में दोनों मित्र देव बने। यह आठवाँ भव हुआ। नववें भव में महाविदेह में धन के जीव सुबुद्धि वैद्य के पुत्र जीवानन्द हुये। उसकी, राजकुमार, मन्त्रिपुत्र, श्रेष्ठीसुत, सार्थवाह के पुत्र और श्रीमती के जीव केशव श्रेष्ठिकुमार के साथ अभिन्न मित्रता थी। परस्पर अन्तरंग मित्र थे। एकदा सभी वैद्य मित्र के घर बैठे थे। कुष्ठ रोग ग्रस्त एक मुनि आहारार्थ वहाँ पधारे, उन्हें देख पाँचों मित्र अपने वैद्य मित्र को उपालम्भ देने लगे—वैद्य वास्तव में निर्दयी और लोभी होते हैं। स्वार्थपूर्ण होता हो तो चिकित्सा करते हैं। देखो न! ये मुनिराज कितने भयंकर रोग से ग्रस्त हैं। जीवानन्द बोले—मित्रों! व्यंगवाण न मारो। मैं इनकी चिकित्सा करूंगा। लक्षपाक तेल मेरे पास है, रत्न कम्बल व गोशीर्ष चन्दन नहीं, आप लोग प्रबन्ध कर दे, मैं उपचार करूंगा। यह सुन मित्र ढाई लाख सुवर्ण मुद्राएँ ले बाजार में गये। एक वृद्ध श्रेष्ठी के यहाँ पहुँच कर उक्त वस्तुएँ खरीदने की इच्छा की। सेठ ने पूछा किसके लिये चाहिये? यथार्थ कहने पर सेठ ने बिना मूल्य लिये दोनों वस्तुएँ



कल्पसूत्र
२६२



दे दी। धन धर्मार्थ कर सेठ ने दीक्षा लेली, वह अन्तकृत् केवली बन मोक्ष गया। वे छहों भी औषधि ले वन में मुनिराज के पास गये। कायोत्सर्गस्थ मुनि से ऐसा कहा कि 'हमें आपकी आज्ञा हो' फिर मुनि को एक चर्म पर सुला तैल मर्दन किया गोशीर्ष चन्दन विलेपन कर रत्नकम्बल ओढा दिया। इस प्रकार तीन वार करने से समस्त रोग कीटाणु रत्नकम्बल में आ गये। किसी मृत कलेवर पर कम्बल डाल कर कीटाणु मुक्त कर लेते थे, फिर अन्त में संरोहिणी औषधि समस्त क्षतों पर लगा दी। मुनि रोगमुक्त हो गये, तब सब घर आ गये। समय पर उन छहों ने ही संयम धारण किया। निरतिचार पालन कर बारहवें स्वर्ग में देव हुये सभी की वहाँ भी मित्रता थी। दशमा भव हुआ। वहाँ से च्यव कर इग्यारहवें भव में पूर्व महाविदेह की पुण्डरीकिणी नगरी में जीवानन्द ने वज्रसेन राजा की रानी धारिणी की कूक्षि में चतुर्दश स्वप्न सूचित पुत्र रूप से अवतार लिया। शेष भी यथाक्रम वहीं उत्पन्न हुये। बड़े का नाम वज्रनाभ था, ये चक्रवर्त्ती बने। राजकुमार का जीव बाहु, मन्त्रि-पुत्र का सुबाहु, श्रेष्ठिकुमार पीठ, सार्थवाह सुत महापोठ, और निर्नामिका का जीव भी राजकुमार बना। ये छहों भाई चक्रवर्त्ती को अत्यन्त प्रिय थे। वज्रसेन नृप तीर्थंकर थे। पुत्र को राज्य दे प्रव्रज्या ली, केवली बन विचरते हुये पुण्डरीकिणी नगरी के बाहिर समवसरे। पिता की देशना सुन छहों को वैराग्य हो गया। दीक्षाले वज्रनाभ मुनि चतुर्दश पूर्वी बने, अन्य पांचों ने एकादशांग पढ़े। बाहुमुनि पाँच सौ मुनियों को आहार लाकर देते, सुबाहु शुश्रूषा करते, पीठ महापीठ अधिकतर स्वाध्यायलीन रहते थे; छोटे मुनि भी अनुमोदना करते थे। वज्रनाभ मुनि ने विंशतिस्थान की आराधना से तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन किया। बाहुने भोग कर्म, सुबाहु ने बाहुबल उपार्जन किया। गुरुजन सेवा करने वाले बाहु सुबाहु



की प्रशंसा करते रहते थे। पीठ महापीठ स्वाध्याय करते हुये भी ईर्षावश होते रहते थे। अतः स्त्रीवेद बँध गया। ये छहों ही चारित्र पालन कर यथाक्रम सर्वार्थसिद्ध विमान में गये। यह वारहवाँ भव हुआ। वज्रनाभ के जीव ही मरुदेवी की कूक्षि में उत्पन्न हुये थे।

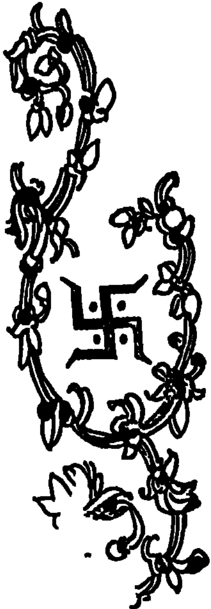
सूत्र :—उसभेणं अरहा कोसलिए तिन्नाणोवगए आवि हुत्था, तं जहा—चइस्सामित्ति जाणइ, जाव सुमिणे पासइ, तंजहा गयवसह०। सव्वंतहेव, नवरं पढमं उसभं मुहेणं अइंतं पासइ सेसाओ गयं। नाभिकुलगरस्स साहइ, सुमिणपाढगा नत्थि, नाभिकुलगरो सयमेव वागरेइ ॥२११॥

अर्थ :—अर्हन् ऋषभ कौशलिक भगवान् तीन ज्ञान सम्पन्न थे, 'देवलोक से च्युत होऊंगा' ऐसा जानते थे। 'च्युत हो रहा हूँ' सूक्ष्मकाल होने से नहीं जानते गर्भ में आने पर जान लेते हैं 'यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ।' मरुदेवी माता ने पूर्वोक्त चतुर्दश महास्वप्न देखे। सर्वप्रथम वृषभ को मुख में प्रवेश करते देखा। अन्य सर्व पीछे देखे। नाभिकुलकर से कहा, स्वप्नपाठक तो थे नहीं; अतः नाभि राजा ने ही स्वप्नों का फल कहा था। मरुदेवी प्रसन्न हो गयी, गर्भ उत्तरोत्तर यथाक्रम बढने लगा।

श्री ऋषभदेव का जन्म

सूत्र :—तेणं काले णं ते णं, समए णं उसभे णं अरहा कोसलिए जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्त बहुले। तस्स णं चित्त बहुलस्स अट्ठमी पक्खे णं नवण्हं मासाणं बहु पडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइं दियाणं जाव—उत्तरासाढाहिं नक्खत्तेणं जोग मुवागए णं, जाव आरोग्गं दारयं पयाया ॥ २१२ ॥ तं चेव सव्वं, जाव देव देवीओ य वसुहारावासं वासिंसु, चारग सोहणं माणुम्माण वड्ढणं उस्सुक्क माइयट्ठिइ वडिय जूयं वज्जं सव्वं भाणियव्वं ॥ २१३ ॥

कल्पसूत्र
२९४



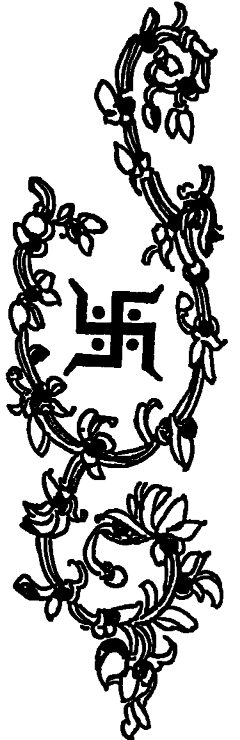
अर्थ :—उस काल उस समय अर्थात् इसी अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अन्त में श्री अर्हन् ऋषभदेव कौशलिक भगवान् को ग्रीष्मर्तु के प्रथम मास प्रथम पक्ष चैत्र कृष्णा अष्टमी को गर्भ के नवमास साढे सात दिन पूर्ण हो जाने पर अर्द्ध रात्रि के समय उत्तराषाढा नक्षत्र का चन्द्र से संयोग होने पर आरोग्यवती मरुदेवी ने आरोग्यवान् पुत्र रूप में प्रसव किया। साथ ही एक कन्या को भी जन्म दिया।

छप्पन्न दिक्कुमारियों द्वारा प्रसूतिकर्म, वसुधारा वर्षण, शक्रादि ६४ इन्द्रों द्वारा मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक स्नात्र-महोत्सव आदि सभी देव कर्त्तव्य भगवान् महावीर के समान जानने चाहिये। इन्द्र ने अंगुष्ठ में सुधासंचरण किया।

प्रातःकाल पिता द्वारा किये जाने वाले—बन्दी मुक्ति, नगर संस्कार, शोभा, कर मोक्षण मानोन्मान वर्द्धन इत्यादि एवं कर्मभूमिज मनुष्यों के योग्य पुत्र जन्मोत्सव, परिवार भोजन आदि कार्य नहीं किये गये, क्योंकि युगलिक काल था, अतः राजनीति व्यवहारनीति धर्मनीति का सर्वथा अभाव था। छः आरों के वर्णन में अकर्मभूमि का विस्तृत वर्णन आचुका है, जिज्ञासु वहाँ से जानें। यह इक्ष्वाकु भूमि थी।

मरुदेवी ने प्रथम वृषभ देखा था, और वृषभ का चिह्न भी जंघा पर था ; अतः पिताने पुत्र को ऋषभ नाम से सम्बोधित किया। कन्या का नाम सुनन्दा दिया!

नाभि से पूर्व छः कुलकर—शासक हो चुके थे, नाभि सातवें थे। युगलिक काल का अन्त निकट था। कर्मभूमि का आरम्भ भगवान् ऋषभदेव करने वाले थे।



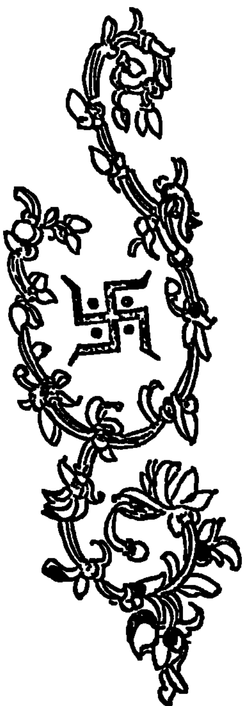


भगवान् ऋषभ उत्कृष्ट रूपलावण्यवान् थे, देवदेवाङ्गनाएँ क्रीड़ा करातीं, इन्द्राणियाँ गोद में लेकर लाड करतीं। धीरे-धीरे चन्द्रकला के समान बढ़ने लगे। घुटनों से चलने लगे तो एक दिन देवेन्द्र शक्र इक्षुयष्टि (गन्ना) लेकर बाल भगवान् के पास आये, उस यष्टि को पकड़ कर भगवान् खड़े हो गये। इन्द्र ने विचार किया—प्रभु को इक्षुचूषण की इच्छा है ! अतः 'इनका वंश इक्ष्वाकु हो' ऐसे कहकर इक्ष्वाकु वंश की स्थापना की ; तब से इक्ष्वाकु वंश का आरम्भ हुआ, वंशज इक्ष्वाकु कहलाये।

एक बालक युगल तालवृक्ष के नीचे क्रीड़ा कर रहे थे ; दैवयोग से बालक के शिर पर ताल फल गिरा, वह तत्काल मरण शरण हो गया। अन्य युगलिये बालिका को उठाकर ले आये। नाभिकुलकर को अर्पण कर दिया। नाभि ने उसका नाम सुमङ्गला रखा और वह भी बाल भगवान् ऋषभ के साथ क्रीड़ा करती हुयी चन्द्रकला के समान बढ़ने लगी। ऐसे तीनों बालक माता पिता के हर्ष को बढाते हुये कुमार अवस्था को प्राप्त हुये। मरुदेवी माता पुत्र को देखकर सोचतीं—यह मेरा पुत्र कितना मनोहर है ! इसे देखती ही रहूँ ! ऐसा मन करता है।

तीर्थंकर भगवान् सर्वाधिक रूपशाली होते हैं। उनके रूपगुण की जिससे तुलना करें, ऐसी कोई अन्य वस्तु संसार में है ही नहीं।

भगवान् तरुण हो गये तो उनका शरीर और अधिक लावण्यपूर्ण बन गया। इन्द्रादि समस्त देव देवाङ्गनाओं ने मिलकर भगवान् का विवाहोत्सव आरम्भ किया। युगलियों में तो विवाहादि की प्रणाली थी नहीं। वे आश्चर्य चकित हो, यह नवीन समारोह देखने को उत्सुक हो





गये। वरपक्ष में इन्द्रादि प्रस्तुत हुये, कन्यापक्ष में इन्द्राणियाँ हो गयीं। विधिपूर्वक देव देवीगण ने भगवान् का विवाह सुनन्दा और सुमंगला के साथ कराया। सुमंगला का युगलजात साथी तो बाल्यावस्था में ही मर चुका था, वह भगवान् को ही साथी समझती थी ; अतः उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। सो उन्हीं के साथ विवाह किया गया। लोक उसे विधवा मानते हैं, यह अज्ञानदशा सूचक है।

इन्द्र द्वारा स्थापित विवाह संस्कार विधि आज भी भारत में प्रचलित है। आर्यगण उसी विधि से विवाह करना वैध मानते हैं।

छः लाखपूर्व दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते ऋषभकुमार के सुमंगला से भरत ब्राह्मी का युगल और सुनन्दा से बाहुबलि सुन्दरी युगल उत्पन्न हुआ। तदनन्तर सुमंगला ने उनचास पुत्र युगल और प्रसव किये। सुनन्दा के तो एकवार ही युगल सन्तान हुयी थी।

कालप्रभाव से कल्पवृक्षों की महत्ता कम होती जा रही थी। यथेष्ट सामग्री न मिलने से युगलिक जन परस्पर विग्रह (लड़ाई) करते रहते थे। नाभिकुलकर द्वारा धिक् कहने पर भी लड़ते झगड़ते रहते थे। नाभि वृद्ध हो चले थे। उनका प्रभाव समाप्तप्राय हो चला था। युवा ऋषभ के पास युगलिक पहुँचे, न्याय करने की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा—मैं शासक नहीं हूँ, शासक हो सो न्याय कर सकता है। युगलिये बोले—आप हमारे राजा ही हैं। ऋषभदेव ने कहा—नाभि कुलकर से पूछिये ? वे कहेंगे तो मैं न्याय कर दूँगा। युगलिये नाभिकुलकर के पास गये और निवेदन किया—अब आप ऋषभकुमार को कुलकर का पद प्रदान करने की कृपा करें। नाभि ने स्वीकार कर लिया। युगलिये ऋषभ को लेकर नदी तट पर बालू की ऊँची वेदिका बना, उसपर विराजमान कर अभिषेक के लिये जल लेने गये। उधर सौधर्मेन्द्र का आसन कम्पायमान हुआ। अवधिज्ञान से राज्याभिषेक जान इन्द्र राजा के योग्य सर्व सामग्री ले अपने



परिवार सहित आये। अभिषेक कर वस्त्र मुकुट कुण्डल हार आदि धारण करा ऊँचे स्वर्ण सिंहासन पर प्रभु को विराजमान किया। इतने में युगलिक जन भी कमल पत्रों के सम्पुट में जल लेकर आये। ऋषभकुमार को सुसज्जित सिंहासनारूढ देख मात्र पादांगुष्ठ पर लाये हुये जल से अभिषेक कर दिया। इन्द्र ने उनका यह विवेक विनय देखा तो प्रसन्न हो गये—बोले बड़े विनीत हैं। नगरी का नाम विनीता ही होना योग्य है। देवेन्द्र ने धनद को नगरी निर्माण का आदेश दिया। धनद ने बारह योजन लम्बी नव योजन चौड़ी, सोने के सौ योजन ऊँचे वप्र, रत्नों के कपिशीर्ष युक्त सुन्दर नगरी का निर्माण किया।

जब भगवान् बीस लाख पूर्व की आयु के थे तब यह राज्याभिषेक इन्द्र द्वारा सम्पन्न हुआ था। सारी व्यवस्था करके इन्द्र स्वर्ग में चले गये।

अब भगवान् ने राज्य शासन आरम्भ किया। त्रिवर्ण-क्षत्रिय, वैश्य शूद्रों की स्थापना की, वह इस प्रकार है—जो वीर थे; उन्हें क्षत्रिय, क्षत्रियों को तीन वर्ग में विभाजित किया १ उग्र शासक सैनिक आरक्षक सेनापति आदि, २ भोगवंशी गुरुजन आदि, ३ राजन्य—मित्ररूप से माने जाने वाले। कृषि शिल्प व्यापार योग्य थे उन्हें वैश्य और शेष जड़ बुद्धि रहे उन्हें शूद्र नाम दिया।

यथा योग्य सभी प्रकार से सुशासन की व्यवस्था की। कल्पवृक्षों का प्रभाव क्षीण हो चुका था। बहुत कम भोजन मिलता था। जनता भूख से व्याकुल रहने लगी, अन्य कन्दमूल फलादि खाते पर वह आहार पचता नहीं था, पेट दुखने लगता। पीड़ा से कराहते प्रभु के पास जाते, भगवान् उनके पेट पर हाथ फेरते, पीड़ा मिट जाती। वन में शालिधान उत्पन्न हुआ, भगवान् ने मँगवा कर हाथ से साफ कर लोगों को चावल खाने को दिये। खाने पर फिर दर्द होने लगा। भगवान् ने पूर्ववत् करस्पर्श से पीड़ा दूर की। अब वन में बाँसों के टकराने से बादर अग्नि उत्पन्न



हुयी। इतने काल अग्नि का अभाव रहता है। लोगों ने भगवान् से कहा वनमें अद्‌भुत चमकने वाली वस्तु देखी है। अग्नि उत्पत्ति जान भगवान ने कहा—अग्नि है! इसमें पकाकर धान्य फलादि खाने चाहिये। लोगों ने पकने को वस्तुएं डाली तो वे भस्म हो गयी। मांगने लगे, पर भला अग्नि क्या देती? दौड़े हुये प्रभु के पास जाकर बोले—वह तो हमसे भी अधिक क्षुधातुर है जो डालते हैं खा जाती है? तब भगवान् ने स्वयं मिट्टी का पात्र बना कर दिया। बोले—इसमें पानी डाल गरम कर तब अन्य वस्तु डालो फिर पक जाने पर उतार कर ठंडा हो जाय तब खाओ। स्वयं ने सारी विधि करके समझा दिया। अब भगवान् को सर्व पितातुल्य समझ प्रजापति कहने लगे। यथायोग्य व्यवहार नीति राजनीति के नियम बनाये। दोनों कन्याओं को विभिन्न प्रकार की लिपियाँ अठारह प्रकार का अक्षर विन्यास सिखाया। भगवान् ने और क्या-क्या किया? उसे सूत्रकार कहते हैं:—

तेणं कालेणं तेणं समएणं उसभेणं अरहा कोसलिए दक्खे दक्ख पइण्णे, पडिरूवे अल्लीणे भद्दए विणीए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमार वास मज्झे वसइ, कुमारवास मज्झे वसित्ता तेवट्ठिं च पुव्वसय सहस्साइं रज्जवास मज्झे वसइ, तेवट्ठिं च पुव्वसयसहस्साइं रज्जवास मज्झे वसमाणे लेहाइयाओ, गणियप्पहाणाओ बावत्तरिं कलाओ। चउसट्ठिं च महिला गुणे, सिप्पसयं च कम्माणं, तिन्नि वि पयाहि आओ उवदिसइ उवदिसित्ता, पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ अभिसिंचित्ता—

अर्थ:—उसकाल उससमय श्री ऋषभ अर्हन् कौशलिक दक्ष चतुर, प्रतिभाशाली बुद्धिमान्, सर्वगुणसम्पन्न अथवा गुणों के साकाररूप, आत्मलीन अलिप्त, भद्रक सरलप्रकृति और विनीत थे।



॥ ॥

वे वीस लाख पूर्व कुमार रहे, त्रेसठ लाख पूर्व राज्यशासन करते हुये उन्होंने लेखन कला से लेकर गणित प्रधान कलाए, पुरुष की बहत्तर कलाएँ स्त्रियों की चौसठ कलाएँ, सौ प्रकार के शिल्पकर्म, ये तीनों ही प्रजाहितार्थ सिखायीं। अपने एक सौ पुत्रों को राज्य दिया।

पुरुषों की बहत्तर कलाएँ निम्न हैं :—

१ लेखन, २ पठन, ३ गणित, ४ गीत, ५ नृत्य, ६ तालवादन ७ पटहवादन ८ मुरुज मृदंग वादन ९ वीणावादन १० वंशपरीक्षा ११ भेरी परीक्षा १२ गजशिक्षा १३ तुरगशिक्षा १४ धातुवाद १५ दृष्टिवाद १६ मन्त्रवाद १७ वलिपलित विनाश १८ रत्नपरीक्षा १९ स्त्री परीक्षा २० पुरुष परीक्षा २१ छन्द रचना २२ तर्क जल्पन २३ नीतिविचार २४ तत्त्व विचार २५ कवित्त्व २६ ज्योतिष ज्ञान २७ वैद्यक ज्ञान २८ षड्भाषा ज्ञान २९ योगाभ्यास ३० रसायनविधि ३१ अञ्जनविधि ३२ अष्टादशलिपि ज्ञान ३३ स्वप्नलक्षण ज्ञान ३४ इन्द्रजाल ३५ कृषिविज्ञान ३६ वाणिज्य विज्ञान ३७ राजसेवा ३८ शकुनविचार ३९ वायुस्तम्भन ४० अग्निस्तम्भन ४१ मेघवृष्टि ४२ विलेपनविधि ४३ मर्दनकला ४४ उर्द्ध्वगमन ४५ घटबन्धन ४६ घट भ्रमण ४७ पत्रच्छेदन ४८ मर्म भेदन ४९ फलाकर्षण ५० जलाकर्षण ५१ लोकाचार ५२ लोकरंजन ५३ फल न लगने वाले वृक्षों में फल लगाना ५४ खड्ग बन्धन ५५ क्षुरिका बन्धन ५६ मुद्रा विधि ५७ लोहज्ञान ५८ दन्त संस्कार ५९ काल लक्षण ६० चित्रकला ६१ बाहुयुद्ध ६२ दृष्टियुद्ध ६३ मुष्टियुद्ध ६४ दण्डयुद्ध ६५ खड्गयुद्ध ६६ वाग्युद्ध ६७ गारुड़विद्या ६८ सर्पदमन ६९ भूतदमन ७० योग-विभिन्न प्रकार के होते हैं। ७१ वर्षज्ञान ७२ नाममाला।

स्त्रियों की चौसठ कलाओं के नाम :—

१ नृत्य २ औचित्य ३ चित्र ४ वाद्य ५ मन्त्र ६ तन्त्र ७ ज्ञान ८ विज्ञान ९ दण्ड १० जलस्तम्भ ११ गीत १२ ताल १३ मेघवृष्टि १४ फलाकृष्टि १५ आराम उद्यान निर्माण १६ आकर गोपन

१७ धर्म विचार १८ शकुनविचार १९ क्रिया कल्पन २० संस्कृत जल्पन २१ प्रसादनीति २२ धर्मनीति २३ वाणीवृद्धि २४ सुवर्ण सिद्धि २५ सुरभितैल २६ लीला सञ्चरण २७ गजतुरगपरीक्षण २८ स्त्री पुरुष लक्षण २९ सुवर्ण रत्न भेद ३० अष्टादशलिपि ज्ञान ३१ तत्कालबुद्धि ३२ वस्तुसिद्धि ३३ वैद्यक विद्या ३४ कामक्रीड़ा ३५ घटभ्रम ३६ सारपरिश्रम ३७ अञ्जनभोग ३८ चूर्णयोग ३९ हस्तलाघव ४० वचन चातुर्य्य ४१ भोज्यविधि ४२ वाणिज्यविधि ४३ मुख मण्डन ४४ शालिखण्डन ४५ कथाकथन ४६ पुष्पगुन्थन ४७ वक्रोक्ति जल्पन ४८ काव्य रचना ४९ स्फारवेश ५० सकल भाषा ज्ञान ५१ अभिधान ज्ञान ५२ आभरण परिधान ५३ नृत्योपचार ५४ गृहप्रबन्ध ५५ पाठ्यकरण ५६ परनिराकरण ५७ धान्यरन्धन ५८ केशबन्धन ५९ वीणादिवादन ६० वितण्डावाद ६१ अंक विचार ६२ लोकव्यवहार ६३ अन्त्याक्षरिका ६४ प्रश्नप्रहेलिका।

इस प्रकार ७२ पुरुष योग्य, ६४ स्त्रीयोग्य कलाएँ प्रकाशित की। भरतादि पुत्रों को एवं पुरुष वर्ग को पुरुष योग्य तथा ब्राह्मी प्रमुख कन्याओं को स्त्री योग्य कलाओं विज्ञानों की शिक्षा दी। सौ प्रकार के शिल्पकर्म—मूल पाँच कर्म हैं—१ कुम्भकार २ लोह कर्म ३ चित्र कर्म ४ सूत्रधार-कर्म और ५ नापित कर्म। इनके अवान्तर भेद सौ होते हैं। इन सबकी शिक्षा प्रजा को दी।

भगवान् ने भरतादि सौ पुत्रों के नाम से प्रदेशों के नाम देकर नामानुसार राज्य दिया। पुत्रों के नाम—१ श्री भरत २ बाहुबलि ३ मस्तक ४ पुत्राङ्गारक ५ मल्लिदेव ६ अङ्गज्योति ७ मलयदेव ८ भार्गव, ९ वङ्गदेव १० वसुदेव ११ मगध १२ मानवर्तिक १३ मानयुक्त १४ वैदर्भ देव १५ वनवास १६ महीपक १७ धर्म राष्ट्र १८ मायकदेव १९ आश्मक २० दण्डक २१ कलिग २२ ईषिकदेव २३ पुरुषदेव २४ अकल २५ भोगदेव २६ वीर्यभोग २७ गणनाथ २८ तीर्णनाथ २९ अर्बुदपति ३० आयुर्वीर्य ३१ वल्लिवसु ३२ नायक ३३ काक्षिक ३४ आनर्त्तक ३५ सारिक ३६ ग्रहपति ३७ कुरुदेव ३८ कच्छनाथ ३९ सुराष्ट्र ४० नर्मद ४१ सारस्वत ४२ तापसदेव ४३ कुरु ४४ जगल

४५ पञ्चाल ४६ सूरसेन ४७ पुट ४८ कालंकदेव ४९ काशीकुमार ५० कौशल्य ५१ भद्रकाश ५२ विकाशक ५३ त्रिगर्त्त ५४ आवर्ष ५५ सालु ५६ मत्सदेव ५७ कुलीयक ५८ मूषकदेव ५९ वाल्हीक ६० काम्बोज ६१ मधुनाथ ६२ सान्द्रक ६३ अत्रिय ६४ यवन ६५ आभीर ६६ वानदेव ६७ वानस ६८ कैकय ६९ सिन्धु ७० सौवीर ७१ गन्धार ७२ काष्ठदेव ७३ तोषक ७४ शौरक ७५ भारद्वाज ७६ सुरदेव ७७ प्रस्थान ७८ कर्णक ७९ त्रिपुरनाथ ८० अवन्तिनाथ ८१ वेदपति ८२ विकन्ध ८३ किष्किन्ध ८४ नैषध ८५ दशार्णनाथ ८६ कुसुमवर्ण ८७ भूपालदेव ८८ पालप्रभु ८९ कुशल ९० पद्म ९१ विनिद्र ९२ विकेश ९३ वैदेह ९४ कच्छपति ९५ भद्रदेव ९६ वज्रदेव ९७ सान्द्रभद्र ९८ सेतज ९९ वत्सनाथ १०० अंगदेव। भरत को विनीता का और बाहुबलि को तक्षशिला का राज्य व अन्य पुत्रों को भी राज्य देकर भगवान् ने विश्व की सुन्दर व्यवस्था की और सुख पूर्वक त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष पर्यन्त राज्याधिकार उपभोग किया।

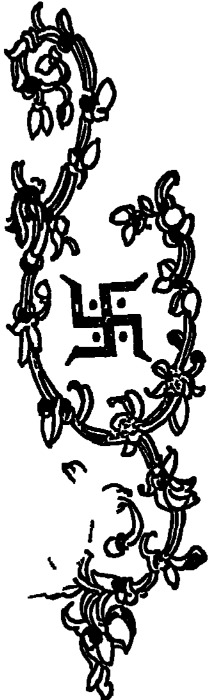
सूत्र :—उसभेणं अरहा कोसलिए कासवगुत्तेणं तस्सणं पंच नामधिज्जा एवमाहिज्जंति तंजहा—उसभे इ वा, पढम राया इ वा, पढम भिक्खायरेइवा, पढमजिणे इ वा, पढम तित्थयरे इवा ॥ २१४ ॥

अर्थ :—श्री अर्हन् ऋषभदेव कौशलिक काश्यप गोत्रीय के पाँच नाम प्रसिद्ध हैं। तद्यथा— ऋषभदेव, प्रथम राजा, प्रथम भिक्षाचर, प्रथमजिन और प्रथम तीर्थंकर।

लोकान्तिकदेवों का आगमन व सांवत्सरिकदान

सूत्र :—पुणरपि लोअंतिएहिं जिअकप्पिएहिं देवेहिं ताहिं इट्ठाहिं जाव वग्गूहिं सेसं तं चेव सव्वं भाणिअव्वं, जाव दाणं दाइआणं परिभाइत्ता—

कल्पसूत्र
३०२

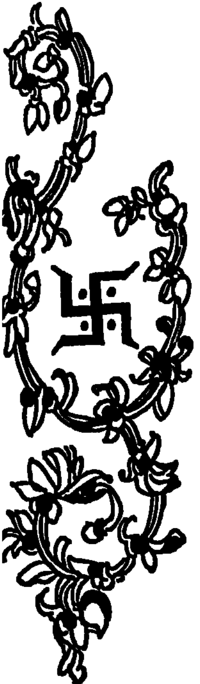


अर्थ :—यद्यपि तीर्थंकर भगवान् स्वयम्बुद्ध होते हैं ; तथापि जीत कल्पवाले लोकान्तिक देवों द्वारा उसी प्रकार की इष्टवाणी से 'जय जय नन्दा ! जय जय भद्दा, आदि द्वारा समय ज्ञापन होता है। इत्यादि सर्व पूर्ववत् कहना चाहिये। उस समय प्रायः लोक निर्धन अथवा दरिद्र नहीं थे, तदपि दान धर्म के प्रदर्शनार्थ भगवान् ऋषभदेव वर्षपर्यन्त स्वर्ण रत्न वस्त्र अन्नादि का दान देते हैं।

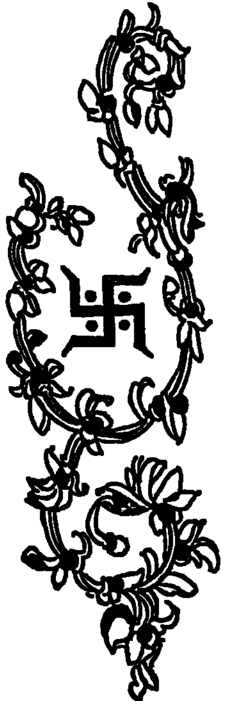
महाभिनिष्क्रमण वर्णन

सूत्र :—जे से गिम्हाणं पढमे मासे पढमे पक्खे चित्त बहुले, तस्सणं चित्त बहुलस्स अट्ठमी पक्खे णं, दिवसस्स पच्छिमे भागे सुदंसणाए सिवियाए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाण मग्गे, जाव विणीयं रायहाणिं मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव सिद्धत्थ वणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवर पायवस्स अहे जाव सयमेव चउमुट्ठिअं लोअं करेइ, करित्ता छट्ठे णं भत्तेणं अपाणएणं उत्तरासाढाहिं नक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं खत्तियाणं च चउहिं पुरिससहस्सेहिं सद्धिं एगं दूसमादाय मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ २१५ ॥

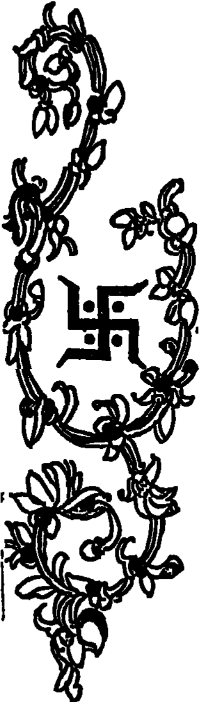
अर्थ :—सांवत्सरिक दान देने के पश्चात् ग्रीष्मकाल के प्रथममास प्रथम पक्ष चैत्र कृष्ण अष्टमी के दिन मध्याह्नोत्तर समय में सुदर्शना शीबिका में विराजमान, देव मनुष्य व असुरों के समूह से अनुगम्यमान, विनीता नगरी के मध्यभाग से चलते हुये नगर के बाहिर सिद्धार्थोपवन उद्यान में पधारे। वहाँ श्रेष्ठ अशोकतरु के नीचे शिविका से उतर कर गन्ध माल्य वस्त्र आभूषण



आदि उतार दिये। चतुर्मुष्टि लोच किया। पाँचवीं मुष्टि लोच करने लगे तो देवेन्द्र बोले—भगवन्! ये कुञ्चितकेश कन्धों पर सुन्दर लग रहे हैं, इन्हें कृपया योंही रहने दीजिये। भगवान् ने मान लिया; रहने दिया। आज भी ऋषभदेव भगवान् के कई प्राचीन बिम्ब केशयुक्त दृष्टिगोचर होते हैं। उस दिन भगवान् के अपानक (चौविहार) षष्ठ भक्त था। उत्तराषाढा नक्षत्र में चन्द्र आने पर भगवान् ऋषभदेव ने चार हजार अन्य उग्रभोग राजन्य क्षत्रियों सहित गृहवास त्याग कर अनगारत्व स्वीकार किया। यद्यपि भगवान् साथ में प्रव्रज्या धारण करने का किसी को उपदेश नहीं देते। तथापि—"हम हमारे राजा की सेवा में रहेंगे।' ऐसी भक्ति भावना से चार हजार व्यक्ति साथ हो गये थे। भगवान् ने वस्त्र उतारे, लुंचन कर लिया; उन्होंने भी वैसा ही किया। उन्हें भी संभवतः देवदूष्य मिले। दीक्षा लेते ही भगवान् को मनःपर्यवज्ञान हो गया। प्रभु वहाँ से विहार कर गये। साथ में चार हजार वे मुनि भी चले। प्रभु कायोत्सर्गस्थ रहते वे भी वैसे ही खड़े हो जाते। चल पड़ते तो वे भी चल देते। सारांश कि साथ रहते थे। भगवान् प्रति षष्ठ के पारने आहार की गवेषण करते, ग्राम नगरादि में पधारते; परन्तु आहार के लिए कोई आमन्त्रित नहीं करता। 'हमारे प्रजापति पधारे हैं, हाथी घोड़े रथ कन्याएँ आभूषण वस्त्र धनरत्न मणि मुक्तादि श्रेष्ठ व बहूमूल्य वस्तुएँ भेट करने आते। त्यागी प्रभु सामने भी दृष्टि न करते और पुनः वन में पधार जाते। लोगों को खेद होता, पीछे-पीछे दौड़कर पुनः स्वीकार करने की विनम्र प्रार्थना करते; पर भगवान् मौन चलते ही रहते थे। दूसरे वे लोग भिक्षाविधि—कि कैसा आहार हो! कैसे दिया जाय! ये सब जानते नहीं थे। विचार करते जगत्पिता को भोजन जैसे तुच्छ पदार्थ के लिये क्या आमन्त्रण करें उन्हें तो उत्तमोत्तम बहुमूल्य पदार्थ अर्पण करें।



कल्पसूत्र
३०४



चार हजार त्यागी महात्मा भी भगवान् का अनुकरण कर कुछ न लेते थे। वे विचारते— भगवान् नहीं लेते तो हम कैसे लें ! प्रभु कुछ नहीं खाते पीते ! हम कैसे खालें पीलें ! ! फलतः वे भी कितने ही समय तक अनाहार विचरते रहे ; पर अन्ततः भूखप्यास सहन नहीं कर सके। याचना करना हीनता का द्योतक समझकर वन में ही प्राप्त कन्दमूल फलफूल आदि का आहार और नदी सरोवर झरने आदि का जलपान करके भूख प्यास मिटा लेते, देवदूष्य फट जाने पर वल्कल से शरीर के गुह्याङ्ग ढँकने लग गये। ऐसे तापसवृत्ति का आरम्भ हो गया। यथारुचि आचार निर्माण कर वन में ही शीतताप से बचने के लिये पर्णकुटी बना लेते सुविधानुसार स्थान-स्थान पर तापसाश्रम बना कर रहने लग गये। भगवान् ऋषभदेव के आहार का अन्तराय एक वर्ष पर्यन्त रहा। किसी भव में बेलों के मुखपर छींकी बँधवाने से भोगान्तराय कर्म का बन्धन कर लिया था। वह अब उदय में आया था।

कच्छ महाकच्छ के पुत्र नमि विनमि जिन्हें भगवान् पुत्रवत् समझते थे भगवान् की दीक्षा के अवसर पर कुछ समय पूर्व ही जब भगवान् ने अपने एक शत पुत्रों को सारी भरतक्षेत्र की पृथ्वी के विभाग कर राज्य प्रदान किया था, कहीं दूरदेश में किसी कार्यवश गये हुये थे। वे लौट कर विनीता आये तो भगवान् द्वारा देश विभाग कर गृहत्यागी बन जाने की बात सुनी। भरत से सब ज्ञात हुआ, भरत ने अपनी सेवा में रहने की राय दी। जागीरादि देने का भी कहा। किन्तु वे सन्तुष्ट नहीं हुये बोले—हम तो पिताश्री से ही लेंगे। वे पता लगाते भगवान् के पास आये, प्रभु की सेवा में प्रस्तुत रहने लगे—भगवान् जब कायोत्सर्गस्थ रहते, मोर पीछी आदि से मक्खी डाँस मच्छर आदि उड़ाते, विहार करते तो मार्ग की बाधाएँ कंटक कंकर झाड़ झंकाड़ आदि दूर करते रहते। प्रातः काल नमस्कार कर राज्य की याचना करते थे। इस प्रकार सेवा करते कई दिन व्यतीत हो गये। एकदा देवेन्द्र धरणीन्द्र दर्शनार्थ आये, उनकी इस अखण्ड

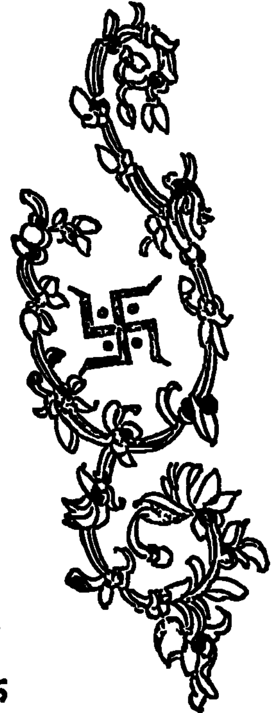


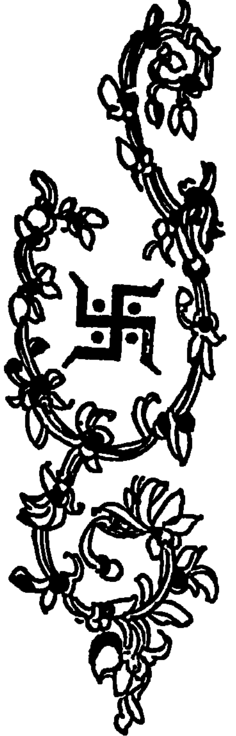


भगवद्भक्ति से सन्तुष्ट हो, वरदान माँगने को कहा, नमिविनमि बोले—हम तो पिताजी से लेंगे ! तब धरणेन्द्र ने प्रभु का रूप बनाकर उन्हें अड़तालीस हजार पठितसिद्ध विद्याएँ और सोलह विद्यादेवियों के समाराधन की विधि बतलायीं। वैताढ्यगिरि की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुरचक्रवाल प्रमुख पचास नगर और उत्तरश्रेणी में गगनवल्लभ आदि एकशत नगर बनाकर दिये। वहाँ विद्याबल से लोकों को बसाकर नमि विनमि दोनों श्रेणियों के क्रमशः अधिपति बनकर राज्य करने लगे।

भगवान् को निराहार भ्रमण करते एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया। विहार करते हुये वे हस्तिनापुर पधारे। आहारार्थ नगर में घूम रहे थे, लोगपूर्ववत् बहुमूल्य वस्तुएँ ले ग्रहण करने की प्रार्थना करते हुये साथ साथ चल रहे थे। प्रभु निरपेक्ष भाव से मात्र आहार पाने की इच्छा ही रखते चले जा रहे थे। पर अन्तराय जो था, आहार का आमन्त्रण किसी ने भी नहीं किया। प्रभु चलते चलते राजभवन के समीप जा पहुँचे। वहाँ राजभवन के गवाक्ष में बाहुबलि के पौत्र, सोमयश के पुत्र श्रेयांसकुमार बैठे थे। लोक कोलाहल ने उन्हें आकर्षित किया। उन्होंने कृश शरीर किन्तु तेजस्वी मुखमुद्रा वाले भगवान् को देखा। श्रेयांस ने गतरात्रि जब किञ्चिद् शेष थी, एक स्वप्न देखा था कि मैंने कुछ मलाविल मेरु को दुग्ध से धोकर स्वच्छ बना दिया है सोमयश नृप ने भी स्वप्न देखा था कि—शत्रुयोद्धाओं से घिरे किसी वीर पुरुष ने श्रेयांस की सहायता से मुक्त हो, विजयश्री प्राप्त की है। ऐसे ही नगर श्रेष्ठी को स्वप्न आया था कि गिरती हुयी सूर्य की किरणों को श्रेयांस ने पुनः सूर्य बिम्ब में लगा दी हैं। प्रातः काल राज्य सभा में सभी स्व-स्व स्वप्न कह चुके थे और स्वप्नफल की 'श्रेयांस को आज कोई महान् लाभ अवश्यंभावी है' ऐसी सम्भावना प्रकट की थी।

श्रेयांस ने ज्योंही भगवान् को देखा—पूर्वपरिचित मुद्रा स्मरण हो आयी। उन्हें जाति-





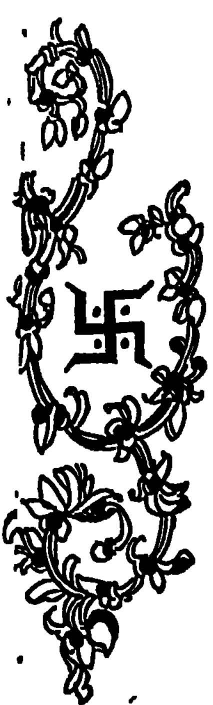
स्मरण हो गया। वास्तविकता ध्यान में आ गयी। वे तत्काल नीचे उतर कर भगवान् के पास आये, यथाविधि वन्दन कर लाभ देने की प्रार्थना की। उसी समय क्षेत्रों से इक्षुरस के घट ताजा रस से भरे हुये श्रेयांस के गृह आये हुये थे। वे ही लेने का आग्रह श्रेयांस ने किया। भगवान् ने एषणीय समझ दोनों हाथों की अञ्जुलि आगे कर दी। श्रेयांस ने अत्यन्त भक्ति भर हृदय से इक्षुरस का दान दिया। भगवान् के पारणा हुआ, पंच दिव्य प्रकट हुये। आवश्यक में उल्लेख है कि श्रेयांस ने १०८ घट इक्षुरस बहराया। 'श्री तीर्थंकर भगवान् पाणिपात्र लब्धिमान् होते हैं? कितना भी तरल पदार्थ हो, एक बिन्दु भी नीचे नहीं गिरती। प्रभु इक्षुरस से तृप्त हुये, श्रेयांस कुमार का गृह वसुधारा से और दिगन्त यश से भर गया। 'श्रेयांस' श्रीमती के जीव हैं, ऐसा कह आये हैं। तद्भव मोक्षगामी हैं, यह भी वर्णन आ चुका है।

भगवान् का पारना वैशाख शुक्ला तृतीया को भोगान्तराय क्षय हो जाने पर इक्षुरस से हुआ। श्रेयांसकुमार को अक्षय वैभव की प्राप्ति होने से वह दिन अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो आज तक इसी नाम से विख्यात है।

अन्य तीर्थंकरों का प्रथम पारण 'परमान्न' से हुआ है। ऐसा चरित्रों में वर्णन मिलता है, परन्तु वे दिन प्रायः पर्वरूप में विख्यात नहीं है।

सोमयश व नागरिकजनों ने श्रेयांसकुमार के हाथ से प्रभु को रसपान करते देख पूछा—आपने कैसे जाना 'भगवान् आहारेच्छु हैं' श्रेयांस ने जातिस्मरण से ज्ञात भगवान् के साथ अष्टभवों का सम्बन्ध बतलाकर साध्वाचार भी कह सुनाया। जिससे लोग आहारदान विधि जान गये।

भगवान् ऋषभदेव ग्रामानुग्राम विहार करते एकदा बाहुबलि की राजधानी तक्षशिला—वर्त्तमान 'टैक्शिला' के उपवन में सन्ध्या समय पधार कर कायोत्सर्ग स्थित थे। वनपालक ने



तत्क्षण बाहुबलि को वर्द्धापनिका बधाई दी। बाहुबलि ने विचार किया—'प्रातः परिवार परिजन व ऐश्वर्ययुक्त वन्दनार्थ जायेंगे।' दूसरे दिन तैयारी में विलम्ब हो गया। भगवान् प्रातः होते ही अन्यत्र विहार कर गये थे। बाहुबलि पधारे, भगवान् के दर्शन न होने से खेद हुआ, हृदय विरह व्याकुल हो गया। रुदन करते हुये विलाप करने लग गये। मन्त्री आदि के समझाने पर भगवान् के कायोत्सर्ग स्थान पर रत्नवेदिका पर पादुकाएँ बनाने का आदेश दे, पुनः नगर में आ गये।

भगवान् के गृह त्यागानन्तर माता मरुदेवी भरत को 'जब वे नित्य प्रातः पितामही (दादी) को नमस्कार करने आते' उपालम्भ पूर्वक रोती हुयी कहती—मेरा पुत्र न जाने कहाँ है? कैसा है? सुखी दुःखी क्षुधित पिपासित, शीत ताप सहता किधर घूम रहा है? तुम सब अपने अपने सुखों में लीन रहते हो! मेरे पुत्र की कोई सुधि नहीं लेते? हा! मैं कैसी अभागिनी हूँ? मुझे पुत्र-विरह-दग्धा को क्षण मात्र भी शान्ति नहीं मिल रही! अब शीघ्र पता लगाओ! ऐसे सदा कहा करती थीं। पुत्र वियोग में रोते-२ आँखों की ज्योति नष्ट हो गयी थी। भरत कहते दादी मां! चिन्ता न करो! आपके पुत्र सुख से साधना करते विचर रहे हैं। दूर देश में हैं। सूचना तो मंगाता रहता हूं! इधर समीप पधारेंगे, तब हम सब दर्शनार्थ चलेंगे!। ऐसे आश्वासन और सान्त्वना देते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। भगवान् को देश विदेशों में विचरते चारित्र को संयम व तप से उज्ज्वल करते आत्मा को ध्यान द्वारा उत्तम विचारों से भावित करते एक सहस्र वर्ष पूर्ण हो रहे थें। वे पुरिमताल (प्रयाग) के बाह्य प्रदेश में ध्यान मग्न खड़े थे।

श्री ऋषभदेव को कैवल्य प्राप्ति

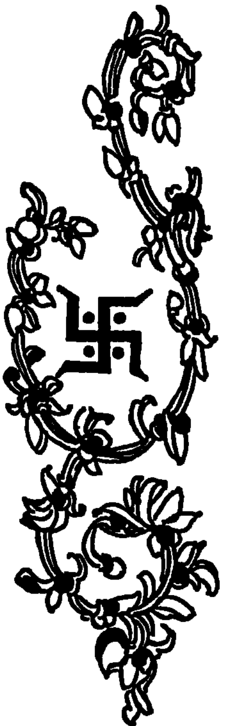
सूत्र :—जे से हेमंताणं चउत्थे मासे सत्तमे पक्खे फग्गुण बहुले तस्स णं फग्गुण बहुलस्स इक्कारसी पक्खेणं पुव्वण्ह काल समयंसि पुरिमतालस्स बहिया सगडमुहंसि उज्जाणंसि नग्गोहवर-



पायवस्स अहे अट्ठमेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं नक्खत्ते णं जोग मुवागएणं झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अणंते जाव जाणमाणे पासमाणे विहरइ ॥ २१६ ॥

अर्थ :—शीतकाल का चतुर्थमास सप्तम पक्ष था। फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन पूर्वाह्न में पुरिमताल (प्रयाग) नगर के बाह्यप्रदेश स्थित शकटमुख उद्यान में न्यग्रोध (वट) वृक्ष के नीचे अपानक अष्टम तेले के तपयुक्त कायोत्सर्गस्थ थे। उत्तराषाढा नक्षत्र के योग में शुक्ल-ध्यानान्तर वर्त्तमान श्री ऋषभदेव महाप्रभु को अनन्तार्थ दर्शक सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान केवल दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान् जगत् के समस्त भावों को जानने देखने लगे।

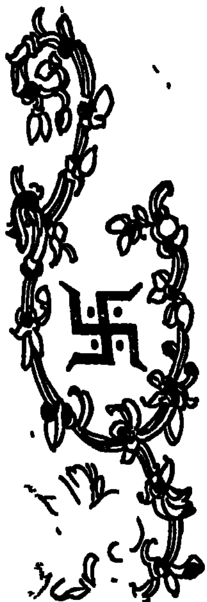
उधर विनीता में भरतनृप की आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति हुयी। दोनों ही प्रवृत्तिवादुक युगपत् भरत महाराजा की सेवा में उपस्थित हुये। दोनों ने एक साथ बधाई दी। भरत नरेश ने दोनों को प्रीतदान दे विसर्जित किया और प्रथम कौन-सा कार्य करें? प्रभुदर्शन या चक्रपूजन! अन्त में शीघ्र निश्चित किया कि प्रथम प्रभु दर्शन श्रेयस्कर है। कहा भी है—'धर्मार्थ सकलं त्यजेत्' वे शीघ्रता से दादी मां—मरुदेवी के पास गये, विनयपूर्वक नमस्कार करके कहा—दादी माँ! पधारिये! आप सदा उपालम्भ देती रहतीं थीं कि मेरे पुत्र की सुधि नहीं लेते? आज पधारो! आपके पुत्र के ऐश्वर्य को दिखा लाऊँ? ऐसा कह दादी मां को गजारूढ कर, स्वयं पीछे छत्रधारी बन, वैभव सहित दर्शनार्थ चले। अविच्छिन्न प्रयाण करते समवसरण की ओर चले जा रहे थे। देवदुन्दुभि आदि वाद्य यन्त्रों की ध्वनि कर्णगोचर होते ही भरत से प्रश्न किया—वत्स! ये मधुर वाद्य ध्वनि कहाँ हो रही है? भरत बोले—आप के पुत्र के सम्मुख देवदेवीगण मनोहर वाद्य यन्त्रों युक्त नाटक कर रहे हैं! मरुदेवी माताजी को दिखता तो था नहीं, उन्हें विश्वास नहीं हुआ। आगे बढ़ने पर देवकृत समवसरण दृष्टिगोचर होने पर भरत ने कहा—देखिये! आपके पुत्र रजत स्वर्ण और रत्नों के वप्रयुक्त समवसरण में स्वर्ण





सिंहासन पर विराजमान हैं। माताजी ने आँखे मलकर देखने का प्रयत्न किया, सचमुच ही हर्षावेग से पटल (चक्षुरोग विशेष) दूर हो गये और तीर्थंकर भगवान् तथा समवसरणादि की सारी शोभा देख वे चकित हो गयीं। उनके नेत्रों से हर्षाश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी। चिन्तन का प्रवाह आत्माभिमुख हो गया—विचारने लगी—"अहो! मोह विकलता! संसार में कौन किसका है? जिस पुत्र का समाचार जानने को व्याकुल रहती थी, भरत को उपालम्भ देती रहती थी, रोते-रोते नयन ज्योति खो दी थी, वह तो सामने ही नहीं देख रहा! इसने तो कभी मुझे स्मरण तक नहीं किया। मेरा स्नेह एकाङ्गी ही रहा। वास्तव में जीव अकेला ही जन्म लेता व शरीर त्याग देता है।" इस प्रकार एकत्व भावना करते क्षयक श्रेणी पर आरुढ हो गयीं, अन्तर्मुहूर्त्त में केवल ज्ञान हो गया। आयु पूर्ण हो जाने व साथ हो अन्य कर्म स्थिति विपाकादि नष्ट हो जाने से उनकी पवित्र आत्मा सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गयी। देवों ने मरुदेवी माँ के शरीर का बहुमान कर क्षीरसागर में प्रवाहित कर दिया। हर्ष शोकाकुल भरत को देवेन्द्र ने प्रतिबोध दिया, श्री ऋषभदेव भगवान् के पास ले गये दिव्य दर्शन करने से भरत का शोक दूर हो गया। स्वस्थचित्त से देशना सुनकर हो भरत के पाँच सौ पुत्र और सात सौ पौत्र प्रतिबोध पाकर दीक्षित हो गये। इन्हीं बारह सौ कुमारों में मरीचि भी थे। पुण्डरीक प्रथम गणधर बने। कु० ब्राह्मी ने भी बाहुबलि से आज्ञा ले दीक्षा लेली। सुन्दरी भी प्रस्तुत थी किन्तु भरत ने स्त्री रत्न बनाने को आग्रह पूर्वक रोक लिया। चतुर्विध संघ की स्थापना हुयी। प्रभु अन्यत्र विहार कर गये।

भरत ने विनीता में आकर चक्ररत्न को आराधनार्थ अष्टाह्निकोत्सव किया, तब चक्ररत्न चल पड़ा। उसके पीछे ससैन्य भरत नृप भी दिग्विजय यात्रार्थ चले, छह खण्ड साधते साठ हजार वर्ष लग गये। सुन्दरी को संयममार्ग से बलात् रोका गया था, उसने साठ हजार वर्ष पर्यन्त आचाम्ल तप करके शरीर को कृश, कान्तिहीन कर लिया था। भरत ने वापिस लौट कर



देखा तो उन्हें अपने इस कार्य पर खेद हुआ। उन्होंने सुन्दरी को दीक्षा की अनुमति दे दी, उसने प्रभु के पास जाकर दीक्षा धारण करली। चक्ररत्न आयुधशाला में नहीं गया, भरत ने महामात्य से इसका कारण पूछा, अमात्य बोले—श्रीमान् के अट्ठानवें बन्धु अभी सेवा में नहीं आये! दूत भेजे गये। उन्होंने कहा—हमें पिताजी ने राज्य दिया है, उनसे पूछलें, फिर उनकी आज्ञा होगी, वैसा करेंगे। वे प्रभु के पास गये। प्रभु ने उन्हें प्रतिबोध दे प्रव्रजित कर लिया। वे सब शीघ्र केवली बन गये। परन्तु चक्ररत्न अब तक शस्त्रागार में गया नहीं था। मन्त्रियों ने कहा—वाहुबलि को विजित करना शेष है। सुवेग दूत भेजा गया, वाहुवलि नहीं आये। भरत ने विवश हो, युद्धार्थ प्रस्थान किया। दोनों में बारह वर्ष तक संग्राम चला, वाहुवलि अविजित रहे। इन्द्र ने आकर द्वन्द्वयुद्ध द्वारा निर्णय कर लेने की सम्मति दी। पाँच प्रकार का द्वन्द्वयुद्ध—"दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, वाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्ध है।" भरत चार युद्धों में पराजित हो चुके थे। मुष्टि युद्ध होने लगा, भरत ने वाहुवलि को मुष्टि प्रहार किया, वाहुवलि घुटने तक पृथ्वी में धँस गये। वलपूर्वक बाहिर आकर मुष्टि प्रहार करने को उद्यत हुये, भरत ने भयभीत हो चक्र फेंका, परन्तु चक्र वाहुवलि को प्रदक्षिणा दे पुनः भरत के हाथ में आ गया। वाहुवलि को इस अन्याय से संसार की स्वार्थान्धता देख वैराग्य हो गया, उठायी हुयी मुष्टि निष्फल कैसे रहे? वाहुवलि ने तत्क्षण पंचमुष्टि लोच कर लिया, सर्व सावद्ययोग का त्याग कर इस विचार से कि 'केवली वनकर ही भगवान् के पास जाऊँगा' वे वहीं कायोत्सर्ग करके खड़े होकर ध्यानलीन हो गये। भरत ने यह देख चरणों में गिरकर क्षमा माँगी और वाहुवलि के पुत्र को राज्य दे दिया। सोमयश ने भरत की आधीनता स्वीकार कर ली। भरत सदलवल विनीता में आ सुखपूर्वक चक्रवर्त्तित्व पद का उपभोग करने लगे।

वाहुबलि को वैसे ही ध्यानस्थ खड़े एक वर्ष पूर्ण होने जा रहा था, उनको चारों ओर से



लताओं ने घेर लिया था, पक्षियों ने नीड़ बना लिये थे। वे एक लतागृह से दृष्टिगोचर हो रहे थे। ऋषभ भगवान् ने बाहुबलि को आसन्न केवली जान ब्राह्मी सुन्दरी को प्रतिबोध देने भेजा। वन में लताओं से मण्डित बाहुबलि कहीं दिखायी नहीं पड़े। वे उच्च स्वर से गायन करने लगी—बन्धो ! गजादुत्तीर्यताम् ! उत्तीर्यताम् ! गजारुढस्य केवल ज्ञानं न भवति इत्यादि। महोपाध्याय गणिवर्य श्री समयसुन्दर महोदय ने इसी को भाषा गेय काव्य रूप में निबद्ध किया है। "वीरा म्हारा गजथकी ऊतरो, गजचढ्यां केवल न होसी रे।" इन शब्दों से बाहुबलि चौंक पड़े ! वे सोचने लगे—यह आवाज ब्राह्मी सुन्दरी आर्याओं की है, किन्तु ये मुझ से गज से उतरने का अनुरोध कर रही हैं ! मैं तो राज्यादि कभी का त्याग चुका ! गज का प्रश्न कैसा ? परन्तु ये साध्वियाँ हैं ! झूँठ नहीं बोलतीं ! अहो ! अब समझ में आया ! मैं अभिमान गजारुढ हूं ! "लघु बन्धुओं व भरत के पुत्रादि को मुझे वन्दन न करना पड़े।" इस भावना से केवल ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् जाने का संकल्प कर यहीं ध्यानस्थ खड़ा हूँ। भारी भूल हो गयी ! चलूं ! अभिमान कैसा ! जो पूर्वदीक्षित हैं, उन्हें वन्दन करना साध्वाचार का अनिवार्य नियम है ! उन्होंने गमन करने को ज्योंही पाँव उठाया, केवलज्ञान की ज्योति जगमगा उठी। वे चलकर प्रभु के पास आ गये प्रदक्षिणा दे केवली परिषद् में जा बैठे। ब्राह्मी सुन्दरी साध्वियाँ भी स्वस्थान चलीं गयीं।

इस प्रकार प्रसङ्गोपात्त भरत बाहुबलि वृत्त भी संक्षेप से कह दिया है। विस्तार से ग्रन्थान्तरों में वर्णित है।

अब भगवान् श्री ऋषभदेव का परिवार, सूत्रकार कहते हैं :—

सूत्र :—उसभस्स णं अरहो कोसलियस्स चउरासीगणा, चउरासो गणहरा हुत्था ॥२१७॥ उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स उसभसेण पामुक्खा णं चउरासीइओ समणसा-

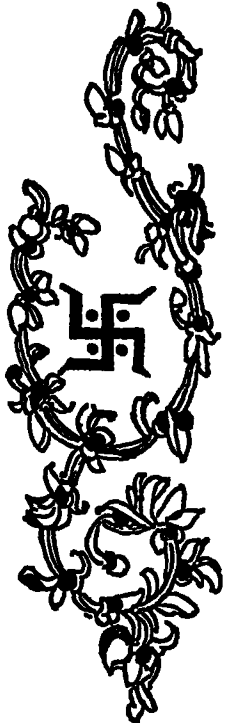


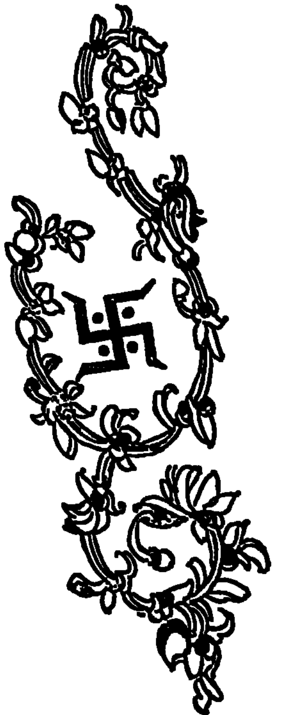




हस्सीओ उक्कोसिया समण संपया हुत्था ॥२१८॥ उसभस्स णं बंभिसुंदरी पामुक्खाणं अज्जियाणं तिन्निसय साहस्सीओ उक्कोसिया अज्जिया संपया हुत्था ॥२१६॥ उसभस्स णं० सिज्जंस पामुक्खाणं समणोवासगाणं तिन्नि सय साहस्सीओ पंचास सय सहस्सा उक्कोसिया समणोवासग संपया हुत्था ॥२२०॥ उसभस्स णं सुभद्दा पामुक्खा णं० समणोवासियाणं पंच सयसाहस्सी ओ चउपन्नं च सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था ॥२२१॥ उसभस्स णं० चत्तारि सहस्सा सत्त सया पण्णासा चउद्दसपुव्वीणं अजिणाणं जिणसंकासाणं जाव उक्कोसिया चउद्दसपुव्वि संपया हुत्था ॥२२२॥ उसभस्स णं जाव० नव सहस्सा ओहिनाणीणं उक्कोसिया० ॥२२३॥ उसभस्सणं वीस सहस्सा केवलनाणीणं उक्कोसिया० ॥२२४॥ उसभस्स णं वीस सहस्सा छच्च सया वेउव्वियाणं उक्कोसिया० ॥२२५॥ उसभस्स णं० बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा विउलमईणं अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु सन्नीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणमाणाणं पासमाणाणं उक्कोसिया विउलमईणं संपया हुत्था ॥२२६॥ उसभस्स णं० बारस सहस्सा छच्च सया पण्णासा वाईणं० ॥२२७॥ उसभस्स णं वीसं अंतेवासि सहस्सा सिद्धा, चत्तालीसं अज्जिया साहस्सीओ सिद्धाओ ॥२२८॥ उसभस्स णं अरहओ० बावीस सहस्सा नवसया अणुत्तरोववाइयाणं गइकल्लाणा णं जाव भद्दाणं उक्कोसिया० ॥२२९॥

अर्थ :—अर्हन् श्री ऋषभदेव कौशलिक भगवान् के चौराशी गण और चौराशी गणधर थे। ऋषभसेन आदि चौराशी हजार उत्कृष्ट श्रमणों की सम्पत् थी। ब्राह्मी प्रमुख तीन लाख श्रेष्ठतम साध्वियाँ थीं। श्रेयांस आदि तीन लाख पचास हजार श्रावक और सुभद्रा प्रभृति पाँच लाख चोपन हजार श्राविकाएँ थीं। चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वधर, अजिन होते हुये भी जिन





समान चतुर्दश पूर्वी मुनिराज थे। नव हजार साधु अवधिज्ञानी थे। प्रभु द्वारा दीक्षित बीस हजार मुनि ओर चालीस हजार साध्वियाँ केवलज्ञान युक्त थे। बीस हजार छह सौ मुनि वैक्रयिक लब्धि सम्पन्न थे। ढाई द्वीप समुद्र वर्त्ती पर्याप्तक संज्ञी पंचेन्द्रियों के मनोगत भाव को जानने वाले विपुलमती मनःपर्यव ज्ञानी मुनिराजों की संख्या बारह हजार छह सौ पचास थी। बारह हजार छह सौ पचास ही वादी मुनिराज थे, जो वाद में इन्द्रादि से भी पराजित नहीं होते थे। भगवान् के स्वहस्तदीक्षित बीस हजार मुनि व चालीस हजार आर्याएँ मुक्ति में गये। बाईस हजार नव सौ मुनि एकावतारी अनुत्तर विमान वासी बने।

सूत्र :—उसभस्स णं अरहओ० दुविहा अंतगड भूमी हुत्था तं जहा-जुगंतगडभूमी परियायं-तगड भूमीय। जाव असंखिज्जाओ पुरिसजुगाओ जुगंतगड भूमी, अंतोमुहुत्त परिआए अंतमकासी ॥२३०॥

अर्थ :—अर्हत् कौशलिक श्री ऋषभदेव भगवान् के दो अन्तकृत् भूमि थी, युगान्तकृत्, पर्यान्तकृत्, भगवान् के असंख्यात पट्टधर आचार्य राजर्षि जितशत्रु (अजित जिन के पिता) पर्यन्त मुक्ति में गये। भगवान् को केवलज्ञान होने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्त में ही मुक्तिमार्ग प्रारम्भ हुआ। मरुदेवी माता सर्व प्रथम मुक्तिगामिनी हुयीं।

भगवान् का निर्वाण

सूत्र :—ते णं कालेणं ते णं समए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसय सहस्साइं कुमारवास मज्झे वसित्ता णं, तेवट्ठि पुव्वसय सहस्साइं रज्जवास मज्झे वसित्ता णं, तेसीइं पुव्वसय सहस्साइं अगारवास मज्झे वसित्ता णं, एगंवास सहस्सं छउमत्थ परिआयं पाउणित्ता, एगं पुव्वसय सहस्सं वाससहस्सूणं केवलि परिआयं पाउणित्ता पडिपुन्नं पुव्वसय सहस्सं सामण्ण





श्री स्थूलिभद्र स्वामी का बहिन-साध्वियो को लब्धि प्रदर्शन



श्री वज्र स्वामी : पालने में श्रुतज्ञान प्राप्ति



श्री कालकाचार्य द्वारा कल्पसूत्र वाचन



चतुर्विध संघ

परिआयं पाउणित्ता चउरासीइं पुव्वसय सहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता खीणे वेयणिज्जाउय नामगुत्ते इमीसे ओसप्पिणीए सुसम दुसमसमाए बहु विइक्कंताए तिहिं वासेहिं, अद्धनवमेहिय मासेहिं सेसेहिं, जे से हेमंताणं तच्चे मासे पंचमे पक्खे माहबहुले, तस्स णं माह बहुलस्स तेरसी पक्खेणं उप्पिं अट्ठावय सेल सिहरंसि दसहिं अणगार सहस्सेहिं सद्धिं चोद्दसमेणं भत्तेणं अपाणएणं अभीइणा नक्खत्तेणं जोग मुवागए णं पुवण्ह काल समयंसि संपलियंक निसण्णे कालगए विइक्कंते, जाव सव्व दुक्ख पहीणे ॥२३१॥

अर्थ :—उस काल उस समय श्री अर्हन् ऋषभदेव कौशलिक बीस लाख पूर्व कुमार पद त्रेसठ लाख पूर्व पर्यन्त राज्य पद पर रह कर, यों सर्व तियांसी लाख पूर्व तक गृहस्थ रूप में रहे। एक हजार वर्ष छद्मस्थावस्था में विचरे, एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्षों तक केवली तीर्थंकर रूप में विचर कर, एक लाख पूर्व पर्यन्त श्रामण्य का परिपालन किया। ऐसे पूर्ण चौराशी लाख पूर्व का आयुष्क पूर्ण कर अन्त में वेदनीय आयुष्क नाम और गोत्र कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने पर इसी अवसर्पिणी के सुषम दुःखम नामक तीसरे आरे के बहुत अधिक बीत जाने पर मात्र तीन वर्ष साढे आठ मास शेष थे, तब शीतकाल के तीसरे मास पंचम पक्ष-माघ कृष्ण त्रयोदशी के दिन दिन के प्रथमार्द्ध में अष्टापदगिरि के शिखर पर दश हजार मुनिराजों के साथ छह उपवास चौविहार युक्त, अभिजित् नक्षत्र में चन्द्र चल रहा था, प्रभु पद्मासन से विराजमान थे, उस समय उनकी आत्मा कर्मों से सर्वथा मुक्त हो गयी, वे सर्व दुःखों से रहित सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये।

सूत्र :—उसभस्स णं अरहओ कोसलियस्स कालगयस्स जाव सव्व दुक्खपहीणस्स तिण्णि वासा अद्धनवमाय मासा विइक्कंता, तओ वि परं एगा सागरोवम कोड़ा कोड़ो तिवास अद्ध



नवमासाहिय बायालीसा ए वास सहस्सेहिं उणिया विइक्कंता, एयम्मि समए समणे भगवं महावीरे परिनिव्वुडे। त ओ वि परं नव वाससया विइक्कंता, दसमस्स य वास सयस्स अयं असीइमे संवच्छरे काले गच्छइ ॥२३२॥

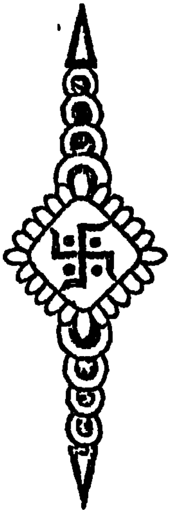
अर्थ :—भगवान् श्री ऋषभदेव के मुक्ति पधारने के तीन वर्ष साढे आठ मास व्यतीत होने पर तीसरा आरा उतर गया। श्री आदीश्वर निर्वाण से एक कोटाकोटी सागरोपम में मात्र बियालीस हजार तीन वर्ष साढे आठ मास कम थे, तब श्रमण भगवान् महावीर वर्द्धमान का परिनिर्वाण हुआ। महावीर निर्वाण के नौ सौ अस्सी वर्ष व्यतीत हो जाने पर कल्पसूत्र लिपिबद्ध किया गया।

श्री आदीश्वर चरित्र सहित चार तीर्थंकर भगवान् के चरित्र सम्पूर्ण हुये।

इति सप्तमी वाचना





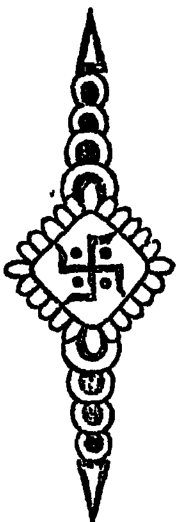


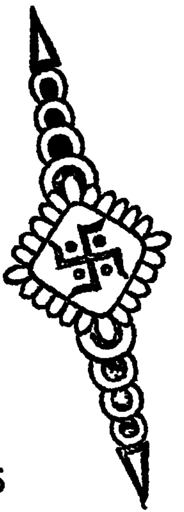
स्थविरावली

सूत्र :—ते णं कालेणं ते णं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा, इक्कारस गणहरा हुत्था ॥१॥ से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा इक्कारस गणहरा हुत्था ? ॥२॥

अर्थ :—उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के नव गण और इग्यारह गणधर थे। भन्ते ! ऐसा किस कारण से कहते हैं। कि नवगण ओर इग्यारह गणधर थे ? क्योंकि जितने गण हों उतने ही गणधर होते हैं, ऐसा उल्लेख है। गण समुदाय को कहते हैं। इसी का समाधान करते है :—

सूत्र : समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे इंदभूई अणगारे गोयम गुत्ते णं पंच समणसयाइं वाएइ, मज्झिमए अग्गिभूई अणगारे गोयम गुत्ते णं पंच समण सयाइं वाएइ, कणोअसे अणगारे वाउभूई गोयम गुत्तेणं पंच समण सयाइं वाएइ, थेरे अज्जवियत्ते भारद्दाए गुत्ते णं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे अज्ज सुहम्मे अग्गिवेसायणे गुत्ते णं पंच समणसयाइं वाएइ, थेरे मंडितपुत्ते वासिट्ठे गुत्ते णं अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे मोरिअपुत्ते कासवे गुत्ते ण अद्धुट्ठाइं समणसयाइं वाएइ, थेरे अकंपिए गोयम गुत्ते णं, थेरे अयलभाया हारिआयणे गुत्ते णं पत्तेयं एते दुन्नि वि थेरा तिन्नि तिन्नि समणसयाइं वाएंति, थेरे अज्ज मेइज्जे, थेरे पभासे, ए ए दुन्नि वि थेरा कोडिन्न गुत्ते णं तिन्नि तिन्नि समण सयाइं वाएंति। से तेणट्ठेणं

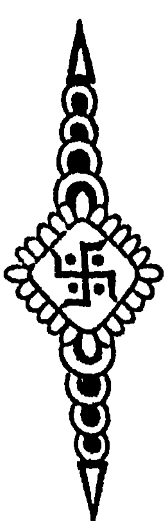




अज्जो ! एवं वुच्चइ-समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा, इक्कारस्स गणहरा हुत्था ॥३॥ सव्वे वि णं एते समणस्स भगवओ महावीरस्स एक्कारस्स वि गणहरा दुवालसंगिणो, चउद्दसपुव्विणो सम्मत्तगणिपिडग धारगा रायगिहे नगरे मासिएणं भत्ते णं अपाणएणं काल-गया, जाव सव्व दुक्खप्पहोणा। थेरे इंदभूई, थेरे अज्ज सुहम्मे य सिद्धिगए, महावीरे पच्छा दुन्नि वि थेरा परिनिव्वुया। जे इमे अज्जत्ताए समणानिग्गंथा विहरंति, एए णं सव्वे अज्ज सुहम्मस्स अणगारस्स आवच्चिज्जा, अवसेसा गणहरा निरवच्चा वुच्छिन्ना ॥४॥

अर्थ :—श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गोतम गोत्रीय (१) श्री इन्द्रभूति अनगार पांच सौ शिष्यों को, मध्यम (२) अग्निभूति पाँच सा शिष्यों को, और कनिष्ठ (३) वायुभूति अणगार भी पाँच सो शिष्यों को वाचना देते थे। ये तीनों ही भाई थे। (४) भारद्वाज गोत्रीय आर्य व्यक्त गणधर भी, और (५) अग्नि वैश्यायन गोत्रीय श्री सुधर्म्मा स्वामी भी पाँच-पाँच सो शिष्यों को वाचना देते थे। (६) वासिष्ठ गोत्रीय श्री मण्डितपुत्र और (७) काश्यप गोत्रीय श्री मौर्यपुत्र ये दोनों साढे तीन-तीन सो को वाचना देते थे, (८) गोतम गोत्रीय अकम्पित और (९) हार्यायण गोत्रीय श्री अचलभ्राता तीन-तीन सौ मुनियो को वाचना देते थे (१०-११) कौण्डिन्य गोत्रीय मेतार्य और प्रभास भी क्रमशः तीन-तीन सौ मुनियों को वाचना देते थे। इनमें से अकम्पित और अचलभ्राता तथा मेतार्य और प्रभास ये दोनों युगल क्रमशः एक ही प्रकार की वाचना देते थे; अतः वाचना नव होने से गण भी नव ही थे। गण मुनि समूह को भी कहते हैं। ये ग्यारह ही गणधर द्वादशांगो—आचाराङ्ग से लेकर दृष्टिवाद पर्यन्त सूत्रों के प्रणेता और चतुर्दश पूर्वधर थे। (चतुर्दश पूर्व यद्यपि दृष्टिवादान्तर्गत हैं; तथापि अनेक विद्या मन्त्रादि युक्त

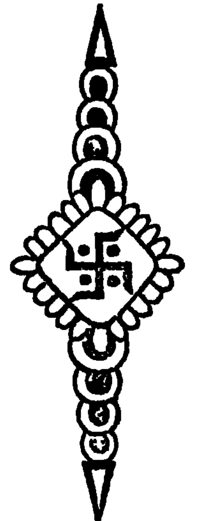


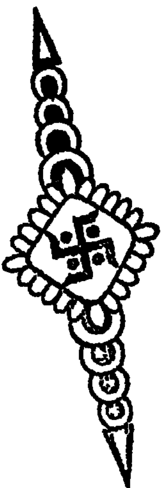


व महा प्रमाण वाले होने से प्रधानता बतलाने के लिए पृथक् ग्रहण किया है।) समस्त गणिपिटक धारक थे। गणिपिटक भी द्वादशाङ्गी सूचक शब्द है फिर भी पृथक् उपादान का कारण यह है कि गणधर भगवान् सर्वाक्षर सन्निपाती होने से सूत्र अर्थ और उभयात्मक रूप से द्वादशागीं के धारक होते है।

इनमें से नव गणधर तो भगवान् महावीर की विद्यमानता में ही चोविहार मासक्षमणपूर्वक राजगृह में निर्वाण प्राप्त हो गये थे। भगवान् गोतम इन्द्रभुति श्री महावीर निर्वाण के बारह वर्ष पश्चात् और पाँचवें सुधर्म गणधर प्रभु निर्वाण के बीस वर्ष पश्चात् मोक्ष गये थे। अतः श्रमण परम्परा श्री सुधर्मा स्वामी से लेकर आज तक अक्षुण्ण रूप से विद्यमान है और सुधर्मा स्वामी की अपत्य—सन्तान-शिष्य कही जाती है। सभी गणधरों ने अपना शिष्य समुदाय सुधर्म गणधर को सौंप दिया था। वे सुधर्म गणधर की आज्ञानुसार विहारादि समस्त चर्या करते थे। अतः सुधर्म से ही परम्परा मानी जाती है। सुधर्म गणधर से स्थविरावली का आरम्भ करते है :—

सूत्र :—समणे भगवं महावीरे कासव गुत्ते णं, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स कासव-गुत्तस्स अज्ज सुहम्मे थेरे अंतेवासो अग्गिवेसायणगुत्ते णं ॥१॥ थेरस्स णं अज्ज सुहम्मस्स अग्गिवेसायण गुत्तस्स अज्ज जंबूनामे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते णं ॥२॥ थेरस्स णं अज्जजंबू णामस्स कासवगुत्तस्स अज्जप्पभवे थेरे अंतेवासी कच्चायणस्स गुत्ते ॥३॥ थेरस्स णं अज्जप्प-भवस्स कच्चायणस्स गुत्तस्स अज्ज सिज्जंभवे थेरे अंतेवासी मणगपिया वच्छस्सगुत्ते ॥४॥ थेरस्स णं अज्ज सिज्जंभवस्स मणगपिउणो वच्छस्स गुत्तस्स अज्ज जसभद्दे थेरे अंतेवासी तुंगिया-यणस्स गुत्ते ॥५॥





अर्थ :—भगवान् महावीर के अन्तेवासी अग्निवैश्यायन गोत्रीय श्री सुधर्मा थे। सुधर्मा के अन्तेवासी काश्यप गोत्रीय श्री जम्बू स्वामी, जम्बू के पद पर कात्यायन गोत्रीय श्री प्रभव स्वामी बैठे। प्रभव के अनन्तर वत्स गोत्रीय मनक पिता श्री शय्यम्भवसूरि पट्टाधीश बने। शय्यम्भवसूरि के पद पर तुङ्गियायन गोत्र वाले श्री यशोभद्र विराजमान हुये।

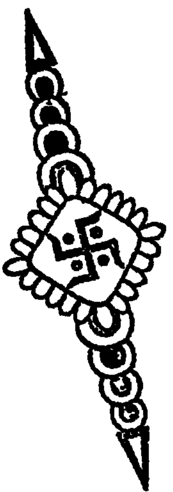
इन पाँच स्थविरों का परिचय संक्षिप्त से कहते हैं :—

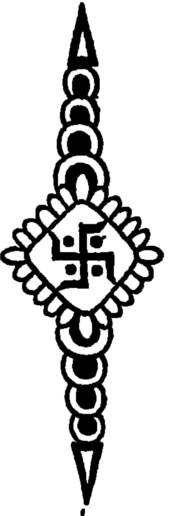
आर्य सुधर्म गणधर

कोल्लाग सन्निवेश में धम्मिल विप्र और उसकी पत्नी के सुधर्मा नामक पुत्र थे। चतुर्दश विद्याओं के पारङ्गत सुधर्मा प्रभु महावीर के शिष्य बने तब पचास वर्ष के थे। तीस वर्ष भगवान् की सेवा में व्यतीत किये। आठ वर्ष प्रभु निर्वाण के पश्चात् भी छद्मस्थ रहे, फिर केवली अवस्था में बारह वर्ष विचरे, यों पूर्ण शत वर्ष का आयुष्क भोग कर मोक्ष पधारे। जम्बू स्वामी को पट्टधर बनाया गया।

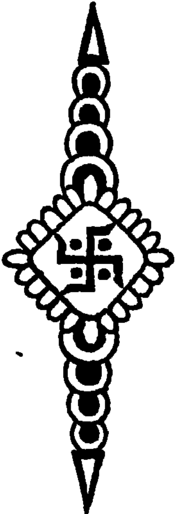
आर्य जम्बू स्वामी

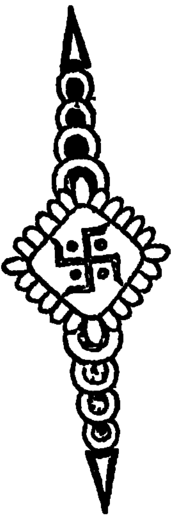
एकदा प्रभु महावीर भगवान् के समवसरण में चार अग्रमहिषियों युक्त महातेजस्वी विद्युन्माली नामक देव प्रभु वन्दनार्थ आया। उसका अपूर्व तेज देख कर श्रेणिकनृप ने प्रभु से सविनय प्रश्न किया—भन्ते ! इस देव की यह विस्मयकारिणी अपूर्व कान्ति किस कारण से है ? प्रभु बोले—राजन् ! यह महातप का प्रभाव है। यह पूर्व भव में महाविदेह क्षेत्र में 'शिव' नामक राजकुमार था। वहाँ बारह वर्ष तक निरन्तर बेला की तपस्या और पारणे में आयबिल करता था। उसी के प्रभाव से पंचम देवलोक में महर्द्धिक तिर्यग्जृम्भक देव बना है। अब तो कान्ति पूर्ववत् रही नहीं, क्योंकि यह सातवें दिन देवलोकच्युत हो, राजगृही के धनाढ्य ऋषभदत्त की धर्मपत्नी धारिणी की कूक्षि में उत्पन्न होगा। सुनकर श्रेणिक नृपति आनन्दित हो गये। उसके गर्भ में आने पर माता धारिणी ने जम्बू वृक्ष देखा था; अतः जन्मोत्सव मना कर पिता ने



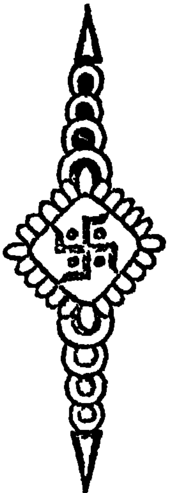


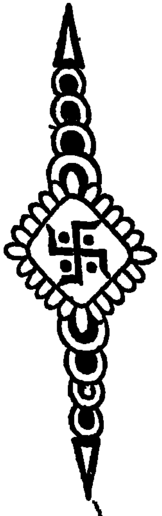
पुत्र का नाम जम्बूकुमार रखा। क्रमशः सोलह वर्ष के हुये। सुधर्मा स्वामी से धर्मोपदेश सुन वैराग्य आ गया, 'माता पिता से पूछ कर दीक्षा लूंगा' इसी विचार से नगर में जा रहे थे। नगर द्वार से प्रवेश करते समय द्वारस्थ शस्त्र चालक यन्त्र विशेष (तोप) से एक भारी प्रस्तर खण्ड (गोला) अत्यन्त समीप गिरा। कुमार बाल २ बच गये। मृत्यु से बचकर पुनः ब्रह्मचर्य धारण करने को सुधर्म भगवान् के पास गये और आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर घर आ गये। माता पिता से दीक्षा की आज्ञा मांगी। सगाई सम्बन्ध तो आठ सुन्दर श्रेष्ठि कन्याओ से पूर्व ही हो चुका था। माता पिता ने विवाह का आग्रह किया कि पहले विवाह तो कर लो ! फिर दीक्षा ले लेना ! यद्यपि ब्रह्मव्रतधारी थे; तथापि माता पिता के आग्रह से विवाह कर उसी रात्रि को आठों नवोढा पत्नियों को और दहेज में आये करोड़ो का धन लूटने आये पाँच सौ चोरों सहित प्रभव को प्रतिबोध देकर स्वमाता पिता, पत्नियाँ, पत्नियों के माता पिता, और स्वयं ऐसे ५२७ व्यक्तियों ने एक साथ श्रामण्य अंगीकार किया। नवविवाहिता आठ पत्नियाँ, निन्यानवें क्रोड़ सुवर्ण मुद्राओ को छोड़कर संयमपथ के पथिक जम्बू स्वामी अन्तिम केवली थे। महावीर निर्वाण के चौसठ वर्ष पश्चात् मुक्ति पधारे। उनके मुक्त होने पर भरतक्षेत्र मे १० अमूल्य वस्तुएँ लोप हो गयी, वे ये हैं :— (१) मनःपर्यय ज्ञान (२) परमावधिज्ञान (३) पुलाकलब्धि (४) आहारक लब्धि (५) क्षपक श्रेणी (६) उपशम श्रेणी (७) जिनकल्प (८) परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसंपराय व यथाख्यात चारित्र (९) केवल ज्ञान (१०) सिद्धिगमन। जम्बू स्वामी ने अपने पद पर प्रभव स्वामी को स्थापित किया था, वे भी एक राजकुमार थे। कुसग से दस्यु बन गये थे; जम्बूकुमार से प्रतिबोध पाकर संयमी बने थे। उन्होने अपने बाद श्रमण संघ में शासन करने योग्य किसी को न देख विचार किया—सूरिपद किसको दिया जाय ? श्रुतोपयोग से ज्ञात हुआ कि राजगृह में यह यज्ञ करने वाला शय्यम्भव भट्ट (ब्राह्मण) इस पद के योग्य है। दो साधुओं को भेजा, वे यज्ञ मण्डप में जाकर खेदपूर्वक बोले—अहो ! कष्टम्, अहो ! कष्टम् तत्वं न





खड्ग उठा कर बोला—तत्त्व
ज्ञायते। शय्यम्भव ने सुना, वह अपनेगुरु के पास गया। खड्ग उठा कर बोला—तत्त्व
बतलाइये, नहीं तो मारता हूँ। गुरुजी भयभीत हो बोले—यज्ञ स्तम्भ के नीचे शान्तिनाथ की
प्रतिमा है; जिससे यज्ञ द्वारा शान्ति होती है। शय्यम्भव को आर्हत धर्म पर श्रद्धा हो गयी। प्रभव स्वामी
के पास आकर साधु बन गये। क्रमशः गीतार्थ हुये और प्रभव स्वामी ने शासन का भार उन पर रख
अनशन किया, स्वर्ग मे गये। शय्यम्भव ने दीक्षा ली तो उनकी पत्नी गर्भवती थी। पुत्र हुआ, मनक नाम
दिया। बड़ा होकर अध्ययन, क्रीड़ा करने जाने लगा। अन्य बालक पितृहीन कह कर चिढ़ाने लगे।
माता के पास आकर रोते हुये पिता विषयक प्रश्न किया। माता ने नाम बताकर कहा—तेरे पिता विद्य-
मान है, वे प्रसिद्ध जैनाचार्य हैं। अमुक नगर में हैं। बालक मनक पिता के दर्शनार्थ रवाना हो गया।
सूरीश्वर बहिर्भूमि पधारे थे, एकाकी थे। मनक ने उनसे पूछा—शय्यम्भवसूरि कहां हैं ? गुरुजी ने कहा—
क्या काम है ? मनक ने अपना परिचय और आगमन का कारण बताया। सूरिजी ने बालक को उपदेश
दिया, बालक को वैराग्य हो गया। वह शिष्य बनने को प्रस्तुत हुआ तो बोले—मै ही तुम्हारा पिता हूँ।
अपना सम्बन्ध गुप्त रखो तो दीक्षा दूँ। बालक ने स्वीकार किया। गुरुजी साथ ले गये दीक्षा दे दी। मात्र
'छह मास ही आयु शेष है' श्रुतबल से जान 'दशवैकालिक' सूत्र का अन्य आगमो से उद्धार कर पढाया।
चारित्र की आराधना करवायी। बालमुनि मनक यथाशक्ति साधु समूह की वैयावृत्य भी करते थे और
दशवैकालिक का अध्ययन भी। छः महीने पूरे होते ही स्वर्गवासी हो गये। अग्नि संस्कार करके वापिस
आये। श्रावकों ने सूरिजी की आँखो में अश्रु देखकर पूछा और मुख्य शिष्य यशोभद्र भी पूछने लगे—आज
पूज्यवर की आँखें सजल कैसे ? अनेक शिष्य स्वर्ग गये; परन्तु कभी ऐसा नहीं देखा। आचार्य ने कहा—
मै भी छद्मस्थ हो तो हूँ। मोहवश हो गया। प्रश्न हुआ—कैसा मोह ? सूरीश्वर बोले—बाल मुनि था और
गृहस्थ सम्बन्ध से पुत्र भी। सबको खेद हुआ। पुत्र सम्बन्ध क्यों गुप्त रखा गया ? कारण बताया

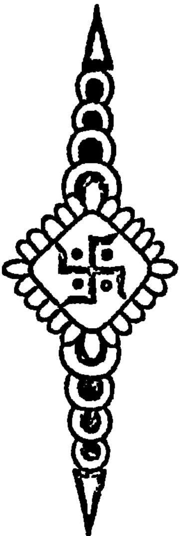




कि छः मास का आयु था, यदि सम्बन्ध बता देते तो कोई उससे वैयावृत्य नहीं करवाता ! उसका निस्तार कैसे होता ? मनक के स्वर्गवासी होने पर 'दशवैकालिक' सिद्धांत में न्यस्त करने लगे। सब ने पृथक् रखने को प्रार्थना करके सूत्र को उसी रूप में रखवा लिया। श्री शय्यम्भवसूरि ९८ वर्ष की आयु में यशोभद्रसूरि को श्रमण संघाधिपति बना स्वर्ग पधारे।

श्रीयशोभद्रसूरि से आगे स्थविरावली संक्षिप्त रूप से कही जाती है :—

सूत्र—संखित्त वायणाए अज्ज जसभद्दाओ अग्गओ एवं थेरावली भणिया-तंजहा—थेरस्स णं अज्ज जसभद्दस्स तुंगियायणस्स गुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा-थेरं अज्ज संभूअविजए माढरस्स गुत्ते, थेरे अज्ज भद्दबाहू पाईणस्स गुत्ते; थेरस्स णं अज्ज संभूअविजयस्स माढरस्स गुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्ज थूलभद्दे गोयमस्स गुत्ते, थेरस्स णं अज्ज थूलभद्दस्स गोयमस्स गुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा-थेरे अज्ज महागिरि एलावच्चस्स गुत्ते, थेरे अज्ज सुहत्थी वासिट्ठस्स गुत्ते। थेरस्स णं अज्ज सुहत्थिस्स वासिट्ठस्स गुत्तस्स अंतेवासी दुवे थेरा—सुट्ठिय। सुप्पडिबुद्धा। कोडिय काकंदगा वग्घावच्चस्स गुत्ता, थेराणं सुट्ठिय-सुपडिबुद्धाणं कोडियकाकंदगाणं वग्घावच्चस्स गुत्ताणं अंतेवासी थेरे अज्ज दिन्ने गोयमस्स गुत्ते, थेरस्स णं अज्ज दिन्नस्स गोयमस्स गुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्ज सोहगिरी जाइस्सरे कोसिय गुत्ते, थेरस्स णं अज्जसोहगिरिस्स जाइस्सरस्स कोसिय गुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्ज वइरे गोयमस्स गुत्ते, थेरस्स णं अज्ज वइरस्स गोयमस्स गुत्तस्स अंतेवासी थेरे अज्ज वइरसेणे, उक्कोसियगुत्ते, थेरस्स णं अज्जवइरसेणस्स उक्कोसिय



गुत्तस्स अंतेवासो चत्तारि थेरा-१ थेरे अज्ज नाइले २ थेरे अज्ज पोमिले, ३ थेरे अज्ज जयंते ४ थेरे अज्ज तावसे। १ थेरा अज्ज नाइलाओ अज्ज नाइला साहा निग्गया। २ थेराओ अज्ज पोमिलाओ अज्जपोमिला साहा निग्गया। ३ थेराओ अज्ज जयंताओ अज्ज जयंती साहा निग्गया। ४ थेराओ अज्ज तावसाओ अज्ज तावसी साहा निग्गया। इति ॥६॥

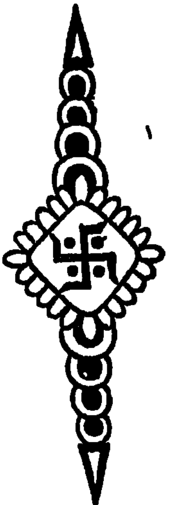
अर्थ :—यशोभद्रसूरि से आगे स्थविरावलि इस प्रकार संक्षिप्त से कही है :—

यशोभद्रसूरि के दो शिष्य थे, (१) माढर गोत्रीय स्थविर सम्भूतिविजय, (२) प्राचीन गोत्रीय आर्य भद्रबाहु।

आर्य भद्रबाहु :—प्रतिष्ठानपुर में दो ब्राह्मण बन्धुओ ने दीक्षा ली—विनीत भद्रबाहु को आर्य यशोभद्र सूरि ने आचार्य पद देकर अपना उत्तराधिकारी बना दिया। इससे वराहमिहिर रुष्ट हो, गच्छ से निकल पुनः ब्राह्मण बन कर ज्योतिषी की आजीविका करने लगा, वाराहीसंहिता नामक नवीन ग्रन्थ बना कर अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। उसने स्वयं के विषय में कहा कि—मैने वनस्थित शिलापर एकबार सिंह लग्न लिखा, मिटाना भूल गया। रात्रि में शयन करने लगा तब स्मरण में आया। मै रात में उसे मिटाने गया तो वहाँ लग्न पर सिंह बैठा था, मैने निडर हो नीचे हाथ डाल लग्न मिटा दिया। लग्नाधिष्ठाता सिंह मेरे साहस से प्रसन्न हो मुझे सूर्यमण्डल मे ले गया। वहा सर्व ग्रहादि का चार—उदय अस्त गति स्थिति मन्द वक्रादि प्रत्यक्ष दिखाये जिससे मै पूर्ण विज्ञ हो गया। मेरा बतलाया फलादि असत्य नहीं हो सकता।

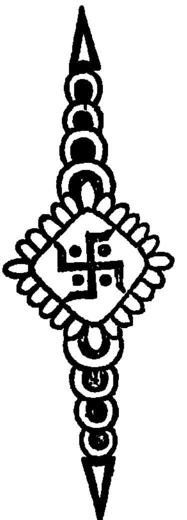
एकदा वराहमिहिर ने एक मण्डल बना कर राजादि के समक्ष कहा कि—इसके मध्य बावन पल का मत्स्य आकाश से गिरेगा। श्रीभद्रबाहु सूरि भी वहीं विराजते थे। उनको भी यह ज्ञात हुआ तो बोले—

कल्पसूत्र
३२४



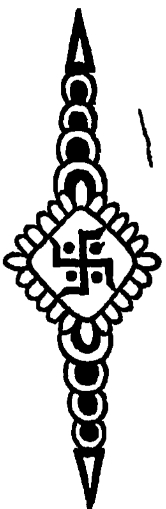
इस में थोड़ी भूल है ! मत्स्य मात्र साढ़े इक्कावन पल का होगा और मध्य में नहीं किनारे पड़ेगा। ऐसा हुआ। अपना कहा असत्य हो जाने से वह खिसियाना होकर अन्य प्रसग की प्रतीक्षा करने लगा। राजा के वहां पुत्र जन्म हुआ। वराहमिहिर ने लग्नकुण्डली बना कर 'शतायु होगा' ऐसा कहा। पुत्र जन्म की बधाई देने सभी सम्प्रदायों के साधु सन्यासी गये। भद्रबाहु स्वामी के न आने पर वराहमिहिर ने राजसभा में कहा—'भद्रबाहु को राजपुत्र जन्म अच्छा नहीं लगा ! ये जैन व्यवहार-कुशल भी नहीं होते' इत्यादि। कुछ संघनेताओं ने गुरु महाराज से निवेदन किया—आपको भी पधारना उचित है ! सूरीश्वर बोले—बार-बार कौन जाय ! एक ही बार जायेंगे। श्रावकों ने पूछा—यह कैसे ? गुरुवर ने कहा—राजकुमार आठवें दिन बिलाई से पञ्चत्व (मृत्यु) प्राप्त होने वाला है। बात राजा तक पहुँच गयी थी। 'बिल्ली न आ जाय' ! इसका पूर्ण प्रबन्ध कर दिया गया; फिर भी भावी टाला नहीं जा सकता। आठवें दिन दासी के हाथ से अर्गला (बिलाई) बाल राजपुत्र पर गिर पडी, वह मर गया। सौ वर्ष की आयु बताने वाले वराहमिहिर की निन्दा होने लगी। वह वहां से प्रस्थान कर गया। मर कर व्यन्तर बना। जैनों को उपद्रव करने लगा भगवान भद्रबाहु ने 'उवसग्गहर' स्तोत्र बनाकर लोगों को दिया। जिसके स्मरण मात्र से धरणेन्द्र उपस्थित हो, सर्वोपद्रव निवारण करते थे। व्यन्तर प्रभावहीन हो, चला गया। महाप्रभावशाली स्तोत्र को मूर्ख स्वार्थी लोक हर कार्य—गाय के दूध न देने जैसे सामान्य अवसर पर भी पढ़ने लगते। धरणेन्द्र को आना पड़ता; धरणेन्द्र ने श्री भद्रबाहु स्वामी से प्रार्थना की—भगवान् इसमें से मन्त्रगर्भित गाथा निकालने का अनुग्रह करें। मै स्थान पर बैठा ही सर्व पठन करने वालों के वाछित पूर्ण कर दिया करूँगा। गाथाएँ भण्डार कर दी गयी।

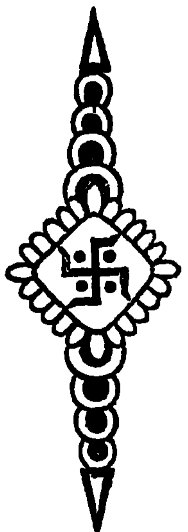
भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यकादि दश सूत्रों पर नियुक्तियाँ, "दशाश्रुतस्कन्ध व व्यवहार" ये दो सूत्र तथा अनेक ग्रथ बनाये जिनमें से कई उपलब्ध हैं। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य इनका शिष्य था। वीर निर्वाण के १७० वर्ष पश्चात् स्वर्गवासी बने। ये श्रुतकेवली चतुर्दश पूर्वधर थे।



इनके पट्ट पर शकटार मन्त्री के पुत्र स्थूलिभद्र चतुर्दश पूर्वधर विराजमान हुये। इनका चरित्र जैन समाज में प्रसिद्ध है। ये जब कुमार ही थे, रूपकोशा नर्तकी के रूप सौन्दर्य और नृत्यकला पर आसक्त हो, वहीं रहने लगे थे। बारह वर्ष रहे। शकटार की षडयन्त्र पूर्ण मृत्यु के बाद नन्द नृप ने मन्त्री पद देना चाहा; पर इस षड्यन्त्र पूर्ण राजनैतिक चक्र ने इनको वैराग्य वासित कर दिया था, मन्त्री नहीं बने। सम्भूतिविजय के शिष्य बन पूर्व प्रेमिका रूपकोशा को प्रतिबोध देने गुरु आज्ञा से वहीं चातुर्मास किया और ऐसी अपूर्व दृढ़ता प्रदर्शित की जिससे नर्त्तकी रूपकोशा को पराजित होना पडा। वह पूर्ण श्राविका बन गयी।

गुरु महाराज ने उनकी दृढता देख उन्हें 'दुष्कर-दुष्कर कारक' कह कर उठकर स्वागत किया। 'अन्य तीन मुनि—सिह गुफा में, सर्पबिल, व कूपकोश, पर चातुर्मास करके आये'' उन्हें मात्र 'दुष्करकारक' कह कर बैठे-बैठे स्वागत किया। इससे सिंह गुफा वासी मुनि को ईर्षा हो गयी। आगामी चातुर्मास करने को 'कोशागृह' जाने की गुरु से आज्ञा मांगी। गुरु महाराज ने बहुत समझाया, न मानने पर आज्ञा दे दी। कोशा ने चातुर्मासार्थ भवन में स्थान दिया। श्राविका होने से भक्ति करने लगी। मुनि का चित्त चलायमान हो गया। मुनित्व भूल कर भोग प्रार्थना की, कोशा ने स्थिर करने को रत्नकम्बल लाने का आदेश दिया। मुनि वर्षाकाल में ही नेपाल जाकर वहां के दानी राजा से रत्नकम्बल माग लाये, कोशा को अर्पण किया। कोशा ने पांव पोंछ कर गन्दे नाले में फेंक दी। मुनि ने कहा—यह क्या मूर्खता की ? कोशा ने कहा—मुझ से अधिक मूर्ख तो आप हैं, जो इस मल मूत्र के भण्डार मेरे शरीर के लिये अमूल्य अत्यन्त दुर्लभ संयम को नष्ट करने के लिये प्रस्तुत हैं। मुनि को प्रतिबोध हो गया। गुरु महाराज के पास आलोचना प्रायश्चित्त ले शुद्ध हुये।





कोशा ऐसी ही दृढ़ थी। नन्द नृप के रथसेनाधिपति[1] को अपने बुद्धिबल व कला से पराजित कर अपने शील की रक्षा के साथ ही उसका भी उद्धार कर दिया।

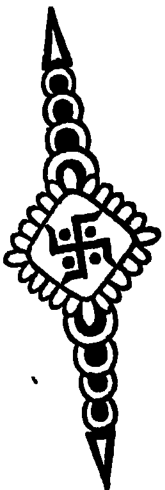
श्री स्थूलिभद्र स्वामी दशपूर्व सार्थ और चार पूर्व मूल मात्र पढे थे। भगवान् महावीर निर्वाण के दो सो पनरह वर्ष पश्चात् स्वर्गगामी हुये। स्थूलिभद्र महादृढ़ ब्रह्मचारी का नाम ८४ चौवीशी पर्यन्त चलेगा।

श्री स्थूलिभद्र के दो शिष्य थे—एलापत्य गोत्रीय आर्य महागिरि, वासिष्ठ गोत्रीय आर्य सुहस्तिसूरि ! आर्य महागिरि विच्छेद हो जाने पर भी जिनकल्पीवत् विचरते थे। जेन शासनादि कार्य आर्य सुहस्ति करते थे। वे ही पट्टधर बने।

श्री आर्य सुहस्तिसूरि

एकदा भारी दुष्काल होने पर लोक दुःखी हो गये। धनाढ्य भी रंक बन गये थे। सूरिजी भी उसी नगर में थे। जैन साधुओं को भिक्षा मिल जाती थी। एक भिक्षुक कई दिनों से भूखा था। मुनियों को किसी श्रावक के घर से भिक्षा लेकर जाते देखा, पास आकर भिक्षान्न मांगने लगा। मुनियों ने कहा—गुरु महाराज जानें। वह साथ-साथ उपाश्रय में आ गया। गुरु महाराज ने लाभ जान कहा—साधु बनो तो भोजन करा सकते हैं। ऐसे देना हमारा आचार नहीं। वह साधु बन गया। डटकर मिष्ठान्नादि भोजन किया; जिससे रात्रि में विशूचिका (हैजा) हो गयी। सभी साधु और बड़े-बड़े श्रावक सेवा करने लगे। उसने चारित्र की अनुमोदना की। मर कर वह सम्राट अशोक के अन्धीकृत पुत्र कुणाल की धर्मपत्नी की कूक्षी में उत्पन्न हुआ। कुणाल उज्जेन में रहते थे। वहीं जन्म शिक्षा दीक्षा हुयी। सम्प्रति नाम था। सम्राट अशोक के ये ही उत्तराधिकारी बने ! पाटलीपुत्र से राजधानी हटाकर उज्जैन में ले आये। वही से सारे उत्तर भारत पर शासन करने लगे। एक बार आर्यसुहस्तिसूरि का उज्जैन पदार्पण हुआ। रथयात्रा में साथ चलते हुये गुरु महाराज को सम्प्रति महाराज ने गवाक्ष में से देखा उन्हें जातिस्मरण हो गया। नीचे

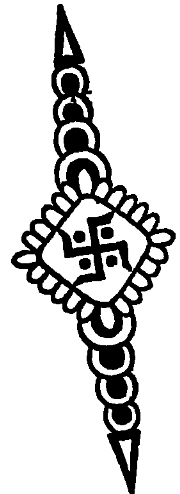
१ इतिहास की अनभिज्ञता से टीकाकारों ने इसे मात्र रथकार (सुथार) लिखा है।



उतर कर चरणों में नमस्कार कर पूछा—भगवन् ! पहचाना ? सूरीश्वर बोले—देशाधिपति को कौन नहीं पहचानता ? फिर अव्यक्त (द्रव्य) सर्व सामायिक का फल पूछा—उत्तर मिला राज्यादि की प्राप्ति। सूरीश्वर ने श्रुतोपयोग से जान लिया, उसी भिक्षुक का जीव है। प्रतिबोध देकर श्रावकव्रत दिये। सम्राट् सम्प्रति ने सवालक्ष नवीन जिनप्रासाद बनवाये; सवा क्रोड जिनबिम्ब पाषाण के, पच्याणवें हजार धातु के बनवा कर प्रतिष्ठा करवायी। तेरह हजार मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया, सात सौ दानशालाएँ बनवायी वहां दीन हीन भिक्षुक पथिक व अन्य जनों को निःशुल्क भोजन व आवास की व्यवस्था थी। अनार्य देशों में धर्मप्रचारार्थ पहले त्यागी वेशधारी गृहस्थों को भेजकर जैन शिक्षा दी। फिर मुनि भी उन देशों में धर्म प्रचारार्थ जाने लगे। अनार्य देश के राजाओं को जैन धर्म प्रेमी बनाया। जैसे सम्राट् अशोक ने बौद्धधर्म का प्रचार किया था, वैसे ही नृपति सम्प्रति ने उनसे भी बढ़कर जैन धर्म का प्रचार किया। देशों नगरो में व्यापारियों को गुप्त आदेश दिया कि साधु साध्वियो के योग्य वस्तुएँ भक्तिपूर्वक उन्हे दें। वस्तुओ का मूल्य राज कोश से ले लिया करें। ऐसा परमार्हत् सम्प्रति सम्राट् सूरीश्वर का शिष्य था।

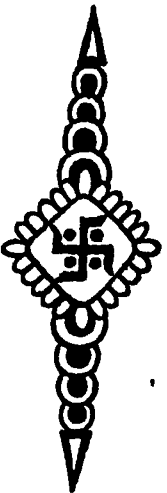
ऐसे आर्य सुहस्तिसूरि चारित्र का पालन कर स्वर्ग में पधारे। पूज्य आर्य सुहस्ति के दो शिष्य थे। (१) कोटिक (२) काकन्दक, इन्हीं के वास्तविक नाम आर्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्ध थे। आर्य सुस्थित सूरि ने सूरिमन्त्र का कोटि वार जाप किया था। सुप्रतिबुद्ध काकन्दी के थे; अतः उपर्युक्त नाम से विख्यात थे। किसी के मत में सुस्थित-संयम में भली प्रकार स्थित। सुप्रतिबुद्ध-अर्थात् तत्वों के अच्छे ज्ञाता। तत्व तु केवलिगम्यम्।

इनके शिष्य कौशिक गोत्रीय इन्द्रदिन्न सूरि थे। इन्द्रदिन्न के शिष्य गोतम गोत्रीय दिन्नसूरि हुये। दिन्नसूरि के शिष्य जातिस्मरण ज्ञान युक्त कौशिक गोत्रीय आर्य सिंहगिरि थे। आर्य सिंहगिरि के शिष्य आर्य वज्रस्वामी। वज्रस्वामी के शिष्य उत्कौशिक गोत्रज श्रीवज्रसेनसूरि थे।

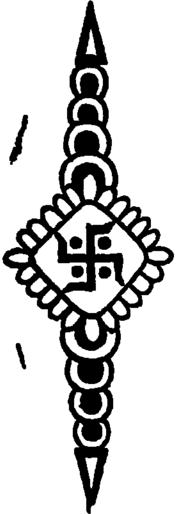


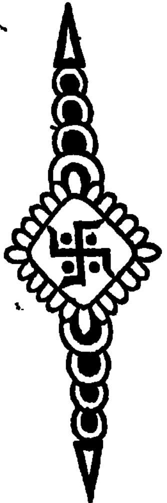
आर्य सिंहगिरि, श्री वज्रस्वामी और श्री वज्रसेनसूरि

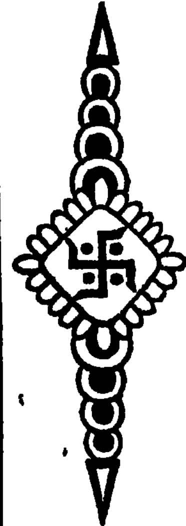
श्रीआर्य सिंहगिरि के पास सुनन्दा के भ्राता शमित और पति धनगिरि ने दीक्षा ली। धनगिरि ने अपनी गर्भवती पत्नी सुनन्दा को त्याग कर संयम लिया था। वह तुम्बवन ग्राम में रहती थी। बालक का जन्म हुआ, जन्म के पश्चात् पिता की दीक्षा ले लेने की बात सुनकर शिशु को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसकी भी संयम लेने की भावना हुयी, माता को तंग करने के लिये अधिकतर रोता रहता था। बेचारी माँ उद्विग्न रहने लगी। सोचती क्या करूँ? कहीं छोड दूँ, या किसी को दे दूँ! यह रोता ही रहता है; एकक्षण के लिए भी शांत नहीं होता! ऐसे छह महिने का बालक हो गया। भगवान् सिंहगिरि धनगिरि शमित आदि शिष्य परिवार युक्त तुम्बवन ग्राम पधारे। भिक्षार्थ जाते धनगिरि से कहा—आज भिक्षा में जो भी सचित्त अचित्त मिश्र वस्तु मिले ले आना! धनगिरि भिक्षार्थ भ्रमण करते सुनन्दा के घर पहुँचे। सुनन्दा ने कहा—आपके इस पुत्र ने मुझे तो परेशान कर दिया। अपने पुत्र को ले जाइये! यह तो रोता ही रहता है। मुनि बोले—अभी तो दे रही हो! फिर दुःख करोगी! सुनन्दा ने कहा—दुख नहीं करूँगी! ले जाइये! मुनि ने तत्रस्थित अनेक स्त्री पुरुषो को साक्षी बना बालक को ले लिया। लेते हो शिशु का रुदन बन्द हो गया। धनगिरि छह मास के बालक को झोली में डाल गुरुजी के पास ले आये। झोली को गुरुजी ने उठाया—भारी बोझा देखकर बोले क्या इसमें वज्र है, बालक का नाम वज्र रख दिया। शय्यातर धर्मश्रद्धावती श्राविकाओं को लालन पालनार्थ बाल को सौंप दिया। श्राविकाये साध्वियों के उपाश्रय के समीप रहती थीं। पालने में सुला दिया। साध्वियाँ स्वाध्याय करतीं। बालक ने स्वाध्याय सुनकर ही इग्यारह अंगों का ज्ञान कर लिया। क्रमशः बालक तीन वर्ष का हो गया। सुनन्दा ने बालक की याचना की। न देने पर राजा से दिला देने की प्रार्थना की। नृप द्वारा श्रीसंघ को बुलाया गया। राजा ने कहा—न्याय बालक की इच्छानुसार किया जायगा। दोनों पक्ष अपनी वस्तुएँ लावें, जिनकी वस्तुएँ बालक लेगा। उन्हे ही बालक



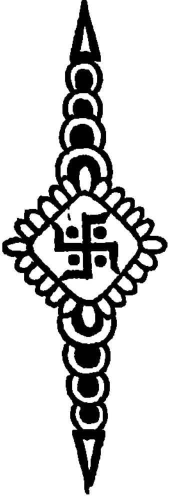
और माता सुन्दर वस्त्राभूषण मिष्ठान्न खिलौने आदि राज
दे देगे। संघ साधुवेश रजोहरणादि उपकरण और माता सुन्दर वस्त्राभूषण मिष्ठान्न खिलौने आदि राज सभा मे ले आये।' बालक भी वहीं था, वह रजोहरण लेकर प्रसन्नता से नृत्य करने लगा। माता की लायी वस्तुओं की ओर ऑख उठाकर भी नहीं देखा। प्रतिज्ञानुसार बालक श्रीसंघ को दे दिया गया। आठ वर्ष का होने पर बालक वज्र को दीक्षा दी गयी। माता ने भी दीक्षा ले ली। एकदा उज्जयिनी की ओर विहार करते हुये एक महाटवी में जा रहे थे। पूर्वभव के मित्र तिर्यग्जृम्भक देव ने वृष्टि बन्द हो जाने पर श्रावक रूप धर भिक्षा देना चाहा, किन्तु अनिमिष दृष्टि से देव जान भिक्षा नहीं ली। देव ने प्रसन्न हो वैक्रिय लब्धि दी। ऐसे ही एकदा ग्रीष्मकाल में देव ने घेवर बहराते परीक्षा की और आकाशगामिनी विद्या दी। एक दिन आर्यसिंहगिरि समस्त साधुओं युक्त स्थण्डिल भूमि पधारे थे। उपाश्रय में बालमुनि वज्र अकेले थे। उन्होंने सभी साधुओं के संथारिये पृथक्-पृथक् वेष्टित अपने सामने रख दिये। स्वयं मध्य मे बैठे एकादशांगो की एक-एक को वाचना देने लगे। गुरु महाराज ने द्वार पर खड़े रहकर यह अद्भुत कार्य देखा सुना। एक दिन कहीं ग्रामान्तर जा रहे थे 'वज्रमुनि की विशेषता सभी को ज्ञात हो जाय' इस विचार से कहा—आज आप सब बालमुनि वज्र से वाचना ले लें यही वाचानाचार्य हैं! ऐसा कहकर पधार गये। पीछे से बालमुनि ने वाचना दी। जो अनेक वाचनाओं में भी हृदयङ्गम नहीं होता था; उसे वज्रमुनि ने एक ही वाचना में समझा दिया। मुनियों ने विचार किया—गुरु महाराज विलम्ब से पधारे तो ठीक हो, हमारा श्रुतस्कन्ध पूर्ण हो जाय। गुरुजी ने वापिस लोटकर पूछा—महानुभावों! आपकी वाचना ठीक ढंग से हुयी? सब मुनि बोले—अब से हमारे वाचनाचार्य वज्रमुनि ही रहे तो उत्तम हो। गुरुवर ने वज्रमुनि को एकादशांग वाचना देकर वाचनाचार्य बना दिया। वज्रस्वामी ने गुर्वाज्ञा से दशपुर से उज्जयिनी जाकर श्री भद्रगुप्तसूरि से दशपूर्व पढे। गुरु ने आचार्य पद दिया। वहाँ से पाटलीपुत्र पधारे। अत्यन्त रूपवान् थे, सोचा—व्यर्थ ही 'किसी को क्षोभ न हो' अतः सामान्य रूप धारण कर देशना देते थे। साधुओ ने







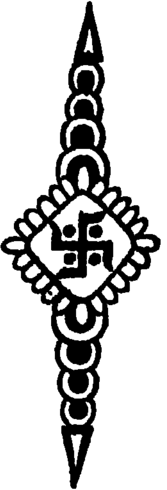
लोकों से सुना—गुरुदेव की देशना तो अमृतवर्षी है, पर रूप तो सामान्य ही है। श्री वज्रसूरि को भी साधुओं से ज्ञात हुआ। वे स्वर्ण कमल पर विराजमान हो स्वाभाविक सोन्दर्य्यपूर्ण दिव्य देह से देशना देने लगे। दिव्य रूप देख सभी विस्मित मुग्ध बन गये। वहाँ के धन सेठ की कन्या श्री वज्रस्वामी के गुणों पर तो मुग्ध थी ही, रूप ने तो जादू ही कर दिया। पिता से प्रार्थना की मेरा विवाह इन्हीं से कर दीजिये। वज्र स्वामी के पास धनसेठ पहुचा, एक क्रोड़ धन सह कन्या देने की अभिलाषा प्रकट की। परन्तु वज्र स्वामी जैसे दृढ़ त्यागी ने कन्या को प्रतिबोध देकर संयम धारण करवाया। आचारांग के महापरिज्ञाध्ययन से पादानुसारिणी लब्धि द्वारा मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त जाने योग्य आकाशगामिनी विद्या प्राप्त की। उत्तर भारत में किसी समय अकाल पड़ने पर सारे श्रीसंघ को गगनगामिनी विद्या द्वारा एक पट्ट पर बैठाकर और शय्यातर को जो जल लेने चला गया था, 'लोच कर स्वयं को साधर्मी हूँ' ऐसा कहने पर उसे भी पट्ट पर बैठाया और आकाश मार्ग से चलते स्थान-स्थान पर देवप्रासादों में चेत्यवन्दन करते महानसी नगरी पहुँचा दिया था। वहाँ सुभिक्ष था; किन्तु राजा बौद्ध था, पर्युषण पर्व के प्रसंग पर जिन पूजार्थ पुष्पों की आवश्यकता थी; परन्तु बौद्धों ने राजा को पुष्प न देने की प्रार्थना कर रखी थी। संघ ने श्री वज्रस्वामी से विज्ञप्ति की।। उत्तर मिला चिन्ता न करो ! और गगनगामिनी विद्या द्वारा माहेश्वरी नगरी के हुताशनदेव वन में अपने माता-पिता के मित्र तड़ित नामक वनपालक को पुष्प चयन का कहकर स्वय हिमवान् गिरि पर श्रीदेवी के समक्ष पहुँचे, श्रीदेवी ने वन्दना की, और देवपूजार्थ लाया गया लक्षदलकमल भेट किया। उसे ले लौटते हुये तड़ित वनपाल से भी बीस लाख पुष्प लेकर विमान में बैठे जा रहे थे। पूर्व संगतिक तिर्यग्जृम्भक देव भी यह देख आ गया और देव-देवियों ने गीतनृत्य पूर्वक श्री वज्रस्वामी का नगर प्रवेश आकाश मार्ग से करवाया। श्रावकों को पुष्प दिये। जिन प्रासादों में धामधूम से पूजा हुयी। राजा भी प्रभावित हो जैन बन गया। अन्यदा श्री वज्रस्वामी दक्षिण में विचरते

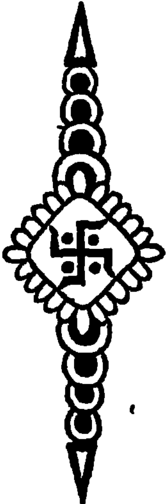


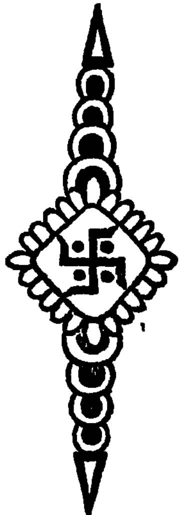
थे, जुकाम हो गया। उपचारार्थ गृहस्थ के घर से सूंठ का गांठिया मंगवाया था, उसे कान में रख लिया किन्तु लेना भूल गये। संध्या प्रतिक्रमण के समय मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन करते कान पर से नीचे गिर पड़ा। विचार किया मुझ सदृश दशपूर्वधर को विस्मृति कैसी? श्रुतोपयोग से ज्ञात हुआ, आयु अल्प रह गया है अब अनशन करेंगे। द्वादश वर्षीय दुर्भिक्ष होने का जान स्वशिष्य श्री वज्रसेनसूरि को सोपा-रक जाने की आज्ञा दी, और कहा—वहाँ कोई पूछे कि सुभिक्ष कब होगा? तो उत्तर देना कि जिस दिन एक लक्ष्य मूल्य के धान्य से एक पात्र में भोजन बनेगा; उसके दूसरे दिन से सुभिक्ष होगा। श्रीवज्रसेनसूरि सोपारक की ओर विहार कर गये।

पीछे से अपने पास रहे साधुओं को भिक्षा न मिलने पर विद्या प्रभाव से कुछ दिन भोजन कराया। अन्त में पच्चीस दृढ़ साधुओं को साथ ले, एक लघु बालशिष्य को धोखा देकर वहीं छोड़, (क्योंकि वह भी अनशन करना चाहता था।) पर्वत पर चढ़ गये बाल साधु ने देखा 'मुझ पर गुरु की अप्रीति न हो' वह पर्वत के नीचे ही तप्त शिला पर अनशन कर सो गया, कोमल शरीर वाला होने से वह तत्क्षण शुभध्यान पूर्वक शरीर त्याग स्वर्ग में उत्पन्न हुआ। देवों ने महोत्सवपूर्वक अग्नि संस्कार किया। जिससे अन्य मुनिजन भी विशेष प्रकार से धर्म में दृढ बने। किन्तु मिथ्यादृष्टि देवों ने मोदक आदि का निमन्त्रण दिया; जिससे अनुकूल उपसर्ग जान सभी अनशन करने वाले मुनियों सहित दूसरे आसन्न पर्वत पर पधार गये वहाँ वज्रस्वामी आदि सभी शुभध्यान से देहत्याग स्वर्गवासी हुये। देवेन्द्र ने रथ में बैठे गिरि की प्रदक्षिणा पूर्वक मुनि वन्दना की; जिससे पर्वत का नाम रथावर्त्त हुआ। वहाँ के वृक्ष भी साधुओं को वन्दना करने के लिए झुके थे, सो आज तक झुके हुये ही हैं। श्री वज्रस्वामी स्वर्गगामी होने पर दशवाँ पूर्व और चौथा अर्द्धनाराच संहनन भी विच्छेद हो गया।

श्री वज्रसेन सूरि सोपारक में थे। वहाँ श्री वज्रस्वामी प्रतिबोधित जिनदत्त सेठ के यहाँ एकदा भिक्षार्थ







पधारे। ईश्वरी सेठानी उस दिन कहीं से थोडा धान (चावल) ला चूल्हे पर एक पात्र में चढ़ाकर पका रही थी, उसका विचार था कि इसमें विष मिलाकर चारों पुत्रों सहित भक्षण कर अनशन कर लेना है। क्योंकि उससे क्षुधित बालको का रुदन सहन नहीं हो रहा था। श्रीवज्रसेनसूरि ने विष डालते देख पूछा—यह मरने का उपाय क्यों कर रही हो ? सेठानी ने कहा—धन तो बहुत है, पर धान्य नहीं मिलता। सूरीश्वर बोले--श्रीगुरुदेव ने कहा है, जिस दिन लक्ष्य मूल्य का धान्य चूल्हे पर चढ़ेगा, उसके दूसरे दिन सुभिक्ष होगा। सेठानी एक लाख रुपये देकर ही वह धान्य लायी थी। उसे भी गुरु वचन पर आस्था थी। बोली—ऐसा हुआ तो चारों पुत्रो को दीक्षा दिला दूँगी। वे आपके शिष्य बनेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा की। दूसरे दिन धान्य से भरे जहाज तट पर आ लगे, कई दिनों से तूफान से तट पर नहीं आ सके थे। सुभिक्ष हो गया। सेठ सेठानी ने चारो पुत्रों को दीक्षा दिलवायी; चारों के नाम क्रमशः नागेन्द्र, चन्द्र, निवृ ँत्ति और विद्याधर थे। फिर सेठ सेठानी ने भो सयम धारण कर लिया। चारों ही मुनि बहुश्रुत आचार्य हुये। उनसे चार कुल हुये; जो आज भी विद्यमान है।[1]

---

१ इस आलापक में यह रहस्य है। विस्तार वाचना में वाचना भेद से वहुत भेद हो गये है। जिनका कारण लेखको की भूल भी हो सकता है। उसमे स्थविरो की शाखाएँ व कुल प्रायः अव समझे नहीं जा सकते, या तो नामान्तर हो गया है, अथवा लुप्त हो गये, अतः निर्णय नहीं किया जा सकता। पाठों में, शाखाओ आदि मे कहीं कोडुम्बाणि कहीं कुण्डधारी कहीं, पुण्णपत्तिया तो कहीं वण्णपत्तिया दिखलायी पडते है। इसी प्रकार कुलो में भी कहीं उल्लगच्छन्त तो कहीं अहउल्लगन्थन लिखा है। अतः वहुश्रुत कहें सो प्रमाण है।

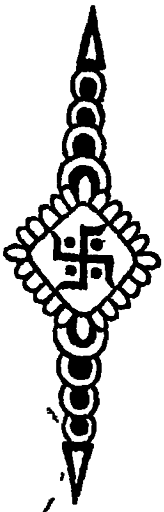
एक आचार्य की सन्तति कुल, एक वाचना और आचार वाला श्रमणसंघ गण, और शाखाएँ तो विशिष्ट पुरुपो की पृथक्-पृथक् शिष्य परम्परा से वनती है। जैसे हमारी वज्रस्वामी के नाम पर वज्रशाखा है। 'अहावच्चा' शब्द का अर्थ है यथार्थ अपत्य—सन्तान, जिनके कारण पूर्वज दुर्गति या अयशः कीचड़ में न पडे। सदाचारी सुशिष्य या पुत्र गुरुओ व पूर्वजो को गिराते नहीं, उनका नाम उज्ज्वल करते है। अभिज्ञात—विशेप विख्यात को कहते है।

इस प्रकार श्री आर्य महागिरि, श्री सुहस्तिसूरि, श्री गुणसुन्दरसूरि, श्री श्यामाचार्य, श्री स्कन्दिलाचार्य रेवतीमित्र, श्री धर्म, श्री भद्रगुप्त, श्रीगुप्त और श्री वज्रस्वामी ये सभी दशपूर्वधर व युगप्रधान थे।

विस्तार वाचना वाली स्थविरावली

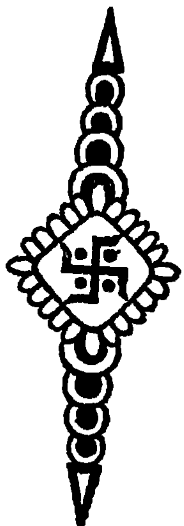
सूत्र :—वित्थरवायणाए पुण अज्ज जसभद्दाओ पुरओ थेरावली एवं पलोइज्जइ, तंजहा—थेरस्स णं अज्ज जसभद्दस्स तुंगियायणस गुत्तस्स इमे दो थेरा अन्तेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—थेरे अज्ज भद्दबाहू पाईणसगुत्ते, १ थेरे अज्ज संभूअविजए, माढरसगुत्ते, २ थेरस्स णं अज्ज भद्दबाहुस्स पाईणस गुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तंजहा—१ थेरे गोदासे, २ थेरे अग्गिदत्ते ३ थेरे जण्णदत्ते ४ थेरे सोमदत्ते, कासवगुत्ते णं थेरेहिंतो गोदासेहिंतो कासव गुत्तेहिंतो गोदासगणे नाम गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एवं आहिज्जंति, तंजहा—१ तामलित्तिया २ कोडीवरिसिया ३ पोंडवद्धणिया ४ दासो खब्बडिया।

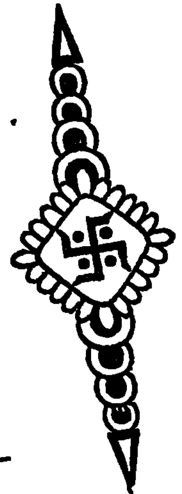
अर्थ :—विस्तार वाचना से यशोभद्रसूरि से आगे स्थविरावली इस प्रकार देखी जाती है :—आर्य यशोभद्रसूरि के दो शिष्य थे—आर्य भद्रबाहु और सम्भूतिविजय; आर्य भद्रबाहु प्राचीन गोत्रीय के चार मुख्य शिष्य थे :—आर्य गोदास स्थविर अग्निदत्त, स्थविर यज्ञदत्त, और स्थविर सोमदत्त। चारो से पृथक् पृथक् चार गण हुये—गोदासगण में से चार शाखाएँ बनीं—ताम्रलिप्तिका, कोटिवर्षिका, पौण्ड्रवर्द्धनिका, और दासी खर्बटिका।



सूत्र :—थेरस्स णं अज्ज संभूयविजयस्स माढरसगुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासो अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—नंदणभद्दे, उवनंदणभद्दे थेरे तह तीसभद्दे जसभद्दे। थेरे य सुमणभद्दे, मणिभद्दे पुण्णभद्दे य ॥१॥ थेरे य थूलभद्दे, उज्जुमई जंबुनामधिज्जे य। थेरे य दोहभद्दे, थेरे तह पंडुभद्दे ॥२॥ थेरस्स णं अज्ज संभूयविजयस्स माढरस्स गुत्तस्स इमाओ सत्त अंतेवासिणोओ अहावच्चाओ अभिण्णायाओ हुत्था तंजहा—जक्खा य जक्खदिन्ना, भूया तह चेव भूयदिन्नाय। सेणा वेणा रेणा भइणोओ थूलभद्दस्स ॥१॥ थेरस्स णं अज्ज थूलभद्दस्स गोयमस्स गुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासो अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तं जहा—थेरे अज्ज महागिरि एलावच्चसगुत्ते, थेरे अज्ज सुहत्थो वासिट्ठस्स गुत्ते, थेरस्स णं अज्ज महागिरिस्स एलावच्चसगुत्तस्स इमे अट्ठ थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—थेरे उत्तरे, थेरे बलिस्सहे, थेरे धणड्ढे, थेरे सिरिड्ढे, थेरे कोडिण्णे, थेरे नागे, थेरे नागमित्ते, थेरे छुलूए रोहगुत्ते, कोसिय गुत्ते णं ८।

अर्थ :—आर्य सम्मूतिविजय के द्वादश स्थविर सुशिष्य सुप्रसिद्ध थे। तद्यथा—स्थविर (१) नन्दनभद्र (२) उपनन्दनभद्र (३) तिष्यभद्र (४) यशोभद्र (५) सुमनभद्र (६) मणिभद्र (७) पूर्णभद्र (८) स्थूलिभद्र (९) ऋजुमति (१०) जम्बू (११) दीर्घभद्र (१२) पाण्डुभद्र। श्री सम्मूतिविजय की अन्तेवासिनी सात सुशिष्याएँ सुविख्यात थीं। उनके नाम—(१) यक्षा (२) यक्षदिन्ना (३) भूता (४) भूतदिन्ना (५) सेणा (६) वेणा और (७) रेणा, थे। आर्य स्थूलभद्र के दो अन्तेवासी सुशिष्य सुप्रसिद्ध थे—आर्य महागिरि, आर्य सुहस्ति। आर्य





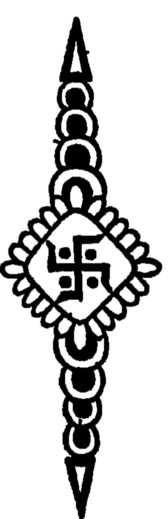
महागिरि के आठ अन्तेवासी स्थविर सुशिष्य सुविख्यात थे—(१) स्थविर उत्तर (२) बलिसह (३) धनाढ्य (४) श्रियाढ्य (५) कौण्डिन्य (६) नाग और (७) नागमित्र (८) षड़लूक रोहगुप्त। ये सब २६ स्थविर हुये।

सूत्रः—थेरेहिंतो णं छुलूएहिंतो रोहगुत्तेहिंतो कोसियगुत्तेहिंतो तत्थ णं 'तेरासिया' साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं उत्तर बलिस्सहहिंतो तत्थ णं 'उत्तरबलिस्सहे' नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ एव माहिज्जंति, तंजहा—१ कोसंबिया २ सोइत्तिया ३ कोडंबिणी ४ चंदनागरो। थेरस्स णं अज्ज सुहत्थिस्स वासिट्ठस्स गुत्तस्स इमे दुवालस थेरा अंतेवासो अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था तंजहा—थेरे अ अज्जरोहणे, भद्दजसे मेहगणी य कामिड्ढो। सुट्ठिय सुप्पडिबुद्धे, रक्खिय तह रोहगुत्ते[2] य ॥१॥ इसिगुत्ते सिरिगुत्ते, गणो अ बंभे गणोय तह सोमे। दस दो अ गणहरा खलु, ए ए सोसा सुहत्थिस्स ॥२॥

अर्थ :—कौशिक गोत्रीय षडूलूक स्थविर रोहगुप्त से त्रैराशिक[1] मत निकला था। स्थविर उत्तर-

---

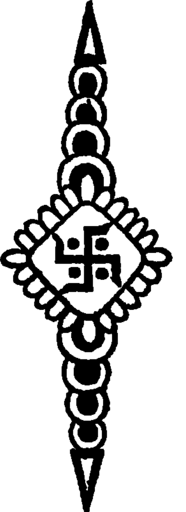
१ अन्तरञ्जिका नगरी मे श्रीगुप्त आचार्य के साथ स्थविर रोहगुप्त भी थे। वहा एक पोट्टशाल नामक वादी आया था। वह 'विद्याओ से मेरा पेट न फूट जाय' इस कारण उदर पर पट्टा बाधे रहता था। उसने वाद करने का पटह बजवाया। रोहगुप्त ने पटह स्पर्श कर कहा—मै वाद करूंगा ? वहा नृपति वलश्री की राजसभा में दोनों का वाद हुआ। रोहगुप्त सभी वादो मे प्रायः पराजित हुये। वादी ने दो—जीव राशि, अजीवराशि सिद्ध की। जैन भी दो ही राशि मानते है, वाद का प्रश्न ही नहीं था। रोहगुप्त ने जीतने के लिए शास्त्र विरुद्ध तीन राशि—जीवराशि, अजीवराशि और मिश्रराशि कह दी और मिश्रराशि प्रमाणित करने को एक डोरी वट कर आगन मे डाली। डोरी के बट खुलने लगे, सजीव सी दिखने लगीं। सभास्थित पण्डितो ने भी उसे मिश्रराशि स्वीकार की। जय प्राप्ति रोहगुप्त को हुई। गुरु के पास आये। गुरु ने मिश्र सिद्ध करने को गलत कहा मिथ्यादुष्कृत देने का आदेश दिया। रोहगुप्त ने नहीं दिया। उसे गच्छ से निकाल दिया गया। २ ये रोहगुप्त सुहस्ति के शिष्य थे।



बलिस्सह से 'उत्तरबलिस्सह' गण कहलाया। ऐसे दो—गोदास और उत्तरबलिस्सह गण बन गये। उत्तर बलिस्सह गण को चार शाखाएँ हो गयीं—(१) कौशाम्बिका (२) सूक्तमुक्तिका (३) कौटुम्बिका और (४) (४) चन्द्रनागरी। आर्य सुहस्ति स्थविर के बारह सुशिष्य प्रसिद्ध थे। उनके नाम—१ रोहण २ भद्रयश ३ मेघ ४ कामर्द्धि ५ सुस्थित ६ सुप्रतिबुद्ध ७ रक्षित ८ रोहगुप्त ९ ऋषिगुप्त १० श्रीगुप्त ११ ब्रह्म और १२ सौम्य। ऐसे ४१ स्थविर हुये।

सूत्रः—थेरेहिंतो णं अज्ज रोहणेहिंतो णं कासव गुत्तेहिंतो णं तत्थ णं उद्देह गणे नामं गणे निग्गए, तस्स इमाओ चत्तारि साहाओ निग्गयाओ, छच्च कुलाइं एव माहिज्जंति। से किं तं साहाओ? साहाओ एव माहिज्जंति, तंजहा—१ उदुंबरिज्जिया २ मासपूरिया ३ मइपत्तिया ४ पुण्णपत्तिया,* से तं साहाओ। से किं तं कुलाइं? कुलाइं एव माहिज्जति, तंजहा—पढमंच नागभूयं, बिइयं पुण सोमभूइयं होइ। अह उल्लगच्छ तइयं चउत्थयं हत्थलिज्जंतु ॥१॥ पंचमगं नंदिज्जं, छट्ठं पुण पारिहासयं होइ। उद्देहगणस्स ए ए छच्च कुला हुंति नायव्वा ॥२॥ थेरेहिंतो णं सिरिगुत्तेहिंतो हारियस गुत्तेहितो इत्थ णं चारण गणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, सत्त य कुलाइं एव माहिज्जंति से किं तं साहाओ? साहाओ एव माहिज्जंति, तंजहा—१ हारियमालागारो २ संकासीआ ३ गवेधुया ४ वज्जनागरी से तं साहाओ। से कि तं कुलाइं? कुलाइ एवमाहिज्जंति, तंजहा—पढमित्थं वत्थलिज्जं, वोयं पुण पोइधम्मिअं होइ।

* सुवण्णपत्तिया (पाठान्तर)



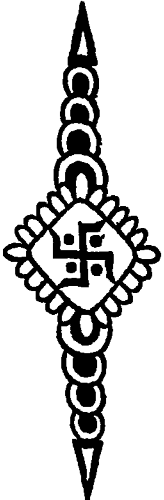
तइयं पुण हालिज्जं चउत्थयं पूसमित्तिज्जं ॥१॥ पचमगं मालिज्जं छट्ठंपुण अज्जचेडयं होइ ।
सत्तमयं कण्हसहं सत्तकुला चारणगणस्स ॥२॥

अर्थ :—स्थविर आर्य रोहण काश्यप गोत्रीय से 'उद्देह' नामक गण हुआ; उसकी चार शाखाएँ और छह कुल हुये। वे यों हैं :—(१) औदुम्बरिका (२) मासपूरिका (३) मतिपत्रिका (४) पूर्णपत्रिका। छह कुल —(१) नागभूत (२) सोमभूतिक (३) आर्द्रगच्छ (४) हस्तलीय (५) नन्दीय (६) पारिहासिक। ये उद्देह गण के थे।

हारितगोत्रीय स्थविर श्रीगुप्त से चारण गण हुआ। उस की चार शाखायें और सात कुल थे। चार शाखाये—(१) हारितमालाकारी (२) सकाशिका (३) गवेधुका और (४) वज्रनागरी। सात कुल—(१) वस्त्रलाय (२) प्रीतिधार्मिक (३) हालीय (४) पुष्पमित्रीय (५) मालीय (६) आर्यचेटक और (७) कृष्णसह थे। ये चारण गण के थे।

सूत्र :—थेरेहिंतो णं भद्दजसेहिंतो भारद्दायसगुत्तेहिंतो इत्थ णं उडुवाडियगणे नामं गणे निग्गए. तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ तिन्नि कुलाइं एवमाहिज्जंति। से कि तं साहाओ? साहाओ एव माहिज्जंति, तंजहा—चपिज्जिया भद्दिज्जिया काकंदिया मेहलिज्जिया से तं साहाओ से किं तं कुलाइं? कुलाइं एव माहिज्जंति, तंजहा—भद्दजसियं तह भद्दगुत्तियं तइयं च होइ जसभद्दं। एयाइं उडुवाडिय गणस्स तिण्णेव य कुलाइं ॥१॥ थेरेहिंतो णं कामिड्ढिहिंतो कोडालस[1] गुत्तेहिंतो इत्थ णं वेसवाडियगणे नामं गणे निग्गए। तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, चत्तारि

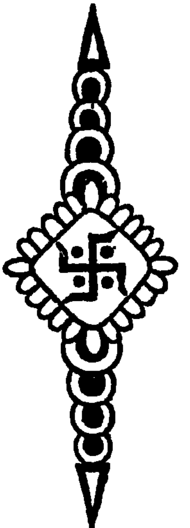
[1] कुडलिस (पाठान्तर)

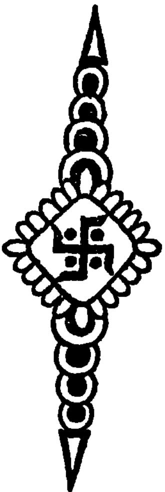


कुलाइं एवमाहिज्जंति, से किं तं साहाओ ? सा तंजहा—१ सावेत्थिया २ रज्जपालिआ ३ अंतरिज्जिया ४ खेमलिज्जिया, से तं साहाओ । से कि तं कुलाइं ? कुलाइं एव माहिज्जंति, तंजहा—गणियं १ मेहियं २ कामिड्ढिय च तह होइ इंदपुरगं च। एयाइं वेसवाडिय गणस्स चत्तारि उ कुलाइं ॥२॥

अर्थ :—भारद्वाज गोत्रीय स्थविर भद्रयश से उडुवाटिक नामक गण प्रसिद्ध हुआ। उसकी चार शाखाएँ और तीन कुल थे, शाखाएँ—१ चम्पिका, २ भद्रिका, ३ काकंदिका और ४ मेखलिका, चार हैं। तीन कुल—१ भद्रयशस्क २ भद्रगुप्तिक और ३ यशोभद्रिक, हुये हैं। कोडालस गोत्रीय स्थविर कामर्द्धि से वेशवाटिक गण कहलाया, उसकी चार शाखाएँ—१ श्रावस्तिका, २ राज्यपालिका ३ अन्तरिंजिका और ४ क्षेमलिज्जिका हुयीं। वैसे ही चार कुल—१ गणिक, २ मेघिक, ३, कामर्द्धिक और ४ इन्द्रपुरक, थे। इस प्रकार १६ कुल हुये।

सूत्र :—थेरे हिंतो णं इसिगुत्तेहिंतो काकंदएहिंतो वासिट्ठस गुत्तेहिंतो इत्थ णं माणव गणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ, तिण्णि य कुलाइं एव माहिज्जंति से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा—१ कासवज्जिया २ गोयमज्जिया ३ वासिट्ठिया ४ सोरट्ठिया, से तं साहाओ। से किं तं कुलाइं ? कुलाइं एवमाहिज्जंति, तंजहा—इसिगुत्तं इत्थ पढमं, बीयं इसिदत्तिअं मुणेयव्वं। तइयं च अभिजयंत, तिण्णि कुला माणव-गणस्स ॥१॥ थेरेहिंतो सुट्ठिय सुप्पडिबुद्धेहिंतो कोडिय काकंदेहिंतो वग्घावच्च स गुत्तेहिंतो इत्थ





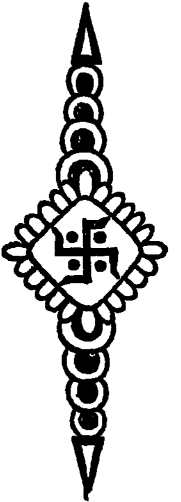
णं कोडिय गणे नामं गणे निग्गए, तस्स णं इमाओ चत्तारि साहाओ चत्तारि कुलाइं एव माहिज्जंति, से किं तं साहाओ ? साहाओ एवमाहिज्जंति, तंजहा----१ उच्चानागरी २ विज्जाहरी ३ वइरीयं मज्झिमिल्ला य। कोडिय गणस्स एया, हवंति चत्तारि साहाओ ॥१॥ से तं साहाओ से किं तं कुलाइं ? कुलाइ एवमाहिज्जंति, तंजहा----पढमत्थं बंभलिज्जं, बिइयं नामेण वत्थलिज्जं तु। तइयं पुण वाणिज्जं, चउत्थयं पण्हवाहणयं ॥१॥ थेराणं सुट्ठिय सुप्पडिबुद्धाणं कोडिय काकंदयाणं वग्घावच्चसगुत्ताणं इमे पंच थेरा अंतेवासो अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा---थेरे अज्जदिन्ने, थेरे पियगंथे, थेरे विज्जाहर गोवाले, कासवगुत्तेणं थेरे इसिदत्ते, थेरे अरिहदत्ते।

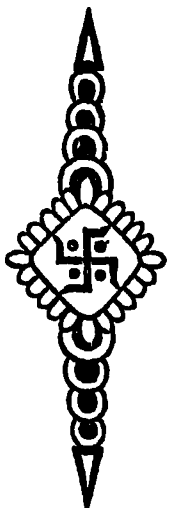
अर्थ :—वासिष्ठ गोत्रीय काकन्दक स्थविर ऋषिगुप्त से मानव गण हुआ, उसकी चार शाखाएँ, तीन कुल हुये। शाखाएँ—१काश्यपीयका २ गौतमीया ३ वाशिष्टिका और ४ सौराष्ट्रिका हुयीं। तीन कुल—१ ऋषिगुप्तीय २ ऋषिदत्तिक और ३ अभिजयत थे। स्थविर सुस्थित सुप्रतिबुद्ध व्याध्रापत्य गोत्रोय जो कोटिक व काकन्दक नाम से प्रसिद्ध थे, उनसे कौटिक गण कहलाया। उसकी चार शाखाएँ और चार कुल हुये, शाखाएँ—१ उच्चैर्नागरि, २ विद्याधरी, ३ वज्री और ४ माध्यमिका ये चार थी। कुल—१ ब्रह्मलीय, २ वस्त्रलीय, ३ वाणिज्य और ४ प्रश्नवाहन, ऐसे चार थे।

स्थविर सुस्थित सुप्रतिबुद्ध कोटिक काकन्दक व्याघ्रापत्य गोत्रीय के पांच स्थविर सुशिष्य सुपुत्रवत् सुप्रसिद्ध हुये, उनके नाम—स्थविर आर्य इन्द्रदत्त स्थविर प्रियग्रन्थ, काश्यपगोत्रीय विद्याधर गोपाल, स्थविर ऋषिदत्त, और स्थविर अर्हद्दत्त।

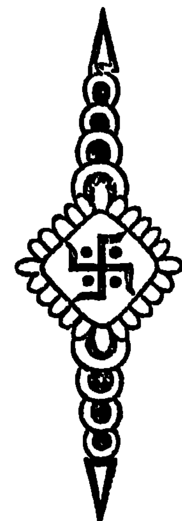
मूल :----थेरेहिंतो णं पियगंथेहिंतो एत्थ णं मज्झिमा साहा निग्गया।

स्थविर प्रियग्रन्थ से मध्यमा शाखा निकली।





श्री प्रियग्रंथसूरि



अजमेर के पास हर्षपुर नामक एक विशाल नगर था। उसमें तीन सौ जैन मन्दिर चार सौ लौकिक देवालय थे। अठारह सौ ब्राह्मणों के और छत्तीस सौ वणिकों के घर थे। नव सौ उपवन थे। वहा सुभट-पाल नामक नृप राज्य करते थे। एकदा श्री प्रियग्रथसूरि वहा पधारे। उस समय वहा यज्ञ हो रहा था। एक बकरा यज्ञस्तम्भ से बाधकर यज्ञ में हवनार्थ रख छोडा था। आचार्यश्री को यह देख करणा आ गयी। उन्होंने एक श्रावक को मन्त्रित वासक्षेप देकर बकरे पर डलवा दी। बकरा अम्बिकाधिष्ठित होने से आकाश में चढके बोला—हे ब्राह्मणो! तुमने मुझे आहुति के लिये यज्ञस्तम्भ से बाधा था, मै स्वतन्त्र हो गया हूँ और चाहूँ तो क्षणमात्र मे तुम सबको मार सकता हूँ! किन्तु तुम सब पर मुझे दया आती है। ब्राह्मण यह देख सुनकर भयभीत हो गये और विनयपूर्वक परिचय पूछा। बकरे ने कहा—मै अग्निदेव हूँ, तुम मेरे इस वाहन—अज की व्यर्थ ही आहुति दे रहे थे, इस प्रकार पशु हत्या मे धर्म नहीं, धर्म का सत्य स्वरूप प्रियग्रंथसूरि से पूछो! सर्व लोक सूरिजी के पास गये, उनसे तत्त्वस्वरूप समझकर कितने ही लोगो ने चारित्र धारण किया। कितने ही जैन गृहस्थ बने। उनसे मध्यमा शाखा प्रसिद्ध हुयी।

सूत्र :—थेरेहिंतो णं विज्जा गोवालेहिंतो कासवगुत्तेहिंतो एत्थ णं विज्जाहरी साहा निग्गया। थेरस्स णं अज्ज इंददिन्नस्स कावसगुत्तस्स अज्जदिन्ने थेरे अंतेवासो गोयमसगुत्ते, थेरस्स णं अज्जदिन्नस्स गोयमस्सगुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासो अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—थेरे अज्ज संतिसेणिए माढरसगुत्ते, १ थेरे अज्ज सीहगिरी जाइस्सरे कोसियगुत्ते २।

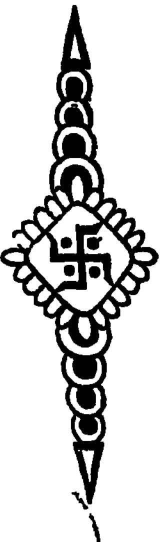
अर्थ :—काश्यप गोत्रीय स्थविर विद्याधर गोपाल से विद्याधरी शाखा हुयी। स्थविर इन्द्रदिन्न के शिष्य गोतम गोत्रीय स्थविर आर्य दिन्नसूरि थे, दिन्नसूरि के दो शिष्य अन्तेवासी स्थविर माढर गोत्रीय

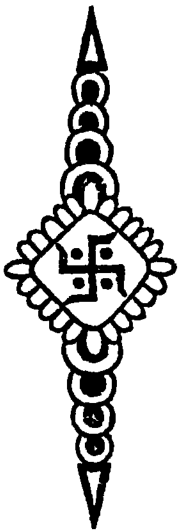
॥

आर्य स्थविर श्री शान्ति श्रेणिक और कौशिक गोत्रीय जातिस्मरण ज्ञानवान् स्थविर आर्य सिंहगिरि
थे। ऐसे ४७ स्थविर, दिन्नसुरि के दो मिलाने से ४६ स्थविर हुये।

सूत्र :—थेरेहिंतो णं अज्ज संतिसेणिएहिंतो माढरसगुत्तेहिंतो उच्चानागरी साहा
निग्गया। थेरस्स णं अज्ज संतिसेणियस्स माढरसगुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासी अहावच्चा
अभिण्णाया हुत्था, तंजहा (ग्रं० १०००) थेरे अज्ज सेणिए, १ थेरे अज्ज तावसे २ थेरे अज्ज कुबेरे,
३ थेरे अज्ज इसिपालिए ४। थेरेहिंतो णं अज्ज सेणिएहिंतो एत्थ णं अज्जसेणिया साहा
निग्गया। थेरे हिंतो णं अज्ज तावसेहिंतो एत्थ णं अज्जतावसी साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं
अज्ज कुबेरेहिंतो एत्थ णं अज्ज कुबेरी साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्ज इसिपालिए हिंतो
एत्थ णं अज्ज इसिपालिया साहा निग्गया। थेरस्स णं अज्ज सीहगिरिस्स जाइसरस्स कोसिय-
गुत्तस्स इमे चत्तारि थेरा अंतेवासो अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था; तंजहा—थेरे धणगिरी १, थेरे
अज्जवइरे २, थेरे अज्जसमिए ३, थेरे अरिहदिन्ने ४,।

अर्थ :—माढरस गोत्रीय आर्य स्थविर शान्ति श्रेणिक से उच्चैर्नागरी शाखा निकली। आर्य शांति
श्रेणिक स्थविर के चार सुशिष्य सुविज्ञात हुये—१ स्थविर आर्य श्रेणिक, २ स्थविर आर्य तापस, ३ स्थविर
आर्य कुबेर और ४ स्थविर आर्य ऋषिपालित, आर्य श्रेणिक से आर्य श्रेणिका, १ आर्य तापस से तापसी, २
आर्य कुबेर से आर्य कुबेरी ३ और आर्य ऋषिपालित से आर्य ऋषिपालिता शाखा निकली। कौशिक
गोत्रीय जातिस्मरण ज्ञानवान् आर्य सिंहगिरि के ये चार अन्तेवासी सुशिष्य और अभिज्ञात थे—स्थविर
आर्य धनगिरि, १ स्थविर आर्य वज्र २ स्थविर आर्य समित ३ और स्थविर अर्हद्दत ४।





सूत्र :—थेरेहिंतो णं अज्ज समिएहिंतो इत्थ णं बंभदोविया साहा निग्गया ।

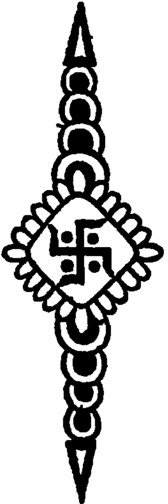
अर्थ :—स्थविर आर्य समितसूरि से ब्रह्मद्वीपिका शाखा निकली ।

ब्रह्मद्वीपिका शाखोत्पत्ति

आभीर देश में अचलपुर से समीप कन्या और वेना नदी के बीच ब्रह्मद्वीप था। वहा आश्रम मे ५०० तापस रहते थे। उनमें से एक तापस पादतल में ओषधि विशेष का लेप कर खडाऊँ पहन, नदी जल पर पृथ्वी के समान चलकर लोकों को विस्मित करता इस पार भिक्षार्थ आता था। श्री समितसूरि वहां पधारे हुये थे, श्रावकों ने उपर्युक्त बात कही। सूरिजी ने लेप का प्रभाव कहा और श्रावको ने तापस को भोजन का निमन्त्रण देकर उसके पांव प्रक्षालन कर भोजन कराया। नदी तट तक सभी पहुँचाने गये। इस कारण वह पुनः लेप नहीं कर सका, वैसे ही जाने में आनाकानी करने लगा, पर प्रतिष्ठा का प्रश्न था, सो जैसे ही पानी मे पांव दिया डूबने लगा और तट पर लौट आया। लोग हँसने लगे। इसी समय आचार्य समित-सूरि शिष्यों सहित वहा पधारे और नदी को सम्बोधित किया—'हे कन्या नदि ! हम पार जाना चाहते है' कह, वासक्षेप किया, नदी के दोनों तट एक हो गये। सूरीश्वर सर्वजनो के साथ ब्रह्मद्वीप मे पधारे। इस चमत्कार और उपदेश से ५०० तापसो ने दीक्षा ली। तब से ब्रह्मद्वीपिका शाखा कहलाने लगी।

सूत्र :—थेरेहिंतो णं अज्जवइरेहिंतो गोयमसगुत्तेहिंतो इत्थ णं अज्जवइरी साहा निग्गया। थेरस्स णं अज्जवइरस्स गोयमगुत्तस्स इमे तिण्णि थेरा अंतेवासी अहावच्चा अभिण्णाया हुत्था, तंजहा—थेरे अज्जवइरसेणे, १, थेरे अज्जपउमे २, थेरे अज्जरहे ३,। थेरेहिंतो णं अज्जवइर-सेणेहिंतो इत्थ णं अज्जनाइली साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्ज पउमे हिंतो इत्थ णं अज्जपउमा

साहा निग्गया। थेरेहिंतो णं अज्जरहेहिंतो इत्थ णं अज्जजयंतो साहा निग्गया ॥१॥ थेरस्स णं अज्जरहस्स वच्छसगुत्तस्स अज्जपूसगिरी थेरे अंतेवासो कोसिय गुत्ते ॥२॥ थेरस्स णं अज्ज पूसगिरिस्स कोसिय गुत्तस्स अज्जफग्गुमित्ते थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥३॥ थेरस्स णं अज्ज फग्गुमित्तस्स गोयमस्स गुत्तस्स अज्ज धणगिरि थेरे अंतेवासी वासिट्ठसगुत्ते ॥४॥ थेरस्स णं अज्ज धणगिरिस्स वासिट्ठस्स गुत्तस्स सिवभूई थेरे अंतेवासी कुच्छस्सगुत्ते ॥५॥ थेरस्स णं अज्ज सिवभूइस्स कुच्छसगुत्तस्स अज्ज भद्दे थेरे अंतेवासो कासवगुत्ते ॥६॥ थेरस्स णं अज्ज भद्दस्स कासवगुत्तस्स अज्ज नक्खत्ते थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥७॥ थेरस्स णं अज्ज नक्खत्तस्स कासव-गुत्तस्स अज्जरक्खे थेरे अंतेवासो कासवगुत्ते ॥८॥ थेरस्स णं अज्ज रक्खस्स कासवगुत्तस्स अज्ज नागे थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥९॥ थेरस्स णं अज्जनागस्स गोयमसगुत्तस्स अज्जजेहिले थेरे अंते-वासो वासिट्ठस्सगुत्ते ॥१०॥ थेरस्स णं अज्जजेहिलस्स वासिट्ठसगुत्तस्स अज्जविण्हू थेरे अंतेवासो माढरस्सगुत्ते ॥११॥ थेरस्स णं अज्जविण्हुस्स माढरसगुत्तस्स अज्ज कालए थेरे अंतेवासी गोयम सगुत्ते ॥१२॥ थेरस्स णं अज्ज कालयस्स गोयमस्स गुत्तस्स इमे दो थेरा अंतेवासी गोयमस-गुत्ता—थेरे अज्ज संपलिए १ थेरे अज्ज भद्दे २ ॥१३॥ ए एसिणं दुण्ह वि थेरा णं गोयमसगुत्ताणं अज्ज वुड्ढे थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥१४॥ थेरस्स णं अज्ज वुड्ढस्स गोयमसगुत्तस्स अज्ज संघपालिए थेरे अंतेवासी गोयमसगुत्ते ॥१५॥ थेरस्स णं अज्ज संघपालियस्स गोयमस्स



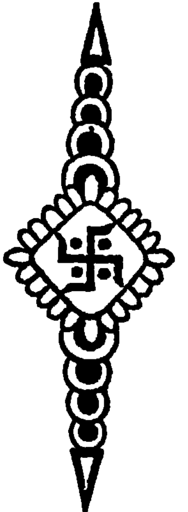
गुत्तस्स अज्ज हत्थी थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥१६॥ थेरस्स णं अज्जहत्थिस्स कासवगुत्तस्स अज्ज धम्मे थेरे अंतेवासी सावय गुत्ते ॥१७॥ थेरस्स णं अज्ज धम्मस्स सावयगुत्तस्स अज्जसिंहे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥१८॥ थेरस्स णं अज्जसिंहस्स कासवगुत्तस्स अज्ज धम्मे थेरे अंतेवासी कासवगुत्ते ॥१६॥ थेरस्स णं अज्ज धम्मस्स कासवगुत्तस्स अज्ज संडिल्ले थेरे अंतेवासी ।२०।

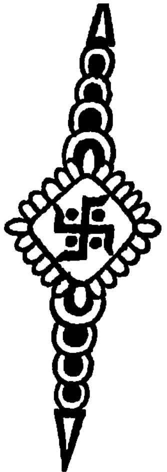
अर्थ :—स्थविर आर्य वज्रस्वामी से वज्रशाखा निकली। आर्य वज्रस्वामी के तीन शिष्य यथापत्य अभिज्ञात थे—स्थविर आर्य वज्रसेन (१) स्थविर आर्य पद्म (२) स्थविर आर्यरथ (३)। आर्य वज्रसेन से आर्य नागिला शाखा हुयी। आर्य पद्म से आर्य पद्मा, ओर आर्य रथ से आर्य जयन्ती शाखा का उद्भव हुआ। आर्य रथ के शिष्य आर्य पुष्यगिरि, कौशिक गोत्रीय आर्य पुष्यगिरि के शिष्य आर्य फल्गुमित्र हुये। फल्गुमित्र के शिष्य आर्य धनगिरि थे। आर्य धनगिरि के शिष्य आर्य शिवभूति और आर्य शिवभूति के शिष्य आर्य भद्र थे। आर्य भद्र के शिष्य आर्य नक्षत्र, आर्य नक्षत्र के शिष्य आर्य रक्ष हुये। आर्य रक्ष के शिष्य आर्य नाग, आर्य नाग के आर्य जेहिल, आर्य जेहिल के शिष्य आर्य विष्णुसूरि हुये। आर्य विष्णु के शिष्य आर्य कालक सूरि थे। आर्य कालक के दो शिष्य थे—(१) आर्य संपलित सूरि (२) आर्य भद्रसूरि, भद्रसूरि के शिष्य वृद्धसूरि, वृद्धसूरि के आर्य संघपालित, संघपालित के हस्तिसूरि, उनके आर्य धर्मसूरि, धर्मसूरि के आर्य सिह स्थविर थे। आर्य सिह के आर्य धर्मसूरि और आर्य धर्मसूरि के शाण्डिल्यसूरि थे। इस प्रकार ८० स्थविर हुये।

अब प्रायः ऊपर कहे हुये अर्थ के सग्रह रूप चौदह गाथाओं से फल्गुमित्र से लेकर आर्य देवार्द्धि गणि क्षमाश्रमण पर्यन्त कथित अकथित स्थविरों को वन्दना करते है :—

वंदामि फग्गुमित्तं, च गोयमं धणगिरिं च वासिट्ठं। कुच्छं सिवभूइं पि य, कोसिय दुज्जंत कण्हे अ॥१॥

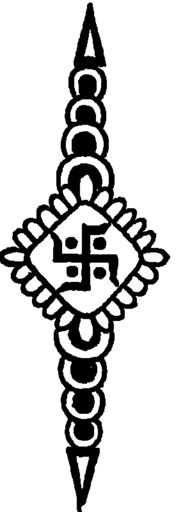
तं वंदिऊण सिरसा, भद्दं वंदामि कासवसगुत्तं। नक्खं कासवगुत्तं, रक्खं पि य कासवं वंदे ॥२॥



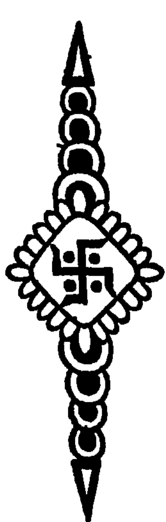


वंदामि अज्जनागं, च गोयमं जेहिलं च वासिट्ठं । विण्हुं माढरगुत्तं, कालगमिव गोयमं वंदे ॥३॥
गोयमगुत्तं कुमारं संपलियं तह य भद्दयं वंदे । थेरे च अज्ज वुड्ढं गोयम गुत्तं नमंसामि ॥४॥
तं वंदिऊण सिरसा थिरसत्त चरित्तनाण संपन्नं । थेरं च संघवालियं गोयमगुत्तं पणिवयामि ॥५॥
वंदामि अज्जहत्थिं च कासवं खंति सागरं धीरं । गिम्हाण पढम मासे कालगयं चेव सुद्धस्स ॥६॥
वदामि अज्ज धम्मं च सुव्वयं सील लद्धि संपन्नं । जस्स निक्खमणे देवो छत्तं वरमुत्तमं वहइ ॥७॥
हत्थिं कासवगुत्तं धम्मं सिवसाहगं पणिवयामि । सीहं कासवगुत्तं धम्मं पि य कासवं वंदे ॥८॥
तं वदिऊण सिरसा, थिर सत्त चरित्तनाण संपन्नं । थेरं च अज्ज जंबुं गोयमगुत्तं नमंसामि ॥९॥
मिउमद्दव संपन्नं उवउत्तं नाणंदसण चरित्ते । थेरं च नंदियपियं कासवगुत्तं पणिवयामि ॥१०॥
तत्तो य थिरचरित्तं उत्तम सम्मत्त सत्तसंजुत्तं । देसिगणि खमासमणं माढरगुत्तं नमंसामि ॥११॥
तत्तो अणुओग धरं धीर मइसागरं महासत्तं । थिरगुत्त खमासमणं वच्छस गुत्त पणिवयामि ॥१२॥
'तत्तो य नाणदंसण चरित्त तव सुट्ठियं गुण महंतं । थेरं कुमार धम्मं वंदामि गणिं गुणोवेयं ॥१३॥
सुतत्थ रयण भरिए खमदम मद्दव गुणेहिं संपन्ने । देविड्ढि खमासमणे कासवगुत्ते पणिवयामि ॥१४॥

अर्थ :—गोतम गोत्रज फल्गुमित्र, वासिष्ठ धनगिरि, कुत्सगोत्रीय शिवभूति, कौशिक गोत्रीय दुर्यन्त तथा कृष्ण स्थविरों को वन्दना करता हूँ ॥१॥ इन सर्व को मस्तक झुका कर वन्दन करके काश्यप आर्य भद्र आर्यनक्षत्र व आर्यरक्षको वन्दना करता हूँ ॥२॥ गोतम गोत्रज आर्य नाग, वासिष्ठ आर्य जेहिल, माढर गोत्रवाले आर्य विष्णु और गोतम गोत्रज आर्य कालकाचार्य को वन्दन करता हूँ ॥३॥ गोतम गोत्रीय



कल्पसूत्र
३४६



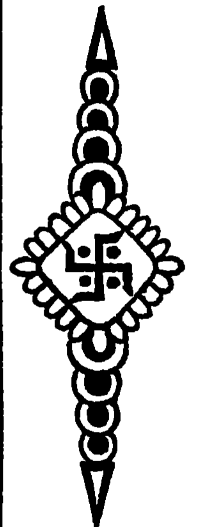
कुमार श्रमण, आर्य सपलित, आर्य भद्रसूरि आर्य वृद्ध को नमस्कार करता हूँ ॥४॥ उन्हें सिरसा वन्दना कर स्थिर सत्व, चारित्र ज्ञान सम्पन्न, गोतम गोत्रीय स्थविर संघपालित को प्रणाम करता हूँ ॥५॥ क्षान्ति-सागर, धीर चैत्रशुक्लपक्ष में कालगत (मृत्युप्राप्त) काश्यप आर्य हस्ति को वन्दन करता हूँ ॥६॥ जिनके दोक्षोत्सव में देव ने श्रेष्ठ छत्र धारण किया था, जो सुव्रत, शीललब्धि सम्पन्न थे, उन आर्य धर्मसूरि को वन्दन करता हूँ ॥७॥ काश्यप हस्ति सूरि, धर्म मोक्ष साधक धर्मसूरि काश्यप सिहसूरि और धर्म्मसूरि को नमस्कार करता हूँ ॥८॥ उन्हे शिरसा वन्दना कर स्थिर सत्व चारित्रज्ञान सम्पन्न गोतम गोत्रज आर्य स्थविर जम्बूसूरि को नमस्कार करता हूँ ॥९॥ मृदुमार्दव सम्पन्न ज्ञानदर्शन चारित्र में लीन काश्यप गोत्रोय स्थविर नन्दितसूरि को प्रणिपात करता हूँ ॥१०॥ स्थिर चारित्र उत्तमसम्यक्त्व सत्व सयुक्त, माढरगोत्रीय देशिगणि क्षमाश्रमण को नमस्कार करता हू ॥११॥ अनुयोगधर धीर मतिसागर, महा-सत्व वत्स गोत्रज श्री स्थिरगुप्त क्षमाश्रमण को प्रणिपात करता हूँ ॥१२॥ ज्ञानदर्शन चारित्रतप में सुस्थित महानगुणी, गुणोपेत, स्थविरकुमार धर्म गणि को वन्दना करता हू ॥१३॥ सूत्रार्थ रत्नभृत, क्षमादममार्दवादि गुण सम्पन्न, काश्यप गोत्रीय श्री देवर्द्धि क्षमाश्रमण को पणिपात करता हूँ । ॥१४॥

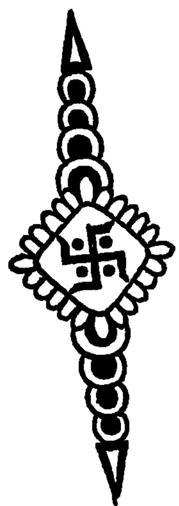
स्थविरावली सम्पूर्ण

इस स्थविरावलो में अनेक महापुरुषो व युगप्रधान शासन प्रभावक सूरीश्वरों के नाम नहीं हैं, तथा जो श्री देवर्द्धि गणि के पश्चात् हुये उनके भा नाम नहीं है, अत्तः मुख्य–मुख्य शासन प्रभावको का संक्षिप्त परिचय ग्रन्थान्तरों से लेकर कहते है ।

श्रीरत्नप्रभसूरि :—ओसियाँ नगरी के नृप उत्पलदेव को प्रतिबोध दे, वी० नि० सं० सं० ७० में ओसवाल जाति की स्थापना की। ओसियाँ व कोरट नगर में विद्याबल से एक हो दिन व मुहूर्त्त मे प्रतिष्ठा करवायी थी। महाप्रभावक आचार्य थे।

श्रीआर्य रक्षितसूरि—दशपुर (मन्दसौर) नगर में सोमदेव पुरोहित थे, रुद्रसोमा धर्मपत्नी थी, उनका पुत्र



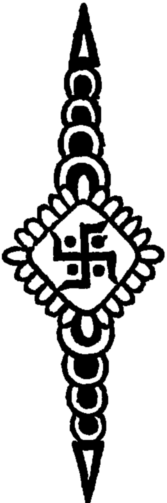


आर्य रक्षित विदेश में चतुर्दश विद्या पढकर आया था, राजा ने स्वागतार्थ हस्ति पर नगर प्रवेश करवा
महोत्सवपूर्वक गृह पहुँचाया। माता के चरणों में नमन किया; किन्तु माता को विशेष हर्षित न देख
पूछा—माँ आप विशेष प्रसन्न नहीं दिखतीं ? इसका कारण मै नही समझा ! माता ने कहा—मुझे विशेष हर्ष
दृष्टिवाद पढते तो होता ! ये तो लौकिक विद्याएँ है ! आर्य रक्षित ने सोचा 'दृष्टिवाद दर्शनविचारणा अवश्य
पठनीय है' पर किससे पढ़ूं ! माता से ज्ञात कर इक्षूवाडे में स्थित स्वमातुल (मामा) श्री तोसलीपुत्राचार्य के
पास पठनार्थ गये। वहा आचार्य श्री से प्रतिबोध पा दीक्षा ले पढने लगे, एकादशांगादि पढ़ चुके, तब गुरुजी
ने पूर्व पठनार्थ श्री वज्रस्वामी के पास भेजा। वहां साढे नव पूर्व पढ़ चुके थे कि पिता का भेजा लघुभ्राता
उन्हें बुलाने आया। उसे भी प्रतिबोध दे दीक्षा दे दी और पितादि अन्य स्वजनों को प्रतिबोध देने की
इच्छा से श्री वज्रस्वामी की आज्ञा ले दशपुर आये। सारे परिवार को प्रतिबोध दे प्रव्रजित किया। पिता
सोमदेव ने दीक्षा ली पर खडाऊं छत्र धोती कमण्डलु यज्ञोपवीत आदि रख लिये थे। किन्तु लोगों मे निन्दा
होने पर धीरे-धीरे सर्व स्वयं छोड़ दिये।

इन्होंने भगवान् महावीर की वाणी को चार अनुयोगो—द्रव्याणुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग
और धर्मकथानुयोग में विभक्त किया। अन्य भी कई ग्रंथो की रचना की है।

कालिकाचार्य :—महा प्रभावक बहुश्रुत आचार्य थे। अनेक लब्धियों से सम्पन्न थे। इन्द्र ने निगोद
स्वरूप पूछ के परीक्षा की थी। प्रसन्न हो नमस्कार कर उपाश्रय का द्वार परिवर्त्तन किया था। इनके
शिष्यों में चार शिष्य महाप्राज्ञ थे— दुर्बलिक पुष्यमित्र' वन्ध्य फल्गुरक्षित और गोष्ठामाहिल। तीन लब्धि
सम्पन्न शिष्य थे—दुर्बलिक पुष्यमित्र, घृतपुष्यमित्र, वस्त्रपुष्यमित्र।

विद्याधरगच्छीय आचार्य वृद्धवादीसूरि एवं श्रीसिद्धसेन दिवाकराचार्य —एक वृद्ध साधु थे,
उच्च स्वर से पाठस्मरण कर रहे थे। राजा ने देखा तो कहा—अब तो मुशल भी प्रफुल्लित हो



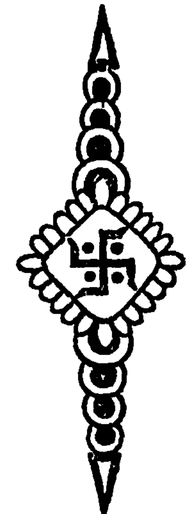
जायगा! वृद्धमुनि को बात लग गयी—उन्होंने 'वाग्देवी की आराधना कर विद्या प्राप्त की और विद्याबल से बाजार के चौक में मुशल को प्रफुल्लित कर राजा को बताया। इन्हीं वृद्धवादीसूरि ने सिद्धसेन नामक विप्र को वाद में पराजित कर शिष्य बना वादिपद प्राप्त किया। आचार्य सिद्धसेन महाविद्वान थे, सम्राट् विक्रमादित्य को प्रतिबोध देने के लिए उज्जयिनी में 'कल्याणमन्दिर' स्तोत्र से महाकाल शिव लिंग का विस्फोट कर श्री पार्श्वनाथ बिम्ब प्रकट किया था, वे अवन्ती पार्श्वनाथ कहलाये। सिद्धसेन दिवाकर रचित बत्तीस द्वात्रिंशिकाएँ आदि अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। विक्रमादित्य नृपति ने शत्रुञ्जय तीर्थ की यात्रार्थ संघ निकाला था, उसमें १७० स्वर्ण देवालय थे। श्रीसिद्धसेनसूरि के उपदेश से अन्य राजाओं ने भी तीर्थों का उद्धार किया था। विक्रम संवत्सर इसी विक्रमादित्य ने चलाया था।

श्री हरिभद्रसूरि :—

हरिभद्र विप्र सर्व शास्त्र पारंगामी थे। 'स्वयं को अर्थ न आवे और अन्य बता दे, उसी का शिष्य बन जाऊंगा' ऐसी प्रतिज्ञा थी। ये चित्तोड़ के निवासी थे। एकदा संध्या समय नगर में भ्रमण करते साध्वी उपाश्रय के समीप चलते हुये याकिनी साध्वीजी पठितगाथा—"चक्की दुगं हरिपणग चक्कीण केसवो चक्की। केसव चक्की केसव, दुचक्कि केसव चक्कीय।" सुनी। उपाश्रय में जाकर साध्वीजी से पूछा—यह चक्की-चक्की क्या पढ़ती हो? साध्वीजी ने अर्थ समझाया। विप्र ने शिष्य बनने का कहा तो साध्वीजी ने असमर्थता प्रकट कर गुरु महाराज के पास भेजा। दीक्षित हो जैनशास्त्रो का अध्ययन कर महाविद्वान बने। १४४४ प्रकरण ग्रथ बनाये। आवश्यक सूत्र दशवेकालिक आदि पर वृहद् वृत्तियाँ बनायीं। महाप्रभावशाली विद्वान थे। स्वयं को 'याकिनी महत्तरा सूनु' मानते थे।

आचार्य मल्लवादिसूरि :—भरुअच्छ में बौद्ध वादी को वाद में जीत कर शासन प्रभावना की।

श्री जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण :—विशेषावश्यक भाष्य जैसे तत्त्वाकर ग्रन्थ एवं अनेक ग्रंथों के रचयिता



थे। जैन सम्प्रदाय में भाष्यकार नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं और ये पूज्य तथा मिश्र के उपनाम से जैन आगम साहित्य में विख्यात हैं।

श्री जिनदासगणि महत्तर :—ये चूर्णिकार के नाम विख्यात हैं। अनेक सूत्रों पर चूर्णियाँ (प्राकृत टीका) बनाकर शास्त्रों का रहस्य सुगम बनाया है।

श्री श्यामाचार्य :—श्री पन्नवणा सूत्र की रचना कर द्रव्याणुयोग स्पष्ट किया।

आचार्य गन्धहस्ति :—१ आचारांग सूत्र पर शस्त्रपरिज्ञा विवरण की रचना की।

आचार्य उमास्वाति :—तत्त्वार्थ सूत्र का निर्माण कर नवतत्त्व का ज्ञान संक्षिप्त में समझाने का प्रयत्न किया। इसे मोक्ष शास्त्र भी कहते हैं। वे श्वेताम्बर दिगम्बर, दोनों ही सम्प्रदायों में मान्य हैं।

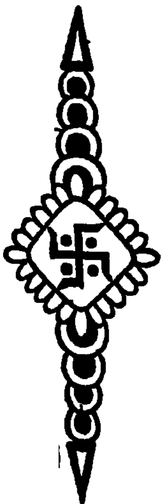
श्री सिद्धर्षि :—इनकी रचित उपमिति भवप्रपञ्चा कथा विश्व का अनुपम आध्यात्मिक रूपक ग्रंथ है। संसार में इसकी समानता करने वाला अन्य कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं होता। विश्व साहित्य में अजोड़ कथा ग्रंथ है। संस्कृत गद्य की अमूल्य कृति है। कर्म की विचित्रता बोधक अद्भुत रचना है।

श्री मानतुङ्गसूरि :—महाप्रभावक भक्तामर स्तोत्र की रचना कर स्वयं को कारागार से मुक्त किया। यह स्तोत्र आज भी दोनों सम्प्रदायों—दि० श्वे० में मान्य है।

श्री पादलिप्तसूरि :—इनकी रचित तरंगवती कथा संस्कृत गद्य काव्यमय है, जो उत्कृष्ट काव्यों में गिनी जाती है। कहते हैं—आकाशगामिनी लेप विद्या से नव्य तीर्थों की यात्रा करके पारणा करते थे। निर्वाणकलिकादि अनेक ग्रंथों के रचयिता थे।

आचार्य मलयगिरि :—इनके रचित विशेषावश्यक वृत्ति आदि अनेक ग्रंथ हैं।

श्री बप्पभट्टिसूरि :—गोपाचल (ग्वालियर) के आमराजा की प्रतिबोध दे जैन बनाया था। जिसने शत्रुञ्जय संघ यात्रा अभिग्रहपूर्वक की, मार्ग में ही अभिग्रह पूरणार्थ खिवसर (जोधपुर के समीप) में



शत्रुञ्जयावतारप्रासाद में बिम्ब पादुकाएं आदि की रचना आचार्यश्री ने करके दर्शन करवाये थे। आमराजा ने १०८ गज ऊँचा जिन प्रासाद बनवा कर १८ भार स्वर्ण की श्री वीर प्रतिमा स्थापित की थी। कहते हैं वह प्रतिमा आज भी पृथ्व्यन्तर्गत है। ये आचार्य महाप्रभावक थे।

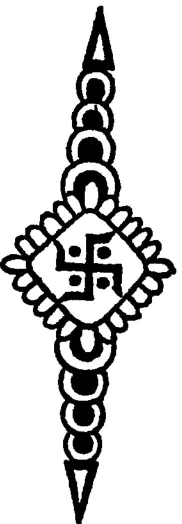
श्री उद्योतनसूरि :—इन्होंने उत्तम नक्षत्र चार के ज्ञान से 'सिद्धवड़ के नीचे चोराशी शिष्यों को आचार्यपद दिया, जिनसे चोराशी गच्छ हुये।

श्री वर्द्धमानसूरि :—उद्योतनसूरि के पट्टधर महान् प्रभावक आचार्य थे। विमलशाह कारित आबू पर्वत पर विमलवसही में प्रतिष्ठा करवाई थी। छः मासपर्यन्त आयंबिल तप कर धरणेन्द्र को बुला सूरिमन्त्र शुद्ध करवाया था।

श्री जिनेश्वरसूरि :—श्री वर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। विक्रम सं० १०७०-८० के बीच अणहिल्लपुर पाटण की राजसभा में चैत्यवासियों को पराजित कर श्री दुर्लभराज (द्वितीय भीम) से 'खरतर' विरुद प्राप्त किया था। कथाकोश प्रकरण, पंचलिंगी प्रकरण, षट्स्थान प्रकरण, हरिभद्रसूरि के अष्ट प्रकरण की टीका, लीलावती कथा आदि कई ग्रन्थों के प्रणेता थे। इन्हीं के लघुभ्राता बुद्धिसागरसूरि थे जिन्होंने 'बुद्धिसागर' व्याकरण आदि का निर्माण किया था।

श्री जिनचन्द्रसूरि :—ये जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। संवेगरंगशाला नामक ग्रंथ इन्हीं की कृति है और 'महतियाण' जाति को प्रतिबोध देकर जैन भी इन्हीं ने बनाया था। इस विषय में कितनेक इतिहासकारों का मतभेद है, वे मणिधारी जिनचन्द्रसूरि को 'महतियाण' जाति प्रतिबोधक मानते हैं। शोध का विषय है।

श्री अभयदेवसूरि :—जयतिहुअण स्तोत्र के रचयिता, स्तम्भनक पार्श्वनाथ प्रकट कर स्नात्र जल से स्वदेह कुष्ठरोग नाश कर नवाङ्ग सूत्रों पर टीकाएँ रचकर महान् उपकार किया। पंचाशक आदि

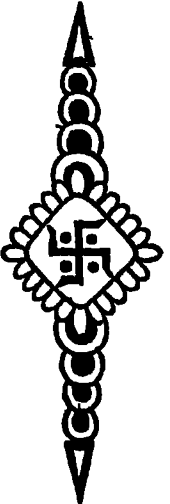


अनेक प्रकरणों पर भी टीकाएँ की हैं। श्री अभयदेवसूरि खरतर परम्परा के एक दीप्तिमान् नक्षत्र थे। इनकी बनायी टीकाएँ सर्वगच्छ मान्य हैं।

श्री जिनवल्लभसूरि :—अभयदेवसूरि से उपसम्पदा प्राप्त कर उन्हें सद्गुरु स्वीकार किया था। अठारह हजार 'हुम्बड' बागड़ देश के निवासियों को उपदेश देकर जैन बनाया। चण्डिका देवी को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। तत्कालीन शिथिलाचारी चैत्यवासियों के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन कर उनकी जड़े उखाड फेंकने का भगीरथ प्रयत्न करने वालों में आपका नाम अग्रगण्य है। आपका 'संघपट्टक' ग्रथ इसका ज्वलन्त प्रमाण है।

श्री जिनदत्तसूरि 'युगप्रधान' :—श्री जिनवल्लभसूरि के पट्टधर थे। अम्बिका ने युगप्रधान पद से विभूषित किया था। आप प्रकाण्ड विद्वान थे। बावनवीर ६४ योगिनियां आदि अनेक सुरासुर आपके सेवक थे। आप द्वारा रचित अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं। १३०००० एक लाख तीस हजार क्षत्रिय वैश्य ब्राह्मणादि को उपदेश देकर जैन धर्मावलम्बी बनाया था। आपके बनाये लाखो जैन भारत व अन्य देशों में विद्यमान हैं। आप बड़े दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं। भारत के अनेक ग्राम नगरों में बनी हुई दादाबाडियाँ दादा साहब की प्रभावकता तो स्वयं सूचित कर रही है। इनके विषय मे कुछ लिखना सूर्य को दीपक से दिखाने जैसा निरर्थक व बालचेष्टा है। अजमेर में अग्नि-संस्कार स्थान पर विशाल व मनोहर दादाबाड़ी है।

कलिकाल-सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्रसूरि :—अणहिलपुर पाटण के नरेश सिद्धराज जयसिह के और उनके उत्तराधिकारी परमार्हत् महाराज कुमारपाल के गुरु, साढ़े तीन क्रोड़ श्लोकप्रमाण विभिन्न विषयों के साहित्य के सर्जक, एक रात्रिमात्र में 'हेमशब्दानुशासन' नामक सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण के रचयिता, जैन साहित्य भण्डारों के संस्थापक महाप्रभावक आचार्यों में मूर्द्धन्य, पूर्णतल्लगच्छीय श्री हेमचन्द्राचार्य भी



उस समय के अद्वितीय विद्वान् आर अद्भुत प्रतिभाशाली आचार्य हो गये हैं। गुजरात के अनेक मन्दिर व ज्ञानभण्डार तथा उनका रचित साहित्य स्वयं उनकी कीर्त्ति के ख्यापक आज भी विद्यमान है।

श्री वादिदेवसूरि :—'प्रमाणनयतत्त्वालोक' जैन न्याय ग्रन्थ और उस के ऊपर स्याद्वाद-रत्नाकर नामक विशाल वृत्ति करने वाले, कुमुदचन्द्र दिगम्बर को बाद में पराजित कर 'वादी' पद प्राप्त करने वाले महान् शास्त्रविद् थे। श्रीफलोधी पार्श्वनाथ तीर्थ प्रकट करने वाले माने जाते हैं।

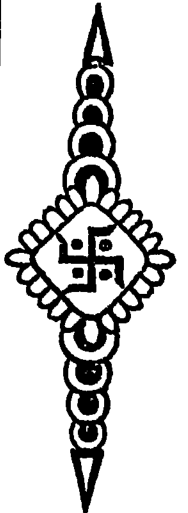
श्री देवेन्द्रसूरि :—चित्रवाल गच्छ के दीप्तिमान नक्षत्र थे। भाष्यत्रय, कर्मग्रथषट्क, श्राद्ध दिनकृत्य वृत्ति आदि अनेक ग्रन्थो के रचयिता थे।

श्रीमानदेवसूरि :—लघुशान्तिस्तव बनाकर उपद्रव दूर किया था। आज भी प्रायः सभी गच्छ वाले सन्ध्या प्रतिक्रमण के पश्चात् 'लघुशान्ति' बोलते है।

श्री जिनचन्द्रसूरि 'मणिधारी' :—दिल्ली के प्रसिद्ध तोमर राजा मदनपाल को प्रतिबोध देने वाले, भालस्थल में मणिधारक, द्वितीय दादाजी के नाम से विख्यात प्रभावक आचार्य थे। दिल्ली के समीप महरोली (मिहरावलि) में चमत्कारी स्थान है।

प्रत्यक्ष-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरि :—जैन समाज में छोटे दादाजी के नाम से विख्यात, पचास हजार नये जैन बनानेवाले, भक्तो के मनोवाञ्छित पूर्ण करने वाले अनेक ग्रथो के रचयिता श्री जिनकुशलसूरि सारे जंन समाज में विख्यात हैं। बड़े दादाजी व छोटे दादाजी की सारे भारत में हजारों दादाबाडियाँ मूर्त्तियाँ पादुकाएँ स्तूप आदि हैं। जहाँ हजारों ही नहीं लाखों भक्त पूजा करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरि—ये श्री जिनकुशलसूरिजी के समकाकीन खरतर गच्छीय श्री जिनसिंहसूरिजी के शिष्य बड़े प्रभावक और विद्वान थे। इन्होने सुलतान महम्मद तुगलक बादशाह को प्रतिबोध देकर जिन



शासन की बडी सेवा की। इनके पद्मावती प्रत्यक्ष थी। विविध तीर्थ कल्पादि अनेक ग्रंथ एवं सैकड़ों स्तोत्रों की रचना की।

युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि :—मुगल सम्राट अकबर महान् को जैन धर्मानुरागी बना वर्ष में छह माह अमारी उद्घोषणा करानेवाले, शिथिलाचारियों को 'मत्थेरन' गृहस्थ बना देने वाले अत्यन्त प्रभावशाली आचार्य थे।

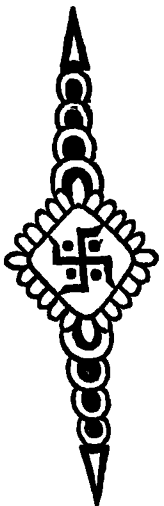
श्री भगवान् महावीर के शासन में हजारों—अनगिनत त्यागी, तपस्वी जैन साहित्य सर्जक आचार्य उपाध्याय गणि वाचक आदि हुये हैं। कहाँ तक कहे ?

अष्टलक्षी आदि अनेक साहित्य निर्माता श्री समयसुन्दर गणि, कमलसंयमोपाध्याय, सप्तसन्धान काव्यकार मेघविजयगणि आदि अनेक महाविद्वान् कवि, संयमनिष्ठ उपाध्याय गणि मुनि हुये हैं।

श्री मद्देवचन्द्रगणि—द्रव्याणुयोग के महान् ज्ञाता थे। अठारहवीं शताब्दि के महान् गीतार्थ, आगमसार, द्रव्यप्रकाश, नयचक्रसार, आध्यात्मगीता, विचाररत्नसार, अतीत वर्त्तमान अनागत चोवीशी, वीशी, अनेक रास सज्झायें आदि का निर्माण कर जैन शासन पर महान् उपकार किया है। श्री यशोविजयजी इन्हीं के समकालीन थे जो महान्याय शास्त्रविद् 'खण्डखण्डनखाद्य' न्याय शास्त्र के निर्माता, और अनेक स्तवन, स्वाध्याय, पद, ज्ञानसार, कई रास आदि के रचयिता और महाविद्वान् थे।

इनके अतिरिक्त कई महाप्रभावशाली विद्वान् तपस्वी और वृत्तियाँ टीकाएँ, नवीन ग्रथ, प्रकरण आदि के निर्माता जैनशासन की महान् प्रभावना करने वाले आचार्य उपाध्याय गणि पन्यास आदि हुये हैं। वे सभी वन्दनीय व स्मरणीय है।

॥ इति अष्टम व्याख्यान ॥

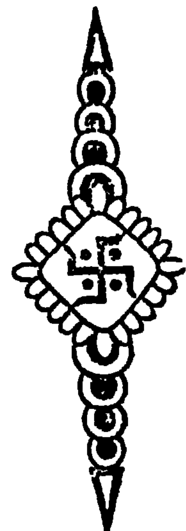


साधु समाचारी रूप नवम व्याख्यान

प्रथम पर्यूषणा समाचारी

सूत्र :—ते णं काले णं तेणं समए णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥१॥ से केणट्ठेणं भंते ? एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ? जओ णं पाएणं अगारीणं अगाराइं, कडियाइं, उक्कंपियाइं, छन्नाइं, लित्ताइं, गुत्ताइं, घट्ठाइं, मट्ठाइं, संपधूमियाइं, खाओदगाइं, खायनिद्धमणाइं अप्पणो अट्ठाए कडाइं परिभुत्ताइं, पारिणामियाइं भवंति, से तेणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ ॥२॥

अर्थ :—उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर वर्षाकाल के एक मास बीस दिन व्यतीत हो जाने पर पर्यूषणा करते थे। सांराश कि आषाढ चौमासी के एक महिने बीस दिन व्यतीत हो जाने पर साधुगण गृहस्थों को कहते थे कि हम यहां चातुर्मास व्यतीत करेंगे। शिष्य प्रश्न करता है कि, भन्ते ! ऐसा किस कारण कहते हैं? उत्तर—हे शिष्य ! इस कारण से कि गृहस्थ वर्षा मे सुरक्षित रहने के लिये अपने गृहों को चढाई आदि से ढकना, सफेदी करवाना। घास के नये छप्पर डलवाना, मिट्टी गोबर से लीपना, चारों ओर कांटेदार झाड़ियों की, मिट्टी आदि की दीवार बनाना, विषम स्थल को सम बनाना, आंगन को चिकने पत्थर से घिसना, चमकदार बनाना, सुगन्धित रखने को धूप से वासित करना, पानी जाने की नाली बनाना, घर से पानी निकालने की नालियाँ खुदवाना आदि कार्य करते हैं। पहले गृहस्थ उनमें रह

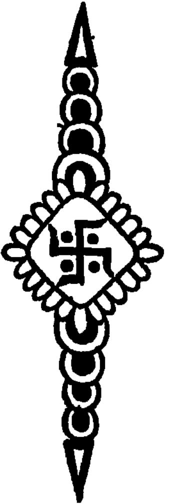


चुके होते हैं; अतः वे गृह अचित्त निर्दोष बन जाते हैं। उनमें साधु रह सकते हैं। यही कारण है कि वर्षा काल का एक मास बीस दिन बीत जाने पर श्रमण भगवान् महावीर पर्यूषण करते थे।

सूत्र :—जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ, तहा णं गणहरा वि वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं जाव पज्जोसविंति ॥३॥ जहा णं गणहरा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते पज्जोसविंति, तहा णं गणहर सीसा वि वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥४॥ जहा णं गणहर सीसा वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं थेरा वि वासावासं पज्जोसविंति ॥५॥ जहा णं थेरा वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा विहरंति ते विअणं वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥६॥

अर्थ :—जैसे श्रमण भगवान् महावीर प्रभु वर्षार्तु का एक मास बीस दिन व्यतीत हो जाने पर पर्यूषणा करते थे, वैसे ही गणधर भगवान् भी पचासवें दिन पर्यूषणा करते थे। गणधरों के समान ही उनके शिष्य, तथा पश्चात् होने वाले स्थविर—श्रुतस्थविर, पर्यायस्थविर, और वयःस्थविर भी पर्यूषणा करते रहे है। वर्त्तमान मे भी श्रमण निर्ग्रन्थ वर्षार्तु के पचासवें दिन पर्यूषणा करते हैं।

सूत्र :—जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्गंथा वासाणं सवीसइराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति, तहा णं अम्हं पि आयरिया, उवज्झाया, वासाणं जाव पज्जोसविंति ॥७॥ जहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं अम्हे वि वासाणं सवीसईराए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो, अंतरा वि य से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए ॥८॥



अर्थ :—जैसे ये वर्त्तमान श्रमण निर्ग्रन्थ पचासवें दिन पर्यूषणा करते हैं; वैसे ही हमारे आचार्य उपाध्याय भी पर्यूषणा करते है। जैसे हमारे आचार्य उपाध्याय करते हैं वैसे ही हम भी पचासवें दिन पर्यूषणा करते हैं। पचास दिन पूर्व करना कल्पता है; किन्तु पचासवीं रात्रि उल्लंघन करके पर्यूषणा करना नहीं कल्पता।

वर्षा अवग्रहमान रूप दूसरी सामाचारी—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ता णं चिट्ठिउं अहालंद मपि उग्गहे ॥९॥ वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथोण वा सव्वओ समंता उक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतु पडिनियत्तए ॥१०॥

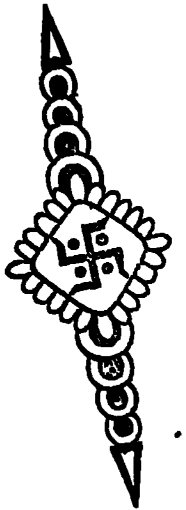
अर्थ :—वर्षावास रहे हुये साधु-साध्वियों को सर्व दिशाओं 'विदिशाओं में एक कोश एक योजन अर्थात् पांच कोश (५ माइल) का अवग्रह लेकर उससे आगे यथालन्द काल (हाथ की गीली रेखाएँ सूखें, इतने समय को यथालन्द काल कहते हैं, यहजघन्य है) भी नहीं ठहरना चाहिये। उत्कृष्ट लन्द काल पांच अहोरात्र का होता है। बीच का समय मध्यम लन्द काल है। उत्कृष्ट लन्द काल विशेष कारण—किसी साधु साध्वी के अनशन हो, रोगी हो, कोई वहां सेवा करने वाला न हो, औषधि लाने जाना हो, तब भी इतने समय से-पांच अहोरात्र से अधिक एक क्षण भी न रहे। वहां से चल दे, मध्य में कहीं भी ठहर सकता है। ५ कोश आना जाना प्रतिनियत है।

साधु साध्वियों के लिए चार प्रकार का अवग्रह कहा हैं :—

१ द्रव्य २ क्षेत्र ३ काल और ४ भाव। द्रव्यावग्रह तीन प्रकार का है :—सचित्त, अचित्त, मिश्र।

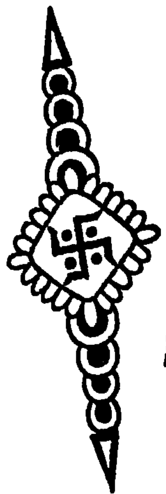
सचित्त—किसी को दिक्षा न देना, उत्सर्ग नियम है, अपवाद रूप से उत्कट चारित्रेच्छु या अनशनगृहीत गृहस्थ अथवा कोई विशिष्ट व्यक्ति को दीक्षा दी जा सकती है। अचित्त—वस्त्रपात्रादि न लेना। मिश्र—उपधि सहित को दीक्षा न लेना। क्षेत्रावग्रह—भिक्षादि के लिए ५ कोश से अधिक न आना जाना। कालावग्रह—संवत्सरी प्रतिक्रमण से चौमासी प्रतिक्रमण पर्यन्त ७० दिन एक स्थान पर रहना। यह जघन्य प्रमाण है। उत्कृष्ट से वर्षा काल में छह मास भी, वृष्टि, विप्लव, युद्ध, आदि के कारण रहने का विधान है। भावावग्रह—अष्ट प्रवचन मातृकाओं का सावधानो से पालन, कषायजय, विशेष तप करना आदि है।

नित्यजला नदो उल्लंघन रूप तीसरी समाचारी—



सूत्र :—जत्थणं नई निच्चोयगा, निच्चसंदणा, नो से कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए ॥११॥ एरावई कुणालाए, जत्थ चक्किया सिया, एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा, एवं चक्किया एवं णं कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतु पडिनियत्तए ॥१२॥ एवं च नो चक्किया, एवं से नो कप्पइ सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं भिक्खायरियाए गंतुं पडिनियत्तए ॥१३॥

अर्थ :—जहाँ नदी बहुजला निन्तर प्रवहमाना हो, वहाँ नदी उल्लंघन कर सक्रोश योजन पर्यन्त भिक्षार्थ आवागमन करना नहीं कल्पता है। जिस नदी में एक पाँव जल में एक पाँव ऊपर रख कर चला जा सके, उस नदी को उल्लंघन कर पांच कोश भिक्षाद्यर्थ जाना आना कल्पता है। जैसे कुणाला नगरी के पास इरावती नदी दो क्रोश विस्तृत पाट वाली बहती है। उसका उल्लंघन कर जाना नहीं कल्पता है। सारांश कि जानु पमाण जल हो और उल्लंघन कर जाने आने में मात्र पांच कोश ही जाना आना पड़े ऐसी नदो के पार भिक्षार्थ जाना कल्पता है।



कल्पसूत्र
३५८

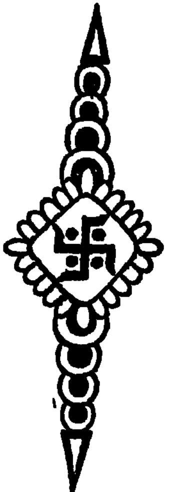
परस्पर दान रूप चतुर्थ समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगईयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ 'दावंभंते'? एवं से कप्पइ दावित्तए, नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥१४॥ वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्त पुव्वं भवइ-पडिगाहेहि भते! एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ दावित्तए ॥१५॥ वासावासं, पज्जोसवियाणं अत्थे गईयाणं एवं वुत्त पुव्वं भुवई—दावेभंते! 'पडिगाहे भंते! एवं से कप्पइ दावित्तएवि, पडिगाहित्तए वि ॥१६॥ वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ-नो दावेभंते! नो पडिगाहे भंते! एवं से कप्पइ नो दावित्तए।

अर्थ :—वर्षा काल स्थित साधु साध्वियो में से किसी एक को गुरुजी ने कहा—महानुभाव! तुम्हे आज अन्य ग्लानादि को आहारादि लाकर देना है, तुम्हे नहीं लेना है! तब जिसे देने का कहा है, उसे लाकर दे, स्वयं न ले।

वर्षाकाल स्थित साधु साध्वियों में जिसे पहले गुरुजी ने कह दिया—महाभाग! आज तुम आहार लाकर कर लेना। ग्लानादि के लिए न लाना न देना। वह नहीं करेगा अथवा उसे अन्य लाकर दे देंगे, तब स्वय आहार करे, किन्तु गुर्वाज्ञा विना ग्लानादि को लाकर न दे। और जब ऐसा कहे कि महानुभाव! तुम्हारे लिये और ग्लानादि के लिये भी आहार ले आना करना, करा देना, तब वैसा ही करे। आशय यह है कि गुर्वाज्ञा बिना न स्वयं आहार करे न अन्य को करावे। गुरु को पूछे बिना कुछ भी आहारादि न लावे।

रसविकृति त्याग रूप पंचमी समाचारी—

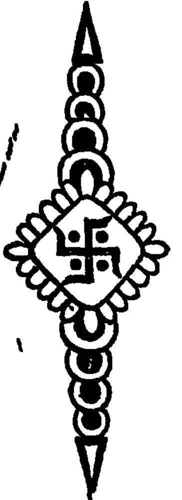


सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा हट्ठाणं तुट्ठाणं आरोग्गाणं, बलिय सरीराणं इमाओ नव रस विगइओ अभिक्खणं अभिक्खणं आहारित्तए, तंजहा—खीरं १ दहिं २ नवणीयं ३ सप्पिं ४ तिल्लं ५ गुडं ६ महुं ७ मज्जं ८ मंसं ९ ॥१७॥

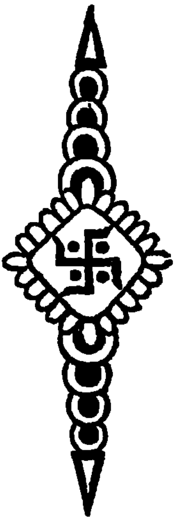
अर्थ :—वर्षावास स्थित हृष्ट पुष्ट, आरोग्य, बलिष्ठ देह साधु साध्वियों को ये नव रस विकृतियाँ (विगय) बार-बार खाना नहीं कल्पता। नव रस विकृतियाँ ये हैं—दूध, दही नवनीत, (मक्खन) घृत, तेल, गुड, मधु, (शहद) मद्य, मांस। दशवीं पक्वान्न विगय का ग्रहण यहाँ इस कारण नहीं किया कि वह बार-बार भी ग्रहण की जा सकती है। सूत्र में अभीक्ष्ण शब्द का ग्रहण उपर्युक्त विकुति विषयक है। इन नव मे भी, नवनीत, मधु, मांस और मद्य बाह्योपचारार्थ लेने हो तो ले पर बार-बार नहीं। शेष—दूध, दही तेल घृत गुड़ ये छह विकृति भी बार-बार न ग्रहण करे (न खावे) न लाकर अधिक समय रखे। क्योकि जीवादि गिरने का सभव है; अतः लाकर तत्काल उपभोग कर ले।

६ ग्लानार्थ ग्रहण विधि रूप षष्ठ समाचारी :—

वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थेगइयाणं एवं वुत्तपुव्वं भवइ-अट्ठोभंते ! गिलाणस्स, से य पुच्छियव्वे-केवइएणं अट्ठो ? सेवएज्जा-एवइए णं अट्ठो, गिलाणस्स जं से पमाणं वयइ से य पमाणओ घित्तव्वे, से य विन्नविज्जा, से य विन्नवेमाणे लभिज्जा, से य पमाणपत्ते होउ अलाहि, इय वत्तव्वं सिआ ? से किमाहु भंते ! ? एवइए णं अट्ठो गिलाणस्स, सिया णं एवं वयंतं परो वइज्जापडिगाहेहि अज्जो ! पच्छा तुमं भोक्खसि वा, पाहिसिवा, एवं से कप्पइ पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ गिलाणनीसाए पडिगाहित्तए ॥१८॥

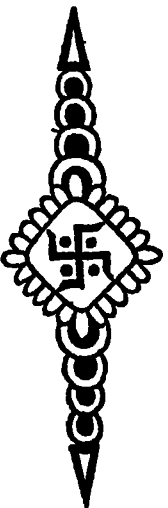


अर्थ : वर्षावास रहे साधु साध्वियों में से कोई ग्लानादि की वैयावृत्ति (सेवा) करने वाला मुनि या आर्या गुरु से पूछे—आज अमुक ग्लानादि के लिये विगय—दूध दही आदि लाना है ? गुरु उत्तर दे—ग्लानादि से पूछो ? तब ग्लानादि से पूछकर वह मॅगावे उतनी वस्तु लावे। कदाचित् गृहस्थ दाता कहे—हमारे यहाँ तो प्रचुर प्रमाण में दुग्धादि हैं, आप थोड़ा सा क्यो नहीं लेते हैं ? तब वैयावृत्तिकारक कहे ग्लानादि को इतने की ही आवश्यकता है। गृहस्थ कहे—अधिक हो तो आप ले लीजियेगा ! अथवा अन्य मुनि को दे दीजियेगा। तब गृहस्थ के आग्रहवश लेना पड़े तो पृथक् पात्र में ले किन्तु उसी पात्र में न ले।



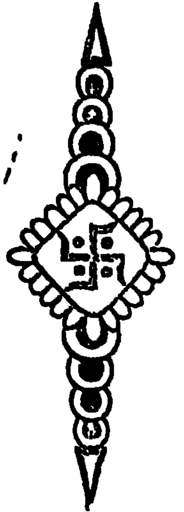
परिचित भक्तिकारक घरों में भी बिना दिखी वस्तु न मांगने रूप सप्तमी समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं अत्थि णं थेरा णं तहप्पगाराइं, कुलाइं, कडाइं, पत्तिआइं, थिज्जाइं, वेसासियाइं, संमयाइं, बहुमयाइं, अणुमयाइं, भवंति, जत्थ से नो कप्पइ अदक्खु वइत्तए "अत्थि ते आउसो! इमं वा" से किमाहु ? भंते? सड्ढी गिहो गिण्हइ वा तेणियं पि कुज्जा ॥१९॥



अर्थ :—वर्षाकाल स्थित साधु साध्वियों को स्थविरों द्वारा धार्मिक बनाये घरों में जो श्रद्धावान् दान देने में स्थिरचित्त, विश्वस्त, सम्मत, बहुमत, ओर अनुमत हैं उनमें भी अदृष्ट वस्तु की याचना-पृच्छा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि ऐसे धर्मात्माजन गृह में न होने पर वह वस्तु मूल्य देकर खरीद कर ला देंगे। इससे क्रीत दोष लगता है। ओर कदाचित् कोई मूढ भक्तिवश चोरी करके भी लाकर दे सकता है।

विश्वस्त—जहाँ वस्तु मिलने का विश्वास हो। सम्मत—जिनका द्वार सर्वगच्छो के मुनि-साध्वियों के लिए खुला हो। जिनके परिवार की साधु मात्र के प्रति समान भक्ति हो वे बहु सम्मत कहलाते हैं। अनुमत



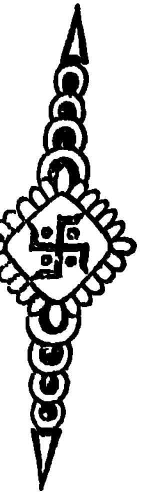
गृह उसे कहते है जिस में दास दासी तक को गृह स्वामी की आज्ञा हो कि जो भी, जितनी भी वस्तु साधु मांगे बहरा दी जाय।

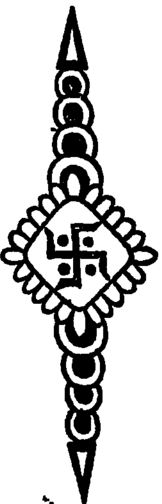
भिक्षार्थ गमनरूप अष्टमी समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स निच्चभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगं गोअरकालं गाहावइ कुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, नन्नत्थायरिय वेयावच्चेण वा, एवं उवज्झाय वेयावच्चेण वा, तवस्सी वेयावच्चेण वा, गिलाण वेयावच्चेण वा, खुड्डुएण वा, खुड्डियाए वा, अवंजणजायएण वा ॥२०॥

अर्थ :—वर्षाकाल स्थित नित्य भोजी साधु को जो नित्य एकाशन करता हो, गृहस्थ के घर भात पानी के लिये एक बार जाना आना कल्पता है। दो बार या बार-बार नहीं। सूत्र व अर्थ पोरुषी के बाद गोचरी जाने का उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में भी उल्लेख है। किन्तु वैयावच्च करने वाले साधु साध्वी—जैसे कि—आचार्य, उपाध्याय; तपस्वी, ग्लान-रोगी, नवदोक्षित, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, साधु साध्वी, तथा अजात व्यञ्जन अवयस्क-नावालिग, बाल-कुमार, किशोर वय की सेवा करने वाले है। उन्हें गृहस्थ घरों में बार-बार गोचरी जाना और नवकारसी करना या दो बार खाना भी कल्पता है।

सूत्र :—वासावासं पज्जोसविअस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगं गोयर कालं, अयं एवइए विसेसे—जं से पाओ निक्खम्म पुव्वामेव वियडगं भुच्चा, पिच्चा, पडिग्गहगं संलिहिय, संपमज्जिय से य संथरिज्जा, कप्पई से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेण पज्जोसवित्तए-से य नो संथरिज्जा, एवं से कप्पइ दुच्चं पि गाहावइ कुलं भत्ता ए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए





वा ॥२१॥ वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठ भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति दो गोअर काला गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२२॥ वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठम भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ गोअर कालागाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्ख-मित्तए वा पविसित्तए वा ॥२३॥ वासावासं पज्जोसवियस्स विकिट्ठ भत्तिअस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वे वि गोअर काला गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२४॥

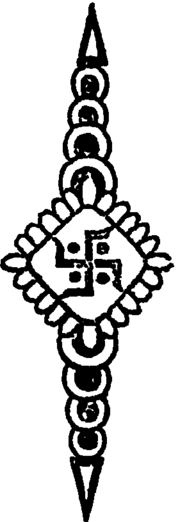
अर्थ :—वर्षाकाल स्थित साधु साध्वियों में जो चतुर्थ भक्त करने वाले—एकान्तर उपवास करने वाले हैं, उन्हें भी एक बार गोचरी के लिये गृहस्थ गृहो में जाना आना कल्पता है। किन्तु इतना विशेष है कि जो मुनि या आर्या एकान्तरोपवासी हैं वे प्रातः प्रथम पौरुषी में भी आहारादि लाकर पारणा करके पात्रे साफ करके रख दें। यदि क्षुधा लगे तो दूसरी बार भी आहार पानी लाकर करे। क्योंकि दूसरे दिन पुनः उपवास करना है।

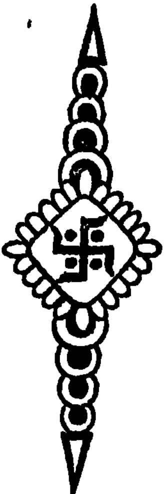
इसी प्रकार छट्ठ भक्त करने वाले साधु साध्वी को भी दो बार गोचरी जाना कल्पता है।

अष्टम भक्त करने वालों को तीन बार गोचरी जाना आना कल्पता है। तेले से ऊपर विकृष्ट तप करने वालों को दिन भर किसी भी समय और कितनी भी बार गोचरी जाना आना कल्पता है। अर्थात् इच्छानुसार जा सकता है।

जल ग्रहण सम्बन्धी नवमी समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स निच्च भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति सव्वाइं पाणगाइं पडिगाहित्तए ॥



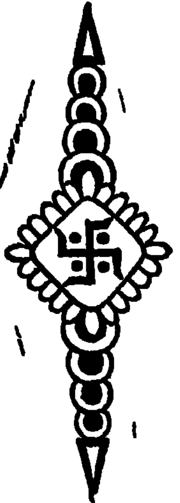


अर्थ :—वर्षाकाल स्थित नित्य भोजी साधु, साध्वियों को सभी प्रकार के अचित्त जल ग्रहण करने कल्पते हैं। आचाराङ्ग सूत्र में २१ प्रकार के प्रासुक जल बताये हैं वे तथा अन्य जल, जिनके वर्णगन्ध रस स्पर्श अन्य वस्तु के मिश्रण से परिवर्तित हो गये हों वे भी ग्रहण करने कल्पते हैं।

२१ प्रकार के प्रासुक जल :—

(१) उत्स्वेदिम—आटे आदि से सने हुए हस्तादि प्रक्षालित जल। (२) संस्वेदिम—पत्रादि उकाल कर उनको धोया हुआ पानी। (३) तन्दुलोदक—चावल धोया हुआ जल। (४) तिलोदक—तिल धोया हुआ जल। (५) तुषोदक—तुष-अन्न के छिलके धोये हुए हों वह जल। (६) यवोदक—जो का पानी। (७) आयाम—चावल दालें आदि का ओसामण। (८) सौवीर—कॉंजी का पानी। (९) शुद्धिविकट—तीन उकाले का गर्म किया हुआ जल। (१०) आचाम्लोदक आम्रोदक भी उल्लेख है—आम का पानी। (११) कपित्थोदक—कवीठ (कैथ) का धुला पानी। (१२) बीजपूरोदक—बिजौरे धोया हुआ जल। (१३) द्राक्षोदक—द्राक्षा धोया जल। (१४) दाडिमोदक—दाडिम धोया जल। (१५) खर्जूरोदक—खजूर धोया जल। (१६) नालिकेरोदक—नालियर का जल। (१७) कषायोदक अथवा करीर (कैर) का जल। (१८) आमलकोदक—ऑवले धोया जल। (१९) चिञ्चोदक—इमली का जल। (२०) बदिरोदक—बेर (बोर) का जल। (२१) आम्रातकोदक—अम्बडे का जल।

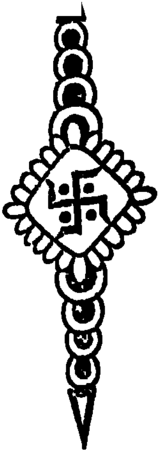
उपर्युक्त जल दोनों प्रकार के—जिस जल में उपरिलिखित वस्तु उबाली गयी हों अथवा भिंगोयीं गयी हो, अचित्त होने के कालोपरान्त लिया जा सकता है। अधिक काल हो जाने पर ये सचित्त हो जायें तो अग्राह्य हो जाते हैं। इसी प्रकार अन्य जल भी त्रिफला लवंग शक्कर आदि के भी अचित्त होने पर ग्राह्य होते है। वर्ण गन्ध रस स्पर्श परिवर्त्तन होने आवश्यक हैं।



सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थ भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा—ओसेइमं वा, संसेइमं वा चाउलोदगं वा। वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठ भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तंजहा—तिलोदगं वा, तुसोदगं वा, जवोदगं वा। वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठम भत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए तंजहा—आयामे वा, सोवीरे वा, सुद्ध वियडे वा।

अर्थ :—वर्षाकाल स्थित चतुर्थ भक्त (उपवास) वाले मुनि आर्या को तीन प्रकार के पानक—जल प्रतिग्राह्य होते है, उनके नाम—आटे के पात्र हस्तादि प्रक्षालित जल, पत्ते आदि का उकला या धोया जल, चावलो का जल। छट्ठ भक्त (बेला करने वाले साधु साध्वी को तीन प्रकार के पानी कल्पते हैं—तिलोदक तुषोदक, यवोदक—जव का पानी। अट्ठम भक्त (तेला) करने वाले साधु साध्वी को तीन प्रकार के जल ग्रहण करने कल्पते है :—चावलादि का ओसामण, कॉजो का जल, शुद्ध विकट—तीन उकाले का उष्ण किया जल।

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स विगिट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिणवियडे पडिगाहित्तए से विय णं असित्थे नो चेव य णं ससित्थे। वासावासं पज्जोसवियस्स भत्त पडियाइक्खियस्स भिक्खुस्स कप्पइ एगे उसिण वियडे पडिगाहित्तए, से वि य णं असित्थे, नो चेव णं ससित्थे, से वि य णं परिपूए, नो चेव णं अपरिपूए, से वि य णं परिमिए नो चेव णं अपरिमिए, से वि य णं वहु संपन्ने नो चेव णं अबहु संपन्ने ॥२५॥



अर्थ :—वर्षाकाल में स्थित विकृष्ट भक्तिक—तेले से अधिक तपस्या करने वाले साधु साध्वी को एक उष्णविकट असिक्थ—शुद्ध स्वच्छ जल ग्रहण करना कल्पता है। वर्षाकाल स्थित भक्त प्रत्याख्यात—अनशन करने वाले साधु साध्वी को मात्र एक उष्णविकट—तीन उकाले का शुद्ध असिक्थ—जिसमें अन्नादि का कण न हो, परिपूत—वस्त्र से छाना हुआ अत्यन्त स्वच्छ, वह भी परिमित—प्रमाण युक्त और बहु सम्पन्न—तृषाशमन योग्य लेना उचित है। किन्तु सिक्थ युक्त, बिना छना, बिना नाप का और प्यास न बुझे ऐसा जल ग्रहण करना निषिद्ध है।

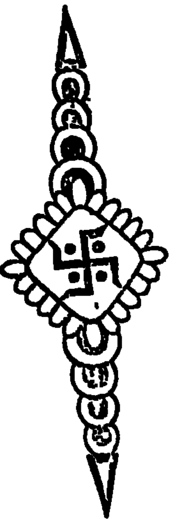
दत्ति संख्या सूचक दशमी समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स भिक्खुस्स संखादत्तियस्स कप्पंति पंच दत्तीओ भोअणस्स पडिगाहित्तए पंच पाणगस्स, अहवा चत्तारि भोअणस्स पंच पाणगस्स, अहवा पंच भोअणस्स चत्तारि पाणगस्स। तत्थ णं एगा दत्तो लोणासायण मित्तमवि पडिगाहिया सिया, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठे णं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दुच्चंपि गाहावइकुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२६॥

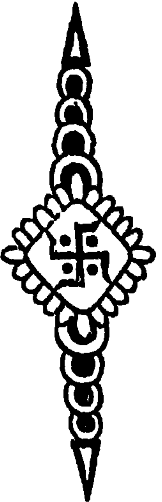
अर्थ :—वर्षावासार्थ स्थित साधु साध्वियो मे कोई साधु संख्यादत्तिक तप करने वाला हो उसे पंच दत्ति भोजन की और पंच दत्ति पानक-जलादि पेय, की ग्रहण करनी कल्पती है। अथवा चार भोजन की और पाँच पानक की, अथवा पाँच भोजन की और चार पानक की ग्रहण करनी कल्पती है।

'दत्ति' एक बार में चमच पात्रादि से दी गयी वस्तु को दत्ति कहते है।

एक बूंद मात्र या लवणास्वाद मात्र ही गिरी हो तब भी वह दत्ति कहलाती है। यदि पाँच भोजन की व पाँच जल की दत्तियों से काम चल जाय तो अधिक न लेकर कम ही लेनी योग्य है। और भोजन तीन



कल्पसूत्र
३६६



दत्तियो में भरपूर आ गया हो तो शेष दो को पानी की दत्ति में नहीं मिलाना चाहिये इसी प्रकार पानी की भी भोजन में न मिलावे।

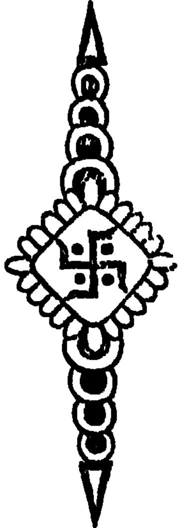
सखड़ि—गृहपंक्ति जीमणवार गृहगमन विचार रूप दशमी समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा जाव उवस्सयाओ सत्तघरंतरं संखडिं सन्नियट्ट चारिस्सइत्तए। एगे पुण एव माहंसु-नो कप्पइ जाव उवस्सयाओ परेण सत्तघरंतरं संखडिं संनियत्त चारिस्स इत्तए। एगे पुण एवमाहंसु-नो कप्पइजाव उवस्सयाओ परंपरेण संखडिं संनियट्टचारिस्स इत्तए ॥२७॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित सन्निवृत्तचारो—निषिद्ध घरों में गोचरी न जाने उत्तम आचारवान् साधु साध्वियों को उपाश्रय से लेकर सात घरो के मध्य किसी के घर भोज हो तो वहाँ गोचरी जाना नहीं कल्पता है। इस विषय में मतभेद कई है वे कहते हैं :—उपाश्रय को छोड़ समीप के सात गृह और कई उपाश्रय के समीप का एक गृह त्याग कर आगे के सात गृह जानने चाहिये। कारण यह कि समीपस्थ होने से भक्ति रागी होते हैं, और उद्गमादि दोषों का सम्भव है; अतः निषेध किया है।

वर्षा वर्षते समय जिनकल्पी साधु को गोचरी जाने के निषेध रूप १२ समाचारी—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स नो कप्पइ पाणि पडिग्गहियस्स भिक्खुस्स कणगफुसियमित्तमवि वुट्ठिकायंसि निवयमाणंसि जाव गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥२८॥



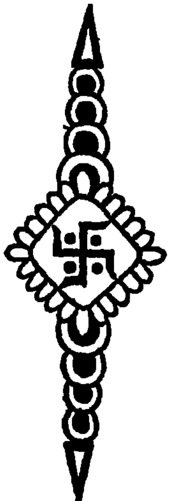
वर्षाकाल स्थित पाणि प्रतिग्रही—जिनकल्पी साधु को अत्यन्त सूक्ष्म जलकण, ओस·कुहरा जैसी वर्षा होती हो तो गृहस्थ के घर भक्तपानार्थ जाना आना नहीं कल्पता है।

जिनकल्पी आहार करण रूप द्वादशमी समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स पाणि पडिगहियस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ अगिहंसि पिंड-वायं पडिग्गाहित्ता पज्जोसवित्तए, पज्जोसवेमाणस्स सहसा वुट्ठिकाए निवइज्जा देसं भुच्चा देसमादाय से पाणिणा पाणिं परिपहित्ता उरंसि वा णं निलिज्जिज्जा, कक्खंसिवा णं समाह-डिज्जा, अहाछन्नाणि वा, लेणाणि वा, उवागच्छिज्जा, रुक्खमूलाणि व उवागच्छिज्जा, जहा से पाणिंसि दए वा, दगरए वा, दगफुसिया वा नो परिआवज्जइ ॥२९॥ वासावासं पज्जोसवियस्स पाणि पडिग्गहियस्स भिक्खुस्स जं किंचिकणग-फुसियमित्तंपि, निवडति नो से कप्पइ गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाएत्रा निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा ॥३०॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित करपात्री जिनकल्पी साधु को अगृह—खुले स्थान में पिण्डपात-आहार लेकर भोजन करना नहीं कल्पता। कदाचिद् भोजन करते सहसा वृष्टि आ जाय तो जो हाथ में है, दूसरे हाथ से ढँककर हृदय के नीचे अथवा काख मे दबाकर आच्छादित स्थान, गृह अथवा वृक्ष के नीचे आ जाय! विशेष क्या कहें, जहाँ आहार को पानी के कण मात्र का स्पर्श न हो वहाँ जाय और उस प्रकार से आहार को सुरक्षित रखे। क्योंकि जिनकल्पी-करपात्री साधु को किञ्चिद् फुहार-अत्यन्त सूक्ष्म जल कण भी वर्षते हों तो गृहस्थों के घर आहार पानी के लिये जाना आना नही कल्पता है।

पात्रधारी स्थविर कल्पि मुनि की गोचरचर्या विधि :—



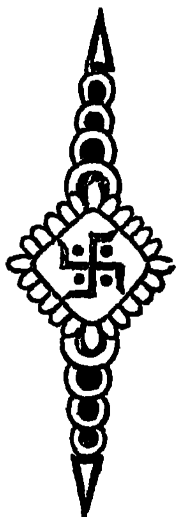
सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स पडिग्गह धारिस्स भिक्खुस्स नो कप्पइ वग्घारियवुट्ठि-कायंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाएवा निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा, कप्पइ से अप्पवुट्ठि-कायंसि संतरुत्तरंसि गाहावइकुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा ॥ (ग्रं० ११००) ॥३१॥

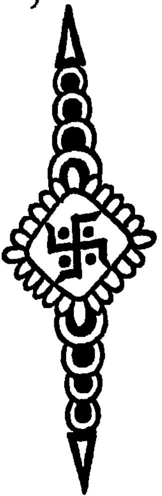
अर्थ :—वर्षाकाल स्थित पात्रधारी साधु को व्याधारित वृष्टि-वस्त्र भिगोकर शरीर तक जल पहुँच जाय, ऐसी वृष्टि होते गृहस्थों के घर आहार पानी लाने जाना आना नही कल्पता है। अपवाद मार्ग यह है कि अल्प वृष्टि होने के समय सान्तरोत्तर—ऊनी कम्बली से सर्व शरीर तथा पात्र ढँक कर गृहस्थ के घर आहार पानी के लिये जाना आना कल्पता है।

आहारादि के लिये गये हुये साधु वृष्टि आ जाने पर कहाँ ठहरे ?

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइ कुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ, से अहे आरामंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए ॥३२॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु साध्वी को रुक-रुक कर होने वाली वृष्टि के समय गृहस्थ के घर आहार लेने के लिए जाने पर या लौटते समय वृष्टि आ जाय तो किसी उपवन मे या अन्य उपाश्रय मे अथवा विकट गृह—सार्वजनिक स्थान या घने वृक्ष के नीचे आकर ठहर जाना उचित है। क्योकि ऐसे स्थानों में ठहरने से वर्षा रुकने का भी पता चल सकता है और लोक शका भी नही करते। अतः ऐसे स्थान पर ठहरने का आदेश है। वर्षा होने पर गृहस्थ के घर से वापिस आया साधु पुनः बहरने जाय तो क्या ले ?

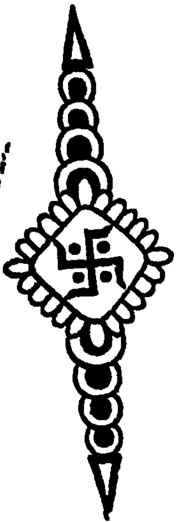




सूत्र :—तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे, पच्छाउत्ते भिलिगं सूवे, कप्पइ से चाउलोदणे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ भिलिगं सूवे पडिगाहित्तए ॥३३॥ तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिगं सूवे पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पइ से भिलिगं सूवे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिगाहित्तए ॥३४॥ तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पुव्वाउत्ताइं, कप्पंति से दो वि पडिगाहित्तए । तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छा उत्ताइं. एवं नो स कप्पंति दो वि पडिगा-हित्तए ॥ जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिगाहित्तए, जे से तत्थ पुव्वागमणे णं पच्छाउत्ते नो से कप्पइ पडिगाहित्तए ॥३५॥

अर्थ :—पूर्वोक्त स्थानों में स्थित साधु पुनः गोचरी के लिये उसी घर में गया, वहाँ चावलोदन पूर्व ही बन चुका था, मूंग आदि की दाल उसके प्रथम बार आने के पश्चात् बनी थी, ऐसी स्थिति मे चावलोदन लेना कल्पता है, दाल नहीं । ऐसे ही दाल पहले बनी होतो दाल लेना कल्पता है, चावलोदन नहीं । दोनों ही पहले बने हुए हों तो दोनों कल्पते हैं । और दोनों पीछे बने हों तो दोनो ही नहीं कल्पते है ।

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स निग्गंथीए वा गाहावइ कुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसिवा, अहे उव-सयंसि वा, अहे वियडगिहंसि वा, अहे रुक्खमूलंसि वा उवागच्छित्तए, नो से कप्पइ पुव्वगहिए णं भत्तपाणे णं वेलं उवायणा वित्तए, कप्पइ से पुव्वामेव वियडगं भुज्जा पिच्चा पडिग्गहगं



संलिहिय २ संपमज्जिय २ एगायगं भंडगं कट्टु सावसेसे सूरे जेणेव उवस्सए तेणेव उवागच्छित्तए नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥३६॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु साध्वियों को जो आहार पानी के लिये गृहस्थ के घर गये हों और वृष्टि रह-रह कर हो रही है (अथवा निरन्तर हो रही है) ऐसी स्थिति में गृहस्थ के घर ठहरना उचित नहीं। किसी उपवन, उपाश्रय, सार्वजनिक स्थान, अथवा घने वृक्ष के नीचे खड़ा रहना (ठहरना) कल्पता है, किन्तु पूर्वगृहीत आहार पानी का वेलातिक्रमण—समयोलंघन करना नहीं कल्पता है। बल्कि वर्षा न थमती हो तो आहार पानी को जहाँ ठहरा है, वहाँ वापर लेना चाहिये और पात्रो को धो पोंछ के साफ कर एक झोली में बांध कर रख दे। यदि संध्या पर्यन्त मेघवृष्टि न रुके तो वृष्ट मे ही अपने स्थान पर आ जाय। किन्तु रात्रि में उपाश्रय से बाहिर रहना नहीं कल्पता। अकेले रहने से आत्म विराधना या सयम विराधना हो सकती है तथा उपाश्रय स्थित साधु-साध्वी को चिन्ता हो जाती है। अतः अकेला बाहिर नहीं ठहरना चाहिये।

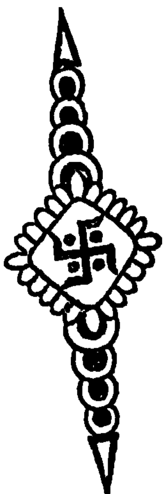
सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स, निग्गंथीए वा गाहावइ कुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय निगिज्झिय वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा जाव उवागच्छित्तए ॥३७॥ तत्थ नो से कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए १ तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स दुण्हं निग्गंथीणं एगयओ चिट्ठित्तए २ तत्थ नो कप्पइ दुण्हं निग्गथाणं एगाए य निग्गंथीए एगयओ चिट्ठित्तए ३ तत्थ नो कप्पइ दुण्हं

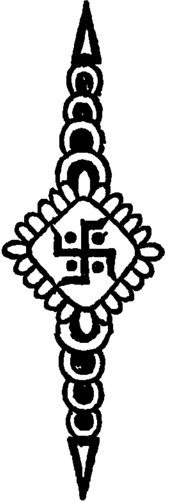
निग्गंथाणं दुण्हं निग्गंथीणं य एगयओ चिट्ठित्तए ४ अत्थि य इत्थ केइ पंचमे खुड्डए वा खुड्डिया इ वा अन्नेसिं वा संलोए, सपडिदुवारे एव ण्हं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए ॥३८॥

अर्थ :—वर्षाकाल में चातुर्मास स्थित साधु साध्वी को रुक-रुक कर वृष्टि होने के समय गृहस्थ के घर आहार पानी लेने जाने पर वहाँ न ठहरकर उपर्युक्त उपवनादि में आ जाना योग्य है। परन्तु वहाँ उपवनादि में एक साधु एक साध्वी, एक साधु दो साध्वी, दो साधु एक साध्वी एव दो साधु दो साध्वी को एक स्थान पर ठहरना नहीं कल्पता। वहाँ कोई पाँचवाँ क्षुल्लक या क्षुल्लिका (बाल साधु या साध्वी) हो तो ठहरना उचित है। अथवा वहाँ लोको को दृष्टि पड रही हो या उस स्थान के कई द्वार हों तो बिना क्षुल्लक क्षुल्लिका के भी ठहरना कल्पता है। अन्यथा दूसरो को सन्देह होने से जैन शासन को अवहेलना निन्दा आदि होने की सम्भावना रहती है। अतः साधु साध्वियो को एक स्थान पर नहीं ठहरना ही योग्य है।

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियस्स निग्गंथस्स गाहावइ कुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठस्स निगिज्झिय २ वुट्ठिकाए निवइज्जा, कप्पइ से अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि जाव० उवागच्छित्तए, तत्थ नो कप्पइ एगस्स निग्गंथस्स एगाए अगारीए एगयओ चिट्ठित्तए एवं चउभंगो। अत्थि णं इत्थ केइ पंचमए थेरे वा थेरिया वा अन्नेसिं वा संलोए सपडिदुवारे, एवं कप्पइ एगयओ चिट्ठित्तए, एवं चेव निग्गंथीए अगारस्स य भाणियव्वं ॥३६॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित आहारार्थ गृहस्थ के घर पविष्ट साधु मार्ग मे रह-रह कर वर्षा होने पर उपर्युक्त उपवनादि स्थानो मे एक गृहस्थ स्त्री के साथ ठहरना नहीं कल्पता। यहाँ भी पूर्वोक्त चतुर्भंगी जाननी चाहिये। १ एक साधु, एक गृहस्थ नारी, २ एक साधु दो गृहस्थ स्त्रियाँ ३ दो साधु एक गृहस्थ नारी, ४





दो साधु दो गृहस्थ स्त्रियाँ। यहाँ भी पाँचवाँ कोई वृद्ध पुरुष या वृद्धास्त्री होना आवश्यक है। अथवा वहाँ बहुत से लोकों की दृष्टि पड़ती हो, या वह स्थान खुला—अनेक द्वारों वाला हो तो ठहरना कल्पता है। इसी प्रकार साध्वियो के विषय में भी जान लेना चाहिये। अर्थात् वहाँ भी पाँचवाँ अन्य होना आवश्यक है।

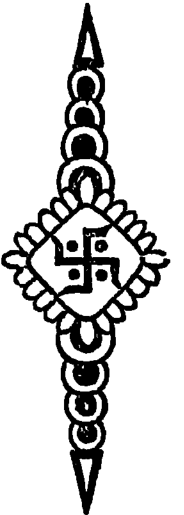
अपृष्ठार्थे विहरण रूप चतुर्दशी समाचारी :—

सूत्र :—वासावास पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अपरिण्णए णं अपरिणयस्स अट्ठाए असणं वा १ पाणं वा २ खाइमं वा ३ साइमं वा ४ जाव पडिगाहित्तए॥४०॥ से किमाहु भंत्ते? इच्छापरो अपरिण्णए भुंजिज्जा, इच्छापरो न भुंजिज्जा ॥४१॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु साध्वियों में से जो वैयावृत्य करने वाले हों उन्हे ग्लानादि के पूछे बिना उनके लिये अशन पान खादिम स्वादिम आदि आहार गृहस्थ के घर से लाना नहीं कल्पता। शिष्य पूछता है, भगवन्! ऐसा क्यों कहा है? उत्तर—ग्लानादि की इच्छा हो तो खावे न हो तो न खावे। विवश हो खा ले तो व्याधि पीडा अजीर्णादि हो सकते हैं और यदि न खायें तो वर्षार्तु में भूमि जीवाकुल होने से प्रासुक स्थान का प्राय' अभाव रहता है आहारादि परठने योग्य स्थान नहीं मिलता; अतः आदेश हो तो मंगावें उतनो हो वस्तु लानी उचित है। बिना पूछे लाने से आत्म-विराधना संयम-विराधना उड्डाह निन्दा आदि होते है।

सप्त स्नेहायतन दर्शक पनरहवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा उद उल्लेण वा ससिणिद्धेण वा काए णं असणं वा १ पाणं वा २ खाइमं वा ३ साइमं वा ४ आहारित्तए ॥४२॥



से किमाहु भंते ! सत्तसिणेहाययणा पण्णत्ता, तंजहा—पाणी १, पाणिलेहा २, नहा ३, नहसिहा ४, भमुहा ५, अहरोट्ठा ६, उत्तरोट्ठा ७,। अह पुण एवं जाणिज्जा-विगओदगे मे काए छिन्न-सिणेहे, एवं से कप्पइ असणं वा १ पाणं वा २ खाइमं वा ३ साइमं वा ४ आहारित्तए ॥४३॥

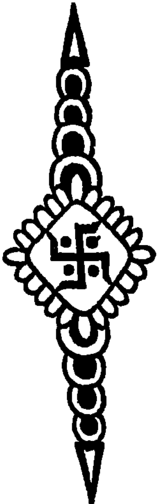
अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु साध्वियों कों जलार्द्र—जल से गीले शरीर से अशन पान खादिम स्वादिमादि आहार भोगना-वापरना नहीं कल्पता। शिष्य प्रश्न करता हैं :—भगवन् ! किस कारण ऐसा कहा है ? गुरु का उत्तर—देवानुप्रिय ! सात स्नेहायतन कहलाते है। हाथ १ हाथ की रेखाएँ २ नख ३ नखशिखा-नाखून का अग्रभाग ४ भौंहे ५ अधरोष्ठ ६ उत्तरोष्ठ ७। जब ये सात स्थान जल रहित-शुष्क हों तो अशनादि उपभोग करना-वापरना कल्पता है।

अष्ट सूक्ष्म जन्तु स्वरूप प्रतिपादिका सोलहवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाण इह खलु निग्गंथाणं वा, निग्गंथीण वा इमाइं अट्ठ सुहुमाइं, जाइं छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वाइं, पासिअव्वाइं, पडिलेहिअव्वाइं भवंति, तंजहा—पाण सुहुमं १ पणग सुहुमं २, बीअ सुहुमं ३, हरिअ सुहुमं ४, पुप्फसुहुमं ५, अंडसुहुमं ६ लेणसुहुमं ७ सिणेहसुहुमं ८ ॥४४॥

अर्थ :—वर्षाकाल में स्थित साधु साध्वियों को श्री वीतराग प्ररूपित आठ सूक्ष्म स्थान अर्थात् सूक्ष्म जीवो को बार-बार जानना, देखना, और पडिलेहण करना चाहिये। जहाँ-जहाँ साधु खड़े रहे, बैठे, सोये और जहाँ-जहाँ पात्र पुस्तकादि उपकरण रखें; उठावें उन स्थानों को बार-बार अवश्य प्रतिलेखन करना

कल्पसूत्र
३७४



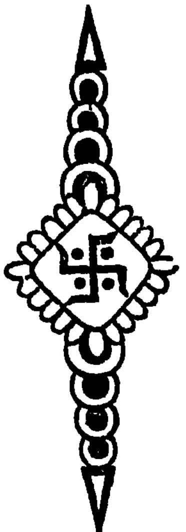
चाहिये। आठ प्रकार के सूक्ष्म जीव ये होते हैं—प्राण सूक्ष्म १, पनक सूक्ष्म २, बीज सूक्ष्म ३, हरित सूक्ष्म ४, पुष्प सूक्ष्म ५, अण्ड सूक्ष्म ६, लयन सूक्ष्म ७, और स्नेह सूक्ष्म।

आठ सूक्ष्मों का पृथक्-पृथक् विवेचन :—

सूत्र :—से किं तं पाण सुहुमे ? पाण सुहुमे पंचविहे पन्नते, तं जहा किण्हे १ नीले २, लोहिए ३, हालिद्दे ४, सुक्किल्ले ५,। अत्थि कुंथू अणुद्धरीनामं, जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाणं निग्गंथाण वा निग्गंथोण वा नो चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, जा अट्ठिया चलमाणा छउमत्थाण निग्गंथाण वा, निग्गंथोण वा चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, जा छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथोए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वा, पासियव्वा, पडिलेहियव्वा हवइ से तं पाण सुहुमे ॥१॥

अर्थ :—शिष्य प्रश्न—भगवन्! प्राण सूक्ष्म क्या हैं ? उत्तर—प्राण सूक्ष्म पांच प्रकार के कहे गये हैं। वे ये हैं—कृष्ण-काले, नीले, लाल, पीले और सफेद रंग के होते हैं। जैसे—नहीं बचाये जा सके ऐसे कुन्थुआ नामक जीव, जो स्थित हों न चल रहे हों तो छद्मस्थ साधु साध्वियों को शीघ्र दृष्टिगोचर नहीं होते। अस्थित और चलते हुये हों तो शीघ्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं। ऐसे सूक्ष्म और भी अनेक प्राणी होते हैं; अतः बार-बार जानने, देखने और प्रतिलेखन करने योग्य है। प्राण सूक्ष्म जीव, बेइन्द्रिय व त्रीन्द्रिय चतुरेन्द्रिय होते हैं।

सूत्र :—से किं तं पणग सुहुमे ? पणग सुहुमे पंचविहेपन्नत्ते, तंजहा—किण्हे नोले लोहिए हालिद्दे सुक्किले। अत्थि पणग सुहुमे तद्दव्व समाण वण्णए नामं पण्णत्ते जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहि अव्वे भवइ। से तं पणग सुहुमे ॥२॥



अर्थ :—भन्ते ! पनक-ऊलण सूक्ष्म क्याहै ? उत्तर—पनक सूक्ष्म पांच प्रकार के बतलाये है; काली, नीली, लाल पीली, और श्वेत। पनक सूक्ष्म उसी वस्तु के समान रंग वाली बतलायी है अतः जानने देखने प्रतिलेखन योग्य है। वर्षाकाल में प्रायः सूक्ष्म जल युक्त भोज्य वस्तुओं वस्त्र पात्र स्थान पुस्तकें आदि पर नीलण फूलन आती हैं, उसे ही पनक कहते हैं। कोई भी वस्तु हो, बार-बार जयणापूर्वक जानने देखने पडिलेहने का आदेश है।

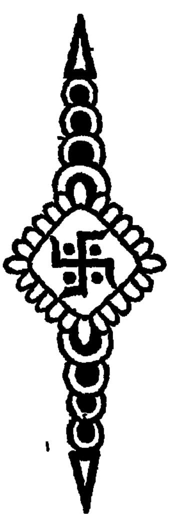
सूत्र :—से किं तं बोयसुहुमे ? बीयसुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा—किण्हे जाव सुक्किले, जे छउमत्थेणं निग्गंथेणं वा निग्गंथोए वा अत्थि बोय सुहुमे कण्णिया समाणवण्णए नामं पन्नते, जाव पडिलेहियव्वे भवइ। से तं बोय सुहुमे ॥३॥

अर्थ :—भगवन् ! बीज सूक्ष्म कैसे होते है ? उत्तर—बीजसूक्ष्म पांच प्रकार के होते हैं—काले, नीले लाल पीले और श्वेत रंग के होते हैं, और कणिका के वर्ण जैसे ही वे सूक्ष्म बीज भी होते हैं। जैसी पुष्प कर्णिका या धान्य की कर्णिका होती है उसी रंग के बीज होते हैं; अतः छद्मस्थ जन के दृष्टिगोचर नहीं होते, उन्हे बार-बार जानना देखना और प्रतिलेखन करना योग्य है।

सूत्र :—से किं तं हरिय सुहुमे ? हरिय सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा—किण्हे जाव सुक्किले अत्थि हरिय सुहुमे पुढवो समाणवण्णए नामं पन्नते, जे निग्गंथेण वा निग्गंथोए वा अभिक्खणं २ जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ। से तं हरिय सुहुमे ॥४॥

अर्थ :—भन्ते ! हरित सूक्ष्म कैसे होते हैं ? उत्तर—हरित सूक्ष्म पंचविध होते हैं—कृष्ण नील लाल पीले और श्वेत। वे पृथ्वी जैसे रग वाले हैं। छद्मस्थ साधु साध्वी उन्हे बार-बार जाने देखे और प्रतिलेखन रत क्षम बतलाये। ये सूक्ष्म अकुर होने से शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

कल्पसूत्र
३७६



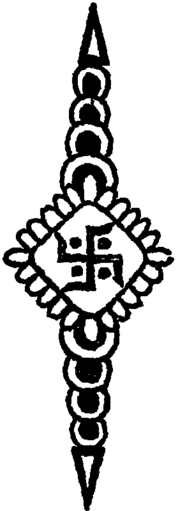
सूत्र :—से किं तं पुप्फ सुहुमे ? पुप्फ सुहुमे पंचविहे पन्नते, तंजहा—किण्हे जाव सुक्किले अत्थि पुप्फ सुहुमे रुक्ख समाण वण्णे नामं पन्नते, जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाणियव्वे, जाव-पडिलेहियव्वे भवइ। से तं पुप्फ सुहुमे ॥५॥

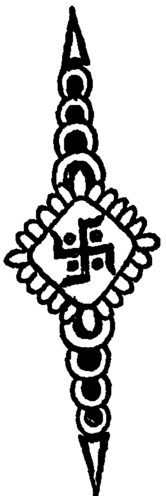
अर्थ :—भन्ते ! पुष्पसूक्ष्म कैसे होते हैं ? उत्तर पुष्पसूक्ष्म पांच प्रकार के होते हैं। कृष्ण यावत् श्वेत वर्ण पुष्प सूक्ष्म—वृक्ष के जैसे ही वर्णवाले होते हैं छद्मस्थ साधु-साध्वी ठीक ढग से जाने देखे और प्रतिलेखन करे। ये पुष्प सूक्ष्म ज्ञेय है।

सूत्र :—से किं त अंड सुहुमे ? अंड सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा—उद्दंसंडे, उक्कलियंडे पिपोलिअंडे, हलिअंडे, हल्लोहलि अंडे, जे निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाव पडिलेहियव्वे भवइ, से तं अंड सुहुमे ॥६॥

अर्थ :—भगवन् ! अण्डसूक्ष्म कैसे होते है ? उत्तर अण्ड सूक्ष्म पॉच प्रकार के होते हैं, उनके पांच भेद है :—उद्देश अण्ड—मधुमक्षिका, मक्षिका, मत्कुण-खटमल, जू आदि के अण्डे (१) उत्कालिकाण्ड—कसारी मकडी आदि के अण्डे (२) पिपीलिकान्ड-विभिन्न प्रकार की चीटियों के अण्डे, (३) हलिकाण्ड—छिपकली आदि के अण्डे (४) हल्लोहलिकाण्ड—सरटी-गिरगिट आदि के अण्डे, इन पांच प्रकार के अण्डो में सभी छोटे जीवों के सूक्ष्म अण्डों का समावेश है। जो साधु-साध्वियों को बारम्बार जानने, देखने ओर पडिलेहणे योग्य हैं।

सूत्र :—से किं तं लेण सुहुमे ? लेण सुहुमे पंचविहे पन्नत्ते, तंजहा—उत्तिंग लेणे, भिंगु





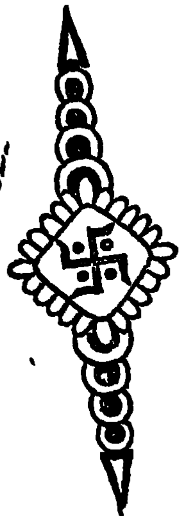
पडिलेहियव्वे भवइ, से तं लेण सुहुमे ॥७॥

लेणे, उज्जुए, तालमूलए, संबुक्कावट्टे नामं पंचमे, जे निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा जाणियव्वे, जाव

अर्थ :—भन्ते ! लयन सूक्ष्म कैसे होते है ? उत्तर-लयन-गृह को कहते हैं, सूक्ष्मलयन छोटे-छोटे गृह, जहाँ जन्तु रहते हैं। वे पाँच प्रकार के होते हैं :—(१) उत्तिंग, लयन-भूमि मे गोलाकार घर होते हैं, उनमे गर्दभाकार सूँड वाले छोटे-२ जन्तु रहते हैं। उनमें गिरे हुये कीडे आदि निकल नहीं सकते। उन सूंडवाले जन्तुओं को बालहस्ति भी कहते हैं। (२) भृगुलयन—कीचडवाली पृथ्वी में जल सूख जाने पर ऊपर पपड़ी-सी बन जाती है, उसके नीचे जीव-जन्तु अपना घर बना लेते हैं उसे भृगुलयन कहते हैं। (३) ऋजुलयन—जन्तुओं के सीधे सरल बिल, साँप चूहे आदि के बिल होते हैं। (४) तालमूललयन—ताड़ वृक्ष के मूल के समान ऊपर से सँकडे और अन्दर से लम्बे-चोड़े बिल होते हैं। (५) शम्बूकावर्त्तलयन—शंख के जैसे आवर्त्त वाले—भौंरे, टांटिये आदि के घर होते है। छोटे और बड़े दोनों तरह के सभी लयन होते हैं, इतने छोटे भी होते हैं जो कठिनाई से ही दिखायी पड़ते हैं। अतः छद्मस्थ साधु साध्वी इन्हें जाने देखें और इनसे दूर रहने का विवेक रखें। यह लयन सूक्ष्म हैं।

सूत्र :—से किं तं सिणेह सुहुमे ? सिणेह सुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—उस्सा, हिमए, महिया, करए, हरतणुए। जे छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं २ जाव पडिलेहियव्वे भवइ। से तं सिणेह सुहुमे ॥८॥४५॥

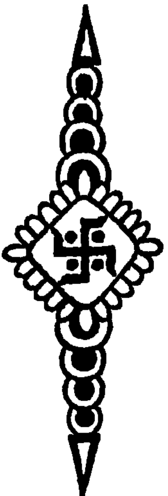
अर्थ :—भगवन् ! स्नेह सूक्ष्म कैसे होते है ? उत्तर-स्नेह सूक्ष्म पाँच प्रकार के बतलाये हैं। वे इस प्रकार अवश्याय—ओस—जो रात्रि में सूक्ष्म जल बिन्दु गिरते है। जो कि पत्र पुष्प तृण आदि पर स्पष्ट दिखते



हैं, परन्तु अन्य वस्तुओं पर प्रायः देखे नहीं जाते हैं और सूक्ष्म तो देखे नहीं जा सकते। हिम-बर्फ, शीत ऋतु में ओर शीत प्रधान स्थानों में तो सदा ही पडती है। मिहिका—कुहरा, धूँअर, शीतकाल मे या वर्षा ऋतु मे होती है। करक—ओले, छोटे-बडे सभी तरह के बादलो से वर्षते है। हरित तृण—अंकुर के ऊपर जलरूप होते हैं। इन्हे छद्‌मस्थ साधु साध्वी बारंबार जाने देखे ओर प्रतिलेखन करे। ये आठ सूक्ष्म वर्षा काल में प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य है। अर्थात् इनकी विराधना हो, इस प्रकार के कार्यों से बचना चाहिये। जयणापूर्वक प्रवृत्ति करना साधु साध्वी के लिये अनिवार्य बतलाया है।

गुरु आदि की आज्ञा से गोचरी, विहार आदि करने रूप सतरहवीं समाचारी—

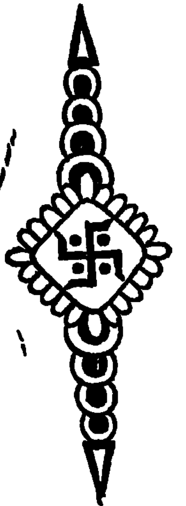
सूत्र :—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता आयरियं वा, उवज्झायं वा, थेरे वा, पवित्तिं वा, गणिं गणहरं गणावच्छेअयं जं वा पुरओ काउं विहरइ, कप्पइ से आपुच्छिउं आयरियं वा जाव-जं वा पुरओ काउं विहरइ, 'इच्छामि णं भत्ते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, ते य से वियरिज्जा-एवं कप्पइ गाहावइ कुलं भत्ताए वा, पाणाए वा, जावपविसित्तए, ते य से नो वियरिज्जा, एवं से नो कप्पइ गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा। से किमाहु भंत्ते? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥४६॥ एवं विहार भूमिं वा, वियार भूमिं वा अन्नं वा जं किंचि पओअणं, एवं गामाणुगामं दूइज्जित्तए ॥४७॥



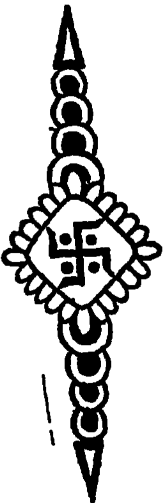
अर्थ :—वर्षावास रहा हुआ साधु गृहस्थ के घर आहार पानी आदि के लिए जाना आना चाहे तो उसे आचार्यादि से पूछकर जाना कल्पता है। किन-किन को पूछना योग्य है, उसे सूत्रकार कहते हैं—आचार्य १ सूत्र व अर्थ की वाचना देने वाले वाचनाचार्य, २ गच्छ के स्वामी समुदायाचार्य, ३ दिगाचार्य—दीक्षा समय नाम स्थापना के प्रसंग मे गण शाखा कुल आदि के साथ वर्त्तमान आचार्य गुरु आदि के नाम कहने वाले होते है। ऐसे तीन प्रकार के आचार्य होते हैं। उपाध्याय—मूल सूत्र पाठ पढ़ाने वाले होते है। स्थविर—तीन प्रकार के होते हैं—श्रुत स्थविर, पर्याय स्थविर, वयः स्थविर। ये ज्ञान के पठन पाठन चारित्र पालन, तपः साधन आदि मे अन्य मन्द उत्साह वालो को उत्साहित करते हैं। शिथिल या भग्न परिणामी को स्थिर करते रहते हैं। और प्रत्येक साधना में प्रेरित करना, उत्साहित की प्रशसा कर अधिक प्रगतिशील और आन्तरिक लगन युक्त बनाना आदि कार्य स्थविर मुनि, आर्या, करते हैं। प्रवर्त्तक—ज्ञानादि मे प्रवृत्ति कराने वालों को कहते हैं। गणि—आचार्यादि को भी सूत्रादि पढाने की योग्यता वाले बहुश्रुत विद्वान को कहते हैं। गणधर—तीर्थंकरों के मुख्य शिष्यों को कहते हैं। गणावच्छेदक—आचार्य की आज्ञा से अन्य साधुओं को ले पृथक् विचरने वाले या गच्छ समुदाय के निमित्त क्षेत्र उपधि आदि की गवेषणा मे तत्पर, सूत्र व अर्थ के ज्ञाता होते है। अग्रेसर—जो अवस्था व दीक्षा पर्याय मे लघु होते हुये भी बहुश्रुत होने से व गीतार्थ होने से रत्नाधिक होते हैं। आचार्यादि उन्हे अग्रेसर कर उनके साथ अन्य साधुओं को अन्य क्षेत्रो में विचरने भेजते हैं।

इन उपर्युक्त पूज्यवरों में से जिनकी निश्रा में रह कर विचर रहे हों, उनकी आज्ञा लेना अनिवार्य है। पूछने की विधि इस प्रकार है :—

भगवन्! आपकी आज्ञा हो तो मै गृहस्थो के घर आहार पानी आदि के लिये जाना आना चाहता हूं? ऐसा पूछने पर आचार्यादि आज्ञा दें तो जाना आना कल्पता है। आचार्यादि की आज्ञा न हो तो नहीं



कल्पसूत्र
३८०

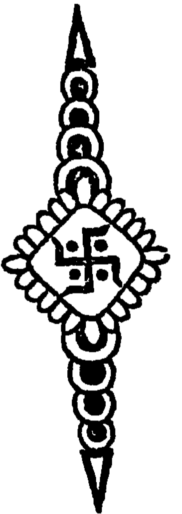


कल्पता। प्रश्न—भन्ते ! ऐसा क्यों कहा है ? उत्तर—आचार्यादि प्रत्युपाय—उपद्रव; विघ्न व उनके निवारण का उपाय जानने वाले होते हैं। अतः पूछकर आज्ञा हो तो जाना चाहिये।

इसी प्रकार अन्य कार्यों—मन्दिर गमन, स्थण्डिल भूमिगमन, अन्यत्र विहार करना, अथवा जो कुछ भी प्रयोजन हो, पूछकर आज्ञा हो तो करे। न आज्ञा हो तो न करे। ऐसे ही उपाश्रय स्थित करने के कार्य—पढना लिखना, सीना वेयावच्चादि भी पूछ कर करे।

सूत्र :—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरिं विगइं आहारित्तए नो से कप्पइ से अणापुच्छित्ता आयरियं वा, जाव गणावच्छेययं वा जं वा पुरओ कट्टु विहरइ, कप्पइ से आपुच्छित्ता आयरियं जाव-आहारित्तए, 'इच्छामि णं भंते ! तुब्भहिं अभणुण्णाए समाणे अन्नयरिं विगइं आहारित्तए तं एवइयं वा एवइ खुत्तो वा ते य से वियरिज्जा, एवं से कप्पइ अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, ते य से नो वियरिज्जा एवं से नो कप्पइ अण्णयरिं विगइं आहारित्तए, से किमाहु भंते ! ? आयरिया पच्चवायं जाणंति ॥४८॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित साधुओ को किसी भी विगय—दूध दही घृतादि की इच्छा हो तो आचार्यादि पूर्वोक्त पूज्यों को पूछे—भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो अमुक विगय वापरना चाहता हूँ। गुरु आज्ञा दे तो वापरे, आज्ञा न दे तो न वापरे। 'बिना आज्ञा के वापरना उचित नही' ऐसा क्यों कहा है ? उत्तर—आचार्यादि प्रत्युपाय जानते है, लाभ हानि ज्ञाता, दीर्घदर्शी होते है। ग्लान—अस्वस्थ निर्बल को विगय देने से ज्वर अजीर्णवमनादि हो सकते है। पुष्टि के लिये ली हुयी विगय रोगोत्पत्ति कर सकती है; अतः पूछ कर आज्ञा हो तो सेवन करे।



कल्पसूत्र
३८१

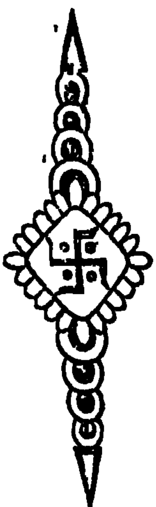
सूत्र :—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरिं ते इच्छियं आउट्टित्तए तं चेव सव्वं भाणियव्वं ॥४९॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु उपलक्षण से साध्वी, वात पित्त कफ ओर सन्निपात से उत्पन्न रोगों की किसी प्रकार की चिकित्सा, उपचार आदि कराने की इच्छा हो तो आचार्यादि की आज्ञा लेकर करावे। चिकित्सा के चार अग हैं—आतुर, वैद्य, परिचार और ओषधि। आचार्यादि सर्व के विषय में जानकार होते है; अतः पूछ कर आज्ञा लेकर ही कराना उचित है।

सूत्र :—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा अण्णयरं ओरालं कल्लाणं, सिवं धन्नं मंगल्लं सस्सिरीयं महाणुभावे तवो कम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए तं चेव सव्वं भाणियव्वं ।५०।

अर्थ :— वर्षावास रहे हुये कोई साधु साध्वी उत्तम कल्याणकारी, शिव-उपद्रव नाशक धन्य-पशंसनीय मंगलमय, शोभाकारक महाप्रभावशाली तप-मासक्षमणादि करना चाहे तो आचार्य यावत् अग्रेसर को पूछकर आज्ञा लेकर करे। क्योंकि आचार्यादि प्रत्युपाय—करने वाले की शक्ति सामर्थ्य, वैयावृत्य कारक आदि परिस्थितियों के जानकार होते है; अतः पूछना-आज्ञा लेना अनिवार्य है।

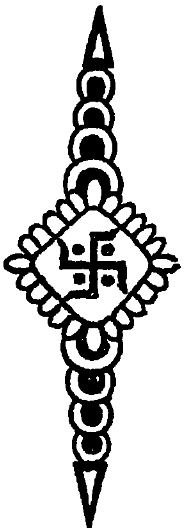
सूत्र :—वासावासं पज्जोसविए भिक्खु इच्छिज्जा अपच्छिम मारणंतिय-संलेहणा-जूसणा-जुसिए भत्तपाण पडियाइक्खिए पाओवगए कालं अणवकंखमाणे विहरित्तए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा, असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारित्तए वा उच्चारं वा, पासवणं वा, परिट्ठावित्तए सज्झायं वा करित्तए, धम्मजागरियं वा जागरित्तए। नो से कप्पइ अणापुच्छित्ता, तं चेव सव्वं ॥५१॥



अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु साध्वी अन्तिम मारणान्तिक सलेखना—(तपस्या से शरीर सुखा देने रूप होती है) द्वारा शरीर क्षीण हो जाने पर भक्त-पानादि का प्रत्याख्यान कर पादपोपगमनादि अनशन करना चाहता है। जीवन मरण की आकांक्षा रहित है अथवा तपस्या-सलेखनार्थ कर रहा है, तो आहार पानी के लिये गृहस्थों के गृहों मे जाना आना चाहता है, आहारादि करना चाहता है, अथवा उच्चार मलोत्सर्ग-प्रस्रवण, मूत्रादि परठना, स्वाध्याय करना, धर्मजागरण करना इत्यादि करने की इच्छा हो तो आचार्यादि अग्रेसर को पूछकर आज्ञा लेकर उपर्युक्त सभी कार्य करना कल्पता है। क्योंकि आचार्यादि प्रत्युपाय जानते हैं। परिस्थितियाँ देखकर आज्ञा देते है, न देखे तो आज्ञा नहीं देते।

धूप में रखे हुये वस्त्रपात्रादि अन्य को सँभला कर गोचरी आदि जाने रूप अठारहवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसविए भिक्खू इच्छिज्जा वत्थं वा कंबलं वा, पायपुंच्छणं वा, पड़िग्गहं वा उत्रहिं आयावित्तए वा पयावित्तए वा,। नो से कप्पइ एगं वा, अणेगं वा, अपडिण्णवित्ता गाहावइ कुलं भत्ताए वा पाणाए वा निक्खमित्तए वा पविसित्तए वा असणं १ वा पाणं २ वा खाइमं ३ वा साइमं ४ वा आहारित्तए. बहिया विहारभूमिं वा, वियारभूमिं वा, सज्झायं वा करित्तए, काउसग्गं वा, ठाणं वा ठाइत्तए। अत्थि य इत्थ केइ अभिसमण्णागए अहासण्णिहिए एगे वा अणेगे वा, कप्पइ से एवं वइत्तए—इमं ता अज्जो ! तुमं मुहुत्तगं जाणेहि, जाव ताव अहं गाहावइ कुलं जाव काउसग्गं वा, ठाणं वा ठाइत्तए से य से पडिसुणिज्जा, एवं से कप्पइ गाहावइ कुलं, तं चेव सव्वं भाणियव्वं। से य नो पडिसुणिज्जा, एवं से नो कप्पइ गाहावइ कुलं जाव काउसग्गं वा ठाणं वा ठाइत्तए ॥५२॥



अष्ट प्रवचन मातृकाओं पर दृष्टान्त

१ ईर्या-समिति पर वरदत्त मुनि का दृष्टान्त

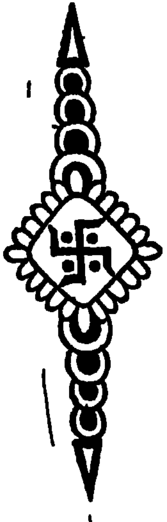
एकदा वरदत्त नामक मुनि विहार करते हुये किसी वन मार्ग पर चल रहे थे। किसी मिथ्यात्वीदेव ने पथ में देव शक्ति से मेंडकियाँ बना कर हस्ति रूप बन मुनि को सूंड से उठा-उठाकर पथ पर उछालना आरम्भ किया। मुनि ने शारीरिक आघात से विचलित न हो, जीवदया की भावना से रजोहरण द्वारा मेंडिकियो को जयणापूर्वक दूर कर दिया। ऐसा कई बार किया, जिससे देव ने प्रसन्न हो वन्दन नमस्कार कर क्षमा याचना की।

२ भाषा-समिति पर संगत साधु का दृष्टान्त

किसी नगर को शत्रु सेना ने घेर लिया था। तत्रस्थ एक संगत नामक मुनि बहिर्भूमि आये तो शत्रु सैनिको ने पकड़ लिया और नगर की प्राकार भित्ति पर कितनी सेना है? इत्यादि विषय में पूछा। मुनि ने उत्तर दिया—जो सुनते है वे देखते बोलते नहीं और जो देखते या बोलते है वे सुनते नहीं! ऐसी असगत बात सुनकर सैनिकों ने पागल समझ कर छोड़ दिया।

३ एषणा-समिति पर नन्दिषेण मुनि का दृष्टान्त

अर्थ :—वासुदेव कृष्ण के पिता वसुदेव पूर्व भव में नन्दिषेण नामक तपस्वी और वैयावृत्य करने वाले मुनि थे। एकदा देवेन्द्र द्वारा उनकी प्रशंसा सुन एक देव अविश्वास करता हुआ परीक्षा लेने आया। एक ग्लान साधु व क्षुल्लक साधु दो रूप बनाये। ग्लान को वन में रख क्षुल्लक नन्दिषेण के पास आया। नन्दिषेण छट्ठ का पारणा करने बैठने को प्रस्तुत थे, क्षुल्लक ने कहा—धिक्कार हो! अरे! वन में अतिसार रुग्ण मुनि पड़े है और तुम यहाँ पारना करने को बैठ रहे हो! नन्दिषेण सुनते ही त्वरित खडे हो गये और जल लेने ... तप के प्रभाव से एक गृह में प्रासुक जल मिला, उसे ले वन



में गये, साधु का शरीर प्रक्षालन कर कन्धे पर उठा नगर की ओर चले। मार्ग में देव मुनि ने कन्धे पर मलोत्सर्ग कर दिया और कठोर असभ्य शब्द बोलने लगा। नन्दिषेण शान्त भाव से मुनि की चिकित्सा के विचार में तल्लीन चलते रहे। नन्दिषेण की सहनशीलता और सेवापरायणता देख देव प्रत्यक्ष हो नमस्कार स्तुति कर चला गया।

४ प्रतिलेखना समिति पर सोमल ऋषि का दृष्टान्त

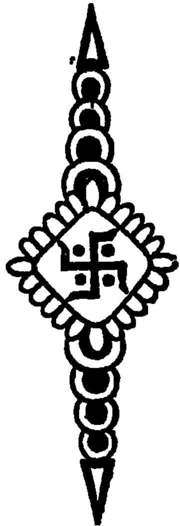
एकदा मेघाच्छन्न दिन होने से साधुओं ने समय से पूर्व ही पडिलेहणा कर ली। गुरुजी ने समय होने पर पडिलेहण का आदेश दिया तो सोमिल मुनि ने कहा—अभी तो पडिलेहणा की थी! क्या झोली में साँप आ बैठे हैं? बार-बार कैसी पडिलेहणा! मुनि के अविनीत वचनों से शासनदेवी ने शिक्षा देने को सचमुच ही झोली में सर्प बना दिये। सब ने सोमिल से कहा—भविष्य में ऐसे उल्लण्ठ वचन न बोलना! सोमिल मुनि इससे प्रतिबुद्ध हुये और पडिलेहण में दृढमनस्क बन गये।

५ पारिष्ठापनिका समिति पर मुनिचन्द्र का दृष्टान्त

एकदा गुरु महाराज ने लघु शिष्य मुनिचन्द्र को स्थण्डिल पडिलेहण का आदेश दिया। लघु शिष्य ने कहा—आज सध्या को स्थण्डिल भूमि पडिलेहण न की तो क्या रात्रि मे वहाँ ऊँट आकर बैठ जायेंगे?। गुरु मौन रहे, रात्रि में प्रस्रवणादि परठने मुनिचन्द्र स्थण्डिल भूमि गये। शासनदेवी ने वहाँ ऊँट बना दिये थे, वे उठकर मुनिचन्द्र को मारने दौड़े, भयभीत मुनि उपाश्रय की ओर भगकर आये, गुरुजी से कहा। गुरुजो ने कहा—तुमने उल्लण्ठ वचन कहे, इसी कारण से शासनदेवी ने ऐसा किया है। मुनिचन्द्र ने मिथ्यादुष्कृत दिया और वे भविष्य में ठीक ढग से पडिलेहण करने लगे।

६ मनोगुप्ति पर कोकण मुनि का दृष्टान्त

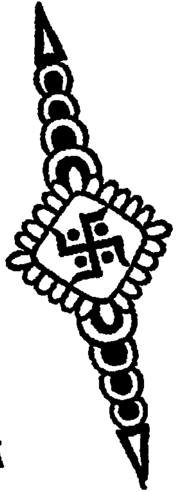
कोकण देश के एक मुनि ईर्यावही कर रहे थे। पूर्व अवस्था का कृषि कर्म स्मरण में आ गया। पुत्रादि



की आलस्य प्रकृति का विचार करने लगे। गुरु महाराज ने सावधान कर प्रतिबोध दिया। सावद्य व्यापार
चिन्तन का मिथ्यादुष्कृत दे विशुद्ध बने।

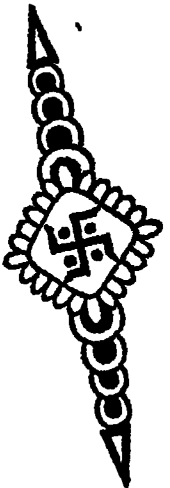
७ वचन गुप्ति पर गुणदत्त मुनि का दृष्टान्त

एकदा गुणदत्त नामक साधु जन्मभूमि की ओर जा रहे थे। मार्ग में चोरों ने पकड़ लिया और कहा—
हमारे विषय में नगरजनों को कुछ न कहो तब तो छोड़ दें? मुनि शान्त भाव से रहे, चोरों ने छोड़ दिया।
नगर की ओर से उनके सम्बन्धी सामने आ रहे थे, वे मिले; मुनि ने चोरों के विषय में कुछ नहीं कहा।
चोरों ने मुनि की प्रशसा की और मुनि के सम्बन्धियों को नहीं लूटा तथा भविष्य में चौर्य कर्म त्याग
दिया।



८ काय गुप्ति पर अर्हन्नक मुनि का दृष्टान्त

अर्हन्नक साधु विहार करते एक नाले के पास पहुँचे। सोचा जल में जाने से अप्काय की विराधना
होगी, अतः कूद कर पार हो जायें! कूद कर जाते मुनि को शिक्षा देने के लिए देवी ने टांगों के बीच में
लकड़ी डालकर गिरा दिया, मुनि को चोट लगी। शासनदेवी ने जिनाज्ञोल्लंघन की बात कह प्रतिबोध
दे स्वस्थ बनाया।



इस प्रकार साधु साध्वियों को वर्षाकाल में पाट पीठ फलक काष्ठासन-चौकी आदि पर शयन करना
बैठना चाहिये। उनको पडिलेहना, प्रमार्जना, शोधन, व भूमि से उपकरणों को ऊँचा रखना योग्य है।
साधुओं के १४ ओर साध्वियों के २५ उपकरण होते हैं। दिन में दो बार पडिलेहणा करनी चाहिये। मुख-
वस्त्रिका से मुख ढंक कर बोलना उचित है। दण्डासन से भूमि प्रमार्जन कर चलना योग्य है। आहार
पानी उजाले में अच्छी तरह देखकर करना चाहिये। सात बार चैत्यवन्दन और चार बार सज्झाय

कल्पसूत्र
३८८

करना अनिवार्य है। . विकथा-प्रमाद न करना चाहिये। ऐसा करने से साधु साध्वी सुख से संयम की सुरक्षा कर सकते हैं।

स्थण्डिल प्रतिलेखना रूप बीसवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उच्चार पासवणभूमो ओ पडिलेहित्तए, न तहा हेमंतगिम्हासु जहा णं वासासु, से किमाहु भंते ! वासासु णं, उस्सण्णं पाणाय, तणा य बोयाय, पणगा य हरियाणि य भवंति ॥५५॥

अर्थ :—वर्षावास रहे हुये साधु-साध्वियो को तीन उच्चार प्रस्रवण भूमियों का प्रतिलेखन करना चाहिये, किन्तु वर्षाकाल के जैसे शीतकाल और उष्णकाल में तीन भूमि का विधान नही है। उपाश्रय से दूर मध्य ओर समीप तीन भूमि प्रतिलेखन कही है, असह्य हो तब भी वर्षाकाल में तीनो भूमि पडिलेहे। कुल २४ स्थण्डिल पडिलेहण होती है, उनमें बारह उपाश्रय में और बारह उपाश्रय के बाहर की जाती है। शिष्य पूछता है—भगवन् ! वर्षाकाल मे ही भूमि पडिलेहण क्यों कहीं ? उत्तर—क्योंकि वर्षार्तु में प्रायः इन्द्रगोप, कृमि, चींटियाँ आदि अनेक छोटे-छोटे त्रसजीवों एव तृण बीज पनक आदि स्थावरजीवों से पृथ्वी आकीर्ण हो जाती है। अतः प्रतिलेखन आवश्यक है।

तीन मात्रिये रखने रूप इक्कीसवीं समाचारी :—

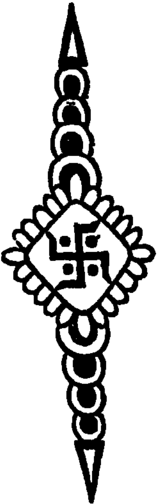
सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ मत्तगाइं गिहित्तए, तंजहा—उच्चार मत्तए, पासवणमत्तए खेलमत्तए ॥५६॥

अर्थ :—वर्षावास रहे हुये साधु साध्वियों की तीन मात्रक—मिट्टी आदि के पात्र लेने कल्पते हैं :— एक मलोत्सर्ग के लिए, दूसरा मूत्रोत्सर्गार्थ, तीसरा श्लेष्मादि थूँकने के लिये।

लुञ्चन विचार स्वरूप बावीसवीं समाचारी—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोमप्पमाणमित्ते वि केसे तं रयणिं उवायणावित्तए । अज्जेणं खुरमुंडेण वा, लुक्कसिरएण वा होइयव्वं वासिया । पक्खिया आरोवणा, मासिए खुरमुंडे अद्धमासिए कत्तरिमुंडे छम्मासिए लोए, संवच्छरिए वा थेर कप्पे ॥५७॥

अर्थ :—वर्षावास स्थित साधु साध्वियों के पर्यूषणा करने से पहले लुंचन कराना अनिवार्य है। गाय के रोम जितना भी केश रखकर सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना आदि पर्यूषण कार्य करने नहीं कल्पते हैं। सामर्थ्य हो तो शिर आदि को सदा केश रहित ही रक्खे जिनकल्पी साधु के लिये तो यह अनिवार्य नियम है। स्थविर कल्पी समर्थ साधु को भी वर्षाकाल—आषाढ चौमासी से चार मास पर्यन्त अवश्य ध्रुवलोची—केश रहित रहना चाहिये। सामर्थ्य रहित साधु को भी पर्यूषणा पूर्व लोच कराना अनिवार्य है। वर्षाकाल में केश रखने से वर्षा जल से भींगने पर जीवोत्पत्ति जू आदि पडना, अप्काय की विराधना होना, गीला रहने से फुंसियाँ-खुजली आदि होना संभव है। खुजलाने पर नखो से जूंए लीखें मर जाती हैं, अतः केश रखना नही कल्पता। अपवाद स्वरूप क्षुर मुण्डनादि का विधान है। किन्तु सामर्थ्यशील होते हुये भी क्षुर मुण्डन करवाये या कैंची से कटवाये तो तीर्थंकर की आज्ञा का भङ्ग होता है। दूसरे साधु साध्वी भी लोच कराने में भग्न परिणाम हो जाते हैं। जिससे मिथ्यात्व प्ररूपणा का प्रसंग, संयम विराधना व आत्म विराधना भी हो सकती है। जूँए मरती हैं, नापित को पैसे दिलवाने पडते हैं, सचित्त जल का प्रयोग भी नापित द्वारा अपने उस्तरे आदि धोने में करने की सम्भावना रहती है। जिनशासन की हीलना का अवसर आ जाता है; अतः मुख्य वृत्ति से तो लोच ही कराना योग्य है। अपवाद रूप में बाल मुनि या



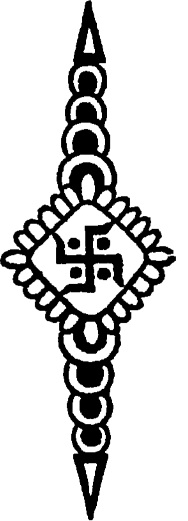
साध्वी जो लोच कराते रोने लगें उनका, या रुग्ण अथवा अत्यन्त वृद्ध और लोच के भय से संयम भी छोड़ने को प्रस्तुत हो, ऐसों का लोच न करना चाहिये। उन्हीं के लिए क्षुर मुण्डन और कर्तरी मुण्डन का अपवाद स्वरूप विधान है। अतएव शिष्य का प्रश्न है कि भन्ते ! लोच न करावे तो क्या करे ? उत्तर— प्रत्येक साधु साध्वी को हर पनरहवें दिन आरोपणा पाटे आदि के बन्धन खोलकर प्रतिलेखना करना चाहिये। टीकाकारों ने आरोपणा का द्वितीय अर्थ आलोयणा लेना किया है; तत्वं तु केवली गम्यम्। निशीथ में इस विषयक अर्थात् मुण्डन जो उस्तरे से कराया जाय तो लघुमास (पुरिमड्ढ) प्रायश्चित और कैंची से कटवाने पर गुरुमास (एकासन) प्रायश्चित का विधान है।

लुञ्चन छः महिने से या वृद्धावस्था के कारण अथवा दृष्टि रक्षार्थ वर्ष भर में भी कराया जा सकता है। और केश अधिक आते हो तो चार-चार महीने से भी किया जा सकता है।

क्लेश की उदीरणा न करने रूप तेइसवीं समाचारी—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वइत्तए, जे णं नि गंथो वा निग्गंथी वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ, से णं 'अकप्पे णं अज्जो ! वयसीति' वत्तव्वं सिया, जैण निग्गंथी वा निग्गंथो वा, परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वयइ, से णं निज्जूहियव्वे सिया ॥५८॥

अर्थ :—वर्षावास रहे हुये साधु साध्वियों को अधिकरण—क्लेशकारक वचन बोलना नहीं कल्पता है। जो साधु या साध्वी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के पश्चात् क्लेशकारक वचन बोलते हों, उन्हे अन्य साधु साध्वी कहे कि—हे आर्य ! अथवा आर्ये ! आप कल्प विरुद्ध बोल रहे हैं, यह उचित नहीं। कारण पर्यूषण पूर्व जो अकल्पनीय कार्य-क्लेशादि किये, उनका पर्यूषण में क्षमापना कर लिया। 'अब भविष्य में न



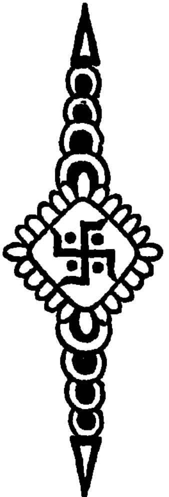
करूंगा; ऐसा 'अणागयं पच्चक्खामि' कह कर प्रत्याख्यान कर लिया है। अतः पुनः वैसा वचन बोलना उचित नहीं। मना करने या समझाने पर भी न माने तो पान के दृष्टान्त से—जैसे तम्बोली सड़े पान को अन्य ताम्बूलों के ढेर में से छांट कर बाहर फेंक देता है, वैसे ही उस साधु या साध्वी को समुदाय से बाहर निकाल देना ही योग्य है, जिससे अन्य न बिगड़ें। जो पर्यूषण में भी क्षमापना न करे वह तो सम्यक्त्व से भी पतित हो जाता है। इसी कारण उदायी* राजा ने बन्दी शत्रु को मुक्त कर क्षमापना किया था।

लघु से क्षमायाचना रूप चोवीसवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथीण वा निग्गंथीण वा अज्जेव कक्खडे, कडुवे, विग्गहे समुपज्जिज्जा, से हे राइणियं खामिज्जा, राइणिए वि सेहं खामिज्जा (१२००)

---

१ सिन्धु देश मे वीतभय पत्तन का राजा उदायी था। प्रभावती पट्टमहिषी थी। महसेन आदि दश अन्य राजा उसके आज्ञाकारी थे। राजा के गृहदेरासर मे विद्युन्माली देव द्वारा दी हुयी गोशीर्ष चन्दन की जीवितस्वामी श्रीमहावीरप्रभु की प्रभावशाली प्रतिमा थी। गृहदेवालय में सफाई आदि कार्यों के लिये एक कुब्जा दासी (जिसका नाम देवदत्ता था) को नियुक्त कर रखा था। गृहदेवालय की यात्रार्थ आये एक गन्धार नामक श्रावक ने दासी की सेवा से सन्तुष्ट हो, उसे दो दिव्यगुटिकाएँ दी। एक के प्रभाव से वह रूपवती बनी और दूसरी का प्रयोग उज्जयिनी के नृप चण्डप्रद्योतन की पटरानी बनने को किया। वह देवाङ्गना के समान रूपसी। बन गयी। अब वह सुवर्णगुटिका के नाम से प्रसिद्ध हो गयी थी। चण्डप्रद्योतन गुप्त-रूप से दासी का हरण करने के साथ दिव्य प्रतिमा भी ले गया। उदायी राजा को ज्ञात होने पर वह सेना लेकर प्रतिमा लेने गया। संग्राम में चण्डप्रद्योतन को पकड़ बन्दि बना वापिस आते वर्षार्तु आजाने से वर्त्तमान मन्दसौर है, वहा दश राजाओं सहित रुकना पडा। जिससे दशपुर प्रसिद्ध हुआ। पर्यूषण में उदायी ने संवच्छरी को प्रौषधोपवास किया। शंकावश भोजन न कर चण्डप्रद्योतन ने भी उपवास किया। उदायी को ज्ञात हुआ तो साधर्मी जान बन्धन मुक्त कर क्षमा याचना की। विस्तृत कथा कई टीकाओ मे है। वहाँ से देख सकते है।

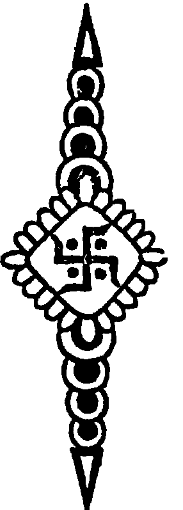


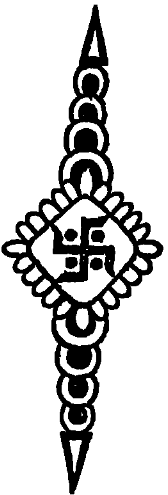
खमियव्वं, खमावियव्वं, उवसमियव्वं उवसमावियव्वं, सुमइ संपुच्छणा बहुलेणं होयव्वं। जो उवसमइ तस्स अत्थि आराहणा, जो न उवसमइ तस्स नत्थि आराहणा, तम्हा अप्पणा चेव उवसमियव्वं, से किमाहु भंते ! उवसमसारं खु सामण्णं ॥५९॥

अर्थ :—वर्षावास रहे हुए साधु साध्वियो को आज के दिन—संवच्छरी के दिन कर्कश कटुक मर्मभेदी शब्दादि रूप कलह हो गया हो तो पूज्य रत्नाधिक मुनियों से विधिज्ञ शिष्य सरल विनयी बन हार्दिक क्षमा याचना करे। यदि कदाचित् शिष्य अविनीत या अहकारी हो तों रत्नाधिक बडे मुनि अपने से छोटे अन्यों को व शिष्यो का भी खमावे। स्वय क्षमा करे, अन्यो से क्षमा याचना करे। स्वयं क्रोधादि का उपशम करे, दूसरों को उपशमाने की प्रेरणा करे। सारांश कि—जिसका गुरु, स्थविर या बराबरी वालों के साथ कलह हो गया हो तो वह उक्त को द्वेष बुद्धि त्याग, सम्यग् बुद्धि हो क्षमा याचना करे और विनयपूर्वक सूत्रार्थादि की वाचना पृच्छादि करे। बड़े भी क्षमा मागे और क्षमा करे। जो उपशमता है उसके आराधना होती है; जो उपशम नहीं करता उसके आराधना नहीं होती। आशय यह है कि क्रोधी व अहंकारी जिनाज्ञा विराधक है। प्रश्न—भन्ते ! ऐसा क्यों कहा है ? उत्तर—निश्चय ही श्रामण्य-श्रमणपना उपशमसार है। इसी प्रकार श्रावक-श्राविकाओं को भी परस्पर क्षमापना करना चाहिये। वैसे तो जीवमात्र से क्षमाया ही जाता है पर जिनके साथ सम्बन्ध हो, जिनसे व्यवहार, मिलना आदि होता रहता हो, उनसे विशेष रूप से क्षमापना कर लेना अनिवार्य है। (यहाँ सास जँवाइ का दृष्टान्त कहना चाहिये।)

तोन उपाश्रय कल्पने रूप पच्चीसवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तओ उवस्सया गिण्हित्तए, तंजहा—वेउव्विया, पडिलेहा, साइज्जिया पमज्जणा ॥६०॥





अर्थ :—चातुर्मास रहे हुये साधु साध्वियों को तीन उपाश्रय ग्रहण करने कल्पते हैं। क्योंकि वर्षाकाल में जल प्रवाह (बाढ़) आदि आने का भय रहता है, अतः तीन उपाश्रय रखने की आज्ञा दी है। जहाॅं रहते हों वह व्यापृत है; अतः वहाँ ४ बार प्रतिलेखन करे, चार बार प्रातः गोचरी के समय, मध्याह्न में और संध्या पडिलेहण समय। शीत व उष्णकाल में तीन बार करे। और स्थान जीवाकुल हो तो बार-बार पडिलेहन करे! शेष २ उपाश्रय प्रत्येक दिन दृष्टि प्रतिलेखन व तीसरे दिन दण्डासन से प्रमार्जन करें।

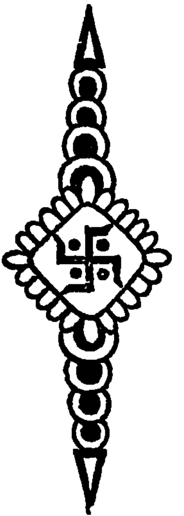
गोचरी गमन काल में दिग् निर्देशन रूप छव्वीसवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं निग्गंथाण वा निग्गंथोण वा कप्पइ अण्णयरिं दिसिं वा अणुदिसिं वा अवगिज्झिय भत्त पाणं गवेसित्तए। से किमाहु भंते! ओसण्णं समणा भगवंतो वासासु तवसंपउत्ता भवंति, तवस्सो दुब्बले, किलंते मुच्छिज्ज वा पवडिज्ज वा तामेव दिसिं वा अणुदिसिं वा समणा भगवंतो पडिजागरंति ॥६१॥

अर्थ :—वर्षावास में चातुर्मास रहे साधु साध्वियों को किसी भी दिशा या विदिशा का अवग्रह लेकर गुरु आदि अग्रेसर पूज्य को कह कर कि "मै अमुक दिशा या विदिशा मै भक्तपानार्थ जा रहा हूँ" गोचरी जाना कल्पता है। भन्ते! इसका क्या कारण है? उत्तर—वर्षाकाल मे श्रमण भगवान्, साधुजन अवसन्न—विशेष श्रम—तप स्वाध्यायादि के कारण थके हुये होते है। अर्थात् तपस्या—आलोयण पूर्ति के लिये, सयम शुद्धि के लिये, पदाराधनार्थ छट्ठ अट्ठमादि तप करने से खिन्न दुर्बल होने के कारण मार्ग में मूच्छित हो जाये, गिर पडे या अन्य आपत्ति आ जाय तो, न आ सके तब पीछे रहे हुये मुनि आदि उसी दिशा विदिशा में उनकी खोज कर सकते हैं। अन्यथा दिग् विदिग् के कहे बिना कहाॅं पता लगाये? अतः कह कर जाना अनिवार्य है।

ग्लान आदि की चिकित्सा निमित्त अन्य स्थान गमन रूप सत्ताइसवीं समाचारी :—

सूत्र :—वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा गिलाण हेउं जाव



चत्तारि पंच जोयणाइं गंतुं पडिनियत्तए, अंतराविय से कप्पइ वत्थए, नो से कप्पइ तं रयणिं तत्थेव उवायणावित्तए ॥६२॥

अर्थ :—वर्षावास रहे हुये साधु साध्वियों को रोगी ग्लानादि की वैयावृत्य—सेवा करने, ओषधि लाने वैद्य को पूछने, बुलाने, विशेष वस्त्र-कम्बलादि रोगी के लिए लाने आदि कार्यों के लिये चार या पांच योजन (३२ या ४० माइल) जाना कल्पता है; किन्तु कार्य हो जाने पर रात्रि रहना नहीं कल्पता। वहाँ से विहार कर मार्ग में रहना कल्पता है।

साधु धर्मरूप अट्ठाइसवीं समाचारी :—

सूत्र :—इच्चेइयं संवच्छरिअं थेरकप्पं अहासुत्तं, अहाकप्पं अहामग्गं, अहा तच्चं सम्मं काएणं फासित्ता, पालित्ता, सोमित्ता, तोरित्ता, किट्टित्ता, आराहित्ता, आणाए अणुपालित्ता, अत्थेगइआ समणा निग्गंथा तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति, बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वाइंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। अत्थेगइया दुच्चेण भवग्गहणेण सिज्झंति, जाव सव्व दुक्खाणमंतं करिंति। अत्थेगइया तच्चेणं भवग्गहणेणं जाव अंतं करिंति। सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमंति ॥६३॥

अर्थ—यह पूर्वोक्त सांवत्सरिक (चातुर्मास विषयक) स्थविर कल्प—यद्यपि जिनकल्पि सम्बन्धी भी कुछ सामान्य कहा गया है; किन्तु विशेषतया स्थविर कल्पियों का ही कल्प वर्णित होने से इसे स्थविरकल्प कहा है। उस स्थविर कल्प को यथाश्रुत—जैसा पूर्व परम्परा से पूज्यों ने कहा अथवा यथासूत्र—जैसा सूत्रों मे वर्णित है, वैसा 'कल्पसूत्र समाचारी' मे भी कहा है; स्वमति कल्पित नहीं है। विरुद्ध नही है कल्प के अनुसार है। यथा मार्ग—जैसा मोक्ष साधन का मार्ग होना चाहिये, वैसा ही है। यथातत्त्व—अर्थात् तत्त्व के अनुसार है। सम्यक् प्रकार से मन वचन और काया के द्वारा इस धर्म का स्पर्श करके—आत्मसात्

करके पालिता—अतिचार रहित पालन कर, दोषों को शोधकर दूर करके, यावज्जीव आराधना द्वारा पार पहुँचा कर, उपदेश द्वारा दूसरों को भी पार पहुँचा कर, शास्त्रानुसार आराधना कर तीर्थंकर भगवान् की आज्ञानुसार जैसे पूर्व महर्षियों ने पालन किया वैसे ही पालन कर, अनेक श्रमण निर्ग्रन्थ उसी भव में सिद्ध बुद्ध मुक्त परिनिवृत्त हो समस्त दुःखों का अन्त करते हैं। अनेक श्रमण निर्ग्रंथ दूसरे भव में और कितने के तृतीय भव में सिद्ध यावत् सर्व दुःखो का अन्त करते सात-आठभव का अतिक्रमण तो करते ही नहीं। अवश्य सिद्ध बुद्ध मुक्त और परिनिवृत्त हो, समस्त दुःखो का अन्त कर देते हैं। अर्थात् आराधक साधु साध्वी सात-आठ भव से अधिक ससार मे भ्रमण नहीं करते।

सूत्र :—ते णं काले ण ते णं समए णं समणे भगवं महावीरे रायगिहे नगरे, गुणसिलए चेइए, बहूण समणाणं, बहूणं समणोणं, बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाणं बहूणं देवाणं बहूणं देवीणं मज्झगए चेव एव माइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ पज्जोसवणा कप्पो नामं अज्झयणं सअट्ठं सहेउअं, सकारणं ससुत्तं सअत्थं सउभयं सवागरणं भुज्जो-भुज्जो उवदंसेइ त्ति बेमि ॥६४॥ पज्जोसवणाकप्पो नाम दसासुअक्खंधस्स अट्ठममज्झयणं सम्मत्तं ॥ (ग्रं० १२१५)

अर्थ :—उसकाल उस समय मे अर्थात् इसी अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के अन्त में, राजगृह नगर के बाह्य प्रदेश में गुणशिल चैत्य (यक्षायतनयुक्त उपवन) में श्रमण भगवान् महावीर प्रभु ने बहुत से श्रमण श्रमणी, बहुत से श्रावक श्राविका और बहुत से देव देवियो के मध्य विराजमान थे। उस समय यह पर्यूषणा कल्प नामक अध्ययन उपर्युक्त प्रकार से पूर्ण रूप से कहा बतलाया और कल्पाराधन फलयुक्त समझाया, तथा श्रोताजनों के हृदय रूप आदर्श मे अर्थ को प्रतिबिम्बित किया। इस कल्प को सप्रयोजन, सहेतुक उदाहरण युक्त कारण सहित-उत्सर्ग अपवाद युक्त, सूत्र व अर्थ तथा उभय रूप, प्रश्नोत्तर समन्वित, विस्मरणशील शिष्यों पर कृपा करके भूयः २—बार उपदेश किया।

श्री पर्यूषणाकल्प नामक अध्ययन, जो दशाश्रुत स्कन्ध का अष्टम अध्ययन है, सम्पूर्ण हुआ। शुभम्भूयात्।

—★—